

पंचास्तिकायसंग्रह प्रकाश

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के सन् १९६३-६४ के प्रवचन भाग १

धर्मास्तिकाय

अधर्मास्तिकाय

पुद्गलास्तिकाय

आकाशास्तिकाय

जीवास्तिकाय

काल





नमः सिद्धेभ्यः

पंचास्तिकायसंग्रह प्रकाश (भाग - 1)

(श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री पंचास्तिकायसंग्रह
परमागम पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ई.स. १९६३-६४ में हुए प्रवचन)

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

(ii)

विक्रम संवत्
2078

वीर संवत्
2548

ई. सन
2022

—: प्रकाशन :—

फाल्गुन माह के अष्टाह्निका महापर्व की पूर्णाहुति
के पावन अवसर पर
दिनांक 18 मार्च 2022

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334
2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।



प्रकाशकीय निवेदन

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी,
मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं ।

महावीर भगवान, गौतम गणधर तत्पश्चात् जिनके नाम का उल्लेख किया जाता है, ऐसे भरत के समर्थ आचार्य, साक्षात् सदेह विदेह में जाकर सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि का प्रत्यक्ष रसपान करके भरत में पधारे श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव महान योगीश्वर हैं, यह जगतविदित है। अनेक महान आचार्य उनके द्वारा रचित शास्त्रों का आधार देते हैं। इससे ऐसा प्रसिद्ध होता है कि अन्य आचार्य भी उनके वचनों को आधारभूत मानते हैं।

निर्मल पवित्र परिणति के धारक तो थे ही परन्तु पुण्य में भी समर्थ थे कि जिससे सीमन्धर भगवान का साक्षात् योग हुआ। महाविदेह से वापस आने के बाद पोन्नूर तीर्थधाम में साधना करते-करते उन्होंने अनेक शास्त्रों की रचना की। जिसमें श्री समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, अष्टपाहुड़ आदि पाँच परमागम तो प्रसिद्ध है ही परन्तु इसके अतिरिक्त भी अनेक शास्त्रों की रचना उन्होंने की है।

श्री समयसार इस भरतक्षेत्र का सर्वोत्कृष्ट परमागम है। उसमें नव तत्त्व का शुद्धनय की दृष्टि से निरूपण करके जीव का शुद्ध स्वरूप प्रकाशित किया है। श्री प्रवचनसार में नाम अनुसार जिनप्रवचन का सार संग्रहित है और उसे ज्ञानतत्त्व, ज्ञेयतत्त्व और चरणानुयोगसूचक चूलिका नामक तीन अधिकारों में विभाजित किया है। श्री नियमसार में मोक्षमार्ग का सत्यार्थ निरूपण है। श्री पंचास्तिकायसंग्रह में कालसहित पाँच अस्तिकायों का (अर्थात् छह द्रव्यों का) और नौ पदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग का निरूपण है तथा श्री अष्टपाहुड़ एक दार्शनिक ग्रन्थ है, जिसमें सम्यक् रत्नत्रय एक ही मोक्षमार्ग है, उसकी दृढ़तापूर्वक स्थापना की गयी है।

पंचास्तिकायसंग्रह पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा ई.स. 1963-64 में हुए उपलब्ध प्रवचनों को एकत्रित कर शब्दशः ग्रन्थ लिपिबद्ध किया गया है। पंचास्तिकायसंग्रह शास्त्र के प्रारम्भ में ही

आचार्यदेव कहते हैं कि यह शास्त्र सर्वज्ञ महामुनि के मुख से कहे गये पदार्थों का प्रतिपादक, चतुर्गतिनाशक और निर्वाण का कारण है। इस प्रकार चार अनुयोग में कोई भी अनुयोग हो परन्तु चारों ही अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है, ऐसा अन्त में 172 गाथा में कहकर समस्त अनुयोगों का सार कहा है। निश्चय-व्यवहाररूप मोक्षमार्ग की सन्धि करके अति स्पष्ट विवेचन किया गया है।

वर्तमान श्री सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि में जो कहा जा रहा है, उसे प्रत्यक्ष झेलनेवाले भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव और उनके अनन्य भक्त, कि जिनकी विद्यमानता श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के विदेहगमन के समय साक्षात् थी, ऐसे प्रियवर पूज्य कहान गुरुदेवश्री के अध्यात्मरस भरपूर प्रवचनों का क्या कहना! जो विषय वचनगोचर नहीं, विकल्पगोचर नहीं, उसे कथंचित् वक्तव्य करना यह कहान गुरुदेवश्री की समर्थ प्रचण्ड शक्ति के दर्शन कराता है और भविष्य में ॐकार ध्वनि खिरनेवाली है, इसका सूचक है।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ओडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झवेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ ने इस महान कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सम्हालकर रखा, तदर्थ उसके प्रति भी आभार व्यक्त करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की सुरक्षा सी.डी., डी.वी.डी. तथा वेबसाईट (www.vitragvani.com) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा की गयी है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की यह भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाया गया तत्त्वज्ञान का भरपूर लाभ सामान्य जन प्राप्त करे कि जिससे यह वाणी शाश्वत् बनी रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरशः ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी भावना के फलस्वरूप पंचास्तिकायसंग्रह ग्रन्थ पर ई.स. 1963-64 में हुए उपलब्ध प्रवचन यहाँ 'पंचास्तिकायसंग्रह प्रकाश, भाग-1' प्रकाशित किये जा रहे हैं। पंचास्तिकायसंग्रह ग्रन्थ के संकलित प्रवचन भी पूर्व में सद्गुरु प्रवचनप्रसाद (दैनिक पत्रिका) के रूप में श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा प्रकाशित हुए हैं। प्रस्तुत 27 प्रवचन बाद में प्राप्त हुए प्रवचन हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहेनश्री चम्पाबहिन के करकमल में सादर समर्पित करते हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में पर्याप्त सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना को पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। प्रस्तुत प्रवचनों को सुनकर गुजराती भाषा में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य पूजा इम्प्रेसन्स, भावनगर तथा प्रवचनों के प्रूफ संशोधन का कार्य श्री

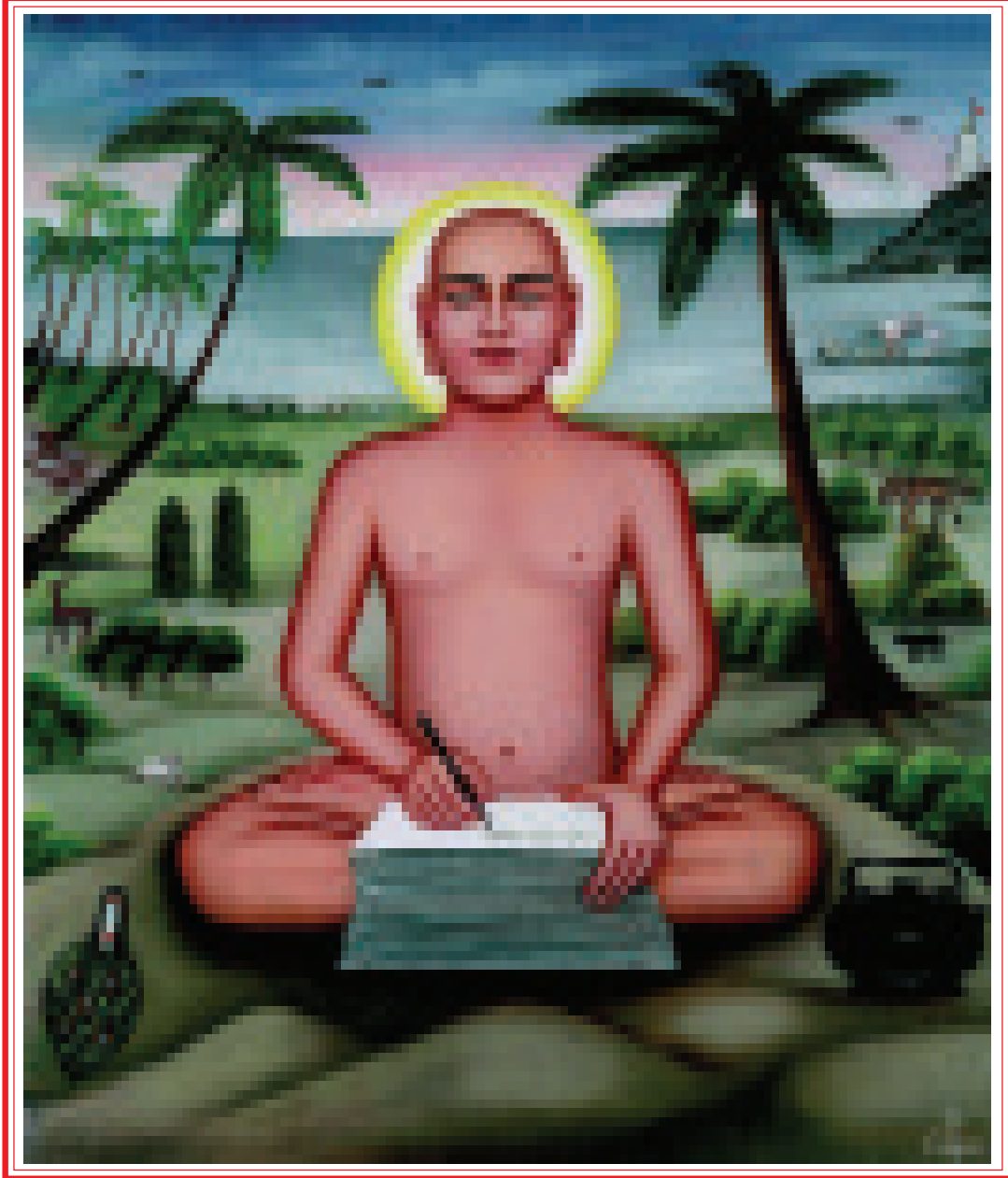
सुधीरभाई शाह, सूरत तथा श्री अतुलभाई जैन, मलाड द्वारा किया गया है। इस प्रवचन ग्रन्थ के हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राजस्थान) द्वारा किया गया है। टाईपसेटिंग का कार्य श्री विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ द्वारा किया गया है। ट्रस्ट सभी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारीपूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक तथा उपयोगपूर्वक किया गया है। तथापि प्रकाशनकार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र के प्रति क्षमायाचना करते हैं। ट्रस्ट मुमुक्षुजनों से निवेदन करता है कि यदि कोई अशुद्धि दृष्टिगोचर हो तो हमारा ध्यान आकृष्ट करें, जिससे आगामी आवृत्ति में यथोचित सुधार किया जा सके।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण करे - ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं।

यह प्रवचन www.vitragvani.com पर शास्त्र भण्डार के अन्तर्गत गुरुदेवश्री के शब्दशः प्रवचनों में एवं vitragvani app पर उपलब्ध हैं।

ट्रस्टीगण,
श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विलेपार्ला, मुम्बई



भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव



अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी (संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 - ईस्वी) प्रातःकाल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्रायः प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — 'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।' इसका अध्ययन और चिन्तन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको निःशंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अतः अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का

श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल 'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुर्ब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यो के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वी सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वी सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वी सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्णपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित

सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपकी तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!



अनुक्रमणिका

प्रवचन	दिनांक	गाथा	पृष्ठ क्र.
०१	०५.१२.१९६३	प्रवचनसार, श्लोक-८-९ पंचास्तिकायसंग्रह, कलश-१	००१
०२	०६.१२.१९६३	कलश - २ से ६, गाथा - १	०२२
०३	०८.१२.१९६३	१	०४७
०४	०९.१२.१९६३	१	०६५
०५	१०.१२.१९६३	२	०८४
०६	११.१२.१९६३	२-३	१०५
०७	१२.१२.१९६३	३-४	१२६
०८	१३.१२.१९६३	४	१४५
०९	१४.१२.१९६३	४	१६६
१०	१५.१२.१९६३	४-५	१८६
११	१७.१२.१९६३	५	२०६
१२	१८.१२.१९६३	५-६	२२७
१३	१९.१२.१९६३	६-७-८	२४८
१४	२०.१२.१९६३	८	२७५
१५	२१.१२.१९६३	८-९	२९५
१६	२२.१२.१९६३	९	३१६
१७	२४.१२.१९६३	१०	३३७
१८	२५.१२.१९६३	१०	३५८
१९	२६.१२.१९६३	१०-१२	३७९
२०	२७.१२.१९६३	१३-१४	३९९
२१	२८.१२.१९६३	१४	४२१
२२	२९.१२.१९६३	१५	४३९
२३	०१.०१.१९६४	१६	४५९
२४	०१.०१.१९६४	१७-१८	४७७
२५	०२.०१.१९६४	१८ - २०	४९८
२६	०३.०१.१९६४	२०	५२०
२७	०४.०१.१९६४	२०-२१	५४०



परमात्मने नमः

पंचास्तिकायसंग्रह प्रकाश

(भाग-१)

(श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री पंचास्तिकायसंग्रह परमागम पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ईस्वी सन् १९६३-६४ में हुए शब्दशः प्रवचन)

प्रवचनसार श्लोक - ८*

(अब शुद्धनय के द्वारा शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त करानेवाले आत्मा की
महिमा श्लोक द्वारा कहकर, द्रव्यसामान्य के वर्णन की पूर्णाहूति की जाती है :—)

(मन्दाक्रान्ता छंद)

इत्युच्छेदात्परपरिणितेः कर्तृकर्मादिभेद-
भ्रान्तिध्वंसादपि च सुचिराल्लब्धशुद्धात्मतत्त्वः ।
संचिन्मात्रे महसि विशदे मूर्च्छितश्चेतनोऽयं
स्थास्यत्युद्यत्सहजमहिमा सर्वदा मुक्त एव ॥८॥

अर्थ—इस प्रकार परपरिणति के उच्छेद से (अर्थात् परद्रव्यरूप परिणामन के
नाश से) तथा कर्ता, कर्म इत्यादि भेदों की भ्रान्ति के भी नाश से अन्त में जिसने शुद्ध
आत्मतत्त्व को उपलब्ध किया है—ऐसा यह आत्मा, चैतन्यमात्र विशद (निर्मल) तेज
में लीन होता हुआ, अपनी सहज (स्वाभाविक) महिमा के प्रकाशमानरूप से सर्वदा
मुक्त ही रहेगा ।

* प्रवचन के प्रारम्भ में प्रवचनसार कलश ८-९ पर प्रवचन होकर प्रवचनसार ग्रन्थ की पूर्णता एवं
तत्पश्चात् पंचास्तिकाय संग्रह प्रारम्भ होगा ।

कार्तिक कृष्ण ५, गुरुवार, दिनांक - ५-१२-१९६३,
प्रवचनसार, श्लोक - ८-९, पंचास्तिकायसंग्रह श्लोक - १, प्रवचन-१

यह प्रवचनसार ज्ञेयतत्त्व अधिकार चलता है। उसका श्लोक ८वाँ है, ८वाँ। १२६ गाथा का ८ श्लोक। अब शुद्धनय के द्वारा शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त करानेवाले आत्मा की महिमा श्लोक द्वारा कहकर, द्रव्यसामान्य के वर्णन की पूर्णाहूति की जाती है :— अर्थ है। क्या कहते हैं, देखो! यह आत्मा जो वस्तु है, उसमें वर्तमान में विकार पुण्य-पाप आदि दिखते हैं, वह तो बेकार आत्मा की शान्ति का कारण नहीं है। तो जिस नय अर्थात् सम्यग्ज्ञान का (अंश) अपनी त्रिकाल शुद्ध चैतन्यवस्तु है, उसकी दृष्टि करके अपने स्वभाव की प्राप्ति होती है, उसको यहाँ शुद्धनय की महिमा कहने में आती है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। कभी सुनी नहीं धर्म की। धर्म कैसे होता है, वह कहते हैं।

अपना आत्मा अन्दर ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्यस्वरूप है। अन्तर पुण्य और पाप का राग होता है, उससे रुचि हटाकर, दृष्टि हटाकर, अन्दर ज्ञानानन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, उसकी अन्तर में दृष्टि करके लीनता करना, उसका नाम भगवान् धर्म कहते हैं। वह धर्म है। भैया! समझ में आया? रात्रि को प्रश्न किया था न? कि विकार क्यों...? थोड़ी सूक्ष्म बात है। और यह बात सत्य अनन्त काल में सुनने में आयी नहीं। ...समझ में आता है? देखो अर्थ।

अर्थ—इस प्रकार परपरिणति के उच्छेद से.... इतना शब्द आया पहले। क्या कहते हैं? इस प्रकार... ऊपर कहा वह प्रकार। ऊपर क्या कहा? कि परपरिणति के उच्छेद से.... अर्थात् क्या कहा? ऐसे ही समझ में नहीं आता है, ध्यान रखे तो समझ में आय? शब्द-बब्द में ध्यान नहीं है। यह तो अध्यात्म बात है न। तुमको समझ में नहीं आयेगा उसमें।

यहाँ कहते हैं कि आत्मा, शरीर से भिन्न, कर्म से भिन्न और अन्दर में पुण्य और पाप का भाव होता है, दया, दान का शुभराग और हिंसा, झूठ आदि का अशुभराग, दोनों राग से अपना स्वरूप अन्दर भिन्न है। ऐसी अन्तर की दृष्टि करके अन्तर स्वभाव शुद्ध

सच्चिदानन्द 'सिद्ध समान सदा पद मेरा', ऐसा अन्तर निर्मलानन्द प्रभु अपना स्वभाव, उसकी दृष्टि करने से और उसमें लीन होने से परपरिणति के उच्छेद.... उसमें विकार का नाश होता है। सेठी!

मुमुक्षु : विकार में सब आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : विकार में सब आ गया। पुण्य, पापभाव सब विकार है। शुभ-अशुभभाव (विकार है)।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर चैतन्य में देखो। वह बात है यहाँ। एक समय में परमात्मस्वरूप अपना शुद्ध चैतन्य है अन्दर शुद्धस्वरूप।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बात नहीं है। शुभ-अशुभभाव होता है, हो। परन्तु उसकी रुचि हटाकर अपना अन्तर चिदानन्द ज्ञानानन्द अखण्डानन्द प्रभु चैतन्य है, उस पर दृष्टि लगाने से परपरिणति का उच्छेद होने से। उससे विकार की रुचि हट जाती है। पहले वह शब्द का अर्थ है। यह अध्यात्म बात है, कहीं सुनने में आयी नहीं है, इसलिए लोगों को शब्द समझे तो भी समझ में आये ऐसा नहीं है।

भगवान आत्मा... पहले बहुत बात आ गयी है। आत्मा में जो विकार होता है, वह परपरिणति के उच्छेद से। वह पहली पंक्ति है। परपरिणति अर्थात् विकार। शुभ-अशुभभाव होता है, उसकी रुचि है, वह मिथ्यात्वभाव है और शुभाशुभभाव होता है, वह चारित्र का अस्थिरता का दोष है। उसको परपरिणति के उच्छेद से.... है ? पंक्ति है या नहीं ? उसका सूझ नहीं पड़ती है। कहाँ है ? है ? कहाँ ? नहीं मिला। कोई बताईये। उसको बताया नहीं होगा न। शब्द बताना चाहिए।

इस प्रकार.... इस प्रकार का अर्थ ऊपर आ गया है। इस प्रकार अर्थात् ऊपर अर्थ आ गया। यह कहा वह। विकारी भाव की रुचि हटाकर अपना ज्ञायकमूर्ति की रुचि अन्तर दृष्टि करके, इस प्रकार। यह इस प्रकार का अर्थ (है)। परपरिणति के उच्छेद से.... राग-द्वेष आदि होता है, उसकी रुचि हटाकर अपना ज्ञानानन्द की रुचि करता है

तो मिथ्यात्व की रुचि का नाश हो जाता है। भ्रमणा, अज्ञान, मिथ्यात्व की रुचि का उच्छेद हो जाता है। अपना शुद्ध स्वभाव अखण्डानन्द... पहले समझन चाहिए, उसकी समझन करना। ऐसे ही धर्म हो जाये कि ऐसा राग हो जाये, ऐसी चीज़ नहीं है।

देह, वाणी यह (शरीर) तो मिट्टी है-पुद्गल है। अन्दर विकार होता है शुभ-अशुभभाव वह उपाधि मैल है। उससे रहित मेरी चीज़ अखण्ड शुद्ध परमानन्द की मूर्ति मैं हूँ, ऐसी रुचि लगाकर परपरिणति का उच्छेद हुआ। क्या (हुआ) ? मिथ्यात्वभाव का नाश हुआ। और अपना शुद्ध स्वभाव में रुचि थी, उसमें फिर लीनता करके स्थिरता होकर राग-द्वेष का भाव, उसके उच्छेद से। राग-द्वेष का उच्छेद इस विधि से होता है। चन्दुभाई!

मुमुक्षु : उच्छेद अर्थात् सर्वथा नाश किया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ सर्वथा नाश है। सबका नाश ही करे न। अब केवलज्ञान लेते हैं न। समझ में आता है ?

यह कुन्दकुन्दाचार्य महाराज संवत् ४९ में दिगम्बर मुनि हुए। उन्होंने यह प्रवचनसार बनाया है। और फिर ११०० वर्ष बाद अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर मुनि (हुए), उन्होंने यह टीका बनायी, संस्कृत टीका, यह उसका अर्थ चलता है। दिगम्बर मुनि थे। जंगलवासी वनवासी आनन्दकन्द में आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द में झूलनेवाले। उन्होंने भगवान की वाणी सुनकर, क्या आया (यह लिखा है)। भगवान के पास गये थे। कुन्दकुन्दाचार्य आठ दिन गये थे। सीमन्धर परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में तीर्थकर विराजते हैं, उनके पास गये थे, वहाँ से आकर यह बनाया।

कहते हैं कि अरे! आत्मा! तेरी चीज़ में अन्दर आनन्द पड़ा है। उस आनन्द की रुचि करके, पुण्य-पाप की रुचि का उच्छेद होता है। रुचि का। और बाद में आनन्दस्वरूप में स्थिरता होकर पुण्य-पाप की आकुलता का उच्छेद होता है—नाश होता है। इस विधि से नाश होता है, दूसरी विधि से नाश होता नहीं। समझ में आया ?

इस प्रकार परपरिणति... परपरिणति अर्थात् विकार। पुण्य-पाप का विकार उसकी रुचि, वह भी परपरिणति। और पुण्य-पाप का भाव, वह अस्थिरता की परपरिणति।

परविकार। उसके उच्छेद (से) (अर्थात् परद्रव्यरूप परिणामन के नाश से)... पर के लक्ष्य से पुण्य-पाप का भाव जो होता है, उसके परिणामन के नाश से। अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, उसकी दृष्टि करने से निर्मल परिणति के उत्पाद से। क्या धर्म कैसे होता है, खबर नहीं। यह करो, पूजा करो, भक्ति करो, दया, दान करो। वह शुभभाव है। राग मन्द पड़े तो वह शुभभाव है। धर्म नहीं। धर्म दूसरी चीज़ है।

धर्म तो पुण्य-पाप के विकल्प से (रहित), निर्विकल्प चैतन्य आनन्दघन अखण्डानन्द प्रभु, उसमें दृष्टि जोड़ने से मिथ्यात्व की दृष्टि का नाश होता है और जिसमें दृष्टि जोड़ी, ऐसी चीज़ में लीनता करने से वह अस्थिरता पुण्य-पाप का राग-विकार उत्पन्न नहीं होता, उसका नाम नाश होता है।

अनन्त काल में भी एक सेकेण्डमात्र भी धर्म किया नहीं, बाकी सब अनन्त बार किया। सब क्या? शुभाशुभराग। पर का तो कुछ किया नहीं। शरीर, वाणी, मन तो जड़ मिट्टी है। उसकी दशा का कर्ता आत्मा हो सकता नहीं। वह तो जड़ है। अपने को भूलकर विकार को किया। शुभ-अशुभ असंख्य प्रकार का विकार किया। उसमें परिभ्रमण-दुःख हुआ। तो जिसको आत्मा की शान्ति चाहिए और धर्म जिसको चाहिए, उसको परपरिणति इस प्रकार उच्छेद होती है, ऐसा अन्दर अनुभव करना चाहिए।

इस प्रकार परपरिणति.... पर अर्थात् विकार की दशा, उसका। (परद्रव्यरूप परिणामन के नाश से) तथा कर्ता, कर्म इत्यादि भेदों की भ्रान्ति के भी नाश से... देखो! यहाँ भ्रान्ति शब्द लगाया। क्या कहते हैं? मेरी पर्याय में मैं पर्याय का कर्ता हूँ, पर्याय मेरा कार्य है। षट्कारक हैं। कर्ता, कर्म इत्यादि छह हैं। मैं पर्याय का कर्ता हूँ, मेरी पर्याय मेरा कार्य है, मेरी पर्याय का मैं साधन हूँ, मेरी पर्याय मैंने लेकर मैंने रखी है, मेरी पर्याय का मैं आधार हूँ, मेरी पर्याय का मैं भोगनेवाला हूँ। ऐसा कर्ता, कर्म इत्यादि। उसमें छह बोल आये। कर्ता, कर्म इत्यादि में छह बोल आये। समझ में आया? उसमें कुछ सूझ पड़े ऐसा नहीं है। उसमें पंक्ति में से कुछ समझ में नहीं आता। क्योंकि अध्यात्म चीज़ है न।

अन्तर चीज़-वस्तु, उसको पहले तो परद्रव्य का सम्बन्ध लक्ष्य में (से) छोड़कर अपने स्वभाव का लक्ष्य करके, पर के सम्बन्ध से विकार की रुचि और विकार की

अस्थिरता थी, उसका नाश अपने स्वभाव के आश्रय से होता है। ऐ... मोहनभाई! भाई को दिखलाया था। ... के आश्रय से नाश नहीं होता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसकी बात चलती है? उसकी तो चलती है।

आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति अन्दर है, परमानन्द जिसका माप क्या? शक्ति की—स्वभाव की हद क्या? ऐसा मैं आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का अकेला रस हूँ। ऐसी वर्तमान दृष्टि अन्तर में लगाने से विकार की रुचि का और विकार का नाश होता है। इस विधि से विकार का नाश होता है, दूसरी विधि है नहीं। आहा! और बाद में **कर्ता, कर्म इत्यादि भेदों के...** छः भेद। मैं मेरी पर्याय—अवस्था का करनेवाला, वह मेरा कार्य है, मैं उसका साधन हूँ, मैं मेरे को देता हूँ, मेरे से उत्पन्न करता हूँ, मेरे आधार से (होती है)। ऐसी छह प्रकार की भ्रान्ति यहाँ तो लेने में आयी है। आहाहा! समझ में आया?

कर्ता-कर्म भेदों की भ्रान्ति का अर्थ—उस भेदरूप मैं हूँ, ऐसी भ्रान्ति है। यहाँ तो विकार की ली है, देखो! सेठी! आहाहा! मैं राग का करनेवाला, राग मेरा कार्य, राग-पुण्य आदि मेरा साधन, उसकी भेद की भ्रान्ति है—वह भ्रम है। अखण्डानन्द शुद्ध चैतन्य की अभेद दृष्टि में उस भ्रान्ति का नाश होता है। कहो, सेठी!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। अपना आत्मा विकार रहित तो है, परन्तु भेदरहित है। भेद भी नहीं उठाना कि मैं ऐसी पर्याय का करनेवाला, पर्याय मेरा कार्य, पर्याय मेरी चीज़ है, उससे दृष्टि हटाकर अभेद अकेले ज्ञाता-दृष्टा में दृष्टि लगाने से **भेदों की भ्रान्ति के भी नाश से...** भेद की भ्रान्ति का नाश होता है। आहाहा! समझ में आया? बात तो यह कहनी है, परन्तु समझाते हैं, क्रम से समझाये न।

भ्रान्ति—भ्रमणा। क्या भ्रमणा? भ्रान्ति है न? भ्रान्ति—भ्रम। मैं पर्याय का करनेवाला, पर्याय मेरा कार्य, पर्याय का मैं साधन, (ऐसे) छह बोल है। छह कहे। ऐसी अन्तर्दृष्टि रखना, वह भी भ्रमणा है। वस्तु ऐसी नहीं है। सेठी! भगवान आत्मा एक ज्ञायक चैतन्यज्योति है, उसकी दृष्टि लगाने से भेद की भ्रान्ति का नाश होता है। अभेद

चैतन्य भगवान् अन्तर पूर्णानन्द प्रभु, उस पर दृष्टि लगाने से पर्याय में—अवस्था में छह प्रकार के भेदस्वरूप मैं हूँ, ऐसी भ्रान्ति का नाश... नाश... नाश होता है। समझ में आता है? कल दूसरी बात थी, हाँ! इसमें से कोई नहीं थी। आप जानो कि... आप पढ़ लो, उसमें से क्या आया होगा? कल दूसरी बात थी। कल नहीं थे न। घूमने गये थे। भावनगर। भावनगर में। एक बार कहा था, भावनगर। भावनगर का।

हमारे वहाँ वह केस चला था न? अफीम का। उस दिन (संवत्) १९६३ के वर्ष में। राणपुर का था, जगन्नाथ। वह बाद में भावनगर रहता था। केस चलता था। कहाँ गये? भावनगर। कहा कि, भान वगर। उस दिन १९६३ में कहा था, हाँ! ऐसे उलटे। पुलिस को कहा, ऐसा उल्टा केस करते हो। बिल्कुल कुछ नहीं था। ... उस दिन, हाँ! ६३ के वर्ष, १७ वर्ष की उम्र थी। क्या करते हैं? ओपियन कहते हैं न भाई? ओपियन, ओपियन। अफीम। ... पैर से अपंग था। राणपुर। एक बार फिर मिला था। वहाँ आया था। अरे! फिर तो नौकरी छोड़ दी थी। अफीम का झूठा केस, बिल्कुल झूठा। ६३ के वर्ष की बात है, संवत् १९६३। सब खड़ा किया था, सब खबर है न। उसने कहा, भावनगर गया है। उस दिन मैंने कहा था, भानवगर। भावनगर नहीं, भाननगर है यह।

ऐसे यह भाव आत्मा अखण्डानन्द शुद्ध चिदानन्दमूर्ति ऐसे भावनगर में गये बिना विकार को अपना माने, (उसमें) रहे वह सब भान वगर का है। ऐ... देवानुप्रिया! अपना शुद्ध चैतन्यमूर्ति स्वभाव भाव है। वह नगर है। आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड है। उसमें अन्दर प्रवेश करके दृष्टि करना और स्थिरता करना, वह भावनगर में गया। और पुण्य-पाप के परिणाम को अपना मानना और (उसकी) रुचि करना, वह भावनगर है। समझ में आता है कुछ? आहाहा! बड़ा ग्यारह अंग का पढ़नेवाला है, ग्यारह अंग का पढ़ा हुआ हो परन्तु वह विकार की रुचि करता है और विकार से लाभ मानता है, वह भान वगर का है। भावनगर में जाने की उसको खबर नहीं है।

कहते हैं कि कर्ता, कर्म इत्यादि भेदों की... इस आत्मा में छह प्रकार के भेद पड़े—विकार का कर्ता और विकार का कार्य इत्यादि। ऐसी भ्रान्ति के भी नाश से अन्त में जिसने शुद्ध आत्मतत्त्व को उपलब्ध किया है... देखो! मैं शुद्ध आनन्दकन्द हूँ, उसको जिसने (प्राप्त किया है)। शुद्ध आत्मतत्त्व—आत्मस्वभाव। परमानन्द आत्मा की

ज्योति। उसको उपलब्ध किया है (अर्थात्) उसका अनुभव किया है, प्राप्त किया। ऐसा यह आत्मा... ऐसा यह आत्मा। चैतन्यमात्ररूप विशद (निर्मल) तेज में लीन होता हुआ,... देखो! ऐसा यह आत्मा चैतन्यमात्ररूप निर्मल तेज अपना। चैतन्य तेज आत्मा का, ज्ञायक तेज। आहाहा! बात...

ऐसा यह आत्मा। चैतन्यमात्ररूप विशद निर्मल। अपना जानकस्वभाव, निर्मल स्वभाव, चैतन्यस्वभाव तेज में लीन। ऐसे ज्ञानतेज में अन्तर में लीन होकर, लीन होता हुआ अपनी सहज (स्वाभाविक) महिमा के.... ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य की दशा, परमानन्द की दशा प्रगट हुई, ऐसी स्वाभाविक महिमा की प्रकाशता में, प्रकाशमता से, प्रकाशमता से (अर्थात्) प्रकाशपना से सर्वदा मुक्त ही रहेगा। पहले से आखिर तक लिया। सर्वदा। सिद्ध हो जाएगा। यह अन्त में सिद्ध की बात कह दी। पहले से अपने स्वरूप की दृष्टि करके विकार की रुचि नाश हुई, स्वरूप की अभेद की दृष्टि होकर भेद का, भेद का करनेवाले का नाश हुआ, फिर स्वरूप में लीन (हुआ)। चैतन्यप्रकाशमय अपना आत्मा। आत्मा चैतन्यप्रकाशमय आत्मा, उसमें लीन होता हुआ सहज महिमा में प्रकाशमता से अर्थात् अपनी... शब्द उसमें वह है न? बराबर है। अपने प्रकाशपना से चैतन्यप्रकाश हुआ पूर्णानन्द। पहले सम्यग्दृष्टि हुआ, फिर चारित्र—लीनता हुई। फिर पूर्ण होकर अकेला चैतन्यप्रकाशमय प्रगट हो गया। उसका नाम मुक्ति कहते हैं। उसका नाम सिद्धदशा कहते हैं।

सर्वदा मुक्त ही रहेगा। परमात्मा अपना स्वरूप पूर्ण शुद्ध पाया, (अब) सर्वदा मुक्त रहेगा। कभी उसको अवतार (होगा) नहीं। परमात्मा होने के बाद दुनिया में अवतार लेना पड़े ऐसा है नहीं। लो, वह श्लोक पूरा हुआ।

(अब, श्लोक द्वारा नवीन विषय को—द्रव्यविशेष के वर्णन को—सूचित किया जाता है।)

(अनुष्टुप छंद)

द्रव्यसामान्यविज्ञाननिम्नं कृत्वेति मानसम्।

तद्विशेषपरिज्ञानप्राग्भारः क्रियतेऽधुना ॥९॥

अर्थ—इस प्रकार द्रव्यसामान्य के ज्ञान से मन को गम्भीर करके, अब द्रव्यविशेष के परिज्ञान का प्रारम्भ किया जाता है।

श्लोक - ९ पर प्रवचन

(अब, श्लोक द्वारा नवीन विषय को—द्रव्यविशेष के वर्णन को—सूचित किया जाता है।)

अर्थ—इस प्रकार द्रव्यसामान्य के ज्ञान से... सामान्य द्रव्य सब छह है, उसमें भी सामान्य अपना स्वभाव है, उसके सम्यग्ज्ञान से मन को गम्भीर करके, अब द्रव्यविशेष के परिज्ञान का प्रारम्भ किया जाता है। लो। द्रव्यविशेष की व्याख्या है। समझ में आया ? अब पंचास्तिकाय लेना है।

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत

पंचास्तिकाय संग्रह

श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवविरचिता समयव्याख्या ।

सहजानन्दचैतन्यप्रकाशाय महीयसे।
नमोऽनेकान्तविश्रान्तमहिम्ने परमात्मने॥१॥

मूल गाथाओं का तथा 'समयव्याख्या' नामक टीका का
हिन्दी अनुवाद

[प्रथम, ग्रन्थ के आदि में श्रीमद्भवगत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत प्राकृतगाथाबद्ध इस 'पंचास्तिकायसंग्रह' नामक शास्त्र की 'समयव्याख्या' नामक संस्कृत टीका रचनेवाले आचार्य श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव श्लोक द्वारा मंगल के हेतु परमात्मा को नमस्कार करते हैं:—]

[श्लोकार्थः-] सहज आनन्द एवं सहज चैतन्यप्रकाशमय होने से जो अति महान है तथा अनेकान्त में स्थित जिसकी महिमा है, उस परमात्मा को नमस्कार हो। [१]

पंचास्तिकायसंग्रह श्लोक - १ पर प्रवचन

हिन्दी है हिन्दी ? हिन्दी घर में सेठी को । आपने तो छपवाया है । ...साधारण है । छोड़ दिया है । एक महीना यह पंचास्तिकाय चले । एक महीना है न ? एक महीना है । पाँचवी तारीख है । कहो, समझे ?

यह पंचास्तिकाय कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने कहा हुआ है । वह प्रवचनसार भी उनका है और समयसार आदि भी उनके हैं । भगवान के पास गये थे । वहाँ से आकर यह सब बनाये हैं ।

‘ॐ श्री सर्वज्ञवीतरागाय नमः’ श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत... कुन्दकुन्दाचार्य महाराज संवत् ४९ में महा दिगम्बर सन्त मुनि जंगलवासी थे। दिगम्बर मुनि। उन्होंने यह शास्त्र बनाया, भगवान के पास जाकर। पंचास्तिकायसंग्रह। षड्द्रव्य-पंचास्तिकायदर्शन। श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेवविरचित समयव्याख्या।

सहजानन्दचैतन्यप्रकाशाय महीयसे।

नमोऽनेकान्तविश्रान्तमहिम्ने परमात्मने ॥१॥

महा मांगलिक। यह पहला श्लोक है। है? सेठी! है? मूल गाथाओं का तथा समयव्याख्या नामक टीका का हिन्दी अनुवाद... [प्रथम, ग्रन्थ के आदि में श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत प्राकृतगाथाबद्ध इस ‘पंचास्तिकायसंग्रह’ नामक शास्त्र की ‘समयव्याख्या’ नामक संस्कृत टीका रचनेवाले आचार्य श्री अमृतचन्द्र-आचार्यदेव श्लोक द्वारा मंगल के हेतु परमात्मा को नमस्कार करते हैं:—] पहले मुनि जंगलवासी थे। अमृतचन्द्राचार्य जंगलवासी थे। वे ताड़पत्र पर लिखते थे। ताड़पत्र। पहला श्लोक लिखा। अलौकिक मांगलिक है, देखो! यह पहला मांगलिक सुबह पढ़ लिया था। कैसा है परमात्मा? देखो! अरिहन्त परमात्मा अथवा सिद्ध परमात्मा कैसे हैं, उसकी पहिचान करते हैं। और पहिचान करके उसको नमस्कार करते हैं। नीचे श्लोकार्थ है। पहले में नीचे श्लोकार्थ है।

सहज आनन्द एवं सहज चैतन्यप्रकाशमय होने से... श्लोकार्थ है। कैसा है परमात्मा? अरिहन्त भगवान, सिद्ध परमात्मा कैसे हैं? णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं। वे कैसे हैं, उनकी पहिचान करके नमस्कार करते हैं। जो परमात्मा सहज आनन्द... उसमें आत्मा का आनन्द पूर्ण सहज स्वभाव प्रगट हो गया है। इस आत्मा में भी सहज आनन्द अन्दर है। पूर्ण प्रगट परमात्मा को हुआ है। धर्मी को—सम्यग्दृष्टि को वह सहज आनन्द और सहज चैतन्यप्रकाश, दो की दृष्टि होने से अल्प आनन्द और अल्प चैतन्यप्रकाश की व्यक्तता-प्रगटता होती है। सर्वज्ञ परमात्मा अरिहन्त को अपना सहज आनन्द और चैतन्यप्रकाशमय आत्मस्वभाव उसमें से लीन होकर, लीनता में—एकाग्रता में पूर्ण केवलज्ञान जब हुआ तो सहज आनन्द और सहज चैतन्यप्रकाशमय होने से। देखो! इस आत्मा का स्वभाव!

भगवान की वाणी के कर्ता थे, वाणी कहनेवाले थे, रागवाले थे, दूसरे की करुणा करनेवाले थे, ऐसा नहीं। परमात्मा अपना शुद्ध चैतन्यमूर्ति सहजानन्द, अन्तर में जो आनन्द था, उसमें लीनता करके पर्याय में—अवस्था में—दशा में—सहज आनन्द की पूर्णता की प्राप्ति हुई। उसमें दर्शन और चारित्र आ गया। सहज आनन्द में। सम्यग्दर्शन की पूर्णता और चारित्र की भी पूर्णता (हो गयी)।

एवं सहज चैतन्यप्रकाशमय... भगवान, उसमें स्वाभाविक चैतन्यप्रकाश है। राग का अन्धकार तो नहीं, परन्तु अल्पज्ञपने का प्रकाश का भी अभाव है। स्वाभाविक चैतन्यप्रकाश। ज्ञानानन्द चैतन्यसूर्य असंख्य प्रदेश में पूर्ण झलक उठा है। ऐसा कहकर, तेरा स्वभाव ऐसा है, ऐसा कहते हैं। वह स्वभाव में से आया है तो तेरा स्वभाव ऐसा है। उसको पूर्ण प्रगट हो गया है। ऐसी दृष्टि करना, वह पहली मांगलिकता है और भगवान ऐसे हैं, ऐसा पहिचानकर नमस्कार करना, वह पहला मांगलिक है। ओहोहो!

सहज आनन्द.... भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रगट किया जिसने, अन्तर अनुभव करते-करते और सहज चैतन्यप्रकाश हुआ। जो चैतन्यप्रकाश अल्प था अनादि संसार में, वह अन्तर में से एकाकार होकर पूर्ण केवलज्ञान का चैतन्यप्रकाश केवलज्ञान का पूर्ण हो गया। उसके साथ केवलदर्शन भी पूर्ण हो गया। **जो अति महान है....** इस कारण से वह महान है, ऐसा कहते हैं। देखो! भगवान की महत्ता पुण्य प्रकृति से नहीं, समवसरण से नहीं कि भगवान का समवसरण था, इन्द्र आते थे। वह नहीं। महिमा उससे है, ऐसा नहीं। वह तो पुण्य का वैभव है। इन्द्रों को भी कुछ पुण्य का वैभव है। भगवान की महिमा वह संयोग, समवसरण, वाणी से नहीं है। सेठी! आहाहा! आया होने से **जो अति महान है.... 'महीयसे'** ऐसा है न? **'महीयसे'** शब्द पड़ा है न? आहाहा!

भगवान आत्मा अपना अन्तर आनन्द और चैतन्य दर्शन-ज्ञानप्रकाशमय वस्तु है। उसमें जो परमात्मा अरिहन्त ने अन्तर में लीन होकर पर्याय में—अवस्था में सहज आनन्द और ज्ञान-दर्शन का चैतन्यप्रकाश पूर्ण हो गया। उसमें ज्ञान-दर्शन की पूर्णता हुई, आनन्द की पूर्णता हुई, सम्यग्दर्शन और शान्ति—चारित्र की भी पूर्णता (हुई)। वह सहज आनन्द और चैतन्यप्रकाश में सब आ जाता है। और वीर्य भी उन सबकी पूर्ण पर्याय

रचने में वीर्य की भी पूर्णता हो गई। होने से जो अति महान है... देखो! आहाहा! कोई कहता है, भगवान वाणी करते हैं। भगवान दूसरे को समझाते हैं। उसकी महत्ता, महान उससे है—ऐसा नहीं है। वह तो अपनी शुद्ध चैतन्यज्योति परम ज्ञान, दर्शन, परम अवगाढ़ समकित और पूर्ण आनन्द एवं पूर्ण शान्ति अर्थात् चारित्र, ऐसी दशा से, उस दशा के कारण, उस अवस्था के कारण उनकी महानता है। दुनिया में परमात्मा सर्वोत्कृष्ट क्या है? कोई कहते हैं, परमात्मा जगत को बनाते हैं, इसलिए महानता है। नहीं, नहीं, नहीं। वह परमात्मा होता ही नहीं। परमात्मा किसी को रचते ही नहीं। परमात्मा तो त्रिकाल ज्ञान, दर्शन, आनन्द को प्राप्त होकर अपनी शान्ति की महिमा में अनुभव में (रहते हैं), वह उसकी महिमा है। अहो! भगवान ने तो ब्रह्माण्ड बनाया। कौन बनाये? जगत की चीज़ अनादि है। है, उसको कौन बनाये? न हो उसको (कौन बनाये)? वे परमात्मा की महत्ता ही नहीं समझते हैं, ऐसा कहते हैं यहाँ। आहाहा!

जिसके ज्ञान में तीन काल-तीन लोक जानने में आये, ऐसी उसकी महिमा है। आया न? सहज चैतन्यप्रकाश। वह ज्ञान-दर्शन पूर्ण हुआ। केवलज्ञान और केवलदर्शन भगवान पूर्ण। उससे उसकी महत्ता है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण की पूर्ण पर्याय प्रगट हुई। प्रगट पूर्ण पर्याय (हुई), इससे उनकी महिमा है। वह किसी ने किया है, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव अन्दर है, वह प्रगट हुआ है, ऐसा कहते हैं। अन्दर आत्मा में अन्दर गर्भ में अन्दर में पेट में अर्थात् आत्मा की शक्ति में सहज आनन्द, सहज दर्शन, सहज शान्ति—चारित्र, सहज ज्ञान, दर्शन आदि पड़ा है, उन्होंने अन्तर में से पर्याय में प्रगट किया। जो अन्दर में था, वह बाहर आया। प्रगट किया। गर्भ में से जन्म हुआ। समझ में आता है भैया? ये भव है, उसका जन्म होता है या नहीं? पेट में बन्दर हो और मनुष्य का जन्म होता है? पेट में मनुष्य हो तो मनुष्य का जन्म होता है।

ऐसे भगवान आत्मा, अन्दर पेट में अर्थात् उसकी शक्ति अर्थात् गर्भ में पूर्ण

आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण समकित, श्रद्धा का स्वभाव पूर्ण और शान्ति पूर्ण सब पूर्ण पड़ा है। समझ में आता है? ऐसे आत्मा का अन्तर में, अरिहन्त भगवान जो हुए, जो सिद्ध भगवान हुए, णमो अरिहंताणं... वह भी उसको खबर नहीं है। अरिहन्त कैसे हुए और कहाँ है? णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं... जय भगवान! जाओ!

यहाँ कहते हैं कि अरिहन्त कैसे हुए? कैसे हैं? ऐसी प्राप्ति की, वह कोई क्षेत्र में है या नहीं? अरिहन्त हैं, वे महाविदेहक्षेत्र में है। सिद्ध हैं, वह ऊपर ऊर्ध्वक्षेत्र में है। शरीररहित हो गये तो वहाँ है। शरीरसहित अभी भगवान वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में ऐसी महिमा से विराजमान हैं। सीमन्धर भगवान त्रिलोकनाथ अभी मनुष्यक्षेत्र में महाविदेहक्षेत्र में बीस तीर्थकर, धर्मधोरी विराजते हैं। परन्तु वे कैसे हुए? और महिमा क्या है? इन्द्र साथ में आते हैं, उससे महिमा है? बारह सभा लगती है, उसकी महिमा है? आहाहा! वह सब तो पुण्य का ठाठ है। उनकी पवित्रता प्रगट हुई, उससे उनकी महिमा है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : देह, उसमें क्या आया? साढ़े तीन हाथ का जिसको हो, वह ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष जाते हैं। शास्त्र में है। साढ़े तीन हाथ का देह हो, साढ़े तीन हाथ का देह। अन्तर स्वरूप पूर्णानन्द प्रभु, उसमें लीन होकर केवलज्ञान, सिद्धपद साढ़े तीन हाथवाला भी पा सकता है। व्यंजनपर्याय छोटी-बड़ी की उसमें कोई कीमत है नहीं। व्यंजनपर्याय क्या कहा, समझ में आया? साढ़े तीन हाथ का लम्बा शरीर और किसी का पाँच सौ धनुष का हो, सवा पाँच सौ धनुष का (हो)। बाहुबलीजी का सवा पाँच सौ धनुष था। सवा पाँच सौ धनुष। एक धनुष चार हाथ का। उसमें क्या आया? आत्मा (की) बड़ी व्यंजनपर्याय है, उससे अर्थपर्याय की पूर्णता उसको होती है, ऐसा नहीं है। ...होता था। ...भाई! ...व्यंजनपर्याय, अर्थपर्याय का क्या? फलाना क्या? बहुत प्रश्न निकाले थे। एक बार रखा था कि व्यंजनपर्याय बड़ी हो तो भी उसकी कोई कीमत नहीं है। व्यंजनपर्याय की (कीमत) नहीं है, क्षेत्र से यहाँ छोटी हो, उसकी कीमत नहीं है।

अर्थपर्याय—केवलज्ञान, केवलदर्शन, आनन्द की पर्याय, वीर्य और शान्ति की पूर्ण पर्याय प्रगट की, उसकी महिमा है। समझ में आया? बहुत प्रश्न होते थे। व्यंजनपर्याय, अर्थपर्याय का प्रश्न होता था, एक बार करता था। इन दोनों में क्या? दोनों में क्या अन्तर है? व्यंजनपर्याय बड़ा शरीर हो, उसके कारण उसकी बड़ी महत्ता, उसकी महत्ता नहीं है। पाँच सौ धनुषवाला केवलज्ञान प्राप्त किया उसकी बड़ी महत्ता, साढ़े तीन हाथवाला प्राप्त किया उसकी छोटी महत्ता, ऐसा होगा? ऐसा है नहीं। समझ में आया?

यह तो आचार्यों के कथन हैं। ...बड़े भरे हैं। ओहोहो! जंगल में बसकर बाघ जैसे दिगम्बर मुनि, दिगम्बर सन्त! उनका यह कथन है। केवलज्ञान का पेट खोलकर रखा है। हम ऐसे परमात्मा को ज्ञान में लेकर नमस्कार करते हैं। नमस्कार करनेवाला कौन, यह भी हमें खबर है। नमस्कार करनेयोग्य वह कौन, यह भी हमें खबर है। खबर है, उसको हम नमस्कार करते हैं। णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं.... भगवान की पूजा करते हैं। ऐसे नहीं। उसमें कोई धर्म-बर्म है नहीं। पुण्य होता है। राग मन्द हो, पुण्य हो। पाप से बचने को। धर्म जन्म-मरण का अन्त करनेवाला (है)। भगवान ऐसे हैं, ऐसा ही मेरी शक्ति में मैं हूँ, ऐसी प्रतीति और ज्ञान हुआ है, वह भगवान को पहिचानकर ...ज्ञान में महिमा लाकर उसको नमस्कार करते हैं। समझ में आया?

सहज आनन्द... देखा! सहज आनन्द। उसके साथ यह शब्द लागू किया। चैतन्यप्रकाश है। 'महीयसे'। इस कारण से भगवान महान है। भक्तों का उद्धार करने को अवतार लेते हैं और राक्षसों का नाश करने को (अवतार लेते हैं), इसलिए महान ईश्वर है, ऐसा ईश्वर महान हो सकता ही नहीं। समझ में आया? ईश्वरता, ईश्वर आत्मा की ईश्वरता अन्दर पूर्ण ज्ञानशक्ति से प्रगट है पर्याय जिसकी—ऐसा ज्ञान, दर्शन, आनन्द, परम अवगाढ़ समकित, अनन्त वीर्य वह सब इसमें आ गया। प्रकाशमय होने से हुआ न? अपना पूर्ण वीर्य भी साथ में हुआ।

जो अति महान है.... अकेला महान नहीं कहा। 'महीयसे' कहाँ से निकाला? अति महान कहा न? 'महीयसे'। बहुवचन। अति महान। 'महीयसे' में से—महान में से अति कैसे निकाला? ... अति महान। आहाहा! साधारण महान तो मुनि भी हैं। अति

महान। स्वयं मुनि हैं। स्वयं को भी छठवीं भूमिका—गुणस्थान (प्रगट हुआ है)। मुनि हैं, भावलिंगी सन्त हैं, अन्दर आनन्द में झूलते हैं। परन्तु जो आनन्द उनको प्रगट हुआ है, ऐसा मुझे नहीं है। उनका केवलज्ञान है, वह मेरे में नहीं है। अति महान हैं। सर्वज्ञ परमात्मा अति महान हैं। एक बात। संयोग का महानपना छोड़ दिया। पुण्यपरिणाम की महानता छोड़ दी, अल्प ज्ञान, अल्प दर्शन की महानता छोड़ दी। हैं ?

तथा अनेकान्त में स्थित जिसकी महिमा है,... समझ में आया ? 'महिम्ने' शब्द है न पाठ में ? 'अनेकान्तविश्रान्तमहिम्ने' अनेकान्त में स्थित जिसकी महिमा है,... क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा पूर्णानन्द की पर्याय में स्थित है, पर में स्थित नहीं है। अपनी पूर्ण ज्ञान में स्थित है, अल्प ज्ञान में नहीं है। पूर्ण दर्शन में स्थित है, अल्प दर्शन में नहीं है, विकार में नहीं है। आहाहा! अनेकान्त—अनेक अन्त अर्थात् अपना स्वरूप श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, आनन्द, उसकी अस्ति में और पर की नास्ति में—अनेकान्त में स्थित है। ओहो! अनेकान्त में तो बहुत विस्तार ले लिया है। एक गुण एक गुण में स्थित, दूसरा गुण से उस गुण में स्थित नहीं। एक पर्याय एक पर्याय में स्थित, दूसरी पर्याय से नहीं। अपनी केवलज्ञान की पर्याय में पर्याय स्थित, दूसरी पर्याय से नहीं। अपनी एक समय की वर्तमान पर्याय में स्थित, भविष्य की पर्याय में स्थित नहीं, भूत की पर्याय में स्थित नहीं। ऐसी अपनी वर्तमान आनन्दादि दशा प्रगट हुई, वह अस्ति, पर की नास्ति। ऐसे अनेकान्त में स्थित। ओहोहो! देखो! पदार्थ स्वरूप भी साथ में वर्णन करते हैं। अनेकान्त इसको कहते हैं।

अपना शुद्ध स्वभाव है, उसमें विकार नहीं है—ऐसी अनेकान्त दृष्टि करना उसका नाम सम्यग्दर्शन है। द्रव्य में पूर्ण है, अपूर्ण नहीं। पर्याय में अपूर्णता है, साधक में पूर्ण नहीं। अपनी पर्याय में अपूर्णता होने पर भी अनेकान्त में मैं हूँ और राग और पर से मैं नहीं हूँ। ऐसी अनेकान्त पर्याय का धर्म, गुण का धर्म, द्रव्य का धर्म, सब अनेकान्तमय धर्म है। अनेकान्त का अर्थ स्वपने है और परपने नहीं है। वह अमृतचन्द्राचार्य का वचन है। एक वस्तु में वस्तुत्व को उत्पन्न करनेवाली अस्ति-नास्ति आदि परस्पर विरुद्ध शक्तियों को प्रकाशमान होना अनेकान्त है। वह बीच में लिखा है, गुजराती है, गुजराती। एक वस्तु में वस्तुत्व की... वह अमृतचन्द्राचार्य का टुकड़ा संस्कृत का है। गुजराती में

लिया है। एक पदार्थ में वस्तु अपने वस्तुत्व की प्राप्ति करानेवाली अस्ति-नास्ति—अपने से है और पर से नहीं है, ऐसी परस्पर दो शक्ति का प्रकाशित होना, उसको भगवान अनेकान्त कहते हैं। आहाहा! एक-एक टुकड़े में पूरा सार। उसमें से मोक्षमार्ग उत्पन्न हो, बन्धमार्ग का नाश हो। एक-एक टुकड़ा, एक-एक वाक्य जैनदर्शन का, जैनदर्शन का एक-एक वाक्य, सर्वज्ञ के, मुनियों के एक-एक वाक्य में पूर्ण छह द्रव्य का भान (होता है)। स्व में हूँ, पर में नहीं। सब का स्पष्टीकरण एक-एक वाक्य में आता है। ओहोहो!

श्रीमद् ने कहा है न एक जगह? ज्ञानी के एक वाक्य में अनन्त आगम रहे हैं। भाई! ऐसा कहा है। ज्ञानी के एक वाक्य में अनन्त आगम रहे हैं। है? वैद्य। श्रीमद् में है या नहीं? ज्ञानी के एक वाक्य में अनन्त आगम हैं। वस्तु अनेकान्तस्वरूप प्रगट हुई, उसकी वाणी भी अनेकान्तवाली ऐसी ही होती है। एक-एक वाक्य में! समझ में आता है? कहीं पर है सही, लेकिन इस समय... कहीं पर है। शीर्षक हाँ! कहीं पर शीर्षक (लिखा) है, बड़े अक्षरों में।

सत्पुरुष के एक-एक वाक्य में, एक-एक वाक्य में... यहाँ गुजराती है न। ज्ञानी सत्पुरुष के एक-एक। एक-एक ऐसा है। वाक्य में, एक-एक शब्द में अनन्त आगम रहे हैं। यह बात कैसे होगी? ९७ पत्र है। श्रीमद् की दूसरी आवृत्ति में।

मुमुक्षु : एक-एक वाक्य में?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। एक-एक वाक्य में और एक-एक शब्द में अनन्त आगम रहे हैं, यह बात कैसे होगी? न्याय है न! सिद्धान्त है। वह आ गया। बराबर वही आया। कहो, समझ में आता है?

यहाँ तो अनेकान्त शब्द आया उस पर से (लिया)। एक अनेकान्त शब्द, उसमें तो अनन्त द्रव्य की सिद्धि होती है, अनन्त गुण की सिद्धि होती है, अनन्त पर्याय की सिद्धि होती है। विकार का अभावस्वभाव की प्राप्ति आदि अनेकान्त में (सिद्ध होते हैं)। एक पर्याय में एक पर्याय है, दूसरी पर्याय की नास्ति है। ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय की सिद्धि (होती है)। एक गुण में एक गुण की अस्ति, दूसरे गुण की नास्ति। एक द्रव्य में पूरे गुण की नास्ति। एक द्रव्य में गुण की नास्ति। द्रव्य अनन्त गुण का पिण्ड है, उसमें

एक गुण नहीं है। एक गुण में पूरा द्रव्य नहीं है। आहाहा! जैन परमेश्वर सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ वीतरागदेव का एक-एक वाक्य, मुनि का... यहाँ तो सत्पुरुष का कहा है। अनन्त आगम रहे हैं, यह बात कैसे होगी? पूछा है। २३वाँ वर्ष है। ...भाई! कहो!

मुमुक्षु : आप समझाईये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न, देखो न!

अनन्त आगम। एक शब्द हो, एक पवित्रता प्रगटकर एक शब्द हो, उसमें से अनन्त खड़ा होता है। पवित्रता अन्दर पड़ी है। वर्तमान पर्याय में अपवित्रता है। पवित्रता प्रगट कर, उसमें अपवित्रता का नाश, पवित्रता की उत्पत्ति, शक्ति में पवित्रता की पूर्णता। और अपवित्रता के सामने निमित्तपने के रजकण अनन्त। अनन्त द्रव्य सिद्ध होते हैं, एक-एक गुण की विकारी पर्याय सिद्ध होती है। वह विकारी पर्याय निर्विकारी में नहीं है, निर्विकारी विकार में नहीं है। एक-एक गुण अनन्त गुण में नहीं है और अनन्त गुण में एक गुण नहीं है। एक द्रव्य में दूसरा द्रव्य नहीं है और दूसरे द्रव्य में एक द्रव्य नहीं है। पूरे जगत के छह द्रव्यों का स्वरूप एक अनेकान्त शब्द से सिद्ध हो जाता है। समझ में आता है? देखो, इस एक शब्द में अनन्त वाच्य रहा है। देवानुप्रिया! एक-एक वाक्य में और एक-एक शब्द में! वाक्य तो दो-चार शब्द जुड़कर बनता है। एक शब्द में अनन्त आगम। अनेकान्त एक शब्द है।

मुमुक्षु : चौदह पूर्व की लब्धि....

पूज्य गुरुदेवश्री : लब्धि का उदाहरण भी तुम।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, है न। 'गम पड़े बिना आगम...' कहीं पर है न? देखो, उसमें लिखा है। 'गम पड़े बिना आगम अनर्थकारक हो पड़ते हैं।' ऐ... देवानुप्रिया! सामने लिखा है। लव-कुश ने दीक्षा ली, उसके (चित्र के) सामने ऊपर है। ऊपर इस ओर सामने पूर्व में। पूर्व में है। 'गम पड़े बिना आगम अनर्थकारक हो पड़ते हैं।' सत्संग के बिना ध्यान तरंगरूप होता है। सन्त के बिना अन्त की बात का अन्त प्राप्त नहीं होता। लोकसंज्ञा से लोकाग्र जाया नहीं जाता।' ये श्रीमद् के वाक्य हैं, श्रीमद् राजचन्द्र के।

समझ में आता है ? सन्त समागम के बिना ध्यान तरंगरूप होता है। उसका ज्ञान, अन्दर समझ के बिना सत्समागम की दिशा प्राप्त हुए बिना उसके ध्यान में अकेले तरंग होती हैं। विकल्प के तरंग की झाल ही उसमें होती है। देखो न! सन्त के बिना अन्त की बात का अन्त प्राप्त नहीं होता। सन्त के बिना अन्त की बात (अर्थात्) मूल बात का अन्त—सार प्राप्त नहीं होता। बहुत बात (कह दी) थोड़े शब्द में भी। सोलह वर्ष की उम्र में यह कहा है, लो! सोलह वर्ष और पाँच महीने। इतनी उम्र। समझ में आया? श्रीमद् राजचन्द्र है न? सोलह वर्ष की उम्र। सोलह वर्ष की उम्र में यह सब शब्द लिखे हैं। एक मोक्षमाला बनायी, सोलह वर्ष में। अभी-अभी संवत् १९५७ में देह छूट गया। संवत् १९५७। देह छूट गया। ३३ वर्ष की उम्र थी। पूर्व का जातिस्मरण था और बहुत... सोलह वर्ष और पाँच महीने में मोक्षमाला बनायी। १०८ पाठ। वर्तमान पण्डितों को अर्थ करना मुश्किल पड़े ऐसे कुछ (पाठ) हैं।

‘अे दिव्य शक्तिमान जेथी जंजीरथी नीकले।’ सोलह वर्ष की उम्र में अन्दर से पुकार करते हैं। यह दिव्य शक्तिमान भगवान, जंजीर-विकार और पुण्य-पाप की एकताबुद्धि, शरीर का... आहाहा! एक पिंजरे में थोड़ी देर खड़ा रहखे तो भी मनुष्य उलझन में आ जाता है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं, उसने बहुत लिखा है। शरीर से ऐसा होता है, शरीर से केवल होता है। अरे.. भगवान! बापू! यहाँ से होता है, तब निमित्त से बोलने की रीति है। वज्रनाराच संहनन से केवल (ज्ञान) होता है। शरीर से धर्म होता है। शरीर से नर्क में जाया जाता है, शरीर से स्वर्ग में जाया जाता है, शरीर से मोक्ष में जाया जाता है। सेठी! ...तेरे परिणाम से हो, तब इससे यह हुआ और इससे यह हुआ ...उसका अर्थ। आहाहा! अरे..! कहाँ शरीर मिट्टी और कहाँ चैतन्य स्वामी!

ज्ञानानन्द प्रभु अपनी सम्पदा को सम्भालकर अपने से केवलज्ञान को प्राप्त करता है। दूसरे की सहायता बिना निरपेक्षपने अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्यमूर्ति श्रद्धा, ज्ञान और लीनता करके अपने से ही परमानन्द को प्राप्त होता है। वह तो कहा। सहज कहकर वह कहते हैं। साधन भी सहज किया है और पूर्ण भी सहज प्रगट हो गया है।

अनेकान्त में स्थित जिसकी महिमा है,... देखो! क्या कहते हैं? महिमा क्या है? कि अनेकान्त में स्थित जिसकी महिमा है। महान अनन्त ज्ञानादि के कारण और अपने में स्थित है और पर में नहीं है, यह महिमा है। आहाहा! अनन्त आनन्द में स्थित है, दुःख में नहीं, संसार में नहीं, उदय में नहीं। यह जिसकी महिमा है। आहाहा! वाह... वाह..! उसमें अति महान कहा है। ...और महिमा अनेकान्त में स्थित। अपने अनन्त गुण की निर्मल पर्याय जो प्रगट हुई, निर्मलानन्द पूर्ण हुई, उसमें लीन है। एक पर्याय में दूसरी नहीं और उस पर्याय में दूसरे की नहीं। ऐसा अनेकान्तमय अपना अमृत। अनेकान्तमय अपना निर्मल पर्याय का अमृत, उसमें स्थित है। वह उसकी महिमा है। परमात्मा की दूसरी महिमा नहीं है। आहाहा!

ऐसे नीचे सम्यग्दर्शन की महिमा क्या है? कोई शरीर बदल जाये, ...फिर जाये वह महिमा नहीं है। लोग मान ले उसको, ऐसा नहीं है। अपनी श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति में स्थित है, रागादि में स्थित नहीं, ऐसी अनेकान्त की महिमा, उसकी महिमा है। आहाहा! अज्ञानी रागादि में अनादि से स्थित है और शान्ति में स्थित नहीं। वह एकान्त में स्थित है, वह अनेकान्त नहीं हुआ। समझ में आता है?

कहते हैं, अनेकान्त। अनेक—अन्त अर्थात् अनेक—बहुत धर्म। अस्ति, नास्ति विरुद्ध शक्तियों का धर्म। प्रत्येक गुण में, प्रत्येक पर्याय में, अपने द्रव्य में। आहाहा! ऐसी जिसकी महिमा है। तब ऐसी की ऐसी सत्ता रहती है, ऐसा कहते हैं। पर्याय की सत्ता भी अनन्त प्रगट हुई, वह ऐसी रहती है, गुण की ऐसी (रहती है)। अपनी अपनी सत्ता रहे और पर से न हो तो अपनी सत्ता की मौजूदगी सिद्ध होती है। समझ में आया? कोई कहे कि परमात्मा हुआ तो दूसरे में मिल गया। वह उसकी महिमा है? एक सत्ता का नाश हुआ तो ज्योति में ज्योति मिल गयी। नहीं। अपने अनन्त गुण की निर्मल पर्याय, उसमें एक-एक पर्याय में एक-एक स्थित, दूसरी पर्याय से अस्थित। ऐसे अनन्त पर्याय में स्थित, अनन्त गुण स्थित, ऐसा अपना आत्मा अपनी पर्याय में स्थित है, वही उसकी महिमा है। लो। मांगलिक किया मांगलिक। ओहोहो!

मुमुक्षु : पालथी लगाकर बैठ जाये...

पूज्य गुरुदेवश्री : पालथी लगाकर बैठ जाये, मर जाये वहाँ कहाँ पालथी थी ? पालथी लगाकर बैठ जाये, आँख बन्द करके बैठ जाये, उसमें भला क्या हुआ ? अन्दर चीज़ क्या है, उसकी शक्तियाँ क्या हैं, उसकी पर्याय क्या हैं, उसके ज्ञान में भासित हुए बिना उसकी लीनता और एकाग्रता कभी होती नहीं। ज्ञान बिना ध्यान कैसा और ध्यान बिना निर्जरा कैसी ? समझ में आया ? कहते हैं कि.... पालथी लगाकर बैठ जाना, कुछ करना नहीं। क्या कहना है अन्दर गहराई में ?

मुमुक्षु : कुछ क्रिया तो नहीं करनी ना। धर्म तो क्रिया से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्रिया नहीं है ? अपना शुद्ध स्वभाव परमानन्द में लीनता होना, एकाग्रता होनी, वही धार्मिक क्रिया है। शरीरादि क्रिया वह जड़ की क्रिया है। अन्दर दया, दान का परिणाम होता है, अशुभ से बचने को अथवा उस काल में आने को; परन्तु वह शुभराग है। उस राग की महिमा नहीं है, क्रिया की महिमा जड़ की नहीं है। अपनी धार्मिक क्रिया की महिमा है। जिसमें राग नहीं है, शान्ति है। श्रद्धा है, मिथ्याश्रद्धा नहीं है। सम्यग्ज्ञान है, मिथ्याज्ञान नहीं है। ऐसा अपना ज्ञान, शान्ति, श्रद्धा, ऐसे अनेकान्त में स्थित, अंश में वह साधक की महिमा है। पूर्ण में है, वह परमात्मा की महिमा है। आहाहा ! समझ में आता है ? **उस...** ऐसे परमात्मा, ऐसे **परमात्मा को नमस्कार** हो। ऐसे परमात्मा को मेरा नमस्कार हो। समझन में ज्ञान करके नमस्कार करते हैं। यह मंगलाचरण किया।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

कलश - २

[अब टीकाकार आचार्यदेव श्लोक द्वारा जिनवाणी को स्तुति करते हैं:—]

दुर्निवारनयानीकविरोधध्वंसनौषधिः।

स्यात्कारजीविता जीयाज्जैनी सिद्धान्तपद्धति॥२॥

[श्लोकार्थः-] 'स्यात्कार जिसका जीवन है, ऐसी जैनी (-जिनभगवान की) सिद्धान्तपद्धति— जो कि 'दुर्निवार नयसमूह के 'विरोध का नाश करनेवाली औषधि है वह—जयवन्त हो। [२]

कार्तिक कृष्ण ६, शुक्रवार, दिनांक ०६-१२-१९६३
श्लोक-२ से ६, गाथा - १, प्रवचन-२

यह पंचास्तिकाय नाम का शास्त्र है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने रचा हुआ। इसकी टीका में—जयसेनाचार्य की टीका में आता है कि कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में गये थे। वहाँ से आकर भव्य जीवों के लिये यह तत्त्व की व्याख्या बनायी है और कही है।

मुमुक्षु : दूसरे पृष्ठ पर...

१. 'स्यात्' पद जिनदेव की सिद्धान्तपद्धति का जीवन है। (स्यात्=कथञ्चित्; किसी अपेक्षा से; किसी प्रकार से।)
२. दुर्निवार=निवारण करना कठिन; टालना कठिन।
३. प्रत्येक वस्तु नित्यत्व, अनित्यत्व आदि अनेक अन्तमय (धर्ममय) है। वस्तु की सर्वथा नित्यता तथा सर्वथा अनित्यता मानने में पूर्ण विरोध आने पर भी, कथञ्चित् (अर्थात् द्रव्य-अपेक्षा से) नित्यता और कथञ्चित् (अर्थात् पर्याय-अपेक्षा से) अनित्यता मानने में किञ्चित् विरोध नहीं आता—ऐसी जिनवाणी स्पष्ट समझती है। इस प्रकार जिनभगवान की वाणी स्याद्वाद द्वारा (अपेक्षा कथन से) वस्तु का परम यथार्थ निरूपण करके, नित्यत्व-अनित्यत्वादि धर्मों में, (तथा उन-उन धर्मों को बतलानेवाले नयों में) अविरोध (सुमेल) अबाधितरूप से सिद्ध करती है और उन धर्मों के बिना वस्तु की निष्पत्ति ही नहीं हो सकती—ऐसा निर्बाधरूप से स्थापित करती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें तो लिखा है परन्तु यह तो संस्कृत जयसेनाचार्य की टीका में आया है।

अब टीकाकार ने पहले श्लोक में मांगलिक किया। परमात्मा को नमस्कार किया है। यह बात है न। देव-शास्त्र-गुरु तीन—नहीं आता? देव-गुरु-शास्त्र तीन को वन्दन करके मांगलिक करके, शुरु करते हैं। इस प्रकार यहाँ देव और शास्त्र दो को वन्दन किया है। गुरु ने—कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है, वह कहता हूँ, इसमें उनका बहुमान आ जाता है। बाद के श्लोक। पहले श्लोक में तो मानो परमात्मा का आया कल मांगलिक। आज वाणी का अर्थात् शास्त्र का। देखो! बोलो!

दुर्निवारनयानीकविरोधध्वंसनौषधिः।

स्यात्कारजीविता जीयाज्जैनी सिद्धान्तपद्धति॥२॥

भगवान की वाणी कैसी है, ऐसा ख्याल में रखकर उसको भी मांगलिकरूप से पहले कहा है। स्थापित किया है। जिनवाणी को वन्दन किया, आचार्य अमृतचन्द्राचार्य स्वयं इसकी टीका करनेवाले। कैसी है जिनवाणी? कि **स्यात्कार जिसका जीवन है....** किसी अपेक्षा से, किसी प्रकार से कहना, ऐसा उस जिनवाणी का जीवन है। किसी अपेक्षा से कहना। वस्तु को त्रिकाल की अपेक्षा से नित्य कहना, पर्याय की अपेक्षा से अनित्य कहना, पूरी चीज़ की अपेक्षा से नित्यानित्य कहना। ऐसा किसी अपेक्षा से कहना, वह जिसका जीवन, जिसका प्राण है। जिनवाणी का प्राण यह है।

ऐसी जैनी (-जिनभगवान की) सिद्धान्तपद्धति- पाठ है। देखो! 'स्यात्' पद जिनदेव की सिद्धान्त पद्धति का जीवन है। सिद्धान्त का रूप, वीतराग के सिद्धान्तों का रिवाज, उसका स्यात्पद का उसका जीवन है। सिद्धान्तपद्धति। सिद्धान्त की रीति-रिवाज, उसका जीवन स्यात् है। 'कथंचित्'; किसी अपेक्षा से; किसी प्रकार से... कहना। जैनी (-जिनभगवान की) सिद्धान्तपद्धति— जो कि दुर्निवार नयसमूह के विरोध का नाश करनेवाली औषधि.... यहाँ वजन है। कैसी है वाणी? औषधि है। किसकी? जो दुर्निवार। नय की अपेक्षाओं के कथन को निवारण मुशिकल, टालना मुशिकल, ऐसे नय के-ज्ञान के अंशों के समूह, उसका विरोध, उसका नाश करनेवाली औषधि है। वह

जयवन्त हो। वह वाणी जयवन्त हो। यहाँ तो कहते हैं मुनि। लो! वाणी जयवन्त हो। जड़। बहुमान है न? वाणी सदा रहो कि कि जिससे सुननेवाले को, समझनेवाले को उसमें से आत्मा का तत्त्व अपनी अपेक्षा से निकले। उसमें वाणी को निमित्त कहा जाता है। कहो, सेठी!

जयवन्त हो। अमृतचन्द्राचार्य जिनवाणी को जयवन्त रहो, ऐसा कहते हैं। वीतराग वाणी। जो दुर्निवार नय के प्रकार, नय के प्रकारों के दुर्निवार विरोध का नाश करनेवाली औषधि है। ऐसी जिनवाणी। नीचे कहा है, देखो। दुर्निवार=निवारण करना कठिन; टालना कठिन। पश्चात् विरोध का नाश करनेवाली.... है न? इसका अर्थ किया है। भगवान की वाणी विरोध का नाश करने के लिये औषधि। विरोधरूपी रोग, उसका नाश करनेवाली औषधि। क्या विरोध? कि जो रोगरूप है, उसका नाश करने में ताकत वीतराग की वाणी में है।

प्रत्येक वस्तु नित्यत्व, अनित्यत्व आदि अनेक अन्तमय (धर्ममय) है। प्रत्येक वस्तु अनेक अन्तमय है। आत्मा, परमाणु (आदि) छहों द्रव्य नित्य—अनित्य, एक—अनेक, भेद—अभेद इत्यादि अनेक अन्तमय अर्थात् स्वभावमय है। प्रत्येक पदार्थ—प्रत्येक वस्तु। वस्तु की सर्वथा नित्यता.... देखो! वस्तु, हों! वस्तु की सर्वथा नित्यता। वस्तु की। तथा सर्वथा अनित्यता मानने में पूर्ण विरोध आने पर भी,... उसका नाश करनेवाली औषधि। प्रत्येक आत्मा और परमाणु उन्हें सर्वथा नित्य मानो या सर्वथा अनित्य मानो। आत्मा सर्वथा नित्य ही है, यह विरोध है। सर्वथा नित्य नहीं होता। कथंचित् अनित्य भी है। सर्वथा अनित्य है, ऐसा भी नहीं होता। तो वस्तु के दो प्रकार कैसे आये? और नित्य भी है तथा अनित्य भी है। ऐसा जो उसका सर्वथा नित्य और अनित्य वस्तु, इसलिए सर्वथा नित्य-अनित्य, हों! फिर उसके पहलू के लिये बराबर करेंगे, ऐसा कहते हैं।

पूर्ण विरोध आने पर भी, कथंचित् (अर्थात् द्रव्य-अपेक्षा से) नित्यता.... यह विरोध टालता है। अब यह विरोध टलता है। वस्तु नित्य और अनित्य है। अब सर्वथा अनित्य और सर्वथा नित्य, ऐसा विरोध जिसे लगे, उसे वीतराग का वाणी औषधि, उस विरोध को टालनेवाली है। कहते हैं कि नित्यता कथंचित्... लो। आत्मा और परमाणु नित्य है। सर्वथा नहीं, कथंचित् नित्य। वस्तु की अपेक्षा से, टिकने की अपेक्षा से वह

नित्य है। (अर्थात् पर्याय-अपेक्षा से) अनित्यता मानने में किंचित् विरोध नहीं आता....
वे सर्वथा विरोध करते थे न ? अरे. ! वस्तु नित्य भी मानना और अनित्य भी मानना, यह तो विरोध है। ऐसा नहीं। सुन ! वस्तु सर्वथा नित्य और सर्वथा अनित्य मानने में विरोध है। उसे वाणी द्वारा द्रव्यरूप से कथंचित् नित्य है (ऐसा कहते हैं।) द्रव्यरूप से कथंचित् अर्थात् कि पर्यायरूप से अनित्य की अपेक्षा से। वापस द्रव्यरूप से कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य ऐसा नहीं है। द्रव्य अपेक्षा से तो नित्य और कथंचित् पर्याय अपेक्षा से अनित्य। समझ में आया ?

द्रव्य अपेक्षा से कथंचित् नित्य का अर्थ ? शब्द तो कथंचित् नित्य, ऐसा प्रयोग किया है। वह द्रव्य अपेक्षा से। क्योंकि वापस पर्याय उसमें दूसरी बतलानी है। नहीं तो सामान्य अपेक्षा से नित्य ही है। समझ में आया ? वस्तु आत्मा और परमाणु कायम रहने की अपेक्षा से तो नित्य ही है। परन्तु उस वस्तु को पूरी लेकर कहें तो कथंचित् द्रव्य अपेक्षा से नित्य है, वह वस्तु कथंचित् पर्याय अपेक्षा से अनित्य है। परन्तु द्रव्य से नित्य है तो नित्य ही है। और यह क्या अन्तर पड़ा ? द्रव्यरूप से-सामान्यरूप से तो नित्य ही है। परन्तु सामान्य-विशेष पूरे द्रव्य को लें तो सर्वथा नित्य और सर्वथा अनित्य, ऐसा नहीं है। कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य। कथंचित् अनित्य किसी अपेक्षा से क्यों कहा ? सामान्य और विशेष दो भाग है। वस्तु टिकती है और पर्याय है। दो की अपेक्षा से। द्रव्य की अपेक्षा से, पर्याय अपेक्षा से गौण करके द्रव्य अपेक्षा से नित्य है, वह वस्तु। परन्तु जो द्रव्य अंश कहा, उस अपेक्षा से तो नित्य ही है। क्या इसमें समझ में आता है या नहीं ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ढीला और कठिन। घड़ीक में ढीला और घड़ीक में कठिन। यह दो होकर एक है। ढीला और कठिन होकर।

आत्मा और परमाणु आदि छह द्रव्य वस्तुरूप से लक्ष्य में लेने पर कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य है। क्योंकि वस्तु टिकने की अपेक्षा से नित्य है, बदलने की अपेक्षा से अनित्य है। परन्तु टिकने की अपेक्षा से नित्य है, वह कथंचित् नित्य है। उसके गुण की अपेक्षा से नहीं, उसकी वस्तु की अपेक्षा से है। पूरी वस्तु की अपेक्षा से।

पूरी वस्तु की अपेक्षा से कथंचित् नित्य है। 'है' इस अपेक्षा से तो नित्य ही है। क्या समझ में आया इसमें ?

पदार्थ आत्मा और परमाणु वस्तु पूरी लो तो उस वस्तु को-पूरी चीज़ को लक्ष्य में लेने में नित्य कथंचित् है। क्योंकि वह पर्याय कथंचित् है, इसलिए। समझ में आया ? ऐई! देवानुप्रिया! यह देखो, समझना पड़ेगा। यह दो प्रकार है ऐसे। उसका विषय कैसा है उसे बराबर जानना चाहिए न ? वस्तु की अपेक्षा से लें, वस्तु पदार्थ आत्मा, परमाणु, वह कथंचित् नित्य की अपेक्षा से ध्रुव है और कथंचित् बदलने की अपेक्षा से अध्रुव अर्थात् अनित्य है। परन्तु जो वस्तु द्रव्यार्थिकनय से नित्य है, वही वस्तु पर्यायार्थिकनय से अनित्य है। परन्तु वही वस्तु द्रव्यार्थिकनय से नित्य है और उसी नय से अनित्य है, ऐसा नहीं होता। समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म इसमें। ऐसी वस्तु है, ऐसा आत्मा पदार्थ, वह टिकने की अपेक्षा से और बदलने की अपेक्षा से-दोनों को लक्ष्य में लेने पर कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य है। ...भाई! परन्तु एक नित्य पहलू लें तो द्रव्यदृष्टि से अर्थात् द्रव्यार्थिक, द्रव्यार्थिक अर्थात् सामान्य के नय से लें तो नित्य ही है। सामान्य के कारण नित्य भी है और अनित्य भी है, ऐसा नहीं है। वह तो वस्तु की अपेक्षा से नित्य और अनित्य है। इसमें क्या अन्तर पड़ा होगा इसमें ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वाह रे... वाह! लगाओ नित्य-अनित्य वहाँ। नित्य-अनित्य। पुण्य अनित्य है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। यहाँ संवर-फंवर की बात नहीं। ऐसा कि कथंचित् है न ? कथंचित् क्या ? वह शुभभाव है, वह कथंचित् अनित्य है। किसी अपेक्षा से ? उस त्रिकाल की अपेक्षा से। और स्वयं की अपेक्षा से तो नित्य ही है। अब उसे-शुभभाव को संवर की अपेक्षा लगाओ तो स्वभाव का भान हुआ है—शुद्ध का ज्ञानानन्द का, मैं राग से भिन्न हूँ, ऐसा जो निश्चय संवर प्रगट हुआ है, उसमें शुभभाव को कथंचित् अपेक्षा से अशुभ टलता है, इस अपेक्षा से व्यवहार से संवर है, ऐसा कहने में आता है। निश्चय से नहीं।

मुमुक्षु : तो संवर हो नहीं जाये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं हो जाये। व्यवहार से कहने से कहीं संवर नहीं हो जाता। समझ में आया? ... आता है न? द्रव्यसंग्रह में आता है, यह सब दृष्टान्तों में सामने डालते हैं। आता है द्रव्यसंग्रह में अशुभ से निवृत्ति। वह तो अशुभ में... वह संवर। वह तो अन्दर आता है। और निमित्तरूप से वहाँ कहा जाता है। निश्चय संवर स्वभाव का प्रगट हुआ, वहाँ, ऐसा निमित्त है। आरोप देकर उसे संवर कहा है। वास्तव में संवर है नहीं। कहो, सेठी! नय के नाम डोरे सम्यक् समझने के लिये थे, लोगों ने उलझन के लिये कर डाले। श्रीमद् ने कहा है कि जो नय के प्रकार समझने के लिये थे, उन्हें गले में फाँसी डालने का किया बाँधकर। विरोध तत्त्व का खड़ा किया है।

यहाँ कहते हैं कि कथंचित् वस्तु पलटने की अपेक्षा से अनित्य। है न पर्याय की अपेक्षा से? उसमें किंचित् विरोध नहीं आता—ऐसी जिनवाणी स्पष्ट समझती है। इस प्रकार जिनभगवान की वाणी स्याद्वाद द्वारा (अपेक्षा कथन से) वस्तु का परम यथार्थ निरूपण करके,.... आत्मा और परमाणु, नित्य और अनित्य दोनों स्वरूप त्रिकाल है। ऐसा निरूपण करके नित्यत्व-अनित्यत्वादि धर्मों में, (तथा उन-उन धर्मों को बतलानेवाले नयों में) अविरोध (सुमेल) अबाधितरूप से सिद्ध करती है.... यहाँ सब घोटाला। देखो! दोनों नय है। व्यवहार भी धर्म और निश्चय भी धर्म। परन्तु व्यवहार से व्यवहार न? धर्म का आरोप आया है व्यवहार से। निश्चय से वह (व्यवहार) धर्म है ही नहीं। ऐसा उसका मेल है। नहीं तो विरोध आयेगा। निश्चय, वह धर्म और व्यवहार, वह धर्म। तो दो पहलू कैसे पड़े? दो पक्ष तो उसमें दो में विरोध है। समझ में आया? दो नय पड़े, दो के विषय पड़े, दो के फल पड़े, दो के कार्य रहे, वे दो हुए किस प्रकार? नहीं तो एक हो जाये।

भगवान आत्मा अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और लीनता, वह संवर और निर्जरा। परन्तु बीच में शुभराग व्यवहार बीच में आता है। इसलिए उसे निमित्त गिनकर, सहचर गिनकर व्यवहार से संवर और मोक्षमार्ग उसे कहा है। संवर कहो या मोक्षमार्ग कहो, वह तो एक ही है। उसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहा, उसका अर्थ कि व्यवहार संवर-निर्जरा कहो। ऐई! देवानुप्रिया! इसलिए कहीं संवर-निर्जरा हो गयी? निमित्त है, इसलिए आरोप से कथन सहचर गिनकर कहा है।

इसी प्रकार निश्चयमोक्षमार्ग तो अपना स्वभाव ज्ञानमूर्ति में एकाकार, चैतन्यभाव में एकाकार जो लीनता की है एकाग्रता, निर्विकारी निर्विकल्प दशा की परिणति, वह निश्चयमोक्षमार्ग है। परन्तु साथ में विकल्प देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का, पंच महाव्रत का, बारह व्रत का इत्यादि, उस विकल्प को निमित्त गिनकर, सहचर गिनकर, उपचार से-व्यवहार से उसे मोक्षमार्ग कहा। ऐसे संवर-निर्जरा के स्वभाव का मोक्षमार्ग जो स्वभाव से प्रगट हुआ, उसमें साथ में शुभभाव को निमित्त देखकर शुभभाव को संवर-निर्जरा कहा, परन्तु वह संवर-निर्जरा है नहीं। है नहीं, उसे कहना, इसका नाम व्यवहार है, उसे समझना, इसका नाम निश्चय। कहो, समझ में आया इसमें ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो... उसमें कहीं शंका को स्थान नहीं, न्याय में विरोध नहीं। वस्तु की स्थिति इस प्रकार परिणम रही है। आहाहा!

ज्ञायकभाव ऐसा ज्ञायक पूरा चौसला चैतन्य है। उसके अन्तर में वह वहाँ एकाकार होकर परिणमित हुआ, बस! वही मोक्षमार्ग है। बीच में राग व्यवहार आता है। बराबर होता है। कोई माने कि नहीं व्यवहार, तो वह निश्चय को जानता नहीं। व्यवहार से लाभ माने तो व्यवहार, निश्चय को भिन्न नहीं जाना, एक जाना, वह तो मिथ्यादृष्टि है। दो के फल भिन्न हैं। उसे एक फल माने दो का, तो वह मूढ़ है। देवानुप्रिया!

मुमुक्षु : व्यवहार...

पूज्य गुरुदेवश्री : एक उपादेय और एक हेय। ज्ञान में दोनों ज्ञेय। क्या? ज्ञान में दोनों ज्ञेय। एक उपादेय और एक हेय। त्रिकाल चैतन्यस्वभाव का आश्रय उपादेय है तो संवर-निर्जरा की पर्याय निर्मल प्रगट हुई, वह भी उपादेय कही जाती है। और राग तथा विकल्प उठता है, जितना शुभभाव, वह हेय ज्ञेय है। जाननेयोग्य परन्तु हेयरूप जाननेयोग्य है। वह उपादेयरूप जाननेयोग्य है। ऐसी दो बातें हैं। तब उसका विरोध टलता है, नहीं तो विरोध टलेगा नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो प्रत्येक में दो प्रकार है या नहीं? संवर के दो, निर्जरा

के दो, धर्म के दो, सम्यक्त्व के दो, दर्शन-ज्ञान के दो, चारित्र के दो, गुप्ति के दो, समिति के दो, कायोत्सर्ग के दो, योग के दो, समाधि के दो, शान्ति के दो। जितनी शुद्ध पर्यायें प्रगट हुई, उनका अशुद्ध भाग रह गया। उसके साथ आरोप आकर दो-दो कथन चलते हैं। कथन दो प्रकार का। वस्तु तो एक ही प्रकार की है। ...भाई! आहाहा! क्या हो? ऐसी चीज़ वह स्वयं अपील करती है, कहते हैं। पण्डितजी कहते थे न? वस्तु अपील करती है कि शुद्ध, वह मेरा स्वरूप है। विकार विकृत है, वह मेरा धर्म और मेरा स्वभाव है नहीं। तथापि है अवश्य। नहीं? व्यवहार न ही हो, स्वभाव का भान दृष्टि होकर स्थिरता होने पर व्यवहार होता ही नहीं तो केवलज्ञान होगा। और अकेला व्यवहार (हो) और निश्चय न हो तो मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यादृष्टि को होता है। सम्यक् भान में निश्चय और व्यवहार दोनों साथ में होते हैं। समझ में आया? तथापि एक आदरणीय है और एक हेय है। तथापि प्रमाण में ऐसा कहा जाता है कि निश्चय उपादेय है और व्यवहार भी उपादेय है। व्यवहार से व्यवहार उपादेय है। उपादेय का प्रमाण से कथन किया जाये तो दोनों उपादेय कहने में आते हैं। ज्ञान करने के लिये। समझ में आया? भाई! यह तो अपने नियमसार में है न? उपादेय नहीं? व्यवहार का डाला है। बहुत अधिक आया है भाई साहित्य तो। ओहोहो! उसमें चार शास्त्रों के अर्थ होकर तो बहुत हुआ है, बहुत। मूल वस्तु है न मूल यह तो। कुन्दकुन्दाचार्य का हृदय खुला है।

कहते हैं, वह औषधि भगवान की वाणी है। किसकी? यह विरोध लगे, उसे अविरोधरूप से मेल करनेवाली औषधि है। विरोध के रोग को टालनेवाली वह औषधि है। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, वह नित्य है, अनित्य में—उसकी पर्याय में विकार आदि या शुद्ध परिणति आदि है, वह अनित्य है। संवर, निर्जरा की पर्याय भी अनित्य है। आस्रव की पर्याय भी अनित्य है और त्रिकाल द्रव्य, वह नित्य है। अनित्य पर्याय में भी दो नय लगाये, तब किस प्रकार? धर्म और मार्ग की अपेक्षा से। तो शुद्ध परिणति वह धर्म है; अशुद्ध परिणति, वह व्यवहार... अशुभ नहीं, परन्तु शुभराग वह व्यवहारधर्म है। यह प्रमाणज्ञान करने के लिये कहा जाता है। तथापि वह व्यवहारधर्म है, वह व्यवहार, वह धर्म नहीं है। नहीं तो व्यवहारनय पड़ता नहीं। समझ में आया? ओहोहो! बहुत फेरफार हो गया। जहाँ पढ़े हुए भूले। वाड बेल को खाये। ऐसे बेचारे

साधारण पढ़े बिना के जाये। वाड़ बेल को खाये। बिना पढ़े हुए समझे जाये, ऐसा हो और वैसा हो और अमुक हो। क्या हो? कहो, समझ में आया?

अमृतचन्द्राचार्य महाराज ने दूसरे श्लोक में जिनवाणी का मांगलिकरूप से स्थापन वन्दन करके, जयवन्त कहो या वन्दन किया, उसका बहुमान किया। अहो! ऐसी वाणी जयवन्त वर्तो। भरतक्षेत्र में, ऐरावतक्षेत्र में, महाविदेहक्षेत्र में त्रिलोकनाथ परमेश्वर की ऐसी दुर्निवार का विरोध टालकर, टाला न जा सके उसका-दुर्निवार का विरोध निकाल डाला। ऐसी औषधि, अहो! जयवन्त रहो। इसका अर्थ कि साधकजीव को साधकरूप से परिणामित में जब तक राग है, तब तक उसे श्रवण में लक्ष्य जाता है। साधकपना टिकता है अपने स्वभाव से। उसमें रागादि आवे और ऐसा श्रवण हो, वह ऐसा का ऐसा रहना, विरोध होना नहीं। छूट जाये राग में से और अकेला हो गया, फिर उसे कुछ नहीं है। फिर अपना स्वरूप ही जयवन्त रहो। निर्मल दशा हुई, वह जयवन्त रहो।

अब टीकाकार आचार्यदेव श्लोक द्वारा इस पञ्चास्तिकायसंग्रह नामक शास्त्र की टीका रचने की प्रतिज्ञा करते हैं:— लो! यह कुन्दकुन्दाचार्य के कहे हुए शास्त्र की टीका करनेवाले (प्रतिज्ञा करते हैं)। वहाँ गुरु का बहुमान-कुन्दकुन्दाचार्य का बहुमान (आया)। वह देव का आया, शास्त्र का आया, यहाँ गुरु का बहुमान इसमें आ जाता है।

कलश - ३

[अब टीकाकार आचार्यदेव श्लोक द्वारा इस पञ्चास्तिकायसंग्रह नामक शास्त्र की टीका रचने की प्रतिज्ञा करते हैं:—]

सम्यग्ज्ञानामलज्योतिर्जननी द्विनयाश्रया।

अथातः समयव्याख्या संक्षेपेणाऽभिधीयते॥३॥

[श्लोकार्थः-] अब यहाँ से, जो सम्यग्ज्ञानरूपी निर्मल ज्योति की जननी है, ऐसी द्विनयाश्रित (दो नयों का आश्रय करनेवाली) *समयव्याख्या (पञ्चास्तिकायसंग्रह नामक शास्त्र की समयव्याख्या नामक टीका) संक्षेप से कही जाती है। [३]

कलश - ३ पर प्रवचन

सम्यग्ज्ञानामलज्योतिर्जननी द्विनयाश्रया।

अथातः समयव्याख्या संक्षेपेणाऽभिधीयते।।३।।

टीकाकार श्लोक द्वारा कहते हैं कि अब यहाँ से, जो सम्यग्ज्ञानरूपी निर्मल ज्योति की जननी है.... देखो! ऐसी द्विनयाश्रित (दो नयों का आश्रय करनेवाली) समयव्याख्या... दो नय के आश्रय से समय नामक पदार्थ की व्याख्या, आत्मा की व्याख्या दो नय के आश्रय से है, यह सम्यग्ज्ञानरूपी निर्मल ज्योति की जननी है। ज्ञान करना है न यहाँ? निश्चय से और व्यवहार से दोनों से ज्ञान करना है यहाँ। आश्रय करना है, यह बात अभी नहीं। यह आगे मोक्षमार्ग के आगे अधिकार में लेंगे। यह तो शुरुआत में (बात करते हैं)।

सम्यग्ज्ञानरूपी निर्मल ज्योति की जननी है.... माता। ऐसी द्विनयाश्रित समयव्याख्या.... समझ में आया? द्विनयाश्रित—दो नयों के आश्रय से। निश्चय और व्यवहार दो नय हैं। एक नय नहीं। निश्चय से द्रव्य आदि का स्वरूप (का) यथार्थ (ज्ञान) करनेवाला, व्यवहार से पर्याय को बताते हैं। उसकी पर्याय वास्तव में निश्चय का व्यवहार है। द्रव्य वह निश्चय है। यह दो प्रकार से सम्यग्ज्ञान करने की जननी—माता, सम्यग्ज्ञानरूपी निर्मल ज्योति की माता। आहाहा! द्विनयाश्रित कथन और द्विनयाश्रित ज्ञान। कथन तो निमित्त है।

(दो नयों का आश्रय करनेवाली) समयव्याख्या.... देखो! समय का अर्थ किया नीचे (फुटनोट में) समयव्याख्या=समय की व्याख्या; पंचास्तिकाय की व्याख्या; द्रव्य की व्याख्या; पदार्थ की व्याख्या। अब व्याख्या की व्याख्या करते हैं। व्याख्या की व्याख्या वापस। व्याख्या अर्थात् पदार्थ का व्याख्यान, पंचास्तिकाय का स्पष्ट कथन, द्रव्य का विवरण और पदार्थ का स्पष्टीकरण। कहो, समझ में आया? भाई ने स्पष्ट कितना किया

4. समयव्याख्या=समय की व्याख्या; पञ्चास्तिकाय की व्याख्या; द्रव्य की व्याख्या; पदार्थ की व्याख्या। [व्याख्या=व्याख्यान; स्पष्ट कथन; विवरण; स्पष्टीकरण।]

है! हिम्मतभाई ने। यह शास्त्र बनाकर... यह तो भाग्यशाली है कि इनके हाथ आये चार। लो, ढाई हजार वर्ष में। ढाई हजार वर्ष में चार का इतना स्पष्टीकरण अमृतचन्द्राचार्य की टीका का अर्थ करने का भाग्य इनके हाथ में आया। कहो, समझ में आया ?

संक्षेप कही जाती है। हो, परन्तु वापस। उसका स्वरूप संक्षेप से। पूरे की तो क्या बात करना, कहते हैं। परन्तु संक्षिप्त पञ्चास्तिकाय का स्वरूप, पदार्थ का स्वरूप, समय का स्वरूप, द्रव्य का स्वरूप संक्षिप्त में यहाँ कहा जायेगा। यह तीसरा श्लोक हुआ।

अब, तीन श्लोकों द्वारा टीकाकार आचार्यदेव अत्यन्त संक्षेप में यह बतलाते हैं कि इस पञ्चास्तिकायसंग्रह नामक शास्त्र में किन-किन विषयों का निरूपण है:- याद करते हैं कि भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य ने यह इसमें कहा है। ऐसा कहकर श्लोक बनाया है। लो, बोलो।

कलश - ४

[अब, तीन श्लोकों द्वारा टीकाकार आचार्यदेव अत्यन्त संक्षेप में यह बतलाते हैं कि इस पञ्चास्तिकायसंग्रह नामक शास्त्र में किन-किन विषयों का निरूपण है:]

पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्रकारेण प्ररूपणम्।

पूर्वं मूलपदार्थानामिह सूत्रकृता कृतम्॥४॥

[श्लोकार्थ :-] यहाँ प्रथम *सूत्रकर्ता ने मूल पदार्थों का पञ्चास्तिकाय एवं षड्द्रव्य के प्रकार से प्ररूपण किया है (अर्थात् इस शास्त्र के प्रथम अधिकार में श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने विश्व के मूल पदार्थों का पाँच अस्तिकाय और छह द्रव्य की पद्धति से निरूपण किया है।) [४]

* इस शास्त्र के कर्ता श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव हैं। उनके दूसरे नाम पद्मनन्दि, वक्रग्रीवाचार्य, एलाचार्य और गृध्रपिच्छाचार्य हैं। श्री जयसेनाचार्यदेव इस शास्त्र की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका प्रारम्भ करते हुए लिखते हैं कि:—“अब श्री कुमारनन्दि-सिद्धान्तिदेव के शिष्य श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने—जिनके दूसरे नाम पद्मनन्दि आदि

कलश - ४ पर प्रवचन

पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्रकारेण प्ररूपणम्।

पूर्व मूलपदार्थानामिह सूत्रकृता कृतम्॥४॥

‘सूत्रकृता कृतम्’ अहो! सूत्रकार भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यदेव। देखो! याद किया गुरु को। ऐसी शैली डाली है। देव-शास्त्र-गुरु तीन, नहीं आता वन्दन में? वह यहाँ कहते हैं।

यहाँ प्रथम सूत्रकर्ता ने... इस शास्त्र के कर्ता श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव हैं। अब इसका स्पष्टीकरण आया, देखो! उनके दूसरे नाम पद्मनन्दि, वक्रग्रीवाचार्य, एलाचार्य और गृध्रपिच्छाचार्य हैं। श्री जयसेनाचार्यदेव इस शास्त्र की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका प्रारम्भ करते हुए लिखते हैं कि:—“अब श्री कुमारनन्दि-सिद्धान्तिदेव के शिष्य श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने— टीका में जयसेनाचार्य लिखते हैं। टीका में जयसेनाचार्य, हों! ९०० वर्ष पहले (लिखते हैं)। जिनके दूसरे नाम पद्मनन्दि आदि थे — उन्होंने—प्रसिद्ध कथान्याय से पूर्व विदेह में जाकर.... पूर्वविदेह में जाकर। यह पूर्व विदेह में ऐसा कहा जाता है। यह पश्चिम विदेह, ऐसा कहा जाता है। बीच में मेरुपर्वत है। पूर्वविदेह में ऐसा कहा जाता है। ३२ विदेह है। सोलह ऐसे हैं। ३२ भाग है महाविदेह के। उसमें १६ भाग ऐसे हैं। १६ ऐसे हैं।

पूर्व विदेह में जाकर वीतराग-सर्वज्ञ सीमंधरस्वामी तीर्थकर परमदेव के दर्शन करके,..... त्रिलोकनाथ साक्षात् वर्तमान में विराजते हैं। उन तीर्थकर भगवान् का साक्षात् दर्शन करके। उनके मुखकमल से निकली हुई दिव्यध्वनि के श्रवण से अवधारित

थे—उन्होंने—प्रसिद्ध कथान्याय से पूर्व विदेह में जाकर वीतराग-सर्वज्ञ सीमंधरस्वामी तीर्थकर परमदेव के दर्शन करके, उनके मुखकमल से निकली हुई दिव्यध्वनि के श्रवण से अवधारित पदार्थ शुद्धात्मतत्त्वादि सारभूत अर्थ ग्रहण करके, वहाँ से लौटकर अंतःतत्त्व एवं बहिःतत्त्व के गौण-मुख्य प्रतिपादन के हेतु अथवा शिवकुमारमहाराजादि संक्षेपरुचि शिष्यों के प्रतिबोधनार्थ रचे हुए पञ्चास्तिकाय-प्राभृतशास्त्र का यथाक्रम से अधिकार-शुद्धिपूर्वक तात्पर्यार्थरूप व्याख्यान किया जाता है।”

पदार्थ द्वारा.... निर्णय पदार्थ द्वारा शुद्धात्मतत्त्वादि सारभूत अर्थ ग्रहण करके,.... भगवान के पास जाकर। शुद्धात्मतत्त्व सारभूत ग्रहण कर, वहाँ से लौटकर अंतःतत्त्व एवं बहिःतत्त्व के गौण-मुख्य प्रतिपादन के हेतु.... लो! कहीं अन्तःतत्त्व का मुख्य है, कहीं बहिःतत्त्व का मुख्य है, कहीं अन्तःतत्त्व का गौण है, कहीं बहिःतत्त्व का गौण है। ज्ञान करना है न यहाँ तो।

अथवा शिवकुमारमहाराजादि संक्षेपरुचि शिष्यों के प्रतिबोधनार्थ.... उस समय कोई शिवकुमार महाराज राजा होंगे। उनके (सम्बोधन के) लिये। रचे हुए पञ्चास्तिकाय.... शिवकुमार महाराज, जिन्हें मोक्षरूपी पदवी प्राप्त करनी है, ऐसा जो आत्मा, उसके लिये और शिवकुमार राजा भी उस समय होंगे। समझ में आया? शिवकुमार। मोक्ष का जो कुमार होने के लिये योग्य है और मोक्ष जाने के योग्य है, ऐसे भव्य जीवों के लिये और शिवकुमार महाराज राजा थे उस समय। संक्षेपरुचि शिष्यों के प्रतिबोधनार्थ रचे हुए पञ्चास्तिकाय-प्राभूतशास्त्र का यथाक्रम से अधिकार-शुद्धिपूर्वक तात्पर्यार्थरूप व्याख्यान किया जाता है। तात्पर्यरूप व्याख्यान है न इसका नाम। अमृतचन्द्राचार्यदेव की टीका का नाम तात्पर्यवृत्ति है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : पूरा पैराग्राफ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लो, इसमें क्या समझने में मेल नहीं पड़े ऐसा?सीधा है। संक्षेपरुचि शिष्य के लिये कहा। भगवान के पास गये थे। तत्त्वार्थसार ग्रहण किया अन्दर। अन्तःतत्त्व, बाह्यतत्त्व। अन्तःतत्त्व परमात्मस्वरूप, बाह्य तत्त्व रागादि सब नव तत्त्व, इन सबका स्वरूप संक्षेपरुचि शिष्य के लिये समझाया है, देखो! संक्षेपरुचि शिष्य बहुत थोड़ी बुद्धि हो, उसके लिये भी यह समझाया है। समझ में आया? वह मद्रास से गये थे आसपास में से, ऐसा कहते हैं। और स्वामी कार्तिकेय भी मद्रास के आसपास विचरे हैं। है न पत्र? श्रीमद् का पत्र है। रात्रि में पढ़ा था न। समझ में आया? मद्रास में ज्येष्ठ महीने में श्रीमद् गये और उन्होंने कहा, अहो! यह स्वामी कार्तिकेय आसपास विचरे। यह विशाल पर्वत अडिग और स्थिर नग्न दिगम्बर ऐसे दिखते हैं। पर्वत, हों! नग्न। नग पर्वत है नग्न। नग पर्वत का नाम है और नग्न। ऐसे खुल्ले नग दिखाई देते हैं अडोल वृत्ति से, ऐसे स्वामी कार्तिकेय वहाँ विचरते थे। ऐसी अडिग वृत्ति, ऐसे स्वामी

कार्तिकेय को नमस्कार हो ! ऐसा कहा । वे मद्रास के आसपास विचरते थे । सेठी ! स्वामी कार्तिकेय । यह और कल याद आया । मद्रास है न । आसपास में स्वामी कार्तिकेय । और वहाँ स्वामी कार्तिकेय को माननेवाले वैष्णव लोग हैं । वे लोग मानो कि हमारे देव है, ऐसा मानते हैं न ! हो गया है न ? यह गिरनार नहीं हो गया ? इसी प्रकार वहाँ भी हो गया अब सब । बाकी तो स्वामी कार्तिकेय नग्न दिगम्बर मुनि सन्त जंगल में विचरते थे ।

पर्वत को याद करके श्रीमद् ने मुनि को याद किया है । मद्रास में ज्येष्ठ महीने में गये थे । आहाहा ! वस्त्र पहने बिना का पर्वत, ऐसे वस्त्ररहित मुनि, ध्यान में अडिग वृत्ति से खड़े हुए, वे हमें याद आते हैं । इसलिए उनको नमस्कार करते हैं । कल निकाला था न ? तुम थे या नहीं ? नहीं थे । ...निकाला था । रात्रि में निकाला था । शाम को निकाला था । परन्तु तुम गये थे । कहो, समझ में आया ?

सूत्रकर्ता की व्याख्या की है । सूत्रकर्ता कौन ? कि कुन्दाचार्य । कैसे थे ? भगवान के पास गये थे । वहाँ आठ दिन रहे थे । वहाँ से आकर यह सूत्र रचे हैं, और वहाँ लोग कहते हैं कि इस सूत्र की रचना इस पौत्रूरहिल पर्वत पर हुई है । ऐसा वहाँ पण्डित लोग कहते थे । कहो, समझ में आया ?

मूल पदार्थों का पञ्चास्तिकाय एवं षड्द्रव्य के प्रकार से प्ररूपण किया है.... सूत्रकर्ता भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने पाँच अस्तिकाय अर्थात् काल के अतिरिक्त पाँच अस्तिकाय । काल का गौणरूप से कथन है । षड्द्रव्य के प्रकार से प्ररूपण किया है (अर्थात् इस शास्त्र के प्रथम अधिकार में श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने विश्व के मूल पदार्थों का पाँच अस्तिकाय और छह द्रव्य की पद्धति से....) रीति से, रिवाज से, परम्परा से चले आये हुए, उनका निरूपण किया है । दूसरा श्लोक, ५वाँ ।

कलश - ५

जीवाजीवद्विपर्यायरूपाणां चित्रवर्त्मनाम्।

ततो नवपदार्थानां व्यवस्था प्रतिपादिता॥५॥

[श्लोकार्थ :-] पश्चात् (दूसरे अधिकार में), जीव और अजीव—इन दो की पर्यायरूप नव पदार्थों की—कि जिनके मार्ग अर्थात् कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं, उनकी—व्यवस्था प्रतिपादित की है। [५]

कलश - ५ पर प्रवचन

जीवाजीवद्विपर्यायरूपाणां चित्रवर्त्मनाम्।

ततो नवपदार्थानां व्यवस्था प्रतिपादिता॥५॥

पश्चात् (दूसरे अधिकार में), जीव और अजीव—इन दो की पर्यायरूप.... देखो! जीव और अजीव दो पदार्थ, उनकी पर्यायरूप। फिर अजीव में पाँच द्रव्य आ जाते हैं। एक ओर जीव तथा एक ओर अजीव में पाँचों आ जाते हैं। इन दो की पर्यायरूप नव पदार्थों की—कि जिनके मार्ग.... इन नौ के मार्ग, नौ के कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं,.... लो! ठीक! पहले से शुरू किया। नौ तत्त्व का मार्ग, नौ के कार्य भिन्न-भिन्न है। उनकी—व्यवस्था प्रतिपादित की है। उनकी व्यवस्था जिस प्रकार वस्तु है, उस प्रकार से उनका प्रतिपादन किया है।

नौ तत्त्व के नौ कार्य और नौ मार्ग। ज्ञायक भगवान का मार्ग ज्ञानरूप रहना। जड़ का-अजीव का मार्ग अजीवरूप परिणमकर रहना। आस्रव का मार्ग पुण्य और पाप के परिणमन का मलिनपना परिणमना। बन्ध का मार्ग, वह अटककर रुकना भाव, वह बन्ध का मार्ग है। आस्रव (का) रुकना। संवर-निर्जरा और मोक्ष का मार्ग अर्थात् कार्य, आत्मा में शुद्धता का परिणमन उसका वह कार्य है संवर का। निर्जरा का शुद्धता की वृद्धि का कार्य है। और मोक्ष शुद्धता की पूर्णता का कार्य है। आस्रव का कार्य अलग, बन्ध का अलग, अजीव का अलग, संवर का अलग, निर्जरा का अलग, मोक्ष का अलग, जीव का अलग। देखो, इस प्रकार से व्याख्या की है।

जड़कर्म आदि, शरीर आदि का उदय कर्म का, वह जड़ का, वह जड़ का कार्य है। फिर पुण्य और पाप का आस्रव, वह जड़ का कार्य नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। नहीं तो नौ के नौ कार्य नहीं रहते। ऐई! देवानुप्रिया!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : लो क्या और दृष्टान्त दिया ?

मुमुक्षु : यह कहा न...

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने कहा ? अभी कहा नहीं। ऐसा कि पहले कहा वह। अभी तो कहा नहीं। द्रव्यकर्म जड़ का कार्य, उसकी पर्याय। उदय आना, वह जड़ का कार्य। आत्मा में पुण्य-पाप के भाव हों, वह आस्रव का कार्य स्वतन्त्र। अजीव से आस्रव का कार्य रहे तो नव कार्य और नव मार्ग भिन्न नहीं रहते।

क्या कहते हैं इसमें ? जीव और अजीव—इन दो की पर्यायोंरूप नव पदार्थों की—कि जिनके मार्ग अर्थात् कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं,.... कार्य भिन्न-भिन्न है। पाठ में है या नहीं ? 'चित्रवत्'। 'चित्रवत्' अर्थात् भिन्न-भिन्न। 'वर्त्मनाम्' अर्थात् कार्य। जिसका कार्य भिन्न-भिन्न है। यह आस्रव का कार्य आकुलता, पुण्य-पापरूप भाव, यह आसकुलता उसका कार्य है, उसका फल यह आकुलता है। कहो, समझ में आया ? बन्ध है, वह रुक जाता है, अटक जाना, वह बन्ध का कार्य है। मोक्ष स्वभाव की शुद्धता का पूर्ण कार्य है। संवर, निर्जरा और स्वभाव की चैतन्यमूर्ति भगवान में निर्मल पर्याय जो उसके आश्रय से प्रगट हुई, अविकारी निर्विकल्प शुद्धता, वह संवर का कार्य है। शुद्धि वृद्धि हुई, वह निर्जरा का कार्य है।

आस्रव के कार्य से संवर-निर्जरा का कार्य नहीं। संवर-निर्जरा के कार्य से आस्रव का कार्य नहीं। आस्रव हुआ, इसलिए कर्म के उदय का कार्य नहीं, उदय के कार्य के कारण आस्रव का कार्य नहीं। समझ में आया ? देखो ! कितना स्पष्टीकरण तो करते हैं यहाँ... बात। पहले कलश बाँधकर।

जिनके मार्ग नौ। एक जीव और अजीव दो वस्तु की सात पर्यायें। नौ लेने हैं न ? जड़ की सात पर्याय भिन्न, चैतन्य की भिन्न। चैतन्य में पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा,

बन्ध और मोक्ष सात पर्याय। सात पर्याय के कार्य भिन्न। और जड़ की पर्याय के कार्य भिन्न जड़ में। जीव और अजीव—इन दो की पर्यायोंरूप—अवस्थारूप नव पदार्थों की—कि जिनके मार्ग अर्थात् कार्य.... पर्याय उसका कार्य है। भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं,.... कहो, समझ में आया? उनकी—व्यवस्था प्रतिपादित की है। भिन्न-भिन्न है, उसका कथन इसमें किया है। कहो, समझ में आया? एक समय में पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, यह भिन्न-भिन्न कार्य है—ऐसा प्रतिपादन किया है।

मुमुक्षु : बहुत स्पष्ट, स्पष्ट।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कि इसमें छनावट आयी, ऐसा कहते हैं। इसमें आवे तो सब... यह तो सुल्टा कहते हैं। कहो, समझ में आया?

एक ओर जीव भगवान, एक ओर अजीव। दोनों का कार्य भिन्न-भिन्न। ज्ञायक का कार्य... अब अन्दर रही सात पर्याय। आस्रव, पुण्य, वह शुभभाव; पाप पापभाव। दो होकर आस्रव। अटकना, वह बन्ध। वह मलिनता का कार्य एक समय में। एक समय में। उसी समय में शुद्धता स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई, उसके दो प्रकार। शुद्धता की नयी उत्पत्ति, वह संवर कार्य, शुद्धता की वृद्धि पहले की अपेक्षा (वृद्धि), इसका नाम निर्जरा का कार्य। यह संवर-निर्जरा का कार्य। पूर्ण शुद्धता, वह मोक्ष का कार्य।

किसी के कारण से किसी का कार्य हो तो नौ सिद्ध नहीं होते। बराबर है, भाई? भाई कहते हैं, ठीक। ठीक यह किया। तुमको ये लाये या ये इसे लाये, परन्तु अब ठीक हो गया। शान्तिभाई तो अभी... डाला इन्होंने। बापू! यह समझना, यह अलग चीज़ है। तीन काल-तीन लोक में जो परम सत्य है, वह यह बात है। समझ में आया? आचार्य कहते हैं—अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। नौ के कार्य...

इन दो की पर्यायोंरूप नव पदार्थों की—कि जिनके मार्ग अर्थात् कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं, उनकी—व्यवस्था.... पंचास्तिकाय में कही गयी है। उसमें से दूसरा निकाले तो यह कहना चाहते हैं, उस प्रकार से इसने नहीं निकाला। इसमें से ऐसा निकाले पंचास्तिकाय में से कि देखो! द्रव्यकर्म का यह लिया... द्रव्यकर्म को... उसमें—६२वीं गाथा में आयेगा कि निश्चय से निरपेक्ष आत्मा का विकार आत्मा से होता है। ऐसा हमने वहाँ कहा है, यहाँ पहले से है।

मुमुक्षु : भिन्न-भिन्न कार्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न-भिन्न कार्य। ६२ गाथा में है कि कर्म के कारण नहीं। जो चर्चा वहाँ चली थी—मधुवन में। मधुवन है न? क्या कहलाता है? मधुवन। ईसरी में तो वे तीन बोल (चले थे)। वह ६२ गाथा देखो। निश्चय विकार आस्रव। पुण्य-पाप के भाव जीव, निश्चय से स्वआश्रय निश्चयनय अपने से अभिन्नरूप से अपने कारण से स्वयं निश्चय से करता है। व्यवहार से कहना, वह अपेक्षा का कथन निमित्त का ज्ञान कराने के लिये है। वह व्यवहार है। सहेतुक, वह व्यवहार हुआ। निरहेतुक पर की अपेक्षा बिना का। और अपना सहेतुक कहो तो निश्चय है। पर का हेतु कहो तो व्यवहार है। पर का हेतु नहीं और अपने कारण से मलिनता हुई, वह निरहेतुक निश्चय अपने से है। देवानुप्रिया! इसमें ऐसा है। विवाद तो वहाँ सब तुम्हारे सामने निकालेंगे।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ...यह देखो, तुम्हारी छाप देखो सब आयी। आहाहा!

‘चित्रवर्त्मनाम्’ अर्थात् विचित्र मार्ग। मार्ग भिन्न-भिन्न। समझ में आया? आहाहा! अजीव भिन्न, जीव भिन्न, उसकी सातों पर्यायें एक-एक भिन्न। ओहोहो! साधक में एक समय में सात। एक मोक्ष के अतिरिक्त छह। सेठी! तथापि उनके भिन्न-भिन्न कार्य हैं। आस्रव पुण्य का शुभभाव, अशुभभाव, दो होकर इसका आस्रव, बन्ध; शुद्धता का संवर; वृद्धि निर्जरा, भिन्न-भिन्न सातों के कार्य हैं। मोक्ष बाद में है। और वह कार्य उसका कारण का पूर्ण कार्य है न? उसके कारण का पूर्ण कार्य। पूर्ण शुद्ध हुआ। वह आस्रव के कारण से पूर्ण शुद्धता नहीं। वह स्वतन्त्र कार्य है। एक न्याय से तो, लो! एक न्याय से तो वह पूर्व के संवर, निर्जरा के कारण से वह कार्य नहीं है। आहाहा! नौ कार्य भिन्न लिये हैं न! भिन्न कार्य सिद्ध करना है न। ऐई! देवानुप्रिया!

मोक्ष का कार्य संवर-निर्जरा के कारण भी नहीं है। वह स्वतन्त्र कार्य उस समय में पूर्व की पर्याय के साधन, साधकरूप से गिनकर बाद में यह कार्य उसके कारण से हुआ, ऐसा नहीं है। मोक्ष की पर्याय स्वतन्त्र कार्यरूप से उसरूप परिणमती है। संवर-निर्जरा का कारण और यह कार्य, ऐसा भी नहीं है। वह कार्य ही स्वतन्त्र मोक्ष का है।

ओहोहो! समझ में आया? यह तो समयसार रत्न नाटक। तीन को नाटक कहते हैं न तीन को। समयसार, प्रवचनसार, और पंचास्तिकाय। नाटकत्रय कहते हैं, तीनों को। नाटकत्रय। कहो, समझ में आया? यह पंचास्तिकाय, यह समयसार है, हों! यह दूसरा आता है। पंचास्तिकाय समयसार की यह व्याख्या है।

(दूसरे अधिकार में), जीव और अजीव—इन दो की पर्यायोंरूप नव पदार्थों की—कि जिनके मार्ग अर्थात् कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं, उनकी—व्यवस्था प्रतिपादित की है। यह है, उसका कथन करेंगे। जैसा है, उसका कथन करेंगे। उसके जो कार्य हैं, उसे कहेंगे। सेठी! यह हिन्दी तुम्हारी ओर से प्रकाशित हुआ है। उसके सब अर्थ समझना पढ़ेंगे। कहो, समझ में आया? अब दूसरे अधिकार के अन्त में... क्या कहते हैं, देखो! बोलो!

कलश - ६

ततस्तत्त्वपरिज्ञानपूर्वेण त्रितयात्मना।
प्रोक्ता मार्गेण कल्याणी मोक्षप्राप्तिरपश्चिमा॥६॥

[श्लोकार्थः-] पश्चात् (दूसरे अधिकार के अन्त में), तत्त्व के परिज्ञानपूर्वक (पञ्चास्तिकाय, षट्द्रव्य तथा नव पदार्थों के यथार्थ ज्ञानपूर्वक) त्रयात्मक मार्ग से (सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मक मार्ग से) कल्याणस्वरूप उत्तम मोक्षप्राप्ति कही है। [६]

कलश - ६ पर प्रवचन

ततस्तत्त्वपरिज्ञानपूर्वेण त्रितयात्मना।
प्रोक्ता मार्गेण कल्याणी मोक्षप्राप्तिरपश्चिमा॥६॥

वाह! (दूसरे अधिकार के अन्त में), तत्त्व के परिज्ञानपूर्वक... इस तत्त्व के सम्यग्ज्ञानपूर्वक इन नौ के सम्यग्ज्ञानपूर्वक। पंचास्तिकाय, षट्द्रव्य और नौ पदार्थ के

यथार्थ ज्ञानपूर्वक। देखो! पंचास्तिकाय, षट्द्रव्य और नौ तत्त्व कार्य भिन्न-भिन्न कहे वे। उनके यथार्थ ज्ञानपूर्वक त्रयात्मक मार्ग से (सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मक मार्ग से)... लो, ठीक! यह ज्ञानपूर्वक भी, हों! तत्त्व के नौ के भिन्न-भिन्न कार्य क्या है, (उसके ज्ञानपूर्वक)। समझ में आया? पंचास्तिकाय के ज्ञानपूर्वक, षट्द्रव्य के ज्ञानपूर्वक और उसके नौ के कार्य के ज्ञानपूर्वक, नौ की भिन्नता के भेदज्ञान के भेदज्ञानपूर्वक, तत्त्वज्ञानपूर्वक, त्रयात्मक मार्ग। त्रयात्मक अर्थात् रत्नत्रयस्वरूप। मार्ग अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मार्ग से।

कल्याणस्वरूप उत्तम मोक्षप्राप्ति कही है। लो! यह पंचास्तिकाय, षट् द्रव्य और नौ तत्त्व के सम्यग्ज्ञानपूर्वक सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप मार्ग से, ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मार्ग से कल्याणस्वरूप उत्तम मोक्ष प्राप्ति कही है। ऐसे मार्ग से उत्तम मोक्ष की प्राप्ति कही जाती है। कहो, समझ में आया?

गाथा - १

अब (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवविरचित) गाथासूत्र का अवतरण किया जाता है :—

इंदसदवंदियाणं तिहुवणहिदमधुरविसदवक्काणं।
अंतातीदगुणाणं णमो जिणाणं जिदभवाणं॥१॥

शतइन्द्र वन्दित त्रिजगहित निर्मल मधुर जिनके वचन।
अनन्त गुणमय भवजयी जिननाथ को शत-शत नमन॥१॥

अन्वयार्थ :- [इन्द्रशतवन्दितेभ्यः] जो सौ इन्द्रों से वन्दित हैं, [त्रिभुवनहितमधुर-विशदवाक्येभ्यः] तीन लोक को हितकर, मधुर एवं विशद (निर्मल, स्पष्ट) जिनकी वाणी है, [अन्तातीतगुणेभ्यः] (चैतन्य के अनन्त विलासस्वरूप) अनन्त गुण जिनको वर्तते हैं और [जितभवेभ्यः] जिन्होंने भव पर विजय प्राप्त की है, [जिनेभ्यः] उन जिनों को [नमः] नमस्कार हो।

टीका :- यहाँ (इस गाथा में) 'जिनों को नमस्कार हो' ऐसा कहकर शास्त्र के आदि में जिनको भावनमस्काररूप असाधारण 'मंगल' कहा। 'जो अनादि प्रवाह से प्रवर्तते (-चले आ रहे) हुए अनादि प्रवाह से ही प्रवर्तमान (-चले आ रहे) 'सौ-सौ इन्द्रों से वन्दित हैं' ऐसा कहकर सदैव देवाधिदेवपने के कारण वे ही (जिनदेव ही) असाधारण नमस्कार के योग्य हैं, ऐसा कहा। 'जिनकी वाणी अर्थात् दिव्यध्वनि तीन लोक को — ऊर्ध्व-अधो-मध्य लोकवर्ती समस्त जीवसमूह को-निर्बाध विशुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धि का उपाय कहनेवाली होने से हितकर है, परमार्थरसिकजनों के मन को हरनेवाली होने से मधुर है और समस्त शंकादि दोषों के स्थान दूर कर देने से विशद

१. मल को अर्थात् पाप को गाले-नष्ट करे वह मंगल है, अथवा सुख को प्राप्त करे - लाये वह मंगल है।
२. भवनवासी देवों के ४० इन्द्र, व्यन्तर देवों के ३२, कल्पवासी देवों के २४, ज्योतिष्क देवों के ०, मनुष्यों का १ और तिर्यचों का १-इस प्रकार कुल १०० इन्द्र अनादि प्रवाहरूप से चले आ रहे हैं।

शत-इन्द्रवंदित, त्रिजगहित-निर्मल-मधुर वदनारने,
निःसीम गुण धरनारने, जितभव नमुं जिनराजने॥१॥

(निर्मल, स्पष्ट) है' — ऐसा कहकर (जिनदेव) समस्त वस्तु के यथार्थ स्वरूप के उपदेशक होने से विचारवन्त बुद्धिमान पुरुषों के बहुमान के योग्य हैं (अर्थात् जिनका उपदेश विचारवन्त बुद्धिमान पुरुषों को बहुमानपूर्वक विचारना चाहिए ऐसे हैं), ऐसा कहा। 'अनन्त-क्षेत्र से अन्तरहित और काल से अन्त रहित-परमचैतन्यशक्ति के विलासस्वरूप गुण जिनको वर्तता है' ऐसा कहकर (जिनों को) परम अद्भुत ज्ञानातिशय प्रगट होने के कारण ज्ञानातिशय को प्राप्त योगन्द्रों से भी वंद्य है ऐसा कहा। 'भव अर्थात् संसार पर जिन्होंने विजय प्राप्त की है' ऐसा कहकर कृतकृत्यपना प्रगट हो जाने से वे ही (जिन ही) अन्य अकृतकृत्य जीवों को शरणभूत हैं ऐसा उपदेश दिया। — ऐसा सर्व पदों का तात्पर्य है।

भावार्थ :- यहाँ जिनभगवन्तों के चार विशेषणों का वर्णन करके उन्हें भावनमस्कार किया है। (१) प्रथम तो, जिनभगवन्त सौ इन्द्रों से वंद्य हैं। ऐसे असाधारण नमस्कार के योग्य अन्य कोई नहीं है, क्योंकि देवों तथा असुरों में युद्ध होता है इसलिए (देवाधिदेव जिनभगवान के अतिरिक्त) अन्य कोई भी देव सौ इन्द्रों से वंदित नहीं है। (२) दूसरे, जिनभगवान की वाणी तीन लोक को शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति का उपाय दर्शाती है, इसलिए हितकर है; वीतराग निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न सहज-अपूर्व परमानन्दरूप पारमार्थिक सुखरसास्वाद के रसिकजनों के मन को हरती है इसलिए (अर्थात् परम समरसीभाव के रसिक जीवों को मुदित करती है इसलिए) मधुर है; शुद्ध जीवास्तिकायादि सात तत्त्व, नव पदार्थ, छह द्रव्य और पाँच अस्तिकाय का संशय-विमोह-विभ्रमरहित निरूपण करती है, इसलिए अथवा पूर्वापरविरोधादि दोषरहित होने से अथवा युगपद् सर्व जीवों को अपनी-अपनी भाषा में स्पष्ट अर्थ का प्रतिपादन करती है; इसलिए विशद-स्पष्ट-व्यक्त है। इस प्रकार जिनभगवान की वाणी ही प्रमाणभूत है; एकान्तरूप अपौरुषेय वचन या विचित्र कथारूप कल्पित पुराणवचन प्रमाणभूत नहीं है। (३) तीसरे, अनन्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का जाननेवाला अनन्त केवलज्ञानगुण जिनभगवन्तों को वर्तता है। इस प्रकार बुद्धि आदि सात ऋद्धियाँ तथा मतिज्ञानादि चतुर्विध ज्ञान से सम्पन्न गणधरदेवादि योगेन्द्रों से भी वे वंद्य हैं। (४) चौथे, पाँच प्रकार के संसार को जिनभगवन्तों ने जीता है। इस प्रकार कृतकृत्यपने के कारण वे ही अन्य अकृतकृत्य जीवों को शरणभूत हैं, दूसरा कोई नहीं।—इस प्रकार चार विशेषणों से युक्त जिनभगवन्तों को ग्रन्थ के अदि में भावनमस्कार करके मंगल किया।

प्रश्न :- जो शास्त्र स्वयं ही मंगल हैं, उसका मंगल किसलिए किया जाता है?

उत्तर :- भक्ति के हेतु से मंगल का भी *मंगल किया जाता है। सूर्य की दीपक से, महासागर की जल से, वागीश्वरी (सरस्वती) की वाणी से और मंगल की मंगल से अर्चना की जाती है।।१।।

गाथा - १ पर प्रवचन

अब (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवविरचित) गाथासूत्र का अवतरण किया जाता है :- भगवान कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं ही मांगलिक करके शास्त्र की रचना करते हैं। यह तो अमृतचन्द्राचार्यदेव ने इतनी मांगलिकता सिद्ध की।

इंदसदवंदियाणं तिहुवणहिदमधुरविसदवक्काणं ।
अंतातीदगुणाणं णमो जिणाणं जिदभवाणं ॥१॥

आहाहा! सौ इन्द्र। शब्द ही पहला सौ इन्द्र आया है। पूरा सौ, अखण्ड।

शतइन्द्र वन्दित त्रिजगहित निर्मल मधुर जिनके वचन।

आहाहा! मीठा आनन्द परन्तु वाणी भी मधुर।

शतइन्द्र वन्दित त्रिजगहित निर्मल मधुर जिनके वचन।

अनन्त गुणमय भवजयी जिननाथ को शत-शत नमन।।१।।

आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं नमस्कार करने में प्रमोद से नमस्कार किस प्रकार करते हैं? और उनका प्रमोद भी क्या है, देखो! 'जितभव नमुं जिनराजको।' जिन्होंने भव को जीता, निःसीम गुण के धारक हैं, सौ इन्द्र से वन्दनीक हैं, तीन जगत के

* इस गाथा की श्री जयसेनाचार्यदेवकृत टीका में, शास्त्र का मंगल, शास्त्र का निमित्त, शास्त्र का हेतु (फल), शास्त्र का परिमाण, शास्त्र का नाम तथा शास्त्र के कर्ता — इन छह विषयों का विस्तृत विवेचन किया है।

पुनश्च, श्री जयसेनाचार्यदेव ने इस गाथा के शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ एवं भावार्थ समझाकर, 'इस प्रकार व्याख्यानकाल में सर्वत्र शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ और भावार्थ प्रयुक्त करनेयोग्य हैं' — ऐसा कहा है।

हितकारी हैं, निर्मल और मधुर जिनके वाक्य हैं। वाक्य मधुर। ऐसे त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ तीर्थकरदेव को मैं वन्दन करता हूँ। वन्दन करके मैं यह पंचास्तिकाय, षट्द्रव्य, नव तत्त्व का मार्ग और मोक्ष का मार्ग निरूपण करूँगा। अब इसके एक-एक शब्द का अमृतचन्द्राचार्य विस्तार करते हैं।

टीका :- यहाँ (इस गाथा में) 'जिनों को नमस्कार हो' ऐसा कहकर... जिन-वीतराग परिणति से परिणमित हुए। निर्विकल्प — रागरहित पूर्ण जिनकी वीतराग जो शान्ति शक्ति में थी, वह शान्ति जिन्होंने व्यक्तता में प्रगट की। ऐसी पूर्ण शान्ति के... अनुभव करनेवाले ऐसे जिनो को नमस्कार है। वे जिन, यह सम्प्रदाय का वाच्य नहीं है। गुण वाच्य है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है कि जो अकेला वीतराग विज्ञानघन आत्मा था, उसे जिसने पर्याय में—अवस्था में वीतराग विज्ञान ज्ञानघन दशा प्रगट की, ऐसे जिनों को नमस्कार है। आहाहा! समझ में आया ?

ऐसा कहकर शास्त्र के आदि में जिनको भावनमस्काररूप असाधारण मंगल कहा। भावनमस्कार वापस, देखो! अपना वीतरागभाव, राग से हटकर स्वभाव की ओर नमा हुआ है—ऐसा जिनस्वरूप मेरा अपना, उसे नमस्कार। लो, बात में तो ऐसा लिया। और जिन को भावनमस्कार असाधारण मंगल कहा। अपने स्वभाव को नमे, वे भगवान को नमे हैं। शुद्ध चिदानन्द आनन्दकन्द प्रभु। अनाकुल शान्तरस का कन्द ध्रुव बीज, उसमें ढली हुई अरागी परिणति, वही आत्मा को, 'जिन' को नमस्कार है। ऐसा, **भावनमस्काररूप असाधारण मंगल कहा।** आहाहा! असाधारण मंगल। जिसके दो भाग नहीं, विभाजन नहीं। असाधारण वीतरागी पर्याय के द्वारा आत्मा में ढले हैं, ऐसा कहकर भगवान को नमन किया है। नीचे अर्थ किया है मंगल का।

'मल को अर्थात् पाप को गलावे-नष्ट करे, वह मंगल है।' मम् और गल। गल अर्थात् गाले। मम अर्थात् पाप। उसे मंगल कहते हैं। **अथवा सुख को प्राप्त करते हैं।** मंग-सुख प्राप्त करता है, **लाये वह मंगल है।** शान्ति के सुख को प्राप्त करे, अन्दर में से, वह मंगल है या अशान्ति का नाश करे। दोनों एक ही बात है। अस्ति-नास्ति से अनेकान्तमय मांगलिक किया। भगवान आत्मा अनाकुल शान्तरसवाला उसकी ओर की

शान्ति की प्राप्ति, वह मंगल हो गया और अशान्ति का नाश, वह मम्-गल हो गया। मम्-गल। समझ में आया? ऐसा कहकर मांगलिक किया है।

जो अनादि प्रवाह से प्रवर्तते.... अनादि प्रवाह से प्रवर्तते (-चले आ रहे) हुए अनादि प्रवाह से ही प्रवर्तमान (चले आ रहे) सौ-सौ इन्द्रों से वन्दित हैं। भगवान भी अनादि काल से चले आ रहे हैं और सौ-सौ इन्द्र भी अनादि काल से उन्हें वन्दन करते आ रहे हैं। आहाहा! पहले अनादि के। अनादि... अनादि... अनादि किसे कहना? यह तो सब बातें ही अलौकिक हैं। द्रव्य पहला कौन सा? द्रव्य की पर्याय पहली कौन सी? है, ऐसा का ऐसा भण्डार भरा है। भगवान भी अनादि के प्रवाह से चले आ रहे हैं और उनके वन्दन करनेवाले अनादि प्रवाह से प्रवर्तते सौ-सौ इन्द्रों से वन्दित हैं। कहो, समझ में आया? उसे याद करके वन्दन किया है, देखो!

ऐसा कहकर सदैव देवाधिदेवपने के कारण.... सदा देवाधिदेवपने के कारण वे ही (जिनदेव ही) असाधारण नमस्कार के योग्य हैं, ऐसा कहा। लो! ऐसे वीतराग असाधारण-असाधारण नमस्कार के योग्य तो यह कहे। कहो, समझ में आया? नीचे सौ इन्द्रों की व्याख्या की है। भवनवासी देवों के ४० इन्द्र, व्यन्तर देवों के ३२, कल्पवासी देवों के २४, ज्योतिष्क देवों के २ सूर्य और चन्द्र, मनुष्यों का १ और तिर्यचों का १—इस प्रकार कुल १०० इन्द्र अनादि प्रवाहरूप से चले आ रहे हैं। यह भगवान देवाधिदेव अनादि प्रवाह से चले आ रहे हैं। सौ इन्द्र अनादि के प्रवाह से ऐसे... आहाहा! प्रवाह लिया दोनों का, देखो न! कितना लम्बाया है न! अनादि से चले आ रहे वीतराग। उन्हें अनादि से सौ इन्द्र पूजते आये हैं। वे ही पूजने के योग्य, नमस्कार के योग्य हैं। ऐसा कहकर गाथा की शुरुआत का मांगलिक किया है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

 कार्तिक कृष्ण ८, रविवार, ८-१२-१९६३, गाथा-१, प्रवचन-३

आज कुन्दकुन्दाचार्यदेव की आचार्य पद की तिथि है। इतिहास में पौष कृष्ण अष्टमी है। यह अपने मगसिर कृष्ण अष्टमी। उन्हें इस भरतक्षेत्र में आचार्यपद की पदवी प्राप्त हुई। गौतमस्वामी के पश्चात् उनका नाम लिया जाता है न? मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो। उनका यह आचार्य की पदवी का महान पद जिन्होंने जैनशासन की डोर आज हाथ में ली। जैनशासन के ऊपर रक्षकरूप से भगवान का शासन क्या है, उसे सम्हालरूप से आचार्यपद का यह स्थान उन्हें प्राप्त हुआ। उन्होंने किये शास्त्र, वे भगवान के पास गये थे, वहाँ से आकर यह सब शास्त्र रचे हैं। उसमें यह पहला, देखो! मांगलिक में ही पहली गाथा आयी है, अपने।

टीका हुई है, देखो। फिर से टीका। पहली गाथा में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य वन्दन करते हैं। किसे वन्दन करते हैं? यहाँ 'अथ अत्र' शब्द है, वहाँ मूल पाठ में। किसी जगह 'अथ' शब्द मांगलिक के अर्थ में भी प्रयोग किया गया है और किसी जगह 'अथ' अर्थात् शुरुआत भी होगी। अपने को कुछ खबर नहीं पड़ती। इसमें अर्थ नहीं किया न इसलिए। समयसार में किया है। 'अथ' अर्थात् समय किया न पण्डित जयचन्द्रजी ने। सब जगह 'अथ' शब्द आता है। वहाँ ऐसा किया, इसलिए अपने सब जगह मांगलिक के अर्थ में शब्द लेना। कहो, समझ में आया? पहला शब्द है न? 'अथ' संस्कृत में है। मांगलिक के अर्थ में। 'अत्र' अर्थात् यहाँ।

(इस गाथा में) 'जिनों को नमस्कार हो'.... वीतराग को नमस्कार हो। ऐसा कुन्दकुन्दाचार्यदेव पहली गाथा में कहते हैं। ऐसा कहकर शास्त्र के आदि में जिनको भावनमस्काररूप.... वीतराग परमात्मा जिनकी निर्विकल्प पूर्ण दशा जिन्हें प्राप्त हो गयी है, ऐसे भगवान को भावनमस्कार। अरागी परिणाम द्वारा आत्मा में नमन, उसका नाम भावनमस्कार। यह भावनमस्काररूप असाधारण मंगल कहा। पाँच मिनट में (कितनी) बात चली गयी। समझ में आया? मुद्दे की बात चली गयी। असाधारण मंगल कहा। कहो, समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : असाधारण का अर्थ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : असाधारण अर्थात् अलौकिक मंगल, अद्भुत मंगल, दूसरा ऐसा नहीं - ऐसा मंगल। अपने तो आज से मंगल शुरू किया यहाँ तो। पहला ही अर्थ किया। यहाँ 'अथ' है, देखा! यह सब जगह 'अथ' पड़ा है न, सर्वत्र 'अथ' शब्द पड़ा है।

(इस गाथा में).... शास्त्र की शुरुआत में जिन भगवान को असाधारण और अलौकिक। विकल्प से नमस्कार करना, वह पुण्य का व्यवहार नमस्कार पुण्यरूप है। यह वीतरागस्वभाव यह अपना वीतराग विज्ञानघन, उसमें नमन, उसे ही वीतराग का वास्तव में नमस्कार कहा जाता है। कहो, समझ में आया? वीतराग सर्वज्ञदेव परमात्मा त्रिलोकनाथ, देखो! कुन्दकुन्दाचार्यदेव आचार्य पद की पदवी प्राप्त होकर यह सब शास्त्र रचे हैं। उनमें पहला यह कहा, भगवान को नमस्कार। कैसे हैं भगवान? अब यहाँ विशिष्टता है।

जो अनादि प्रवाह से प्रवर्तते (-चले आ रहे) हुए.... तीर्थकर, वीतराग अनादि काल से प्रवर्तते हैं। पहले इस विश्व में तीर्थकर केवली वीतराग नहीं थे, पहले नहीं थे और फिर हुए, ऐसा नहीं है। पहले कहाँ होंगे तब तीर्थकर अब ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : पहला कहाँ से निकाले? अनादि है, उसमें पहला कहाँ से निकाले? अनादि। संसार भी अनादि, तीर्थकर भी अनादि, केवलज्ञानी अनादि, साधक अनादि, बाधक अनादि, मिथ्यात्व अनादि, सम्यक्त्व अनादि जगत में प्रवाहरूप से चले आते हैं। अनादि वस्तु है, उसमें पहला किसे कहना ?

जो अनादि प्रवाह से प्रवर्तते... ओहो! अनन्त तीर्थकरों को स्मरण किया है। आत्मा भी अनादि का है। शुद्ध चिदानन्दघन ऐसा का ऐसा अनादि है। ऐसी उसकी पर्याय की प्राप्तिवाले वीतराग भी अनादि काल के हैं। अनादि काल का ज्ञान... देखो! इस श्रुतज्ञान में भी कुन्दकुन्दाचार्य महाराज कहते हैं, यह अनादि के चले आये तीर्थकरों का हमें ज्ञान है। कहो, छद्मस्थ भी जान सकता है। केवली तो जैसा है, वैसा अनादि को अनादि जानते हैं, अनन्त को अनन्त जानते हैं। कोई अनादि को आदि जाने? अनादि है।

श्रुतज्ञान में आ गया है। श्रुतज्ञान में आया कि अनादि प्रवाह से तीर्थकर चले आते हैं, उनका यहाँ ज्ञान हुआ है। ज्ञान न हुआ हो तो अनादि चले आये को वन्दन किस प्रकार करे ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : केवली की अपेक्षा से आदि हो। यह और कैसा ?

अनादि काल से चले आ रहे... सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान में ऐसा आया है। अनादि काल से सर्वज्ञ चले आ रहे हैं। श्रुतज्ञान में भी यहाँ ऐसा आया। देखो! अनादि प्रवाह से। आहाहा! अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनादि तीर्थकरों की हारमाला। आदि नहीं, ऐसी अनादि तीर्थकरों की हारमाला। सबको ज्ञान के लक्ष्य में लेकर और उल्लसित परिणाम से वन्दन करते हैं।

एक भी बोल वीतराग का है, वह वस्तु के स्वभाव को बतानेवाला है। अनादि है, उसमें प्रश्न क्या ? कि पहला कौन ? परन्तु पहला हो कहाँ से ? अनादि प्रवाह से (चले आ रहे हैं)। पानी का पूर जैसे एक के बाद एक, एक के बाद एक चलता जाता है। वैसे अनन्त तीर्थकर अनादि प्रवाह से प्रवर्तते, उस-उस काल में प्रवर्तते हुए, अनादि प्रवाह से प्रवर्तते सौ-सौ इन्द्रों से वन्दित हैं। दोनों बातें की हैं। अनादि प्रवाह से वीतरागी चले आ रहे हैं। अनादि प्रवाह से सौ-सौ इन्द्र उन्हें वन्दन करते आ रहे हैं। दोनों अनादि हैं। कहो, समझ में आया ? आहाहा ! इस अनादि को ख्याल में लेनेवाली, जिसकी ज्ञान की पर्याय, अनादि प्रवाह के तीर्थकरों को, सौ-सौ इन्द्र अनादि काल से वन्दन करते आते हैं। कितने अनन्त इन्द्र और अनन्त तीर्थकर आदिरहित। उन्हें जिसने ज्ञान में लिया, उस ज्ञान की पर्याय की अचिन्तता और महत्ता और महिमा कितनी ! ...भाई ! बराबर है ?

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य जंगल में विराजते होंगे और जहाँ ऐसी कलम चली। कलम अर्थात् उन ताड़पत्र पर सली से अक्षर के छिद्र करते होंगे, तब तो कहाँ था ? २००० वर्ष पहले की बात है। 'इन्द्रशतवन्दितेभ्य' पहला शब्द है न ? अहो ! सौ इन्द्रों से वन्दनीक। सौ भी अनादि के और तीर्थकर अनादि के। ओहो ! जिनकी ज्ञान की वर्तमान दशा में अनन्त-अनन्त आदिरहित तीर्थकर को सौ-सौ इन्द्र, प्रवाह से अनन्त सौ इन्द्र हुए। प्रवाह से अनन्त तीर्थकर हुए। उन सबको लक्ष्य में भी लिया। लक्ष्य में लिया या

नहीं ? ज्ञान की पर्याय में आ गये या गुण में आये हैं ? पर्याय में, प्रगट पर्याय (में) । ऐसी एक समय की श्रुतज्ञान की पर्याय में इतने समाते हैं । ओहो ! वह रागरहित पर्याय हो, उस पर्याय में तीन काल-तीन लोक समाते हैं । और ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड आत्मा का एक गुण । ऐसे-ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड एक वस्तु—द्रव्य । ओहो ! अकेला स्वभाव, निर्विकल्प स्वभाव का ही वर्णन किया । समझ में आया ?

अनादि से प्रवर्तते तीर्थकर । भगवान ! आपने आदि तो जानी नहीं, तो कहाँ से ज्ञान हो गया आपको ? जैसा है, वैसा अनादि है और अनादि का ज्ञान (हुआ) । यहाँ ज्ञान हुआ, इसलिए वहाँ उसमें आदि हो जाती है, ऐसा नहीं है और अनादि का ज्ञान, ज्ञान में अनादिरूप से न हो और ज्ञान में आदिरूप से जाने तो ज्ञान मिथ्या । जैसा ज्ञेय अनादि का है, वैसा ज्ञान भी उसे उसी प्रमाण ज्ञान में जाना । यह देखो ताकत आत्मा के ज्ञान की दशा की ! उसमें राग की कहाँ लगाना ? देह की, वाणी, मन की कहाँ लगाना ? राग की ताकत क्या ? देह की ताकत क्या ? जड़ की ताकत क्या ? भगवान आत्मा वस्त्ररूप से आत्मा, उसका ज्ञान एक गुण, उसकी एक समय की अल्पज्ञ की, छद्मस्थ की श्रुतज्ञान की पर्याय मतिज्ञानपूर्वक । उस ज्ञान में अनादि तीर्थकरों को बसाया । निःशंकरूप से ज्ञान हो गया है । और अनादि के सौ-सौ इन्द्र उन्हें वन्दन करते हैं, वन्दन करते हैं । देखो न, इन्द्र भी पूरे सौ हो गये ।....

सौ-सौ इन्द्रों से वन्दित हैं । ऐसा कहकर सदैव देवाधिदेवपने के कारण.... ओहो ! सदा देवाधिदेवपने के कारण । अनन्त काल से देवाधिदेवपना वीतराग को प्रगट हुआ अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... जिसका प्रवाह नहीं । प्रवाह अर्थात् शुरुआत नहीं । ऐसे सदैव देवाधिदेवपने के कारण... 'अनादिनैव संतानेन प्रवर्तमानैरिन्द्राणां शतैर्वन्दिता' 'सर्वदैव' 'सर्वदैव' है न ! टीका पहली । सदैव देवाधिदेव.... देवाधिदेव । यह देव सौ हैं और वे देव देव हैं । यह तो (भगवान तो) देवाधिदेव । गणधरदेव, परन्तु उनसे यह देवाधिदेव । यह सब सिद्धि की । गणधर अनादि, इन्द्र अनादि, तीर्थकर अनादि । ऐसे सदैव देवाधिदेवपने के कारण वे ही.... यह वीतराग स्वभाव जिसे पूर्ण प्रगट हुआ, सर्वज्ञ परमात्मा अनन्त चतुष्टय ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य (प्रगट हुआ), ऐसे भगवान सर्वज्ञ प्रभु, वे ही (जिनदेव ही) असाधारण नमस्कार

के योग्य हैं.... वे ही असाधारण नमस्कार... असाधारण अर्थात् भाव अलौकिक धार्मिक नमस्कार। लौकिक में तो यों ही साधारण नमस्कार चलता है न? यह तो असाधारण भावनमस्कार के योग्य हैं, ऐसा कहा। यह सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ असाधारण नमस्कार के योग्य हैं। अमृतचन्द्राचार्य महाराज टीका करनेवाले। मूल श्लोक कुन्दकुन्दाचार्य महाराज का है। इतनी बात तो आयी थी परसों शुरु करते हुए।

अब जिनकी वाणी.... यह तीर्थकर कहे। देवाधिदेवपने के कारण असाधारण नमस्कार के योग्य है। जिनकी वाणी.... जिनकी वाणी। भाषा देखो! वाणी है जड़ और आत्मा है चैतन्य। परन्तु निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से जिनकी वाणी, ऐसा कहा जाता है। ओहो! जिनकी वाणी-दिव्यध्वनि, दिव्यध्वनि तीन लोक को... कैसी वाणी? अहो! अनादि काल के तीर्थकर, उसकी वाणी कैसी है अनादि की? वाणी।

ऊर्ध्व-अधो-मध्य लोकवर्ती समस्त जीवसमूह को.... तीन लोक में... तीन लोक पूरे लिये। और उसमें वर्तता सम्पूर्ण जीव समूह। तीन लोक लिये, उसमें वर्तता समस्त जीवसमूह समस्त जीवसमूह को-निर्बाध विशुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धि का उपाय कहनेवाली होने से हितकर है,... यहाँ तो सब जीवसमूह को लिया। आहाहा! एक ओर अनन्त तीर्थकर, उनकी वाणी, तीन लोक में रहे हुए समस्त जीवसमूह को कैसी? देखो! न्याय रखा पूरा। निर्बाध विशुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धि का उपाय कहनेवाली होने से.... ओहो!

विशुद्ध भगवान् आत्मा निर्मलानन्द, शुद्ध ज्ञायकभाव वीतरागस्वभाव वस्तु आत्मा, ऐसे विशुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धि—अनुभव का उपाय निर्बाध रीति से कहनेवाली है। वीतराग की वाणी आत्मा के उपाय को निर्बाधरूप से कह सकनेवाली है। दूसरे की वाणी ऐसी नहीं हो सकती। कहो, समझ में आया? यह तो णमो अरिहंताणं पद को पहिचाने नहीं। यह वह पद कैसा और कितना है? प्रवचनसार में ऐसा लिया है कि मैं नमस्कार करनेवाला कौन? और नमस्कार करनेयोग्य कौन? ऐसा करके वहाँ लिया है। यहाँ इस प्रकार से लिया है।

अनादि तीर्थकरों की जो वाणी निर्बाध, निर्दोष, अप्रतिहत विशुद्ध आत्मतत्त्व की

उपलब्धि। ऐसा। उसकी वाणी बदलती नहीं। जगत के जीवों के समूह को विशुद्ध आत्म... बस! यह कहा? तब यह छह द्रव्य और पंचास्तिकाय और नौ तत्त्व सब कहा नहीं? ऐई! देवानुप्रिया! इसलिए कहा था। यह सब षट्द्रव्य की वस्तु भगवान ने कही। नौ तत्त्व कहे, पंचास्तिकाय कहकर लोकालोक कहा, तीन काल... उसमें यह कहा है। निर्बाध विशुद्ध आत्मतत्त्व चिदानन्दमूर्ति निर्मलानन्द हो। अहो! अकेला ज्ञानघन आनन्द हो। ऐसा विशुद्ध आत्मा का स्वभाव, आत्मा का तत्त्व, उसकी उपलब्धि—अनुभव, उसका उपाय कहनेवाले होने से। उसका उपाय भगवान की वाणी में ही है। अन्यत्र हो नहीं सकता। कहो, समझ में आया? यह आचार्य और गणधर सब उनके कहे हुए के अनुभव से स्वयं कहते हैं। यह वाणी ऐसी है। देखो! वजन इतना दिया।

निमित्तरूप से उसमें कहा हुआ भाव क्या है उसमें? यह कहनेवाला, उसका अर्थ यह है कि वाणी में यह कहा, वैसा वे पाते हैं। जीव सुननेवाले उसमें से यह छाँटते हैं। वीतराग की वाणी में निर्बाण विशुद्ध आत्मतत्त्व के अनुभव की प्राप्ति, उसका उपाय है। सुननेवाले इस प्रकार से उसमें से उपाय छाँटते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ सुनी थी? सुनी नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। श्रुत, परिचित अनुभूता सब कामभोग कथा। उसमें सुनते हुए राग ठीक है, यह है। अपनी रुचि से सुना हुआ। वीतराग कहते हैं, उस न्याय से सुना नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? यह तो महा सिद्धान्त बड़े परम आगम मन्त्र हैं। परम मन्त्र। ओहो! उसमें कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी, अमृतचन्द्राचार्य की वाणी। हाथ धो डाले इस भरतक्षेत्र में अभी ऐसी अलौकिक साक्षात् तीर्थकर जैसा पंचम काल में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने काम किया है। अमृतचन्द्राचार्य ने उनका पेट (अभिप्राय) खोलकर गणधर जैसा काम किया है। समझ में आया? देखो! यहाँ टीका देखो टीका! इसका पावर अन्दर से प्रस्फुटित हो जाये।

आत्मा निर्बाध विशुद्ध आत्मतत्त्व की.... अनुभव को बतानेवाला उपाय यह

वाणी है। उस वाणी में आत्मा का अनुभव कैसे होता है, यही कहा गया है। वही कहने में आया है। राग कैसे हो? निमित्त को कैसे मिलाया जाये? निमित्त को कैसे छोड़ा जाये? ऐसा इसमें नहीं कहा। देवानुप्रिया! इस प्रकार से आत्मा को जरा राग से खुल्ला करके सुनना। क्या (कहा)? समयसार में ऐसा कहा, 'वंदित्तु सव्व सिद्धे'—सर्व सिद्ध को श्रोता के ज्ञान में स्थापित करता हूँ, मेरे ज्ञान में स्थापित करता हूँ, तुम्हारे ज्ञान में स्थापित करता हूँ, फिर सुन। सिद्ध समान हूँ—ऐसा लक्ष्य कर, फिर समयसार सुन, ऐसा वहाँ कहते हैं। चन्दुभाई! यह तो बापू! परमेश्वर की वाणी और परमेश्वर की बात है। यह तो भगवान होने का उपाय है। भगवान होने का उपाय। भगवान के घर में भगवान होने का उपाय है।

त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमात्मा अनन्त वीतरागी हुए, अनन्त की एक प्रकार की वाणी। भाई! यह तो ऐसा कहा वापस। ऐसा नहीं कि कोई तीर्थकर ने कुछ कहा, किसी ने कुछ कहा। अरे! तीर्थकर ने जब ऐसा कहा तो फिर आचार्य, मुनि, गणधर और दूसरे प्रकार से कहें, ऐसा कैसे हो सकता है? समझ में आया? अनन्त वीतरागियों की वाणी वह निर्बाध आत्मतत्त्व ज्ञायकस्वरूप की उपलब्धि, अनुभव, उसकी प्राप्ति अर्थात् मुक्ति। उसका उपाय—कारण आत्मतत्त्व की उपलब्धि अर्थात् प्राप्ति, उसका उपाय अर्थात् मोक्षमार्ग। प्राप्ति मोक्ष है। उपलब्धि आत्मतत्त्व की प्राप्ति, उपलब्धि मोक्ष और उपाय कहनेवाले होने से। लो, इसमें से और दो निकले। कहो, समझ में आया? मोक्ष का मार्ग कहनेवाले होने से। दूसरे प्रकार से कहें तो। आहाहा! हितकर है... इसलिए हित करना है। वह वाणी हितकर है। सुन न!

**वचनामृत वीतराग के परम शान्तरस मूल,
औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।**

श्रीमद् ने वचन को अमृत कह दिया। 'वचनामृत-वचनामृत वीतराग के...' अकेला आत्मा अमृत की पूर्ण प्राप्तिरूपी मोक्ष। मोक्ष को अमृत कहा जाता है। मोक्ष को अमृत कहा जाता है। आत्मा का अमृत पूर्ण प्राप्त हो, उस मोक्ष को अमृत कहा जाता है। न मरे, ऐसा अमृतपना जहाँ से पुनः अवतार नहीं, ऐसी अमृत आत्मा की प्राप्ति, यह उसका उपाय कहनेवाली भगवान की वाणी है।

विशुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धि का उपाय कहनेवाली होने से.... राग कैसे मिले ? उससे पुण्य कैसे हो ? उसमें से इन्द्रपना कैसे मिले ? यह तीर्थकरपना कैसे मिले ? ऐसा उसमें नहीं कहते हैं। ओहो ! आहाहा ! टीका भी टीका ! दिगम्बर सन्तों ने जगत में अमृत बहाया है अमृत ! परन्तु लोगों को अपनी दृष्टि छोड़कर... छोड़कर अर्थात् दो अर्थ। दृष्टि रखकर पढ़े और या दृष्टि छोड़कर पढ़े। और या अपनी दृष्टि मूकीने अर्थात् रखकर पढ़े तो समझ में नहीं आये। अथवा अपनी दृष्टि छोड़कर पढ़े अर्थात् रोककर पढ़े। क्या कहते हैं वीतराग ? त्रिलोकनाथ ने-भगवान ने कहा वैसा अनन्त गणधरों ने कहा। अनन्त आचार्यों ने, अनन्त मुनियों ने, अनन्त उपाध्याय, अनन्त साधु, अनन्त समकिति और अनन्त श्रावक। कहो, समझ में आया ?

देखो ! आज कुन्दकुन्दाचार्य महाराज का आचार्य पदवी का दिन है। शासन के नायक। समझ में आया ? पहले बहुत बात कही गयी है। तुम आये न पाँच मिनट देरी से। पहले बहुत कहा गया है। कहो, समझ में आया ? यहाँ तो एक मिनट विलम्ब हो तो सब जाये, ऐसा है। शुरुआत कहाँ से हुई और पूरा कहाँ होगा। कहो, समझ में आया इसमें ? आहाहा ! ऐसे आचार्य को पदवी मिली थी, वहाँ। यह वहाँ सब इकट्ठे होकर वह (उत्सव) किया, (वह) नहीं, यह तो सहज पद लेकर आये थे अन्दर से।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : पछेड़ी क्या ओढ़ावे ? मुनि को पछेड़ी होती है ? वह तो अन्दर इतनी क्षयोपशम की योग्यता की पवित्रता की धारा प्रगट करके आये थे। दुनिया पुकार करती आती है कि... ओहो ! आचार्य के योग्य हैं... आचार्य के योग्य हैं। यह सब पैसा खर्च करके इकट्ठे होकर हो... हो... करे, वह बात यहाँ नहीं है। भावलिंगी सन्त परमेश्वर पद में सम्मिलित थे। आहाहा ! तीन कषाय का नाश इतनी वीतरागता की प्राप्ति। ऐसे अमृत के घोलन में अनुभव में स्थित हैं चारित्र में (स्थित हैं) ऐसे को यह आचार्य कहते हैं। हम तो आत्मा हैं। समझ में आया ? हम तो वीतरागी परिणति से परिणमित सन्त मुनि हैं। हमारे स्वरूप में यह राग या यह हम या यह तुम है नहीं। और पुण्य की प्रकृति भी, उसकी क्या बात !

जिन्हें भरतक्षेत्र में जन्म और महाविदेह में भगवान की भेंट। आहाहा! उनकी पवित्रता की क्या करना! उनके पुण्य की क्या बात करना! जैसे तीर्थकर की पवित्रता और पुण्य दोनों महान हैं, ऐसा ही कोई मेल इनको दोनों बड़े में आ गया है। समझ में आया? बाहुबलीजी ऐसे जहाँ विराजते हैं वहाँ, श्रवणबेलगोला, ऐसा। एक व्यक्ति ने पूछा कि महाराज! डेढ़-डेढ़ घण्टे क्या देखा इसमें? तीन दिन डेढ़-डेढ़ घण्टे वहाँ (बैठे थे)। उसमें एक वीतरागता दिखती है और दूसरा दिखता है अलौकिक पुण्य। उसमें दोनों दिखते हैं, कहा। ऐसी ५७ फीट की। गये हो या नहीं कभी? ऐई! देवानुप्रिया! अकेले? दूसरों के साथ में नहीं सुहाता। ... जोर हो न, उसे दूसरे के साथ नहीं सुहाता। यह अकेला-अकेला बहुत घूमता है। वहाँ ५७ फीट की प्रतिमा है। ५७। ऐसे देखो तो। ओहोहो! यह तो ऐसा मानो... साक्षात् मानो वीतरागपना ऐसा मानो अन्दर में घुलता हो और बाहर में देखो तो पुण्य। उनकी ऐसी आँख, नाक, उनका सिरा एक-एक भाग देखो तो ऐसा कोई कारीगर बनने की कोई स्थिति खड़ी हो गयी। कारीगर क्या बनावे, वह तो बनने के काल में उन परमाणुओं के स्कन्ध की पर्याय ही, ऐसी परिणमने की थी। ऐसे देखो तो अन्दर से मानो भगवान साक्षात् खड़े हैं। बड़े विदेश के लोग आते हैं न, वे भी एक बार देखकर (स्थिर हो जाते हैं।) जवाहरलाल (नेहरू) गये थे और उनकी पुत्री गयी थी वहाँ। ऐसे पौन घण्टे देखकर (दिगम्बर) नग्न मूर्ति है एकदम। बाहर का पूरा शरीर नग्न। आहाहा! वे बोल गये। नहीं तो वे कहाँ बराबर समझने योग्य है। उसमें तो वीतरागता दिखती है। नग्न है न! गये हो भाई तुम? गये नहीं? स्थानकवासी में जन्मे हों, उन्होंने कहाँ से सुना हो! अकेली वीतरागता। उनके बाल में, गुच्छे में, अंगुलियों में ऐसे देखो तो वह तो अकेला पुण्य तैरता है बाहर। अन्तर में मानो वीतरागता अकेली। ऐसा दिखाव।

यहाँ कहते हैं, भगवान की वाणी। ओहोहो! जहाँ ध्वनि-वाणी खिरती है। पूर्ण पद की प्राप्ति करने के विकल्प थे न उनको? जब तीर्थकरगोत्र बाँधा तब। इसलिए इस वाणी के फल में जो बन्धन पड़ा, वह ध्वनि ही आत्मा की पूर्णता प्राप्ति में निमित्त हो, ऐसी ही उनकी वाणी होती है। वे कहाँ (विकल्प) करते हैं कि मैं वाणी करूँ, मैं बाँधूँ, ऐसा है? यह बाँधे किसका? परन्तु अन्तर में वीतराग विज्ञानघन घोलता है जब सम्यग्दर्शन

में पहले, तब विकल्प उठा था। तीर्थकरपने के बन्ध का कारण उठा था। वह तो उस द्रव्य को होता है। दूसरा कोई बाँधना चाहे तो बाँधता नहीं। यह तो वह द्रव्य ही अनादि का जिसका हो, उसे ऐसा विकल्प आता है। समझ में आया? ऐसा आवे अन्दर में कि आहाहा! यह आत्मा पूर्ण हो जाये, पूर्ण हो जाये। परन्तु फिर व्यवहार से ऐसा कहते हैं कि जगत के जीव ऐसा तत्त्व समझे, इसलिए विकल्प में मोक्षमार्ग की अपनी पूर्णता का वह विकल्प था और दूसरे को भी मोक्षमार्ग समझाने का विकल्प था। इसलिए उस विकल्प में रजकण ही ऐसे बाँध जाते हैं कि ध्वनि में अकेला मोक्षमार्ग बताने में आता है। समझ में आया?

विशुद्ध आत्मतत्त्व की.... निर्बाध अनुभव का। निर्बाध, ऐसा वापस। यह होकर ही रहेगा। भगवान जो उपाय कहते हैं सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का निश्चय मार्ग जो है, वह निर्बाध है। उससे मोक्ष होकर ही रहेगा। समझ में आया? अरे! हमारा क्या होगा? यह भगवान की वाणी में है ही नहीं। समझ में आया? यह चैतन्य प्रभु इस अपने स्वभाव को घोलता हुआ खड़ा हुआ। उसके विकल्प में यह आया और उसका बन्धन पड़ा और ध्वनि-वाणी खिरी। उसे कहाँ वाणी खिरानी है और वाणी करनी है? भगवान को कहाँ वाणी थी? वे तो अरूपी ज्ञानघन हैं। उनके निमित्त सम्बन्ध में भी वाणी का ऐसा प्रपात निकाल कि जो निर्बाध विशुद्ध आत्मतत्त्व के अनुभव की प्राप्ति सिद्धपद का उपाय कहनेवाली होने से। यह सिद्धपद के उपाय को कहनेवाली होने से, यह मोक्ष का मार्ग कहनेवाली होने से। समझ में आया?

हितकर है,... इतना शब्द रखा है। है न? 'त्रिभुवनहित' 'त्रिभुवनहित' इतना अर्थ किया। तीन भुवन में रहे हुए जीवों को हितकर वाणी है। ओहोहो! अरे! भगवान! परन्तु तीन भुवन में तो दूसरे बहुत रहते हैं न? निगोद और... अरे! चाहे जो रहे न, वाणी तो हितकर ही है। सुन! समझ में आया? यह इसका अर्थ किया है, लो! 'त्रिभुवनहित' इतना अर्थ किया है। 'इन्द्रशतवन्धितेभ्य' यह पहला अर्थ हो गया। शान्ति से एक बार पढ़े और सुने न तो इसके रोम-रोम प्रदेश के खड़े हो जाये। प्रदेश के रोम-रोम, हों! यह (शरीर के) रोम तो जड़ है।

मुमुक्षु : आत्मप्रदेश खुल जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मप्रदेश में अन्दर होता है कि, आहाहा! अकेला (आत्मा) विज्ञानघन चैतन्य है। उसे खिलने का मार्ग भगवान ने बताया है। उनकी वाणी में तो खिलने का मार्ग ही एक आया है। क्योंकि पुण्य का बन्ध पड़े और कैसे व्यवहार आवे और व्यवहार कैसे हो, वह सब ज्ञान में। यह मोक्षमार्ग बतलाया ज्ञान में। ज्ञान मोक्षमार्ग, दर्शन मोक्षमार्ग... उसमें वह सब ज्ञान आ जाता है। नया करना नहीं पड़ता। समझ में आया? आहाहा! हितकर है। परम हित है। ऐसा लिया है न टोडरमलजी ने। परमहित है। निर्जरा हित का कारण है, संवर उपादेय है, आस्रव हेय है, बन्ध अहितकर है, मोक्ष परमहितकर है। ऐसा सातों तत्त्व के बोल में टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में उतारा है न!

यहाँ तो यह हितकर है। समझ में आया? यह वाणी हितकर है। वाणी में मोक्षमार्ग हितकर है, ऐसा बतलाया है, इसलिए वाणी भी हितकर है। कहो, समझ में आया?

अब कहते हैं, तीसरा शब्द। **मधुर...** मधुर। ओहोहो! कैसे हैं? वीतराग की वाणी मधुर, मीठी द्राक्ष जैसी, अमृत जैसी वाणी है। ऐ... आत्मा अमृत हो, परन्तु यह वाणी अमृत? सुन न, यह बतलानेवाली अमृत है वाणी। 'वचनामृत वीतराग के...' कहा न? उनके वचनामृत वचन ही अमृत हैं, जा। भगवान अमृत को बतलानेवाले, आत्मा का तत्त्व अमृत है, उसे बतलानेवाली वाणी को भी अमृत कहते हैं।

कैसी है वाणी? **परमार्थरसिकजनों के मन को हरनेवाली....** ओहो! यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शान्ति के, समाधि के रसिक। परमार्थ... परमार्थ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शान्ति और समाधि के रसिक ऐसे जनों के मन को हरनेवाली होने से। ऐसे के मन को भी हरती है। मन (से) हटकर आनन्द में आ जाता है। ओहोहो! कहो, चार-चार ज्ञान के रचनेवाले, अन्तर्मुहूर्त में प्रगट करनेवाले। चौदह पूर्व की रचना के एक क्षण में रचनेवाले ऐसे गणधर भी ऐसा सुनते हैं, इसलिए परमार्थरसिक जन हैं। अतीन्द्रिय शान्त आत्मा का रस, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता, ऐसी जो समाधि, ऐसी जो निर्विकल्प शान्ति, समाधि, उसके रसिकजन। क्योंकि उनकी वाणी में यह

मोक्षमार्ग आता है। ऐसे जीवों को वह वाणी... आहाहा! मन को हरनेवाली होने से। मर को हर लेती है। मनहर।

मधुर है। मीठी-मीठी। भगवान की वाणी मीठी। कहो, समझ में आया? ऐसी वाणी... आता है न? स्तवन में नहीं आता? अभिनन्दन (भगवान)। गन्ना पिलकर-मरकर रस निकालता है, भगवान की वाणी के समक्ष तो। आहाहा! पिलकर भी रस निकालो, बापू! वीतराग की वाणी में बहुत मिठास है। द्राक्ष जंगल में चली गयी। वीतराग की वाणी की मिठास के समक्ष शर्माकर द्राक्ष बाहर जंगल में चली गयी। अरे! हम यहाँ क्या गाँव में कहाँ रहें? बस्ती में कहाँ रहें? भगवान की मिठास की वाणी के समक्ष... आहाहा! सेठी! यह द्राक्ष की बेल जंगल में चली गयी। भगवान की वाणी की बेल जहाँ द्राक्ष की भाँति मीठी-मधुर फलती है, उसमें हमारी क्या कीमत? भागो। ऐसा भक्ति में आता है। अभिनन्दन की स्तुति में अभिवन्दनीय कौन है? अभिनन्दनीय कौन है? ऐसा। कहो, समझ में आया इसमें?

परमार्थरसिकजनों के.... यह आत्मा के रस के रसिकजनों के, ऐसा कहते हैं। राग और पुण्य और विकार के रसिकजनों को वीतराग की वाणी मधुर नहीं लगती। उन्हें तो (ऐसा लगता है कि) यह क्या कहते हैं यह? कुछ हमको पुण्य हो, पैसा मिले, स्वर्ग मिले, कहीं हमको सुख का श्वास आवे बाहर के दुःख में से। ऐसी बात तो करते नहीं। लो, मोक्षमार्ग... मोक्षमार्ग (करते हैं)। यह मोक्षमार्ग में सुख है। कहीं बाहर में सुख है नहीं। ऐसा जो परमार्थ स्वभाव के रसिक जीव हैं, उन्हें वीतराग की वाणी मधुर लगती है। बाकी कायरों को कटु लगती है। लूखी वाणी वीतरागपना बतलानेवाली है। मोक्षमार्ग वीतराग है। पूर्ण वीतराग होने का उपाय, वह वीतरागमार्ग है। अन्दर में।

परमार्थरसिकजनों के मन को हरनेवाली.... ऐसा कहकर अज्ञानी जिन्हें राग का रस है, उन्हें अच्छी नहीं लगती। समझ में आया? आहाहा! **परमार्थरसिकजनों के मन को हरनेवाली होने से मधुर....** मधुर... मधुर... कहो, समझ में आया? वह आती है न एक बात, नहीं? बादशाह की नहीं? नूर। नूरजहाँ। नूरजहाँ की नहीं आती? नूरजहाँ बहुत रूपवान थी। बहुत रूपवान। बहुत रूप... रूप ऐसा सब। गहने पहने तो क्या कहे

परन्तु शरीर ही अकेला गहने जैसा। ऐसा रूप। बहुत महिमा हो। एक फकीर, फकीर के कान में बात पड़ गयी। जहाँगीर क्या? जहाँगीर की रानी नूरजहाँ बहुत रूपवान है। फकीर ने सुना। ब्रह्मचारी फकीर। वह दरवाजा बन्द करके बैठा हुआ बादशाह गद्दे के ऊपर। ऐसे पलंग। रानी और... दोनों। वह फकीर ऊपर से उतरा। लोग कहते हैं कि यह बहुत रूपवान है। बहुत रूपवानी थी। नूरजहाँ। दूसरी नहीं वह? ताजमहल नहीं? दूसरी थी। वह मुमताज। वह बहुत तेज। नूरजहाँ। जगत के अन्दर का नूर-तेज।

रूपवान वापस, हों! सफेद अलग और रूपवान अलग। सफेद होने पर भी रूप न हो। उसकी सुन्दरता और काली होने पर भी सुन्दरता हो। भगवान पाँच रंग के थे। परन्तु सब सुन्दर... सुन्दर... सुन्दर... उन्हें रूपवान कहते हैं। सफेद इसलिए रूपवान ऐसा नहीं। उसकी सुन्दरता इतनी थी। बहुत सुनी हुई। फकीर ने ऐसा देखा। फकीर ने ऐसे-ऐसे किया। उसने कहा, क्यों साईबाबा? क्यों ऐसा किया? मैंने सुना था कि तेरी रानी बहुत रूपवान है। मुझे नहीं दिखाई दी। साईबाबा! यह हमारी दृष्टि से तुम देखो तो दिखाई देगी। तुम्हारी दृष्टि से नहीं दिखाई देगी। यह विषय के अर्थियों की दृष्टि से देखो तो तुम्हें रूप दिखाई देगा। विषय के अर्थी नहीं (हो), उसे रूप नहीं दिखाई देगा।

इस प्रकार वीतराग की वाणी वह चैतन्य के रसिक को मधुर लगेगी। परन्तु चैतन्य का रस नहीं, उसे मधुर नहीं लगेगी। समझ में आया? साईबाबा (कहते हैं), तुम्हारी बात सत्य है। तुम्हारी दृष्टि में अन्तर है। यह तो ब्रह्मचारी को होते हैं न कितने ही फकीर। ऐसे फिलसुफी करते हैं। फिलसुफ फकीर होते हैं न सूफी-सूफी। सूफी फकीर वेदान्त जैसे माननेवाले, हों! अनहलहक। एक वस्तु है। एक वस्तु। एक माननेवाले हैं न वेदान्त। वेदान्त की भाँति। वे थे न अनहलहक कौन? मनसुर-मनसुर। मनसुर... अनहलहक। बोलता जाये। सूली पर चढ़ाया। अरे! तू कहे खुदा... कहे यह सब नहीं। अनहलहक एक चीज़ है। और भगवान कर्ता, ईश्वर कर्ता यह अमुक-अमुक। वे कहे, अनहलहक। सूली पर चढ़ाया। विरोधी तो चढ़ावे न! ईशु ख्रिस्ती को चढ़ाया न जैसे।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ... अनहलहक। सब...

यह एक भगवान आत्मा मैं ही अकेला स्वतन्त्र प्रभु हूँ। समझ में आया? सूली पर चढ़ाया। तो भी वाणी-आवाज निकली कि अनहलहक। एक परमात्मा है। एक परमात्मा। यह खुदा कहे। कहो, समझ में आया?

यहाँ भगवान की वाणी में यह मधुरता के प्रपात फूटे। कहते हैं, किसे अच्छे लगे? परमार्थरसिकजनों के.... फिर भले स्त्री का शरीर हो, पुरुष का हो। समझ में आया? परन्तु जिसे आत्मा अन्तर, ओहोहो! अनाकुल शान्तरस का तत्त्व पूरा, वह भगवान आत्मा। आकुलता, पुण्य-पाप सब उस चीज़ में नहीं। ऐसी जिसे रसिकता में रसीले जीव, उन्हें वीतराग की वाणी (मधुर लगती है)। क्योंकि उन मोक्ष के मार्ग के रसिक जीवों को उसका रसिकपना लगे, ऐसा है। आहाहा! गणधर भी जहाँ चार ज्ञान के धारक वीतराग वाणी में सुनते हुए झूलते हैं। सुनते हुए झूलते हैं ऐसे। आहाहा! जिन्होंने बारह अंग अन्तर्मुहूर्त में रचे हैं। वे भी ऐसे वाणी सुनते हुए (झूलते हैं)। ऐसी वीतराग की वाणी त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा देवादिदेव, जिनकी पूर्ण शक्ति की व्यक्ति प्रगट हो गयी है। उनकी वाणी में भी पूर्णता की मिठास जैसी वाणी निकलती है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : मीठी लगती है रसवाले को। ढोर कहाँ थे? वे आत्मा थे या नहीं अन्दर? बाघ ऐसे बैठे हों। सिंह बड़े वन के सिंह। एक ओर सिंह केसरी... देखो न! उसका मुख कैसा मनुष्य जैसा है या नहीं सिंह का? अभी आया था न दृष्टान्त अमरचन्दजी का। भाई! आया था न? अमरचन्द दीवान, जयपुर के। राजा ने हुक्म किया। दीवानजी! अन्नदाता! मैं जाता हूँ बाहर अमुक दिन। इस सिंह की सम्हाल रखना। समझ में आया? सिंह की सम्हाल रखना। सिंह माँस खाता है। अमरचन्दजी ने पिंजरे में जाकर पकवान रखे। आहाहा! एक दिन नहीं खाया, दो दिन नहीं खाया। यह तो लंघण करता है। यह तो मर जायेगा। तीन दिन। तीसरे दिन स्वयं अमरचन्दजी पिंजरे में गये। दीवान खुद स्वयं अन्दर गये। सिंह के सामने। सिंहराज! वनराज! यह पकवान है। वनराज! यह पकवान है। खाओ। नहीं तो माँस खाना हो तो मुझे चबा जाओ। ऐसा जहाँ... मारा न। सिंहराज! यह पकवान है। ऊँचे-ऊँचे पकवान। परन्तु उसे पकवान तो पानी जैसा

लगे। माँस खानेवाले को यह पकवान क्या परन्तु तुम्हारे पाव सेर घी पिलाये हुए, पानी जैसा लगे सिंह को। सिंहराज! यह पकवान मण रखा है। खाओ। माँस खाना हो तो मुझे चबा जाओ, चबा जाओ। सामने देखा नहीं। ऐसे देखा नहीं। उनका तेज सिंह देख सके नहीं। ... सेठी! सिंह ऐसे देख नहीं सकता। ऐसे देख गया। तेज सहन नहीं कर सकता उनके सामने। समझ में आया? पिंजरे में।

हम जैन हैं। जैन किसी को माँस दे, (ऐसा) नहीं हो सकता। राजा सीख कर गये हैं। यह... मुझे। ऐसा कि दीवान है और इसमें तो कुछ करेगा या नहीं? मरने देगा। सिंहराज! चबाओ मुझे। चबा जाओ। यह हिरण चबाते हो, वैसे मुझे चबाओ। दूसरा माँस नहीं मिलेगा। मोहनभाई! पावर प्रस्फुटित हो गया है न! देखो न! उस प्रकार का वीर्य कितना अन्दर! नहीं खाया। समझ में आया? इस प्रकार उस सिंह को ऐसा वाणी के कारण वहाँ वह ऐसा हो गया। सामने देख नहीं सका।

वीतराग की वाणी... आहाहा! भाई! राग चबाना हो तो यह हमारी वाणी नहीं। राग का अनुभव करना हो तो वह हमारी वाणी नहीं। समझ में आया? राग बिना का चैतन्य प्रभु अखण्डानन्द शुद्ध चैतन्य की दृष्टि, ज्ञान और रमणता को अनुभव करना हो तो हमारी वाणी है। नहीं तो चला जा यहाँ से। समझ में आया? 'रण चढ़ा रजपूत छुपे नहीं'।

बनिया ने गाड़ी जोड़ी। आया था। (राजपूत के) गाड़ी लेकर गये। वहाँ बना था। लींबड़ी के पास। कौन सा गाँव कहलाता है वह? बनिया को। वोरा का गाँव कहलाता है। जाम्बू-जाम्बू-जाम्बू। वोरा का जाम्बू। बनिये की बारात जा रही थी। बनिया कहे, यह... चोर का भय है। जमींदार को गाड़ी में बैठाओ। जमींदार समझे न? वह राजपूत नहीं? वह राजपूत। गाड़ी में बैठाओ एक को। साधारण राजपूत था। परन्तु एक को साथ में ले जाओ। उसमें खबर पड़ी की कि बारात जाती है उसके पास पैसे और गहने होने न सब? आया एक लुटेरे दस लोगों को लेकर। राजपूत खड़ा हो गया। ध्यान रखना मैं बनिया नहीं। मैं राजपूत हूँ। यह बनिया के ऊपर डाका बाद में पड़ेगा, ऐसे तलवार मारी सामने। पुकार किया तो वह भाग गया। भाग गया। यह जाम्बू है न। वोरा का जाम्बू

है। लींबड़ी के पास है। देखो! मैं बनिया नहीं, हों! मैं राजपूत हूँ। मुझे इस बनिया ने किस प्रकार बैठा दिया, मुझे खबर नहीं क्या होगा यह? परन्तु इस गाड़ी में बैठा मैं राजपूत हूँ। मैं जमींदार हूँ। मैंने जमींदारनी का दूध पिया है। मैं बनिया नहीं हूँ। ध्यान रखना। ऐसी भाषा निकली। था जमींदार साधारण। लुटेरे चले गये - भाग गये। समझ में आया?

इसी प्रकार वीतराग की वाणी विकार को लूटनेवाली है। विकार और भव का नाश करनेवाली है। वह वाणी किसे रुचे? जिसे भव के राग की रुचि नहीं उसे। समझ में आया? इसलिए कहा है न? **परमार्थरसिकजनों के मन को हरनेवाली....** आहाहा! टीका में तो वापस... परमार्थ रसिकजन ऐसे होते हैं और उन्हें ऐसी ही वाणी रुचती है और ऐसा ही सुनने को मिलता है, वही उन्हें ठीक पड़ता है। आहाहा! यह तो कौन जाने क्या हो गया? एक तो बनिये के हाथ में रहा और उसके सम्हालनेवाले दूसरे प्रकार के हो गये वापस। समझ में आया?भाई!

भगवान की वाणी, अकेला वीतरागरस घुलानेवाली। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य तीनों वीतरागी पर्याय है। मोक्षमार्ग, वह वीतरागीदशा है। उस वीतरागीदशा को कहनेवाली वाणी है। उस वीतरागीस्वभाव के रसिकजनों को मधुर लगती है। राग के रसिकों को लूखी (लगती है) और या विरोध करते हैं, ऐसा कहते हैं। उस समय बैठा हो सुनने तो अन्दर से सुहावे नहीं, रुचे नहीं। ऐसे तो बाहर प्रसिद्ध न करे परन्तु अन्दर (रुचे नहीं)। अन्दर राग के ऊपर प्रेम है न! राग बिना की चीज चिदानन्द पूरा कन्द आनन्दरसकन्द स्थित है बड़ा, ऐसा रस। वस्तु पड़ी है स्वयं, स्वयं का स्वयं पूरा परमात्मा है। उसकी जिसे रसिकता नहीं, उसे वीतराग की वाणी की रसिकता नहीं लगती। वह परमात्मा होकर खड़ा ऐसे पूरा होकर। उनकी वाणी में अकेला परमात्मा होने का प्रपात पड़ता है। कहो, समझ में आया? देवानुप्रिया!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नयज्ञान में यह ज्ञान नहीं कराया यह? यह मोक्षमार्ग कहा न! दो नय की बात है। यह तो यहाँ कहते हैं। यह दो नय का अर्थ करके अमृतचन्द्राचार्य

यह कहते हैं। इस प्रकार उनका भाव इसे जँचे, तब इसे दूसरा राग क्या, निमित्त क्या इसका ज्ञान उसमें साथ में आ जाता है। इसका नाम दो नय का ज्ञान है। देवानुप्रिया!

यह क्षत्रिय क्षत्रिय होता है न बहुत जवान! विवाह करके आया हुआ। और वापस हुकम आया वहाँ, जाओ युद्ध में। विवाह करके आया हुआ ऐसा। क्षत्राणी। हुकम आया कि जाओ युद्ध में। युद्ध में जाना तो पड़े परन्तु स्त्री के सामने देखता जाये। बाहर जाये तो सामने देखता जाये। स्त्री उससे कहती है, क्यों क्या है? लो, यह मस्तक ले जाओ साथ में। उस रानी ने मस्तक रखा। युद्ध करने जाते हो, अभी हुकम हुआ। वह उसकी माँ कहे, मेरे स्तन का दूध पीया है तूने, यह वापस युद्ध में पीठ दिखाये, वह कहीं क्षत्रिय कहलाये। उस स्त्री ने मस्तक दिया, ले जा, देखा कर। विवाह करके आया परन्तु तेरा जो राजकुमार का कर्तव्य है, वह तो तू करने जाता नहीं। इस शैली में तो उसे यह होता है या नहीं।

इसी प्रकार वीतराग मार्ग में पड़ा। राग और विकार का अभाव करने की शर्त से अन्दर चढ़ा है। उसमें फिर राग के सामने देखता जाता है। यह राग आया या नहीं? यह... आया या नहीं? चल... चल। ऐई! देवानुप्रिया! राग आयेगा या नहीं? उसमें राग ठीक है, हों! राग अच्छा है या नहीं? वहाँ सामने देखा करता है। ऐई! रतिभाई! कहते हैं... आहाहा! मधुर, मीठा परन्तु ऐसे जीवों को, हों! विशद। अब कहते हैं कि विशद। विशद वीतराग की वाणी।

समस्त शंकादि दोषों के स्थान दूर कर देने से.... शंका कैसी? कांक्षा कैसी? ... है। यह तो बैठ गये चोसला। ज्ञानानन्द पिण्ड निःशंकरूप से स्वभाव मेरा शुद्ध चिदानन्द मूर्ति है। ऐसा सुननेवाले को उनकी वाणी में शंका आदि दोषों का स्थान ही नहीं है। ऐसा निर्मल... निर्मल... ऐसा होगा या वैसा होगा? ऐसा होगा या वैसा होगा? ऐसा होगा या वैसा होगा? यह वाणी में नहीं होता। ऐसी निर्मल वाणी आवे, विशद-विशद-स्पष्ट। विशद स्पष्ट निर्मल। सुननेवाले को विशद स्पष्ट हो जाये अन्दर से। कितने ही क्षायिक समकित पा जायें। कितने ही केवलज्ञान पा जायें, कितने ही क्षपक... ऐसी निर्मल वाणी निःशंकरूप से निकली हुई। और शंका में अर्थ दूसरा किया है न, भाई! नहीं उसमें? दुःख से रहित, ... शंकारहित है। नियमसार।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : सभी राग-द्वेष आदि शंका है। उन सब दोष से रहित होकर। कहो, समझ में आया ?

शंकादि दोषों के स्थान दूर कर देने से विशद (निर्मल, स्पष्ट) है.... भगवान की वाणी निर्मल स्पष्ट है। निर्मल स्पष्ट कहनेवाली होने से वह वाणी भी निर्मल स्पष्ट है। लथडपथड निकले ? ऐसा होगा भाई, ऐसा है, ऐसा होना चाहिए – ऐसी नहीं। ऐसा है, दूसरे प्रकार से नहीं। परमानन्दस्वरूप आत्मा पूर्ण है, उसका अनुभव वह मोक्ष का मार्ग है। एक ही है। दूसरा है नहीं। ऐसी विशद निर्मल ज्ञान की धारा वीतराग की वाणी में निकलती है, इसलिए वीतराग की वाणी को विशद कहा जाता है। हिम्मतभाई ! जैन में जन्मे और जैन क्या कहते हैं, उसकी खबर नहीं होती। और विवाद और विसंवाद... विसंवाद... विसंवाद... अरे ! विसंवाद यहाँ नहीं होता, कहते हैं। विसंवाद टाला उसे विसंवाद हो तो वह विसंवाद निकले कहा तब ? समझ में आया ?

विशद (निर्मल, स्पष्ट) है.... लो समझ में आया ? 'विषदवाक्येभ्यः' त्रिभुवन हितकर वाक्य, मधुर वाक्य और विशद वाक्य। ये तीनों विशेषण उसके हैं। समझ में आया ? इसका विशेष अभी बाकी है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

 कार्तिक कृष्ण ९, सोमवार, ९-१२-१९६३, गाथा-१, प्रवचन-४

पंचास्तिकाय, षड्द्रव्य-पंचास्तिकाय वर्णन। पहली गाथा चलती है। देखो! सर्व जिनों को नमस्कार किया है। अनादि प्रवाह से चले आ रहे अनन्त केवली और तीर्थकर, वे सब जिनों में आ जाते हैं। वाणी वाले विशेष अतिशयवाले लिये हैं खास। तीर्थकर और ... लिये। ऐसे सब जिनों को नमस्कार करके महामांगलिक किया। यह मैं एक पंचास्तिकाय कहूँगा, ऐसा कहकर (कहते हैं), कैसे हैं भगवान? कि सौ इन्द्रों से वन्दित हैं। यह आ गया। तीन लोक को हितकर ऐसी वाणी के प्रकाशित करनेवाले। मोक्ष के मार्ग के बतलानेवाले हैं। वीतराग परमेश्वर वे तो एक मोक्ष की—आत्मा की पूर्ण प्राप्ति शुद्धि कैसे हो? उसका उपाय बतलानेवाले हैं। मधुर जिनके मीठे वाक्य हैं। रसिकजनों को रस उपजे आत्मा का आनन्द (उपजे)। वह आत्मा के स्वभाव के रसिक को मधुर लगे, ऐसे वीतराग की वाणी के वचन हैं। विशद है, निर्मल है। अर्थात् किसी प्रकार के दोष के उसमें स्थान-भाग नहीं रहे। यहाँ तक आया है।

ऐसा कहकर (जिनदेव) समस्त वस्तु के यथार्थ स्वरूप के उपदेशक होने से.... यह बीच में आया। इतने विशेषण कल आ गये। उसमें देखो, बहुत ज्ञान बताया है, हों, वह। सर्व जिनों, इन सौ इन्द्रों को पूजनीक इत्यादि। ऐसे वचन ऐसे पूर्ण मीठे आनन्द को उपजानेवाले और निर्मल, निर्दोष। वाणी में अत्यन्त निर्दोषता होती है। ऐसा कहकर जिनों, वीतरागस्वरूप आत्मा का जो है, ऐसा जो अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनादि प्रवाह में जो जिन पाये, वे समस्त वस्तु के यथार्थ स्वरूप के उपदेशक होने से.... वह तीन काल-तीन लोक की वस्तु, उसे अपने ज्ञान में जाना, इसलिए सभी वस्तु के यथार्थ स्वरूप का उपदेश (करनेवाले हैं)। द्रव्य-गुण-पर्याय, मोक्षमार्ग, बन्धमार्ग इन सबकी चीजों का सामर्थ्य-शक्ति है। इस यथार्थ स्वरूप का उपदेश करनेवाले होने से समस्त वस्तु के... तीन काल-तीन लोक में रही हुई चीजों के यथार्थ स्वरूप का उपदेश करनेवाले।

पूर्ण स्वरूप सर्वज्ञ हुए, इसलिए यथार्थ स्वरूप का उपदेश करनेवाले होने से।

इस कारण विचारवन्त बुद्धिमान पुरुषों के बहुमान के योग्य हैं.... समस्त वस्तु के यथार्थ स्वरूप के उपदेशक होने से विचारवन्त बुद्धिमान... समझदार पुरुषों के बहुमान के योग्य हैं.... भगवान् । देखो ! विचारवन्त चतुर पुरुषों को बहुमान करनेयोग्य हैं वे । मूर्ख तो चीज़ को समझता नहीं । उसे तो उसका बहुमान आता नहीं ।

मुमुक्षु : चतुर तो चतुर हैं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : चतुर समझदार । सयाना । डाह्या । हमारी काठियावाड़ी भाषा है ।

(जिनका उपदेश विचारवन्त बुद्धिमान पुरुषों को बहुमानपूर्वक विचारना चाहिए ऐसे हैं).... वाह ! जिन, जिनकी निज सम्पदा पूर्ण अरागी—वीतरागी प्रगट हुई, वे समस्त वस्तु का यथार्थ उपदेश करनेवाले होने से उनकी वाणी चतुर पुरुषों को बहुमानपूर्वक उनका उपदेश विचारना चाहिए । देखो ! जिनका उपदेश विचारवन्त चतुर पुरुष समझदार, सयाने (को) बहुमानपूर्वक विचारना चाहिए । वापस ऐसा का ऐसा नहीं । आहाहा ! अहो ! सर्वज्ञ की एक समय की ज्ञानदशा । वीतराग पूर्ण तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए । उनके उपदेश में सर्व वस्तु का यथार्थ स्वरूप होने से, यथार्थ होने से चतुर पुरुष विचारवान को उनका उपदेश बहुमानपूर्वक, बहुमानपूर्वक विचारना चाहिए । आहाहा ! समझ में आया ?

जिनका उपदेश ज्ञानियों को सम्यक् विचारवन्त को, सयानों को, विचिक्षण पुरुषों को बहुमानपूर्वक विचारना चाहिए । क्या है यह ? यह क्या कहते हैं ? इसका विचार ज्ञानी चतुर पुरुषों को बहुमानपूर्वक विचारना चाहिए । कहो, ऐसे का ऐसा विचार करना, ऐसा नहीं । एक तो विशेषण सयाना का दिया और बहुमानपूर्वक विचारना । ऐसे का ऐसे बेगार से नहीं । ओहो ! जिसमें केवलज्ञान पूर्ण वीतरागता प्रगटी, उनकी वाणी का क्या कहना ! कोई भी वाणी, उसका विचार करके ज्ञानियों को बहुमान, विनयपूर्वक उसका विचार करना । विनयपूर्वक उसका विचार करना । कहावे, समझ में आया ? **ऐसा कहा है ।**

अब उनके ज्ञान की व्याख्या करते हैं । वे तो वीतराग होने से उनका (उपदेश) यथार्थ है । इसलिए चतुर पुरुषों को उसे विचारना चाहिए । देखो ! शास्त्र भी कैसे होते

हैं ? निर्दोष कहनेवाले हों। वीतरागभाव को बतलानेवाले। वीतरागपना अर्थात् आत्मा की पूर्ण मोक्षदशा को बतलानेवाले होते हैं। ऐसे वीतराग की वाणी चतुर-सयाने पुरुषों को विचार करके बहुमान करके विचारना चाहिए। परन्तु यह समय कहाँ मिले ऐसा ? मोहनभाई ! कहते हैं कि चतुर पुरुषों को विचारना चाहिए बहुमानपूर्वक। बहियाँ विचारना या यह विचारना ? ऐई ! देवानुप्रिया !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : लो ठीक ! सिर पर उठावे, उसमें क्या भला हुआ ? नारद है न। प्रश्नकार बराबर है यह। सेठ यहाँ आये थे सर हुकमीचन्द। तब यह पृष्ठ रखा। ... उसमें रखा न, यह सिर पर रखकर... सिर पर वह नहीं। उसके कहे हुए भाव को बहुमानपूर्वक विचारना, यह सिर पर (रखना) है देवानुप्रिया ! चलता हो उसमें से दूसरी बात जरा समझने के लिये अन्दर से निकाले।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : विशेष समझाने को, ऐसा कहते हैं। इसका अकेला सिर पर रखना, ऐसा कहे तो उसका बहुमान अन्दर में करना। उसके बहुमानपूर्वक। ऐसे बाहर, ऐसा नहीं। ओहो ! सर्वज्ञ परमात्मा, जिनका एक समय का ज्ञान, निर्दोष आत्मा के परमात्मपद को प्राप्त करावे, ऐसी वाणी, उसे बहुमानपूर्वक, बहुत विनयपूर्वक हृदय की मलिनता छोड़कर, बाहर की स्वच्छता भी की और उसका विचार करना। समझ में आया ? जिस-तिस शास्त्र को मलिन हाथ से छुए, ... छुए, उसे बहुमान नहीं है, ऐसा कहते हैं। अन्दर कलेजा मलिन हो और मलिन शरीर हो। निर्दोष विचार में जिसकी विचारधारा बहुमान वीतराग के प्रति, बहुमान वीतराग के प्रति का, उनकी वाणी का बहुमान करके, शरीर की मलिनता आदि छोड़कर, अन्दर की भी (शरीर के प्रति) आदरबुद्धि आदि छोड़कर बहुमानपूर्वक उनके वचन (विचारना)। वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा तीन काल-तीन लोक जिन्हें ज्ञान में पूर्ण प्रगट ज्ञात हुआ, उसका बहुमानपूर्वक विचार करना। इसका नाम बहुमान है। सिर पर उठाना, वह बहुमान नहीं है।

मुमुक्षु : दिल में....

पूज्य गुरुदेवश्री : दिल में बहुमान आना चाहिए।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ऐसा कुछ नहीं है। वह तो बाहर से करे परन्तु अन्दर अमुक प्रकार का ठिकाना नहीं होता। अन्तर में बहुमान चाहिए। उसमें तो ज्ञानानन्दस्वरूप चैतन्य प्रभु जिसने पूर्ण जाना, उसका अन्दर ज्ञान में रागरहित की महिमा चाहिए। उसे रागरहित की जरा महिमा चाहिए। ऐसे पुरुषों को बहुमान से इस शास्त्र का विचार करना चाहिए। ऐसा कहा। लो! समझ में आया? यह सब ऊपर कहा न? ऐसा कहकर यह कहा।

अनन्त—क्षेत्र से अन्त रहित.... क्षेत्र से अन्तरहित है यह वस्तु। काल से अन्त रहित.... दो महान शब्द रखे, महान। क्षेत्र से अन्तरहित है। अमाप.... अमाप.... अमाप.... अमाप.... अमाप.... यहाँ का क्षेत्र लेकर देखो तो चारों ओर जिसका क्षेत्र, इस जगत का क्षेत्र पूरा होता है। फिर खाली क्षेत्र का पूरा नहीं होता। खाली क्षेत्र उसमें अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... दशों दिशायेँ, यह चौदह ब्रह्माण्ड है, वह तो अमुक असंख्य योजन में ही है। असंख्य योजन में। बाहर बाहर अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... योजन अपरिमित क्षेत्र अलोक ऐसे क्षेत्र से अन्तरहित और काल से अन्तरहित। दो बातें ली हैं। काल है आदि? भविष्य का अन्त नहीं। ऐसा का ऐसा अनादि-अनन्त काल। आदि बिना का है.... है.... और है, है.... है.... है और रहेगा, ऐसे क्षेत्र से अन्तरहित, काल से अन्तरहित परमचैतन्यशक्ति के विलासस्वरूप गुण जिनको वर्तता है.... परम चैतन्यशक्ति। भगवान आत्मा चैतन्यशक्ति का भण्डार, उसके विलासस्वरूप प्रगट हो गयी पर्याय। चैतन्यशक्ति के विलासस्वरूप गुण जिन्हें वर्तते हैं। पर्याय में केवलज्ञान जिन्हें वर्तता है। अकेली ज्ञानदशा जिन्हें पूर्ण हो गयी है। तीन काल-तीन लोक जिनके ज्ञान में ज्ञात हो गये हैं। एक ज्ञान की दशा में सब हस्तावलम्ब की भाँति प्रत्यक्ष अपनी पर्याय हो गयी है। समझ में आया?

ऐसा कहकर.... क्या? परमचैतन्यशक्ति के विलासस्वरूप गुण जिनको वर्तता

है.... पर्याय में निर्मल दशा जिन्हें वर्तती है। लो, यहाँ केवलज्ञान को भी गुण शब्द प्रयोग किया है। समझ में आया ? (शास्त्र) लाये हो या नहीं ? पत्रे की जगह पत्थर वहाँ आते होंगे ? लो, दो भाई दो, यहाँ है न ? क्यों उघाड़ते नहीं, कहा यह। कहो, समझ में आया ? कहते हैं, अहो ! क्षेत्र से अन्तरहित और काल से अनन्त। क्या ? वस्तु। उसका सब ज्ञान आत्मा में हो गया है। ऐसा परम चैतन्यशक्ति का विलास। ज्ञानस्वभाव की शक्ति अन्दर थी, उसमें से व्यक्त में पूर्ण विलास जिसे प्रगट हो गया। भगवान वीतराग-अरागीदशा में ऐसी अवस्था अर्थात् गुण जिन्हें वर्तते हैं। जिन्हें वर्तते हैं - पर्याय।

ऐसा कहकर (जिनों को) परम अद्भुत ज्ञानातिशय प्रगट होने के कारण..... देखो ! ऐसे अनन्त जिन हो गये, वे परम अद्भुत ज्ञानातिशय प्रगट हैं। परम अद्भुत ज्ञानातिशय। ओहो ! ज्ञान की अतिशयता। केवलज्ञान की अतिशयता, ज्ञान की विशेषता, ज्ञान की विशेष विशेष जो शोभा थी, वह सब प्रगट हो गयी है। परम अद्भुत। अमृतचन्द्राचार्य शब्दों को रचते हुए ऐसे मानो हृद आ जायेगी, इसलिए बेहद शब्द प्रयोग करते हैं ऐसा। ऐई ! सर्वज्ञपद आत्मा में चैतन्यमूर्ति झलक उठा अन्दर से। पर्याय में-अवस्था में पूर्णता परम अद्भुत ज्ञान अतिशय-ज्ञान की विशेषता, वह केवलज्ञान, वह ज्ञान की विशेषता प्रगट हुई होने से। ऐसी दशा जिन्हें प्रगट हुई है।

इस कारण, ऐसे कारण से ज्ञानातिशय को प्राप्त योगेन्द्रों से भी वंद्य है, ऐसा कहा। लो ! चार-चार ज्ञान को प्राप्त गणधर, अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग की रचना करनेवाले ज्ञान की अतिशयतावाले मुनि, ऐसे ज्ञान की विशेषता को प्राप्त ऐसे योगीन्द्रों से भी वे वन्द्य हैं। कहो, समझ में आया ? ऐसा कहा है। ज्ञानातिशय बताया है।

अब अन्तिम शब्द 'जितभवेभ्यः' संसार पर, भव अर्थात् संसार पर जिन्होंने जय प्राप्त की है। जिन्हें भव ही नहीं। अनादि से अज्ञान और राग-द्वेष से जो भव थे, वह ज्ञान की अतिशयता प्रगट हुई, वीतराग विज्ञानघनदशा परिणमित हुई, (उसने) भव को जीता। उसे भव नहीं है। भव-संसार पर जिसने... भव का अर्थ संसार पर जिसने जय प्राप्त की है। जिसे भव है नहीं। पूर्णानन्द की प्राप्ति भवरहित दशा हो गयी है। भले वाणी का योग अरिहन्तरूप से अभी है। परन्तु भव नहीं है। आहाहा ! इस संसार पर जिसने

जय प्राप्त की है। संसार अर्थात् भव। भव के संयोग आदि मिलें, उसके कारण भाव, उनका पर जय प्राप्त की, उन्हें टाल दिया है। पूर्णानन्द और पूर्ण ज्ञान दर्शन आदि प्राप्त किये।

ऐसा कहकर कृतकृत्यपना प्रगट हो जाने से,.... कृतकृत्य। कृतकृत्य—किये हैं कार्य पूर्ण जिन्होंने। हुए हैं कार्य पूर्ण जिनके। किये हैं कार्य पूरे-पूरे जिसने। पूर्ण दशा को प्राप्त कृतकृत्य। जिनके कार्य पूर्ण हुए हैं। जो आनन्द और ज्ञान की पूर्ण दशा के कार्य को प्रगट करना था, वह कार्य स्वभाव में से पूर्ण दशा प्रगट हो गयी। कृतकृत्य हो गये। अब उन्हें कोई कार्य करना बाकी नहीं। **कृतकृत्यपना प्रगट हो जाने से, वे ही....** ऐसे वीतराग ही **अन्य अकृतकृत्य जीवों को शरणभूत हैं,....** गुलांट मारकर बात की है। देखो, यहाँ। **अन्य अकृतकृत्य....** जिसने अभी कार्य पूरे नहीं किये, ऐसे अकृतकृत्य जीवों का शरण है। भवरहित भगवान हो गये। जिन्हें भव नहीं होता। अकेला अनन्त आनन्द का पिण्ड प्रगट हो गया। वह अनन्त-अनन्त सादि-अनन्त काल रहे। ऐसे कृतकृत्य प्रभु, अकृतकृत्य नहीं किये हुए जिन्होंने आत्मा के कार्य किये नहीं, ऐसे आत्मा के जिसे कार्य करना हो, उसे कृतकृत्य प्रभु शरणभूत है। ओहो! देखो न! टीका भी। समझ में आया?

ऐसा उपदेश दिया।—ऐसा सर्व पदों का तात्पर्य है। लो! एक-एक शब्द का अर्थ पृथक्-पृथक् करके किया। समझ में आया?

भावार्थ - अब जरा पण्डित जयचन्द्रजी... थोड़ा जयसेनाचार्य में से डालते हैं। **यहाँ...** अमृतचन्द्राचार्य मुनि ९०० वर्ष पहले दिगम्बर सन्त वनवासी (हुए), उनकी यह टीका वाँचन की जा रही है। संस्कृत में से गुजराती अपने पण्डितजी ने किया है। यह पहला अक्षरशः गुजराती हिन्दुस्तान में हुआ है। इससे पहले कभी गुजराती या हिन्दी अमृतचन्द्राचार्य का अक्षरशः हुआ नहीं था। समझ में आया? **भावार्थ :- यहाँ जिनभगवन्तों के....** जैन वीतरागी परमेश्वर जिनकी दशा वीतराग अर्थात् निर्दोष जिनकी पूर्ण दशा प्रगट हो गयी है। राग, वह दोष है और वीतरागता वह निर्दोषता है।

मुमुक्षु : शुभराग ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभराग भी दोष है। ऐई! देवानुप्रिया! शुभराग हो या अशुभराग

हो, वह दोष है। निर्दोषता जिसे पूर्ण प्रगट हो गयी है। वीतरागदशा पूर्ण-पूर्ण निर्दोष। वह तो—वीतराग शब्द तो रागरहित को-अभाव को बतलाता है। बाकी निर्दोष। पर्याय में पूर्ण निर्दोष दशा, सदोषता का नाश होकर पूर्ण निर्दोष जो स्वरूप अन्तर में था, उसकी दशा में पूर्ण निर्दोष सर्वज्ञपद भव के अभावस्वभाववाली दशा प्रगट हो गयी। कहो, समझ में आया ?

यहाँ जिनभगवन्तों के चार विशेषणों का वर्णन करके.... चार विशेषण। उन्हें **भावनमस्कार किया है**। भावनमस्कार किया है। अनन्त गुण के स्मरणरूप भावनमस्कार। अपने अनन्त गुण हैं। भगवान के अनन्त गुण प्रगट पर्याय में, ऐसा अनन्त-अनन्त अमाप गुणों का स्मरण होने पर, वे अनन्त-अनन्त बेहद गुण की संख्या के गुण का स्मरण होने पर—भावस्मरण होने पर, राग से हटे, तब उसे अनन्त गुण के भावस्मृति उसके ख्याल में आवे। क्या कहा, समझ में आया ? ज्ञान की पर्याय में अनन्त-अनन्त गुण जिसे पर्यायरूप से प्रगट हुए, उसे यहाँ गुण कहा है। ऐसी बेहद शक्तियों का विकास, उसका स्मरण। हृदवाले राग की बाह्य चीज़ का स्मरण भूलकर ज्ञान में बेहद ज्ञान की दशा में अनन्त गुण की पर्याय उन बेहद गुणों का स्मरण, उसे हृदवाले राग से हटे बिना स्मृति में बेहद ज्ञानादि गुणों का स्मरण नहीं होता। समझ में आया ? ऐसा भावनमस्कार किया है। अनन्त गुण को स्मृतिरूप स्मरण में लाये। भाये थे न कि ऐसे भगवान के गुण होते हैं। मेरे भी ऐसे गुण अन्तर में हैं। वह पर्याय में स्मृति करके स्मरण किया। उस स्मरण में शुद्धता की प्रगट दशा हुई, उसे भावनमस्कार कहा जाता है। गजब व्याख्या भाई!

मुमुक्षु : शुभ और शुद्धि की सन्धि हुई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सन्धि नहीं होती। शुभ को तोड़कर शुद्धि प्रगट हुई, ऐसा कहा। पहले नहीं कहा ? कि शुभराग की हृदवाला राग है वह। और स्मृति में अनन्त गुण की बेहदता की स्मृति है। अनन्त गुण के अमाप गुण की पर्याय में अनन्त अमाप वह ज्ञान, दर्शन, आनन्द, स्वच्छता, प्रकाशता आदि बेहद गुण की पर्याय का प्रगट होना भगवान को, उसका स्मरण करनेवाला उसे स्मृति में लेता है। वह ज्ञान का बहुत ही रागरहित स्वभाव के विकास में वह स्मृति आती है। वह स्मृति साधारण में नहीं आती। ऐ... देवानुप्रिया! आहाहा!

प्रथम तो, जिन भगवन्त सौ इन्द्रों से वंद्य हैं। सौ इन्द्र। नीचे है, देखो! भवनवासी देवों के ४० इन्द्र,... नीचे, भवनपति के देव हैं नीचे। उनके ४० इन्द्र हैं। व्यन्तर देवों के ३२.... यह भूत आदि व्यन्तरदेव कहलाते हैं न, उनकी एक गति है देव की। उनके-व्यन्तर के ३२ इन्द्र हैं। कल्पवासी देवों के २४.... ऊपर सौधर्म, ईशान इन्द्र आदि कल्पवासी देव हैं। सौधर्म इन्द्र, सनतकुमार महेन्द्र, लन्तक, ब्रह्मदेव, ब्रह्मलोक आदि सोलह स्वर्ग ऊपर हैं। वैमानिक। जिसमें एक-एक में असंख्य देव बसते हैं। उनके २४ इन्द्र हैं। ज्योतिष्क देवों के २। यह ज्योतिष्क यह चन्द्र और सूर्य। ऐसे असंख्य चन्द्र और सूर्य हैं। उनके दो इन्द्र हैं। एक चन्द्र और एक सूर्य। दो इन्द्र हैं। और मनुष्यों के १ इन्द्र.... चक्रवर्ती या वासुदेव आदि। उस समय में हों वे। और तिर्यचों के १.... इन्द्र वनराज-सिंह। यहाँ यह लिया है। एक अष्टापद आता है, परन्तु अधिक सिंह है। सिंह तिर्यच का वनराज बाघ। अष्टापद बड़ा जोरवाला आता है। सिंह को मारे और ऐसा कहते हैं। आठ (पैर)। नीचे चार और ऊपर चार। परन्तु अपने यहाँ अधिक सिंह। सिंह, वह तिर्यच का इन्द्र है। उससे भी भगवान वन्दनीक हैं।

भगवान के समवसरण में धर्मसभा (होती है)। ऐसी सर्वज्ञदशा प्रगटी है, वहाँ समवसरण हो तो इन्द्र आकर नमस्कार करते हैं। सिंह, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव हों तो वासुदेव इत्यादि और ज्योतिष के इन्द्र, व्यन्तर के, कल्पवासी के और भवनपति के। सौ इन्द्र जिनकी समवसरण की सभा में उपस्थित हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं जाना हो तो जाये। सब जगह सब आते हैं, ऐसा कुछ नहीं है। सब जगह सब आते हैं, ऐसा कुछ नहीं है। परन्तु सौ इन्द्रों की उपस्थिति उसकी कोई समय होती है। सब जाते हैं, सबके पास ऐसा कुछ नहीं है। कहो, समझ में आया ?

सौ इन्द्र अनादि प्रवाहरूप से चले आते हैं। देखो! अनादि प्रवाहरूप से सौ-सौ इन्द्र और भगवान सर्वज्ञदेव परमात्मा, वे भी अनादि काल से होते आये हैं। एक मोक्ष जाते हैं और दूसरे होते हैं, मोक्ष होता है और दूसरे होते हैं। अरे! ऐसी अनादि प्रवाह की

बातें जिसे प्रतीति में आवे.... आहाहा! अनन्त-अनन्त वीतरागों का माहात्म्य जिसे प्रगट महिमा में आवे। अनन्त-अनन्त पदार्थ का प्रकाशक ज्ञानातिशय का माहात्म्य जिसके ज्ञान में आवे। आहाहा! समझ में आया? उसकी रुचि राग से हटकर स्वभाव की रुचि हुए बिना इस जाति की महिमा अन्दर नहीं आती। क्या हो?

कहते हैं कि ऐसे असाधारण नमस्कार के योग्य अन्य कोई नहीं है,.... यहाँ अभी सौ इन्द्रों को वन्दनीक की असाधारणता कही है। अमृतचन्द्राचार्य ने तो भावनमस्कार असाधारण कहा। जिनों को नमस्कार इतना। इतना। भावनमस्कार असाधारण कहा। उन्होंने इस प्रकार से लिया। समझ में आया? असाधारण नमस्कार के योग्य अन्य कोई नहीं है,.... सौ इन्द्र पूजे ऐसा पुरुष हो अनादि में तो वे वीतरागदशा प्राप्त हो, उसे ही होता है। दूसरे को कोई सौ इन्द्र (से) पूजनीक नहीं हो सकते। महाविदेहक्षेत्र में भी भगवान बीस तीर्थकर आदि विराजते हैं, वहाँ भी किसी काल में सौ इन्द्र होते हैं। कहो, समझ में आया?

क्योंकि देवों तथा असुरों में युद्ध होता है इसलिए (देवाधिदेव जिनभगवान के अतिरिक्त) अन्य कोई भी देव सौ इन्द्रों से वन्दित नहीं है। बड़े शकेन्द्र इन्द्र है न, कहते हैं। तथापि उन्हें और असुरों को युद्ध होता है। इसलिए वे भी कहीं सौ इन्द्रों को पूज्य नहीं हैं। भले बड़े इन्द्र हों शकेन्द्र। ईशान इन्द्र बड़े पहले स्वर्ग के। पहला स्वर्ग है सौधर्म (स्वर्ग)। बत्तीस लाख विमान। असंख्यदेव का स्वामी, वह शकेन्द्र। दूसरा ईशान (स्वर्ग)। अट्ठाईस लाख विमान, उनका स्वामी ईशान इन्द्र है। परन्तु उसे असुरों के साथ किसी समय युद्ध होता है। इसलिए असुर उसे नहीं मानते। यह कहते हैं कि सबको वन्दनीक नहीं। भगवान सर्वज्ञ वीतराग पूर्णानन्द को प्राप्त, वे ही सबको वन्दनीय है। कहो, समझ में आया?

दूसरे, जिनभगवान की वाणी.... ऐसे वीतराग परमेश्वर की निर्दोष पूर्णदशा प्राप्त वीतराग की वाणी का योग भी उन्हें ऐसा होता है। वाणी का योग अर्थात् वाणी तो वाणी के कारण से निकलती है। समझ में आया? वाणी तो जड़ है। वाणी की ध्वनि उठती है वह। परन्तु यहाँ भाव जैसा हो कि हम ब्रह्मचारी हैं। तो वह ब्रह्मचारी का भाव है तो

वाणी भी ब्रह्मचारी ऐसी निकलती है। वाणी, वाणी के कारण से निकलती है। हम माँस नहीं खायेंगे। वह भाव है न, अन्दर में माँस नहीं खाने का भाव (तो) वाणी भी ऐसी निकलती है। ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा पूर्ण निर्दोष दशा हुई है। वाणी भी ऐसी निर्दोष निकलती है। समझ में आया? ओहोहो!

जिनभगवान की वाणी तीन लोक को शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति का.... लो! तीन लोक को। यह सब उत्तम प्राणी को प्राप्त करने में, यह सब तीन लोक आ गये। **तीन लोक को शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति का....** उसमें उपलब्धि थी न? **उपाय दर्शाती है,...** उपाय दर्शाती। सर्वज्ञ की वाणी आत्मा की शान्ति, निर्दोष मार्ग, निर्दोष आत्मा की दशा जो पूर्ण मुक्ति को प्राप्त करे, ऐसा उपाय, शुद्ध चैतन्य की श्रद्धा, शुद्ध चैतन्य का ज्ञान, शुद्ध चैतन्य की रमणता—ऐसे उपाय को बतलानेवाली वीतराग की वाणी है। कहो, समझ में आया? **इसलिए हितकर है;**.... वह हितकर यह है। यह तुम्हारे पठन-बठन हितकर नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐई! नवीनभाई! क्या यह सब तुम्हारे कॉलेज-फॉलेज हित करने की वाणी नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। लो! सच्चा होगा? वहाँ भी कितने वर्ष मुंडाते हैं, उसके अन्दर? पाँच-पाँच, दस-दस वर्ष।भाई! तुम्हारे चिरंजीवी पड़ते हैं न कॉलेज में? यह कहते हैं कि वह सब वाणी नहीं।वीतराग की वाणी निर्दोष सर्वज्ञ परमात्मा जिनकी दशा पूर्ण हो गयी, उनकी वाणी सर्व को हितकारी है। वह मोक्ष का मार्ग बताती है। यह तो तुम्हारे यह कमाना, यह करना, ऐसा करना और वैसा करना। कमाने का अर्थात् भटकने का। यह भटकना मिटाने का। वह भटकने के उपाय उसमें बताते हैं। रखड़ना समझते हो? रुलने का। चार गति में रुलते हैं न? रुलते हैं, उसका मार्ग अज्ञानी बताते हैं और भगवान चार गति में भटकने का नाश करने का बताते हैं। आत्मा अखण्डानन्द है। भवरहित हो ऐसी बात भगवान फरमाते हैं। आहाहा!

शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति का.... देखा! शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति। उसका उपाय अर्थात् कारण दर्शाती है, **इसलिए हितकर है;** वीतराग.... अब कहते हैं कि रसिकजन कैसे होते हैं? मधुर कहना है न, मधुर? **वीतराग निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न....** आहाहा! आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु आत्मा है। उसे पुण्य-पाप के विकल्प जो राग है न, उससे रहित निर्विकल्प समाधि। सम्यग्दर्शन निर्विकल्प समाधि, ज्ञान निर्विकल्प समाधि

और चारित्र निर्विकल्प समाधि है। देवानुप्रिया! वह चारित्र कहीं यह बाहर के वस्त्र बदले या निकाल दे (छोड़ दे), वह चारित्र नहीं है।

वीतराग निर्विकल्प.... निर्विकल्प.... निर्विकल्प। तीन। रागरहित शुद्ध चैतन्य की अन्तर्दृष्टि—निर्विकल्प दृष्टि अर्थात् शान्ति अर्थात् समाधि। निर्विकल्प चैतन्य का स्वसंवेदन ज्ञान अर्थात् समाधि-शान्ति और निर्विकल्प स्थिरता, रागरहित स्थिरता, अन्तर की शान्ति की व्यक्तता की शान्ति का रस अन्दर से प्रगट हो, ऐसी **समाधि से उत्पन्न सहज-अपूर्व परमानन्दरूप....** ऐसे आत्मा के अन्दर में से स्वाभाविक अपूर्व परम आनन्द। अनन्त काल में नहीं प्रगट हुआ अपूर्व। परम अतीन्द्रिय आनन्दरूप। **पारमार्थिक सुखरसास्वाद के रसिक....** इतनी व्याख्या की। पारमार्थिक सुख रसास्वाद। ऐसा जो पारमार्थिक आत्मा का सुख, उसके रस के स्वादिया, उसके रस के आस्वाद के रसिकजनों के मन को हरनेवाली होने से। आहाहा! विशेषण थक जाये परन्तु भाव थके नहीं। आहाहा!

अन्दर कहते हैं कि उसकी गुण की दशा के विशेषण क्या हैं यह? विशेषण हृद में आ जाते हैं। ऐसा भगवान आत्मा जिसकी शक्ति अपार.... अपार.... अपार.... अपार.... अपार.... ओहो! एक-एक गुण का अचिन्त्य माप। जिसे विकल्प से माप करने जाये तो माप आ सके, ऐसा नहीं। भगवान आत्मा अनन्त जिसके गुण, जिसके एक गुण की अनन्त शक्ति। अनन्त संख्या के अमाप संख्या अनन्त गुण की, उसके एक गुण का अनन्त-अनन्त जिसका माप, उसमें से प्रगट हुए निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, ऐसे समाधि से उत्पन्न हुए अपूर्व परमानन्द के रस के आस्वादिया रसिक। ऐसी भाषा तुम्हारी कालेज में सुनी नहीं होगी कभी। समझ में आया? यह तो भगवान त्रिलोकनाथ वीतराग परमेश्वर की यह कॉलेज है।

कहते हैं... आहाहा! जो आत्मा के आनन्द के रस का रसिक जीव है, उसे वीतराग की वाणी मधुर लगती है। जो विषयभोग, काम, क्रोध, रागादि के प्रेम का रसिक है, उसे रागरहित, वीतराग की मधुर वाणी मीठी नहीं लगती, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। ओहोहो! विषय और भोग के राग के रसिया। वह राग के रसिया, इस वीतराग वाणी के रसिया नहीं हो सकते, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ जिन परमेश्वर, जिनकी परम सम्पदा, परम आनन्द की प्रगट हुई, उनकी वाणी जो निकली, अन्दर में शक्कर खाता हो और जैसे भाव हैं, वैसी भाषा, ऐसी निकलती है कि शक्कर खाता हूँ। ऐसी निकलती है या नहीं? या अफीम खाता हूँ, ऐसी निकलती है? इसी प्रकार जो अनन्त आनन्द के, अमृत के आनन्द की डकार अनुभव कर रहे हैं, उनकी वाणी में अनन्त आनन्द कैसे प्रगट हो (ऐसा बतलानेवाली) उनकी वाणी ऐसी निकलती है। ऐसी मीठी मधुर वाणी। कहते हैं... अहो! अपूर्व यह परमानन्दरूपी पारमार्थिक सुख। पारमार्थिक सुख आनन्द अपूर्व आनन्द परमानन्दरूप पारमार्थिक सुख। ऐसी उसकी व्याख्या। अपूर्व परमानन्दरूप कौन? आत्मा का अन्दर से श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति से उत्पन्न हुआ।

पारमार्थिक सुख के रसास्वादन के रसिक, उसके रस के आस्वादिया। समझ में आया? आचार्य भी... जिसे यह राग का रस है, यह पुण्य का रस है, उसे यह मीठी नहीं लगेगी, भाई! ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? जिसे पुण्य-पाप के राग की रुचि और रस है, उसे वीतराग वाणी का मधुर रस-प्रेम नहीं है। आहाहा! ऐसा कहते हैं, लो! भगवान आत्मा अनन्त आनन्द शान्तरस का समुद्र अन्दर उछलता है। परन्तु राग और पुण्य की प्रीति की आड़ में उसे यह चैतन्य रागरहित अखण्डानन्द कौन है, उसकी उसे लक्ष्य और नजर नहीं जाती। बराबर है? ...भाई!

समुद्र बड़ा हो ऐसा समुद्र। आँखवाला मनुष्य भले हो, परन्तु वह समुद्र के पास गया किनारे। और चार हाथ ऊँचा कपड़ा हो। कपड़ा यहाँ आड़े आवे। समुद्र नहीं दिखता। बड़ा समुद्र तो अन्दर उछलता है। उसके आड़े चार हाथ का कपड़ा ऊँचा। वहाँ तक खड़ा। दूर हो तब तो अभी नजर जाये पानी (पर)। कपड़ा नीचे लगे। ... परन्तु वहाँ खड़ा हो नजदीक में। पूरा समुद्र आड़ में दिखाई नहीं दे।

इसी प्रकार पुण्य और पाप के राग की रुचि के प्रेम की आड़ में—कपड़े में वह रागरहित अन्दर ज्ञानानन्द सहजानन्द, पूर्णानन्द प्रभु, उसकी नजर में, प्रतीति में, लक्ष्य में, ध्येय में, अनुभव में नहीं आता। कहो, बराबर होगा? देवानुप्रिया! आहाहा! पहली चोट में यह बात करते हैं, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य।

जिसे राग का प्रेम है, जगत के मान की मिठास है, जिसे विषय के राग के रसिक कीड़े हैं, जिसे शुभ और अशुभ के विकल्प की एकाकार की मिठास वर्तती है, उसे विकाररहित के वीतरागी मधुर वचन मीठे नहीं लगते। आहाहा! समझ में आया? देखो! शास्त्र भी ऐसे होते हैं कि जो शास्त्र वीतरागपने की वाणी की बात करें। जिसमें राग से लाभ मनावे, वे शास्त्र नहीं हो सकते। वह वीतराग की वाणी नहीं, वह शास्त्र नहीं, वह गुरु के कथन नहीं। समझ में आया? जो वाणी तीन लोक के नाथ की तीर्थकर की, जिन्हें परम आनन्द निर्दोष प्रगट हुआ है, रागरहित आनन्द, उनकी वाणी रागरहित स्वभाव को प्राप्त करानेवाली है। उस वाणी में मिठास की मधुरता हो तो वह है कि तेरे परमानन्द की प्राप्ति के उपाय को बतलानेवाली है। वह किसे मीठी लगेगी? वाणी तो निमित्त से मीठी कही है। वह भाव मीठा हो, उसे वाणी मीठी लगेगी। आहाहा!

भगवान ज्ञानामृतस्वरूप, ज्ञानामृतस्वरूप प्रभु आत्मा है। ज्ञानामृत। उसके रस का जो स्वादिया है और राग का रस जिसे फीका पड़ गया है। समझ में आया? ऐसे रसिकजनों के मन को हरती है.... दूसरे को तो (ऐसा लगे), यह क्या कहते हैं यह? कुछ प्रेम आवे नहीं। छह महीने का लड़का हो, उसे विषय की बात करे। दूसरे हँसे तो साथ में वह भी साथ ही हँसे। परन्तु उस हँसने का हेतु क्या और यह क्या कहते हैं, उसकी उसे खबर नहीं। बारह महीने का बालक हो, और साथ में बातें चलती हो ऐसी तो सब हँसे तो वह भी खिलखिलाकर हँसे। हेतु क्या इसकी खबर नहीं। इसी प्रकार अज्ञानी जिसे राग का प्रेम-रस पड़ा है, उसे वीतराग की मधुर वाणी का रस अन्दर दिखता नहीं। उसे मधुर नहीं लगती। कहो, समझ में आया?

नौवें ग्रैवेयक में गया हो जैन दिगम्बर मिथ्यादृष्टि साधु। कहते हैं कि नहीं, उसे वीतराग की वाणी मधुर नहीं लगती। ऐसा यहाँ तो कहा। निमित्तपना मधुर किसे लगता है? कि जिसे उपादान में शान्ति के रस का प्रेम है और रागरस का प्रेम जिसे उड़ गया है, उसे वीतराग की वाणी की मधुरता लगती है। कहो, समझ में आया? ओहोहो!

(परम समरसीभाव के रसिक जीवों को मुदित करती है).... मुदित-प्रमोदित। इन्द्र बैठे हों अन्दर व्याख्यान में-भगवान के प्रवचन में। बाघ बैठे हों, सिंह बैठे हों

बड़े, उनके असंख्य प्रदेश में; जैसे पुत्र आया हो, दस वर्ष से खो गया हो और निर्धन होकर गया हो, निर्धन स्वयं हो और पच्चीस लाख लेकर आवे और जहाँ पहले शब्द में (बोले), बापू! लक्ष्मीचन्द आया है, लक्ष्मी लेकर। पच्चीस लाख। वह रोम खड़े हो जायें।

इसी प्रकार जिसे आत्मा अन्तर में से कमाकर आया हो। चैतन्य की लक्ष्मी भूल गया था। यह चैतन्य... आहाहा! राग और विकल्प के मैल के स्वाद से यह स्वाद कोई अलग प्रकार का है। वैसे ही जो आत्मा के रस का रसिक जीव है, उसे वीतराग की वाणी मीठी लगती है। कहो, समझ में आया? मुदित करती होने से। मुदित करती है—प्रमोद करती है। आहाहा! देखो! वाणी प्रमोद करती है। यह तो निमित्त कथन है, हों! वापस वाणी प्रमोद करे तो सबको प्रमोद (होना चाहिए)। यह तो निमित्त-नैमित्तिक सन्धि करते हैं। उसकी बात करते हैं। यहाँ तो निमित्त ऐसा होता है, उसे ऐसा होता ही है, ऐसा यहाँ कहते हैं। जिसे वीतराग की वाणी मधुर सुनने बैठा, उसे मधुर लगती है, उसे मधुर कही जाती है। ऐसी निमित्त-नैमित्तिक की सन्धि की है। उसमें न हो, ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा कहते हैं। ओहोहो! क्या कहा, देवानुप्रिया! वीतराग की वाणी निर्दोष आत्मा आनन्दकन्द की बतलानेवाली। उसे सुननेवाले मधुर रस के स्वादिया, उसे यह मीठी लगती है। निमित्त की सन्धि की है। समझ में आया? मधुर है। लो, यह विशेषण लिया।

अब विशद... विशद। विशद की व्याख्या करते हैं। शुद्ध जीवास्तिकायादि सात तत्त्व,.... शुद्ध जीवास्तिकायादि सात तत्त्व। अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, नव पदार्थ,.... उसके नौ भेद पड़ गये पुण्य-पाप (आस्रव में)। छह द्रव्य और पाँच अस्तिकाय का संशय-विमोह-विभ्रम रहित निरूपण करती है.... जगत के जैसे पदार्थ शक्ति और दशा तथा विकारादि जो स्वरूप है, उसका संशय, विमोह, विभ्रम रहित निरूपण करती होने से। ऐसा ही है। ऐसा है और दूसरे प्रकार से नहीं। ऐसा नहीं कि ऐसा भी होगा और ऐसा भी होगा। कौन जाने भाई, कुछ होगा। अथवा ऐसा होगा तो, उल्टा हो तो? ऐसे सब दोष टलकर, जिनकी निरूपण करती वाणी, संशय विमोह विभ्रम रहित की होती है।

अथवा.... यह विशद की व्याख्या करते हैं। पूर्वापरविरोधादि दोषरहित होने

से.... पहले कुछ कहे और पश्चात् कुछ कहे, वह वाणी में नहीं होता। एक ओर ऐसा कहे कि आत्मा के आनन्द के आश्रय से आत्मा का आनन्द प्रगट होता है। दूसरी जगह कहे कि राग और व्यवहार के आश्रय से आनन्द प्रगट होता है। ऐसी वाणी वीतराग की वाणी में नहीं हो सकती। समझ में आया? एक ओर ऐसा कहे कि भगवान आत्मा अखण्डानन्द प्रभु, अन्तर की दृष्टि देने से ही उसे कल्याण होगा। दूसरी ओर ऐसा कहे कि व्यवहार की क्रिया करने से राग से भी कल्याण होगा। ऐसी विरोधी वाणी वीतराग की नहीं होती। ...भाई! देखो, यह वीतराग ऐसे होते हैं और उनकी वाणी ऐसी होती है। इसे खबर नहीं भगवान... भगवान... भगवान... करे। जाओ। भक्ति कर डाले भगवान की मूर्ति के सामने। हो गया, जाओ। हो गया कल्याण। बापू! कल्याण का पन्थ तो तेरे पास पड़ा है। ऐसा वीतराग वर्णन करते हैं। ऐसा जो मार्ग, उसे बराबर बतलानेवाली और पूर्वापर विरोध आदि दोषरहित। पहले ऐसा कहे और दूसरा ऐसा कहे। लो, यह समयसार में ऐसा कहा है, परन्तु अमुक में ऐसा कहा है न? अरे! प्रभु! परन्तु वह किस नय का दूसरा वाक्य कहा? वह इसे तोड़कर बात होगी? तो कहीं वीतरागमार्ग में निर्णय करने का प्रश्न रहा नहीं। संशयवाद (हो गया)। ऐसा भी होता है और ऐसा भी होता है। ऐसा भी होता है और ऐसा भी होता है। राग और पूजा से भी धर्म होता है और आत्मा के स्वभाव के आश्रय से भी धर्म होता है। उसमें कहाँ ढलना? किस ओर ढलना? कोई स्तम्भ तो बाँधा नहीं कहीं? खूँटा तो बाँधा नहीं कि इस खूँटे पर खड़ा रह, बापू! इतने में खड़ा रहकर फिर हिल चाहे जहाँ। ऐसा निर्णय तो आया नहीं कि यह वह चैतन्य प्रभु पूर्णानन्द का आश्रय करने से लाभ होगा? या दया, दान के पुण्य परिणाम का आश्रय करने से लाभ होगा? निर्णय तो कुछ हुआ नहीं। ऐसी वाणी वीतराग की होती नहीं।

मुमुक्षु : दोनों से होता है, ऐसा निर्णय किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों से होता है, यह वीतराग की वाणी नहीं है। यह तो पूर्वापर विरोध हुआ। ऐई! देवानुप्रिया! वहाँ वापस... कौन जाने क्या कहते हैं अन्दर? कि अन्दर में तो महिमा करे, बाहर में ऐसा करे। ऐसी और बात कहते थे कल शाम को।

क्या है इसमें कुछ खबर नहीं पड़ती। रामजीभाई कहे, इसमें विश्वास नहीं आता बराबर। ऐई! देवानुप्रिया!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दूसरी बात है।

क्या कहते हैं ? **पूर्वापरविरोधादि दोषरहित होने से....** एक शास्त्र में निश्चय से लाभ होता है, ऐसा कहे, तब दूसरे शास्त्र में व्यवहार से धर्म का लाभ होता है, ऐसा कहे तो वह वाणी तो विरुद्ध हो गयी। सेठी! पूर्वापर—पूर्व और अपर, ऐसा। पहले और बाद में। पूर्व अर्थात् पहला, और अपर अर्थात् बाद में। पहले कुछ कहे, बाद में कुछ कहे, और कुछ कहे। ऐसे विरोधादि.... विरोध नहीं, संशय नहीं। ऐसा भी होता है और ऐसा भी होता है। कथंचित् ऐसा और कथंचित् ऐसा। ऐसे **पूर्वापरविरोधादि दोषरहित होने से....** दो बात। दो बात हो गयी न। आत्मा का निरूपण करती होने से, एक। ऊपर कहा न आत्मा का निरूपण करने से ? और पूर्वापर विरोधादि दोषरहित होने से। दो।

अथवा युगपद् सर्व जीवों को अपनी-अपनी भाषा में स्पष्ट अर्थ का प्रतिपादन करती है.... यह तीन। एक समय में सर्व जीवों को अपनी-अपनी भाषा में। पशु सुनते हों तो उन्हें ऐसा लगे कि मुझे ऐसा कहते हैं। भाई! अपनी-अपनी भाषा में सब समझे। पानी निकले कुएँ में से एक प्रकार का, परन्तु जहाँ क्यारी में जाता है (वहाँ) गन्ने (में) गन्नरूप परिणमे, ऐरण्ड में ऐरण्डीरूप परिणमे। सबकी अपनी-अपनी योग्यता प्रमाण परिणमे। इसी प्रकार वीतराग की वाणी निकलती है, सबको ऐसा लगता है कि मुझे समझाते हैं। मेरी (भाषा में) समझाते हैं। मुझे समझाते हैं। समझ में आया ? प्रपात तो एक प्रकार का निकलता है वाणी का-दिव्यध्वनि का।

कहते हैं, **युगपद् सर्व जीवों को....** देखो! पशु बैठे हों। एक चिड़ा, एक चक्रवर्ती, एक ओर चिड़ा और एक चक्रवर्ती। एक ओर मिथ्यादृष्टि और एक ओर चार ज्ञान के धनी गणधर। सब सभा में बैठे हों। अगृहीत मिथ्यादृष्टि तो होते हैं न। उन **युगपद् सर्व जीवों को....** एक बालक, आठ वर्ष की लड़की, एक बड़ा वृद्ध करोड़ पूर्व का आयुष्यवाला मनुष्य। महाविदेहक्षेत्र में करोड़ पूर्व की आयुष्यवाला। एक आठ वर्ष की

बालिका, एक करोड़पूर्व का आयुष्यवाला, एक आठ वर्ष का लड़का, एक करोड़ पूर्व का वृद्ध। वे सब.... एक बाघ का छोटा बच्चा और एक बड़ा बाघ। ये सब वाणी सुनते हों। समवसरण में एक चिड़ा इतना सुनता हो। एक बड़ा बाघ और सिंह जंगल में से। नाग, जंगल में से नाग चले आते हैं नाग... सर...सर... सर... सर करते हुए। उन भगवान के समवसरण में जहाँ वाणी निकले... गाँव में चला आवे सर्प, बड़ा नाग जंगल में से। सर... सर... सर... सररर.... वहाँ समवसरण में जाये। आहाहा! उन सबको युगपद् सर्व जीवों को अपनी-अपनी भाषा में स्पष्ट अर्थ का प्रतिपादन.... ऐसा। धुंधला-बुंधला नहीं। क्या कहा, वह नहीं समझ में आया? तुमने क्या कहा? दूसरी बार पूछना पड़े, ऐसा नहीं है। स्पष्ट अर्थ का प्रतिपादन करती है, इसलिए विशद-स्पष्ट-व्यक्त है। लो, विशद की व्याख्या की।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अर्थ किया। विशद अर्थात् स्पष्ट अथवा विशद अर्थात् व्यक्त। व्यक्त अर्थात् प्रगट। अर्थ को पूर्ण प्रगट करनेवाली है। यह तीन बोल कहे।

इस प्रकार जिनभगवान की वाणी ही प्रमाणभूत है;.... इस प्रकार वीतराग परमात्मा निर्दोष दशा जिनकी पूर्ण हुई। जिन्हें राग का कण नहीं, शरीरमात्र परिग्रह एक शरीर होता है। वाणी निकलती है। आहार-पानी उन्हें होता नहीं। ऐसी दशा जिन्हें प्रगट हुई है। जिनकी वाणी प्रमाणभूत हैं। एकान्तरूप अपौरुषेय वचन या विचित्र कथारूप कल्पित.... एकान्त से अपौरुषेय अर्थात् किसी पुरुष बिना की यह वाणी है। परन्तु पुरुष बिना की वाणी होती ही नहीं। अपौरुषेय वाणी, वह होती ही नहीं। या विचित्र कथारूप कल्पित पुराणवचन.... कल्पित पुराण बातें ऐसी अध्धर से की हो। ऐसा प्रमाणभूत नहीं हैं। ऐसा कहा, लो!

तीसरे, अनन्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का जाननेवाला अनन्त केवलज्ञानगुण जिनभगवन्तों को वर्तता है। गुण अर्थात् पर्याय, हों! अनन्त द्रव्य। आहाहा! अनन्त क्षेत्र, अनन्त काल, , अनन्त भाव जाननेवाला। अनन्त के जाने! अनन्त केवलज्ञान की पर्याय भगवान को वर्ते! अनन्त जाना!

मुमुक्षु : अनन्त को जाना, सर्व को नहीं जाना....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! अनन्त को जाना और सर्व को न जाना कहाँ से आया ? ऐसे के ऐसे कौन जाने कैसे पके हैं ! ज्ञान जहाँ अत्यन्त निर्मल हो गया । रूकावट हट गयी, विषय प्रतिबद्ध रुक गया और एकदम पूर्ण खिल गया । वह तीन काल-तीन लोक पूर्ण जानता है । पूर्ण और सर्व जानता है । पूर्ण, सर्व, अनन्त वह तो सब एक ही है ।

इस प्रकार बुद्धि आदि सात ऋद्धियाँ तथा मतिज्ञानादि चतुर्विध ज्ञान से सम्पन्न.... गणधर-गणधर । बुद्धि आदि सात ऋद्धि होती है । गणधर होते हैं न उन्हें । महासन्त के नायक गणधर, सन्तों के गण के धारक बड़े । ऐसे गण के धारक, ऐसे बाह्य में व्यवहार से । ऐसे मतिज्ञानादि चार ज्ञान । मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय गणधरदेवादि योगेन्द्रों से भी वे वंद्य हैं । लो ! भगवान । और चौथे, पाँच प्रकार के संसार को जिनभगवन्तों ने जीता है । लो ! पाँच प्रकार का संसार । द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव और भाव । इन सबको भगवान ने (जीता है) ।

इस प्रकार कृतकृत्यपने के कारण वे ही अन्य अकृतकृत्य जीवों को शरणभूत हैं,.... समझ में आया ? दूसरा कोई नहीं । यह अन्य कोई नहीं, उसमें से.... लगा था । इस प्रकार चार विशेषणों से युक्त जिनभगवन्तों को ग्रन्थ के आदि में भावनमस्कार करके मंगल किया । ओहो ! स्मृति में याद लाकर ऐसे अनन्त को अपने ज्ञान की भूमिका में, स्मृति-भूमिका में पधराकर । वहाँ (समयसार में) सर्व सिद्धों को नमस्कार किया । यहाँ सर्व जिनों को यहाँ पधराया । वाणी है न । ज्ञान में अपने स्मृतिरूपी पट में, ज्ञान की स्मृतिरूपी पट में चित्रित करके अनन्त को पधराया है । समझ में आया ? भावनमस्कार करके मंगल किया । लो !

प्रश्न :- जो शास्त्र स्वयं ही मंगल हैं, उसका मंगल किसलिए किया जाता है ? यह वाणी स्वयं ही मंगल है । शास्त्र ही मांगलिक है, उसके लिये मांगलिक आपने पहले क्यों किया ? ऐसा कहते हैं ।

उत्तर :- भक्ति के हेतु से मंगल का भी मंगल किया जाता है । है ? इस गाथा की श्री जयसेनाचार्यदेवकृत टीका में, शास्त्र का मंगल, शास्त्र का निमित्त, शास्त्र का हेतु

(फल), शास्त्र का परिमाण, शास्त्र का नाम तथा शास्त्र के कर्ता-इन छह विषयों का विस्तृत विवेचन किया है। टीका में बहुत लम्बा है। यह मंगल का मंगल किया। सूर्य की दीपक से,.... देखो! सूर्य को लोग दीपक से... अब वह सूर्य तो प्रकाश का पुंज है, उसे दीपक से करते हैं। यह तो मंगल का मांगलिक होता है। सुन!

महासागर की जल से,.... बड़ा सागर हो तो अंजुलि लेकर उसे पूजते हैं। वागीश्वरी (सरस्वती) की वाणी से.... कहो, समझ में आया ? वागेश्वर। वागीश्वरी है न ? वागेश्वरी, हों! वाक् की ईश्वरी ऐसी सरस्वती। उसे वाणी से। सरस्वती को वाणी से मांगलिक करते हैं। सरस्वती स्वयं ही वाणी स्वरूप है पूरा है परन्तु उसे वाणी से मांगलिक करते हैं। और मंगल की मंगल से अर्चना की जाती है। लो! मंगल की भी मंगल से अर्चना अर्थात् पूजा की जाती है। समझ में आया ? लो! इस गाथा में कहा, देखो। शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ एवं भावार्थ समझाकर, इस प्रकार व्याख्यान काल में सर्वत्र शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ और भावार्थ प्रयुक्त करनेयोग्य हैं—ऐसा कहा है। कोई भी इस शास्त्र में लिखा है वह किस नय का वाक्य ? वह किस नय का वाक्य ? ऐसा पहले निर्णय करना चाहिए। ऐसे का ऐसे यह लिखा ऐसा नहीं। निश्चय का वाक्य है या व्यवहार का वाक्य ? सद्भूत का है या असद्भूत का ? निमित्त का या उपादान का ? निश्चय का या व्यवहार का ? ऐसा इसका निर्णय होना चाहिए। फिर उसके अर्थ होते हैं। नहीं तो अर्थ होते नहीं। ऐसा पहली गाथा में जयसेनाचार्य ने.... पहली गाथा पूरी हुई, लो।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २

समणमुहुग्गदमट्टं चदुग्गादिणिवारणं सणिव्वाणं।
 एसो पणमिय सिरसा समयमिणं सुणह वोच्छामि॥२॥
 सर्वज्ञभाषित भवनिवारक मुक्ति के जो हेतु हैं।
 उन जिनवचन को नमन कर मैं कहूँ तुम उनको सुनो॥२॥

अन्वयार्थ :- [श्रमणमुखोद्गतार्थे] श्रमण के मुख से निकले हुए अर्थमय (-सर्वज्ञ महामुनि के मुख से कहे गये पदार्थों का कथन करनेवाले), [चतुर्गतिनिवारणं] चार गति का निवारण करनेवाले और [सनिर्वाणम्] निर्वाण सहित (-निर्वाण के कारणभूत) [इमं समयं] ऐसे इस समय को [शिरसा प्रणम्य] शिरसा नमन करके [एषवक्ष्यामि] मैं उसका कथन करता हूँ; [श्रृणुत] वह श्रवण करो।

टीका :- समय अर्थात् आगम; उसे प्रणाम करके स्वयं उसका कथन करेंगे, ऐसी यहाँ (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने) प्रतिज्ञा की है। वह (समय) प्रणाम करने एवं कथन करनेयोग्य है, क्योंकि वह *आप्त द्वारा उपदिष्ट होने से सफल है। वहाँ, उसका आप्त द्वारा उपदिष्टपना इसलिए है कि जिससे वह 'श्रमण के मुख से निकला हुआ अर्थमय' है। 'श्रमण' अर्थात् महाश्रमण-सर्वज्ञवीतरागदेव; और 'अर्थ' अर्थात् अनेक शब्दों के सम्बन्ध से कहा जानेवाला, वस्तुरूप से एक ऐसा पदार्थ। पुनश्च उसकी (-समय की) सफलता इसलिए है कि जिससे वह समय -

(१) 'नारकत्व' तिर्यचत्व, मनुष्यत्व तथा देवत्वस्वरूप चार गतियों का निवारण करने के कारण और (२) शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धिरूप 'निर्वाण का परम्परा से कारण' होने के कारण (१) परतन्त्रतानिवृत्ति जिसका लक्षण है और (२) स्वतन्त्रताप्राप्ति जिसका लक्षण है — ऐसे 'फलसहित' है।

* आप्त = विश्वासपात्र; प्रमाणभूत; यथार्थ वक्ता। [सर्वज्ञदेव समस्त विश्व को प्रति समय सम्पूर्णरूप से जान रहे हैं और वे वीतराग (मोहरागद्वेषरहित) होने के कारण उन्हें असत्य कहने का लेशमात्र प्रयोजन नहीं रहा है; इसलिए वीतराग-सर्वज्ञदेव सचमुच आप्त हैं। ऐसे आप्त द्वारा आगम उपदिष्ट होने से वह (आगम) सफल हैं।]

१. चार गति का निवारण (अर्थात् परतन्त्रता की निवृत्ति) और निर्वाण की उत्पत्ति (अर्थात् स्वतन्त्रता की प्राप्ति) वह समय का फल है।

भावार्थ :- वीतरागसर्वज्ञ महाश्रमण के मुख से निकले हुए शब्दसमय को कोई आसन्नभव्य पुरुष सुनकर, उस शब्दसमय के वाच्यभूत पंचास्तिकायस्वरूप अर्थसमय को जानता है और उसमें आ जानेवाले शुद्धजीवास्तिकायस्वरूप अर्थ में (पदार्थ में) वीतराग निर्विकल्प समाधि द्वारा स्थित रहकर चार गति का निवारण करके, निर्वाण प्राप्त करके, स्वात्मोत्पन्न, अनाकुलतालक्षण, अनन्त सुख को प्राप्त करता है। इस कारण से द्रव्यागमरूप शब्दसमय नमस्कार करने तथा व्याख्या करनेयोग्य है।॥२॥

कार्तिक कृष्ण १०, मंगलवार, १०-१२-१९६३, गाथा-२, प्रवचन-५

पंचास्तिकाय ।

समणमुहुग्गदमट्टं चदुग्गदिणिवारणं सणिव्वाणं ।
एसो पणमिय सिरसा समयमिणं सुणह वोच्छामि ॥२ ॥

नीचे हरिगीत है, इसका मूल शब्दों का ।

सर्वज्ञभाषित भवनिवारक मुक्ति के जो हेतु हैं ।
उन जिनवचन को नमन कर मैं कहूँ तुम उनको सुनो ॥२ ॥

ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य महाराज भगवान के पश्चात् ६०० वर्ष में इस भरतक्षेत्र में संवत् ४९ में हुए। उन्होंने यह शास्त्र रचा है। भगवान तीर्थंकर परमात्मा वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। सीमन्धर प्रभु तीर्थंकरदेव। उनके पास जाकर आठ दिन रहे थे। वहाँ से आने के पश्चात् यह शास्त्र रचे हैं। उसमें यह पंचास्तिकाय का शास्त्र रचने से पहले नमस्कार करते हैं। टीका, इसकी टीका—दूसरी गाथा की।

टीका :- समय अर्थात् आगम;.... देखो! आगम किसे कहना। (शास्त्र) लाये हो? भूल गये? दो बार भूल हुई, कल और आज। पंचास्तिकाय शुरु हुआ तब से। पन्ना, माणिक में ऐसी भूल नहीं करते हैं। झवेरी है न झवेरी। मुम्बई। नहीं यह महेन्द्र सेठी, महेन्द्रकुमार सेठी? झवेरी नहीं? यह उनके पिता हैं। यहाँ रहते हैं। दो बार भूल गये।

टीका :- समय अर्थात् आगम;.... भगवान के त्रिलोकनाथ वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के मुख से निकली हुई वाणी को आगम कहते हैं। जैन परमेश्वर, जिसे एक सेकेण्ड के

असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक का जिसे वीतरागी विज्ञान ज्ञान प्रगट हुआ था, उनकी वाणी निकली इच्छा बिना, उस वाणी को यहाँ आगम कहा जाता है। यह समय अर्थात् आगम। **उसे प्रणाम करके....** उसे नमस्कार करते हैं। पहले वाणी को नमस्कार करते हैं। भगवान परमात्मा वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ को तो वन्दन हो परन्तु उनकी वाणी को भी वन्दन है। (देव) शास्त्र और गुरु। तीनों को वन्दन है। **उसे प्रणाम करके स्वयं उसका कथन करेंगे....** स्वयं अर्थात् कुन्दकुन्दाचार्य महाराज। पहली शताब्दी में दिगम्बर सन्त थे। वे स्वयं इसका कथन करेंगे। **ऐसी यहाँ (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने) प्रतिज्ञा की है।** कि इस समय का मैं कथन करूँगा। भगवान त्रिलोकनाथ ने कहे हुए। उसमें सब आयेगा, हों, उसमें।

वह (समय) प्रणाम करने एवं कथन करनेयोग्य है,.... दो बात। सर्वज्ञ परमात्मा, उनके मुख से वाणी निकली, वह वाणी को प्रणाम करनेयोग्य है और वही कथन करनेयोग्य है। अज्ञानी की वाणी प्रणाम करनेयोग्य नहीं और उस अज्ञानी की वाणी का कथन करनेयोग्य नहीं। अज्ञानी के कहे हुए शास्त्र कथन करनेयोग्य नहीं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जिसे प्रणाम करने के और कथन करने के योग्य है, कौन? वीतराग सर्वज्ञदेव के शास्त्र। त्रिलोकनाथ परमात्मा के मुख्य से निकली हुई वाणी।

क्यों प्रणाम और कथन करनेयोग्य है? **क्योंकि वह आस द्वारा उपदिष्ट होने से....** आस। नीचे अर्थ है। वे भगवान आस हैं—विश्वासपात्र हैं। वीतराग और सर्वज्ञ पद जिन्हें प्रगट हुआ है, इसलिए वे भगवान आस अर्थात् विश्वास के पात्र हैं। **प्रमाणभूत....** है। वे वीतराग सर्वज्ञदेव ही प्रमाणभूत हैं। **यथार्थ वक्ता।** हैं। नीचे नोट है। यथार्थ वक्ता हैं। जैसा वस्तु का स्वरूप, जैसा मोक्षमार्ग, जैसा बन्धमार्ग जैसा है, उसे यथार्थरूप से कहनेवाले त्रिलोकनाथ परमात्मा वीतरागदेव हैं। इसलिए उन्हें आस कहा गया है।

कोष्ठक में। (सर्वज्ञदेव समस्त विश्व को प्रति समय सम्पूर्णरूप से जान रहे हैं...) सर्वज्ञदेव अरिहन्त परमात्मा महावीर भगवान आदि तो सिद्ध हो गये। अनन्त चौबीसी। परन्तु वर्तमान महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर प्रभु अरिहन्त पद में विराजमान हैं। अभी महाविदेहक्षेत्र में यहाँ जमीन पर। बहुत दूर हैं। वे सब समस्त विश्व को प्रत्येक

समय में सम्पूर्णरूप से जान रहे हैं। तीन काल के, तीन लोक के सभी पदार्थों को एक समय में अर्थात् प्रत्येक समय में, प्रत्येक समय में सम्पूर्णरूप से। प्रत्येक समय और सम्पूर्णरूप से भगवान केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ जान रहे हैं।

और वे वीतराग (मोह-राग-द्वेषरहित)होने के कारण उन्हें असत्य कहने का लेशमात्र प्रयोजन नहीं रहा है;.... मोह नहीं, राग नहीं, द्वेष नहीं। सर्वज्ञरूप से जो तीन काल, तीन लोक देखे, ऐसा सत्य कथन किया। इसलिए वीतराग-सर्वज्ञदेव सचमुच आप्त हैं। ऐसे आप्त द्वारा आगम उपदिष्ट होने से.... ऐसे आप्त द्वारा शास्त्र कहा गया होने से, वह (आगम) सफल हैं। वह आगम सफल है। कहो, समझ में आया ?

वहाँ, उसका आप्त द्वारा उपदिष्टपना इसलिए है.... टीका की चौथी लाईन। वहाँ उस वाणी का भगवान के आगम का उपदिष्टपना इसलिए है कि जिससे वह 'श्रमण के मुख से निकला हुआ अर्थमय' है। लो! श्रमण के मुख में से निकले हुए अर्थमय। इसकी अब व्याख्या करेंगे। 'श्रमण' अर्थात् महाश्रमण-सर्वज्ञवीतरागदेव;.... उनके मुख से वाणी निकली। और 'अर्थ'.... है न? 'श्रमण के मुख से निकला हुआ अर्थ.... 'अर्थ' अर्थात् अनेक शब्दों के सम्बन्ध से कहा जानेवाला, वस्तुरूप से एक ऐसा पदार्थ। प्रत्येक पदार्थ आत्मा, परमाणु आदि जो भगवान ने अनन्त पदार्थ देखे, उसे अर्थ कहते हैं। उस अर्थ को कहने में सर्वज्ञ वीतराग यथार्थ जिनका उपदेश है। इसलिए वह उपदेश करनेयोग्य है और वह वाणी वन्दन करनेयोग्य है। कहो, समझ में आया ?

अनेक शब्दों के सम्बन्ध से कहा जानेवाला, वस्तुरूप से एक ऐसा पदार्थ। वस्तुपने तो एक है। भले द्रव्य से कहो, गुण से कहो, पर्याय से कहो परन्तु वस्तु तो एक है। ऐसे अर्थ को भगवान ने कहा है। पुनश्च उसकी (समय की) सफलता इसलिए है.... देखो! यह सफल की व्याख्या करते हैं। भगवान की वाणी में सब पदार्थ का स्वरूप आया, इसलिए सफल है और सफलपना इसलिए है कि कि जिससे वह समय-अब सिद्धान्त का फल न्याय देते हैं। समझ में आया ? पाठ में था न, 'मुहुग्गदमट्टं' मुख में से निकला हुआ अर्थ। ऐसा था न पाठ में। अर्थ अर्थात् पदार्थ। तीन काल-तीन लोक के पदार्थ भगवान के मुख में से वाणी से निकले। इसलिए वह सफल है।

और दूसरा उसका फल यह है कि वह समय (१) 'नारकत्व' तिर्यचत्व, मनुष्यत्व तथा देवत्वस्वरूप चार गतियों का निवारण करने के कारण.... लो, यह सफल का कारण है। भगवान की वाणी चार गति के निवारण करने का कारण है। नरक की गति नीचे है नरक। यह तिर्यच पशु, एकेन्द्रिय काई, आलू, शक्करकन्द, यह सब तिर्यच कहलाते हैं और यह मनुष्य और स्वर्ग। इस चार गति के निवारण के कारण आगम का सफलपना है। क्या कहा उसमें? सर्वज्ञ की वाणी चार गति का नाश करनेवाली है। उस वाणी में ऐसा आता है कि चार गति का नाश हो और आत्मा की मोक्षदशा प्राप्त हो, ऐसा भगवान की वाणी में आता है। कहो, इसमें स्वर्ग मिले और पैसा मिले और बड़े धनाढ्य हों, ऐसा वीतराग की वाणी में नहीं आता। मीठालालजी! मोहनभाई!

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ देवाधिदेव। जिन्हें भवरहित पूर्ण वीतरागदशा प्रगट हुई। उनकी वाणी भवरहित होने की वाणी है। जिसे भव चाहिए हो, उसे यह वीतराग की वाणी सफल नहीं होती। सेठी! हम राजा होवें, ऐसे होवें, बड़े सेठिया होवें, अरबोंपति होवें। इस धूल के ढेर के स्वामी होवें। धूल कहलाये न यह क्या कहलाये? कल राख आयी थी। हैं मोहनभाई! यह तुम्हारे पैसे क्या कहलाते हैं? राख आयी थी। खाख। राख-खाख, मिट्टी, जड़ पुद्गल उसका स्वामी होना हो, वह शास्त्र में नहीं कहते हैं।

मुमुक्षु : उसका उपाय।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका उपाय है न। राग मन्द करे तो है। परन्तु वह वीतराग का मार्ग ऐसा नहीं कहता। वीतराग तो राग और उसके फल रहित की बात बताते हैं। वीतराग है न! आत्मा का स्वरूप पुण्य-पाप के राग से रहित जड़ के, पर के संयोग से रहित ऐसे स्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और रमणता कर, तुझे भव नहीं रहेगा। ऐसा वीतराग की वाणी में कहा जाता है।

मुमुक्षु : छुड़ाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भव छुड़ाते हैं। भव रखावे तो भगवान ने भव क्यों नहीं रखा?

भगवान ने भव क्यों नहीं रखे ? भव छेदकर सर्वज्ञपद केवलज्ञान पद प्राप्त किया। तो कहते हैं कि सफलपना इससे है कि चार गति का निवारण करने के लिये सफलपना है। ओहो ! तू पुण्य कर और उसमें से मनुष्यभव मिलेगा या स्वर्ग मिलेगा, ऐसा वीतराग की वाणी में नहीं आता, कहते हैं। बराबर है ? ऐसा पुण्य कर और तुझे फिर भव मिलेगा, और स्वर्ग का भव मिलेगा या राजा का भव मिलेगा, सेठिया के धूल के स्वामी का भव मिलेगा, ऐसा वीतराग की वाणी में नहीं आता, कहते हैं। वीतराग की वाणी तो यह कहती है कि चार गति और चार गति के कारण विकार, उसका अभाव करने का वीतराग बताते हैं। आगम में ऐसा आया है। ऐसा कहते हैं। ओहोहो !

मुमुक्षु : मनुष्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : मनुष्य में कब सुख था ? धूल में ? लो ! ऐई ! मोहनभाई ! यह सब सुखिया होंगे यह सब पैसेवाले, ऐसा ? हैरान-हैरान हो गये हैं। यह दलाल है हमारे प्रश्नकार। एक दलाल है। प्रश्न का दलाल है। प्रश्न करके... जयन्तीभाई ! यह सब धूलवाले, पैसेवाले सुखी होंगे ? पाँच करोड़ और दस करोड़ और धूल करोड़, राग... राग... राग.... राग.... राग.... ममता... ममता... ममता... दुःखी... दुःखी... दुःखी.... है। उस दुःख का नाश करने का उपाय वीतराग की वाणी में है। ऐसा कहते हैं, देखो न ! नारकी की गति तो नहीं। वह तो नरक नीचे है महापाप करे। माँस खाये, शराब पीवे, अधर्म..., शिकार करे, ऐसे लोग मरकर नरक में जाते हैं। उस भाव का यहाँ भगवान तो निषेध कराते हैं।

ऐसे तिर्यच। है न दूसरा शब्द ? तिर्यचत्व। वह तिर्यचपना अर्थात् निगोद, काई, वनस्पति, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, यह ढोर। उसमें माया और कपट करनेवाले वे ढोर में जाते हैं। यह माया और कुटिलता और महावक्रता और गहरे... गहरे... गहरे... गहरे.... विकार के करनेवाले, जिनका पेट हाथ नहीं आता। कहते हैं कि ऐसे बहुत मायावी कपटी मरकर तिर्यच होते हैं। है न दूसरा शब्द ? तिर्यचत्व। और तीसरा मनुष्यत्व। कोई सरल प्रकृति, राग की मन्दता आदि से मनुष्य (हो) परन्तु उसका भगवान तो निषेध कराते हैं। गति मिले, वह हमारे ज्ञान में और

हमारे शास्त्र में नहीं है। कहो, ठीक! बीच में राग रह जाये। पुण्य के कारण गति मिले, वह अलग बात है, परन्तु वीतराग की वाणी त्रिलोकनाथ परमात्मा सर्वज्ञ देवाधिदेव जैन परमेश्वर के आगम उसे कहते हैं और उस आगम का सफलपना उस आगम का इस कारण कहा गया है कि जिसमें चार गति का निवारण होता है। इसका अर्थ कि जिसमें भव का अभाव होता है। यह पहले गाथा में आया न? 'जितभवेभ्यः' भगवान ने भव जीते हैं। ऐसा आया था न? पहली गाथा में आया। 'जितभवेभ्यः' भव के ऊपर जिन्होंने जय प्राप्त की है। पहली गाथा में आया था। 'जितभवेभ्यः' जिन्होंने भव को जीता है, उनकी वाणी में भव के अभाव की बात ही होती है। ऐसे वीतराग हैं। देखो! यह एक आगम का लक्षण। जो शास्त्र भव के अभाव की बात करे, और फिर लेंगे। मोक्ष की बात करे, उसे आगम कहते हैं और उस आगम का सफलपना कहा जाता है। कहो, सेठी! आहाहा!

मोक्ष चाहिए नहीं। ऐसा एक व्यक्ति कहता था वहाँ उस बगसरा में। कालीदासभाई थे। एक राम श्रीपाल की पेढी थी। हमारे दशाश्रीमाली में वहाँ एक बड़े गृहस्थ थे। अपने बगसरा में। राम श्रीपाल की पेढी। बहुत इज्जतदार थे। फिर तो घिस गये। राम श्रीपाल की पेढी। बगसरा में थे। दशाश्रीमाली बड़ी पेढी। लाखोंपति। बड़ी इज्जत खानदान। फिर उनका एक लड़का पैर से लूला था कालीदासभाई। घर में कुछ नहीं होता। पैसा कुछ नहीं। साधारण खाते होंगे। फिर यह हमारा व्याख्यान सुनने आवे, (संवत्) १९८४ में वहाँ गये थे, बगसरा। ...वाला नहीं वह? ...वाला काठी। वह... नहीं... वाला गीगावाला। गीगावाला बड़ा ऐडमिन था। और यहाँ वडाला में ६० हजार की आमदनी थी। सब व्याख्यान में कायम आते थे। फिर एक बार वह कालीदासभाई कहे, अकेले आये शाम को। महाराज! तुम ऐसी धर्म की बातें करते हो। और मोक्ष, मोक्ष और मोक्ष। हमारे मोक्ष नहीं चाहिए। क्या करना है तब तुम्हें। मजाकिया था। हमें तो अहमदाबाद के माणिक चौक में झवेरी होना है। माणेक चौक है न बीच में चौक? इसलिए घोड़ागाड़ी निकले, मोटरें निकले तो ऐसी नजर तो करे कि यह सेठिया... सेठिया... यह सेठिया। सेठी! अहमदाबाद के माणेक चौक में मनुष्य मरकर सेठिया होना है। हमारे यह मोक्ष-बोक्ष की बातें करो। कहा, भगवान के मार्ग में संसार की प्राप्ति

हो, यह मार्ग भगवान का नहीं, लो! कहा, ऐसी भावना है तो वहाँ के घोड़ा होओगे उसके घर में। ८४ के वर्ष की बात है। ३६ वर्ष हुए। बगसरा में। जरा मजाकिया। घोड़ा होओगे, ऐसी प्रार्थना वहाँ करने जाते हो।

वीतरागमार्ग त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर तीन काल-तीन लोक का ज्ञान, सौ इन्द्र के पूजनीक, वन्दनीय ऐसे भगवान की वाणी को आगम कहते हैं। वह आगम चार गति का अभाव करने के लिये सफल है। उसका अर्थ यह कि उस वीतराग की वाणी में ऐसा आता है कि पुण्य और पाप का राग और उसका फल, उससे रहित तेरी चीज़ है, उसकी तू श्रद्धा कर, पहिचान (कर) और स्थिर हो। यह वीतराग के मार्ग में आता है। उस आगम में ऐसा आता है। आहाहा! आगम की सफलता यह है कि जिसमें पुण्य-पाप के भाव जो होते हैं, उनसे तेरी चीज़ अन्दर भिन्न है। ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्यमूर्ति, उसकी श्रद्धा कर, उसका ज्ञान कर और उसमें रमणता कर कि जिससे तुझे भव मिले नहीं। ऐसे आगम ऐसी कथन की पद्धति करते हैं।

जो आगम—शास्त्र, संसार के फल देंगे तुमको, इससे संसार मिलेगा तुमको, यह मिलेगा, ऐसा बतावे और धर्म मार्ग बतावे नहीं, उसे आगम नहीं कहते। समझ में आया? आहाहा! अब जिसे भव की मिठास है और भव के कारण के राग की मिठास है, उसे वीतराग की वाणी मीठी नहीं लगती। यह पहली गाथा में आ गया है। मधुर। क्योंकि वीतराग वाणी तो ऐसे... चैतन्य प्रभु, आनन्दकन्द, आनन्दकन्द ज्ञायकमूर्ति सूर्य चैतन्य है। चैतन्य सूर्य, जलहलता सूर्य आत्मा है। उसकी दशा में भले पुण्य और पाप, काम और क्रोध आदि विकार हों, परन्तु उस विकृतरहित की अन्तर चैतन्य ज्योति है। उस चैतन्य ज्योति की दृष्टि, ज्ञान और रमणता कराने का ही आगम में फल है। आगम का फल है। समझ में आया? भगवान वीतराग सर्वज्ञ के मुख से निकली हुई वाणी, वह सर्वज्ञ और वीतरागपना बतलाने के लिये है। और राग तथा अल्पज्ञ का निषेध करने के लिये वीतराग की वाणी है। परन्तु बहुत सूक्ष्म। जयन्तीभाई! इसे सूक्ष्म पड़ता है।आ गये न। कहो, समझ में आया इसमें कुछ?

वीतराग के पक्ष में खड़े रहना हो और जिसे वीतराग की वाणी समझनी हो तो

कहते हैं कि उसका सफलपना इसलिए है कि जो समय अर्थात् शास्त्र—आगम चार गति का निवारण करने के लिये सफल है। पहले नास्ति से बात की। चार गति है न अनादि? वह चार गति अर्थात् कि चार गति के भाव, उसका भी निषेध करानेवाली यह वीतराग की वाणी है। आहाहा!

अभी पूर्ण वीतराग न हो, तब भले राग आवे परन्तु उसकी दृष्टि, आगम की दृष्टि और आगम का सफलपना यह है कि उसे रागरहित है, उसे रुचि में ले। रागरहित आत्मा का ज्ञान कर, रागरहित स्वरूप चिदानन्द प्रभु है, उसमें स्थिर हो। ऐसा आगम का सफलपना चार गति के निवारण के लिये है। ...भाई! अब वह कहे, मुझे यह होना है, माणेकचौक का झबेरी होना है। घोड़ा होगा, बापू! कहा। फिर वह तो हंसे बेचारा।

मुमुक्षु : जानता है न कि महाराज ऐसा कहेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : महाराज यह कहेंगे ही। और एक बार तो बाबा लेकर आया शाम को। वह नाटक का सुना हुआ न, उसने नाटक का। भगवान के पास नाटक करता है। इसलिए एक बाबा लेकर आया शाम को। मैं अकेला बैठा था। वहाँ नदी के किनारे एक धर्मशाला है, भोजनशाला स्थानकवासी की। उसमें व्याख्यान चलता था। लोग बहुत आवे सही न। (संवत्) १९८४ की बात है। फिर वहाँ अकेला बैठा था, वहाँ आये। देखो, महाराज! बोलना नहीं तुम कुछ। ऐसा नाटक जैसे भगवान के पास करते थे वैसा मैं नाटक लेकर आया हूँ। मेरे पास क्या साधन होगा? मैं गरीब मनुष्य, इसलिए यह बाबा लेकर आया हूँ। इस बाबा को मैं दूँगा कुछ। तम्बूरा ले। परन्तु क्या है, कहा? यह भजन गाये एक बार सुनो आप। इस प्रकार भगवान के पास नाटक करता था। मैं एक नाटक लेकर आया हूँ। ऐई! देवानुप्रिया! यह नारद जैसा था जरा ऐसा। व्यक्ति खानदानी, हों! बहुत खानदान। फिर सुना। फिर यह बोले पीछे से, हों! तुम सब पूरे दिन सवेरे और (दोपहर) व्याख्यान में यही रखते हो सब। संसार नहीं चाहिए, संसार नहीं चाहिए, राग नहीं, मुक्ति करो, मुक्ति करो। परन्तु हमें मुक्ति नहीं चाहिए न! तो मुक्ति नहीं चाहिए तो घोड़ा होओगे, कहा। यह सब माया करके। सेठी!

यहाँ कहते हैं.... वे रह गये वलखा तृष्णा के। सेठ बड़ा गृहस्थ न। कहा न, एक

बार वहाँ आहार लेने गये थे। वह ऐसे खाते थे आहार अकेले। स्त्री अन्दर पकाती थी बेचारी। स्त्री बहुत खानदानी थी। पैर ऐसे वह परन्तु गृहस्थ इसलिए विवाह हुआ न, पश्चात् खाते थे। तो बड़े मकान गृहस्थों के लाखोंपति के इसलिए। परन्तु गार करने के पैसे नहीं होते। खाली। और अकेले ओसरी में भी गड्डे पड़े हुए। अकेला खाता था। भोजन करता था। साथ में दस-पन्द्रह कौवे खाते थे ओसरी में। एक कोई कोने में बैठा हुआ। कालीदासभाई! यह क्या? महाराज! यह क्या? मेरे पिता थे, वे दस बजे कोई बनिया निकला हो घोड़े-गाड़ी में तो भोजन किये बिना न जाये। २०-२५ पाटिये पड़े ही हों हमारे घर में। अब मेरे पास पैसा नहीं है, तब मुझे करना क्या? तब यह थोड़ा चावल डालता हूँ यहाँ। मैं खाता रहूँ पाव घण्टे, बीस मिनिट। तो यहाँ चावल बीन-बीनकर कौवे खावे। मैं ऐसा मानता हूँ कि यह बनिये ही सब मेरे साथ खाते हैं। परन्तु मुझे करना क्या कि मेरे पास पैसा नहीं होता। वह बलखा थोड़ा चावल डाले। चोखा समझते हो न? भात। और सब गार-बार बिना। गार समझते हो? लीपण। लीपण में खड्डे पड़े हुए। मेरे कमरे में तो एक कोने में खाये और एक ओर चावल डाले। कौवे खाये। वह स्वयं उठे तो वह समाप्त करके चले जायें। सन्तोष करे कि हमने भी हमारे पिता की तरह जीमाया। अनादि काल की लोलुपता, ममता, हम उनके जैसे। परन्तु तुझे सिद्ध जैसा होना है या पिता जैसा होना है? तुझे क्या करना है?

यहाँ तो कहते हैं कि जिसे सिद्ध होना हो। यह मोक्ष.... मोक्ष का लेंगे बाद में, देखो! यह नास्ति से पहले बात की है न! भगवान की वाणी चार गति के अभाव की कहनेवाली है। कहीं चार गति में स्वर्ग मिले तो ठीक, ऐसा वीतराग वाणी में नहीं होता। सर्वार्थसिद्धि का फल मिले तो ठीक, यह वीतराग वाणी नहीं कहती। बराबर है? जयन्तीभाई! और सर्वार्थसिद्धि के भव का कारण जो पुण्य, वह ठीक है, ऐसा आगम नहीं कहता। आगम का सफलपना यह है कि चार गति और चार गति के भाव का अभाव कराता है, ऐसी वीतराग की वाणी में सफलपना है। कहो, समझ में आया इसमें?

तू चैतन्यभवरहित है न! तेरे स्वभाव में भव कैसा? आनन्दकन्द प्रभु ज्ञान की मूर्ति सूर्य है न। देह-देवल के इन रजकण में भिन्न चैतन्य सूर्य अन्दर पड़ा है। उसकी

तुझे पुण्य और पाप के विकल्प और राग की आड़ में वह चैतन्य कौन है, ऐसी तुझे खबर नहीं। वह पुण्य-पाप की आड़ के धुएँ में है। उसे वीतराग कहते हैं कि पुण्य-पाप से रहित कि जिसका आश्रय करने से चार गति का नाश हो, ऐसे चैतन्य प्रभु अखण्डानन्द ज्ञायकमूर्ति का आश्रय कर। ऐसा आगम का चार गति के अभाव करने का सफलपना है। कहो, पहली ही चोट में आगम का सफलपना यह कहा। मीठालालजी! जिसे पुण्य की मिठास है, उसे नहीं रुचता।

मुमुक्षु : मार्ग अलग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। मार्ग अलग है। यह बन्ध का मार्ग है, यह पुण्य शुभभाव है, वह बन्ध का मार्ग है। वह मोक्ष का मार्ग नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि बन्ध के मार्ग का निषेध करनेवाली वाणी है। ऐसा हुआ न भाई पहला? चार गति का अर्थ यह हुआ। फिर मोक्ष कहेंगे। बन्ध के मार्ग का निषेध करानेवाली वाणी है, इसलिए उस वाणी का सफलपना है। ऐई! देवानुप्रिया! लो, ऐसा है। ऐसा कि देशनालब्धि पुण्य बिना नहीं मिलती। ...भाई! परन्तु तुमको बराबर साथ रखा है, हों! एक वकील ऐसा।

मुमुक्षु : यह तो पुण्य की साबिती करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पुण्य की साबिती करे कि ऐसा पुण्य हो तो उसे मिले। परन्तु दृष्टि करने के लिये दोनों निषेध है। दोनों का निषेध आगम कहता है, लो, कहो। इस शब्द का निषेध और शब्द की ओर के झुकाव का निषेध करनेवाली वाणी, इसलिए वाणी का सफलपना है, लो! कहो, ठीक! देवानुप्रिया! देखो!

जो अर्थ—पदार्थ हैं, ऐसा पदार्थ का स्वरूप बताता है। तब बताने में आगम का सफलपना क्या? कि जो आत्म पदार्थ बतावे कि यह वस्तु। ऐसे पाँच अस्तिकाय, छह द्रव्य, उसमें तेरा आत्मा यह कि ज्ञानानन्द प्रभु, चैतन्य सूर्य स्वभाव, वह आत्मा। ऐसे आत्मा की दृष्टि कराता है, राग का अभाव कराता है तो उसके फल का अभाव करावे, यह वाणी का सफलपना है। वीतरागपने को प्राप्त कराने के लिये यह वाणी का सफलपना है। समझ में आया?

उस वाणी को नमस्कार और वह वाणी कथन करनेयोग्य। देखो! न्याय क्या आया? ऐसी वाणी को नमस्कार कि जो भव के अभाव की बात करे। और वह वाणी ही कथन करनेयोग्य है कि जिसमें भव के अभाव का कथन हो। न्याय है या नहीं इसमें? ओहोहो! सर्वज्ञ भगवान के मुख से वाणी निकली तो भव का अभाव है भगवान को। भगवान को भव अब नहीं है। यह देह छूटकर परमात्मा सिद्ध हो जानेवाले हैं। अशरीरी। अरिहन्तपद में हों, तब तक वाणी होती है। वह पद छूट गया। अकेला आत्मा रह गया, वह सिद्धपद है। भगवान विराजते हैं महाविदेहक्षेत्र में (विराजते हैं)। परन्तु कहते हैं कि उस वाणी में सफलपना क्या?

ओहो! आत्मपदार्थ ज्ञानानन्द से भरपूर अतीन्द्रिय आनन्द का रस, चैतन्यरस से भरपूर तत्त्व है। उसकी दशा में विकार जो है भ्रमणा या राग-द्वेष, उसका फल चार गति है। उसके चार गति के निवारण करने का शास्त्र बताता है, इसलिए उस शास्त्र का सफलपना गति के अभाव के कारण है। कहो, समझ में आया? यह शब्द और शब्द की ओर का लक्ष्य, दोनों का निषेध करानेवाली वीतराग की वाणी है। सेठी! भव का अभाव अर्थात् जहाँ राग ही नहीं होता। ऐसी रागरहित आत्मा चीज अन्दर अखण्डानन्द सच्चिदानन्द प्रभु है। उसकी दृष्टि वीतराग के आगम कराते हैं, उसका ज्ञान वीतराग का आगम कराता है, उसकी स्थिरता-रमणता वीतराग का आगम कराता है। इसलिए उस वीतराग के आगम को चार गति के अभाव का कारण हो, इसलिए उसे सफलपना कहा। कहो, समझ में आया इसमें?

पहले तो साधारण बात की कि यह समय कहलाता है। यह प्रतिज्ञा की। प्रणाम और कथन करनायोग्य है। क्योंकि आप द्वारा कहने से सफल है। समझ में आया? परन्तु अब सफल कैसे? कि श्रवण के मुख में से निकली हुई, त्रिलोकनाथ परमात्मा के मुख में से। और शब्दों के सम्बन्ध से कहने में आया हुआ अर्थ। यह कहा क्या वाणी में? अर्थ—पदार्थ। यह पदार्थ और उसका सफलपना इसलिए है कि समय चार गतियों का निवारण करने के कारण.... कहो, समझ में आया? एक बात नास्ति से ली। नीचे है, देखो! फिर आयेगा।

और (२) शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धिरूप 'निर्वाण का परम्परा से कारण' होने

के कारण दूसरी बात। क्या कहा? सर्वज्ञ परमात्मा की ध्वनि में आवाज, आवाज ऐसी आयी। आवाज कहो, वचन कहो, दिव्यध्वनि प्रधान ॐकार। बारह सभा में अन्दर इन्द्रों के सन्मुख में ऐसी वाणी आयी। वह वाणी चार गति का निवारण करने को समर्थ है और शुद्धात्म... यह तो नास्ति से बात की। शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धिरूप निर्वाण। देखो! अकेला आत्मा पूर्ण आनन्दकन्द शुद्ध, उसकी दशा में प्राप्त हो। निर्वाण, ऐसा जो निर्वाण। वापस व्याख्या की। निर्वाण अर्थात् क्या? मोक्ष अर्थात् क्या? कि शुद्ध तत्त्व, आत्मतत्त्व की प्राप्तिरूप अनुभवरूप अकेला शुद्धात्मा प्रथम श्रद्धा, ज्ञान, रमणता करके पूर्ण की प्राप्ति करे, ऐसे निर्वाण का परम्परा से कारण होने के कारण। परम्परा क्यों कहा? वाणी, वह निमित्त है। और वाणी में कहा हुआ भाव अन्दर प्रगट हो, वह साक्षात् कारण है। क्या कहा?

वीतराग की वाणी, वह तो बाह्य निमित्त है। उसका—मोक्ष का मूल कारण आत्मा शुद्ध चैतन्य का अन्तर्मुख होकर ज्ञान, दृष्टि और अनुभव कर, यह साक्षात् मोक्ष का कारण। उसमें निमित्त कारण यह वीतराग की वाणी पड़ती है। आहाहा! इसलिए परम्परा कारण है। साक्षात् कारण तो मोक्ष का मार्ग। समझ में आया? परन्तु यह मोक्षमार्ग इसने बताया। इसलिए उसे निमित्त कारण कहा गया है। जो मोक्षमार्ग समझा, उसके निमित्त कारण कहा गया है। इसलिए उसे परम्परा कारण मोक्ष के कारण में कहा गया है। समझ में आया? भाई! बात तो आत्मा की बात, शास्त्र की बात ही सब सूक्ष्म। कथा-वार्ता होवे तब तो सुनकर प्रसन्न हो जाये और घर में कहे। कि क्या सुनकर आये? उसमें कहना क्या? मगनभाई! आहाहा! देखो न! पहली गाथा से शुरु किया है कि मैं कहूँगा, वह शास्त्र प्रमाण करने लायक और ऐसे ही शास्त्र कथन करने लायक है, हों! क्यों? —कि भगवान के मुख से निकले हुए और उनका सफलपना चार गति का अभाव बतलानेवाला है, इसलिए वह प्रणाम करनेयोग्य और कथन करनेयोग्य है। जिसमें गति और भव मिले, वे शास्त्र कहनेवाले नहीं। वह शास्त्र नहीं। अब गति और भव तो अनादि काल से मिलते आये हैं। और चार गति तथा गति के कारण, ऐसे पुण्य और पाप के भाव तो अनादि काल से करता आया है, उसमें नया क्या किया? भगवान की वाणी ने, यदि वह वाणी सच्ची हो तो? वह वाणी नहीं।

त्रिलोकनाथ परमात्मा की वाणी चार गति का छेद करके, शुद्धात्मतत्त्व की अनुभवरूपी प्राप्ति, ऐसे निर्वाण का परम्पराकारण होने से। कहो, समझ में आया ? अब परतन्त्र और स्वतन्त्र की व्याख्या। समझ में आया ?

परतन्त्रतानिवृत्ति जिसका लक्षण है.... देखो ! यह पहले का। यह चार गति, वह परतन्त्र है। यह मनुष्यगति भी परतन्त्र है। पराधीन से उत्पन्न हुई गति परतन्त्र है। देवगति परतन्त्र। अब परतन्त्र गति से स्वतन्त्र प्राप्ति हो ? गति से मोक्ष हो, मनुष्यगति से हो। यहाँ कहते हैं कि गति के अभाव करने से होता है। ऐई ! देवानुप्रिया ! क्या है ?

मुमुक्षु : प्रेरक निमित्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा। देखो, आया न यह ! प्रेरक निमित्त उसे नहीं कहा। प्रेरक निमित्त उसे नहीं कहा। अभी कर्म को प्रेरक निमित्त कहो। ऐसा कि उसे और प्रेरक निमित्त कब थ ? वह तो जरा भूला। यह तो उदासीन निमित्त है। समझ में आया ? वह है, परन्तु कहते हैं कि उस निमित्त का निमित्तपना कब कहलाये ? कि उससे हटकर जब आत्मा की दृष्टि की, तब उसे निर्वाण की प्राप्ति होती है। तब वह परतन्त्रता की निवृत्ति का कारण है, ऐसा कहा। गति तो परतन्त्रता का कारण है। गति का अभाव, वह परतन्त्रता की निवृत्तिरूप है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गति तो परतन्त्रता है। इसकी निवृत्ति का जिसका लक्षण है। आगम वह बताता है। आहाहा ! मनुष्यगति वह तो मिट्टी है। यह नहीं, परन्तु गति का अन्दर उदय होता है, वह भी उससे निवृत्ति का लक्षण आगम बताता है। आहाहा ! चैतन्य हो, एक बार सम्यक् श्रद्धा तो कर। सम्यक् श्रद्धा (कर) कि मैं तो चैतन्य हूँ। मुझमें गति प्राप्त करने का भाव नहीं और गति मिले ऐसा कोई कारण मुझमें है ही नहीं। ऐसा वीतराग की वाणी पुकारती है। जगत को कठिन पड़ता है।

वे तो ऐसा कहें... पिक्चर बतावे... क्या बतावे कुछ ? पैसे का ऐसा होता है, वैसा होता है। क्या कहलाता है तुम्हारे ?चल निकले आबू में और अमुक में और ढीकना में वहाँ। यह दिसम्बर में क्या कहलाते हैं तुम्हारे आठ-दस दिन। नाताल।

निवृत्त होकर वहाँ जाये। उसमें कोई साधु ऐसा मिल जाये भ्रमणा का करानेवाला। पहले ऐसा करो, ... ऐसा होगा। मरकर जायेगा अब दोनों जनें कहीं। वह शास्त्र ही नहीं कहलाता, सुन! समझ में आया ?

वीतराग के शास्त्र उसे कहते हैं कि जिसमें राग और राग के फल की गति का निवारण करावे और रागरहित वीतरागपद की प्राप्ति करावे, इससे वीतराग की वाणी का सफलपना तो यह है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी स्वतन्त्र हुए नहीं। हैरान हो गये हैं सब। पन्द्रह अगस्त गयी न ?

मुमुक्षु : यादवास्थली हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यादवास्थली हुई है। अन्दर नेताओं में बड़ी-बड़ी वह धमाधम हुई है, अन्दर होली सुलगती है। वह कहे, मैं बड़ा.... वह कहे मैं बड़ा....., वह कहे मैं बड़ा। होली सुलगती है सर्वत्र। धूल में भी नहीं वहाँ। स्वतन्त्र कब था ? हैरान-हैरान है। सिर पर लगाम हाथ में आवे, इसलिए फिर अपने कैसे इकट्ठा करना, इसे ऐसा कैसे करना सगे-सम्बन्धियों को अमुक-अमुक। हैरान-हैरान है। मोहनभाई! कहते हैं, इसमें पैसे बताते नहीं परन्तु पैसे का कारण पुण्य भी भगवान नहीं बताते, ऐसा कहते हैं। उसका ज्ञान कराते हैं। परन्तु उसे करनेयोग्य है, ऐसा वीतराग की वाणी में नहीं आता। आहाहा! क्या एक लक्षण बाँधने से भी आगम का लक्षण बाँधा! इसे आगम कहते हैं। अथवा यह आगम का उपदेश इसे कहते हैं कि जिस उपदेश में भव के अभाव की बात आती हो और मोक्ष की आती हो, उसे वीतराग का उपदेश कहा जाता है। भव की मिठासवाले को तो गले पड़े ऐसा है यह। पकड़ में आये ऐसा नहीं कि क्या कहते हैं यह ? राग... मिठास ऐसी जरा पैसा और धूल और धमाल। आगम हो, उसमें पूरा यह सिद्धान्त है।

आगम उसे कहते हैं कि जिसमें भव का छेद करावे और अभव ऐसा आत्मा के स्वभाव की प्राप्ति करावे। बस! आत्मस्वभाव की प्राप्ति करावे, उसे आगम कहते हैं।

उसके आगम में उपदेश ऐसा आता है। चारों अनुयोग में.... कोई कहे, अमुक आगम में ऐसा कहते हैं, चारों अनुयोग। कथा हो, चरण, करणानुयोग हो, द्रव्यानुयोग हो या करणानुयोग हो परिणाम की बात।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बात जरा तीव्र राग को घटाने के लिये इतनी अपेक्षा से बात (की है)। मूल बात यह है नहीं। समझ में आया ?

यहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्य की टीका करते हुए पाठ में लिया है या नहीं? 'चदुग्गदिणिवारणं सणिब्बाणं।' मूल पाठ कुन्दकुन्दाचार्य का पाठ है, देखो! क्या निकला महाश्रमण के मुख की वाणी में? कि 'चदुग्गदिणिवारणं सणिब्बाणं।' अस्ति-नास्ति की है। चार गति के अभाव की वाणी और आत्मा के मोक्ष की निर्वाणपद की बतानेवाली वाणी है। इसमें कहीं भव मिले (ऐसी बात नहीं आयी)।

मुमुक्षु : अच्छा भव मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : भव कब अच्छा था धूल का? स्वर्ग हो या नरक। यहाँ तो परतन्त्र कहा नहीं? क्या कहा चारों को? चारों ही गति परतन्त्र है। यह सर्वार्थसिद्धि के देव भी परतन्त्र गति में हैं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसी है बस बात। क्योंकि उसकी दृष्टि में स्थूलता घुस गयी है न इसलिए ऐसा कि मिथ्या मान्यता, वह पाप ही दिखता नहीं। कोई राग-द्वेष हो, किसी को मारता हो, किसी को बचाता हो तो कोई पुण्य से धर्म दिखाई दे। धर्म धूल में भी नहीं। अन्दर विपरीत मान्यता... अनादि-अनन्त प्रभु चैतन्य, उसकी अन्तर में जो धर्म की दृष्टि से झेलना चाहिए आत्मा को, उस दृष्टि से झेले नहीं और राग और पुण्य को मानकर उसमें से धर्म होता है, यह माननेवाला मिथ्यात्वभाव आत्मा का खून करनेवाला है। ओहोहो! जिस वाणी में राग से लाभ मनावे, वह वाणी चैतन्य का खून करनेवाली है। वह वाणी आगम की नहीं है। बराबर है? भाई प्रकाशदासजी! कहो, बराबर है? क्या चलता है? अभी तो बहुत चलता है।

अरे! भगवान! परमात्मा सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। वह जलहलता सूर्य महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। आता है या नहीं? नहीं आता? वर्तमान विहरमान भगवान। सीमन्धर भगवान हैं। पाँच सौ धनुष की देह है, पाँच सौ धनुष की। दो हजार हाथ ऊँचे और करोड़ पूर्व का आयुष्य भगवान का। महाविदेहक्षेत्र में नीचे, हों! अभी मनुष्यरूप से विराजमान हैं। अरिहन्त केवली त्रिलोकनाथ तीर्थकर। खबर भी नहीं होती। भगवान जाने। कमाना, ऐई! कमाना अर्थात् रोना। रोना पूरे दिन राग में, राग और राग और द्वेष और राग और द्वेष और ममता में रोना।भाई!

त्रिलोकनाथ परमेश्वर जलहलता चैतन्यसूर्य। यह सूर्य जैसे उगता है, शाम को अस्त होता है। वह तो ऐसे के ऐसे हैं अभी। अरबों वर्ष से हैं, अरबों वर्ष से हैं। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज संवत् (४९) में गये थे। तब वहाँ गये थे तो भी थे और अभी हैं। कुन्दकुन्दाचार्य तो स्वर्ग में गये। भगवान तो विराजते हैं और अभी तो आगामी तेरहवें तीर्थकर के समय मोक्ष होनेवाला है। आगामी चौबीसी के तेरहवें तीर्थकर होंगे, तब देह छूटकर मोक्ष होगा। ऐसे भगवान की वाणी में कहते हैं कि यह वाणी ऐसा कहती है और उसे आगम कहते हैं कि चार गति और उसके कारण और गति का अभाव करने का बताता है। ओहोहो! परन्तु सुनने में? सुनने का ही यह। भगवान ऐसा सुनाते हैं। और भगवान के सन्त और मुनि भी यही सुनाते हैं, सम्यग्दृष्टि भी यही सुनाते हैं। भगवान ने कहा हुआ यह सुनाते हैं।

कहते हैं, यह चार गति परतन्त्रता है। उसकी निवृत्ति जिसका लक्षण है? समझ में आया? ऐसे फलवाला आगम है, ऐसा कहते हैं। ऐसे फलवाला आगम है। परतन्त्रता की निवृत्ति। यह परतन्त्र। इस स्वतन्त्रता को पाकर यह सब ढिंढोरा पीटते हैं न? फिर ऊँचे ध्वजा चढ़ाते हैं। क्या कहलाता है उसका बड़ा ध्वजा दण्ड। राष्ट्रध्वज। स्वतन्त्र हुए। धूल में भी हुए नहीं। हैरान-हैरान है। होहोकार होकर हा-हो और हरिफाई। अरे! आत्मा, उसे चार गति और चार गति के भाव से निवृत्ति का ज्ञान और श्रद्धा-ज्ञान करे, उसे स्वतन्त्रता कहा जाता है। आहाहा! है या नहीं भाई इसमें? दाणी! इसमें है या नहीं इसमें? क्या कहा?

परतन्त्रता निवृत्ति... किसके ऊपर लिया? यह ऊपर। वह नारक आया था न।

चार गतियों का निवारण करने के लिये। अर्थात् कि परतन्त्रता की निवृत्ति जिसका लक्षण। ऐसा उसके ऊपर लिया। चार गति की परतन्त्रता है। यह निर्धन, इसलिए परतन्त्रता; रोग, इसलिए परतन्त्रता - ऐसा नहीं है। यह गति की प्राप्ति परतन्त्रता है। आहाहा! कहो, जैचन्दभाई! यह गति की प्राप्ति, वह गति परतन्त्रता। अब स्वतन्त्र होना हो तो कहते हैं, उस गति की रुचि छोड़। आहाहा! ऐसा भगवान की वाणी में उपदेश यह है। इस उपदेश से दूसरा उपदेश करे, वह भगवान का उपदेश नहीं। वीतराग त्रिलोकनाथ का उपदेश यह होता है, दूसरा नहीं होता। इसलिए तो लक्षण पहले आगम का, ऐसा आगम उसका.....

अहो! भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु चैतन्य जलहलता सूर्य प्रभु आत्मा है। उसमें—स्वरूप में राग-द्वेष नहीं। पर्याय में है, उसका आश्रय छोड़। उसका आश्रय। देखो! इसमें तो वह का वह वापस कहा द्रव्यदृष्टि का विषय है। राग का अभाव करने के लिये स्वभाव में राग नहीं है, ऐसा त्रिकाल स्वभाव, उसकी दृष्टि कराते हैं, उसका ज्ञान कराते हैं, उसमें लीनता कराते हैं, वह आगम का उपदेश है। वह आगम का उपदेश राग में रखे, वह व्यवहार का राग है, वह रखनेयोग्य है, यह आगम का उपदेश ऐसा नहीं होता। आहाहा! गजब व्याख्या परन्तु भाई! समझ में आया?

परतन्त्रतानिवृत्ति जिसका लक्षण है.... एक लक्षण से तो विकार और विकार का फल, शुभभाव और शुभ का फल, सब परतन्त्र है। उससे निवृत्ति बतावे, उसे वीतराग का उपदेश कहा जाता है। उसे परमेश्वर, जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ सौ इन्द्र के पूजनीक, ऐसे भगवान का उपदेश तो उसे कहा जाता है कि जिस उपदेश में गति का अभाव करने की बात आवे तो वह उपदेश भगवान का है। समझ में आया? **परतन्त्रतानिवृत्ति जिसका लक्षण है....** कहीं जरा रखे गति, वह स्वतन्त्रता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? (लोग कहे) अब अपने को राज मिला। स्वतन्त्र हुए। क्या मिला तुझे? तेरे पास क्या आया? लोकतन्त्र है। लोकतन्त्र अर्थात् तेरे पास क्या आया? अभिमान आया। हमको यह मिला। यह अभिमान बिना की अन्तर चीज ज्ञानानन्द है, उसे भगवान गति और गति के कारण, उनका अभाव कराने का भगवान का उपदेश है। उस उपदेश के

लक्षण को भी जो न जाने वह वीतराग की वाणी को, आगम को पहिचान नहीं सकता। ओहोहो! पहले से (यह) ? सीढ़ियाँ तो बताओ थोड़ी। सीढ़ियाँ ही यह है, कहते हैं। दृष्टि में गति के कारण का छेद हो, वह दृष्टि कर। समझ में आया ? गति के कारण की रुचि छूटे, स्वभाव की रुचि कर, उसे भगवान के आगम का उपदेश कहा जाता है। राग में अस्थिरता है, उसे छोड़ और स्वभाव में आ। ऐसा भगवान की वाणी का परतन्त्रता की निवृत्ति का उपदेश है। यह सब परतन्त्र होंगे सब पैसेवाले तुम ? ऐई! मोहनभाई!

मुमुक्षु : पैसा चाहिए, उसका नाम ही परतन्त्रता।

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारे पैसे की आवश्यकता पड़ती है। बस! इतना कहते हैं कि हम पराधीन हैं। हमें इसके बिना चलता नहीं, यही पराधीन। इस पर के बिना चले, ऐसा जो आत्मा, राग और विकल्प और पर के बिना चला सके, ऐसा आत्मा वह गति के अभाव का कारण है। ऐसे आत्मा की दृष्टि वीतराग के उपदेश में आती है। आहाहा! वाह रे वाह ! ऐ... ! देवानुप्रिया ! इसमें कोई हलमल हो, ऐसा नहीं है, हों ! भले तर्क करे परन्तु इसमें कुछ हो, ऐसा नहीं है।

पहले धड़के भगवान के मुख में....

समणमुहुग्गदमट्टं चदुग्गदिणिवारणं सणिव्वाणं ।

एसो पणमिय सिरसा समयमिणं सुणह वोच्छामि ॥२ ॥

आहाहा! उसे वन्दन करके और इसे मैं कहूँगा, उसे तू सुन, उसे तू सुन। दूसरे की बात सुनना नहीं। पुण्य-पाप के भाव और उसके फल की मिठास बतावे, उस वाणी को सुनना नहीं। वह वाणी वीतराग की नहीं। आहाहा! इसमें से निकलता है या नहीं ? ऐई! मोहनभाई!

मुमुक्षु : पुण्य का फल गति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य का फल गति है—बन्ध। बन्धन के कारण को छेदने का बताते हैं। वह वीतराग की वाणी। बन्ध बतलावे, वह वाणी कहलाये ? उसका ज्ञान करावे। परन्तु बन्ध का आदर करावे, वह वीतराग की वाणी होगी, वह उपदेश होगा, —(ऐसा) कभी नहीं हो सकता। समझ में आया ?

मुमुक्षु : पुरुषार्थ का कार्य करना चाहिए न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तो यह पुरुषार्थ नहीं यह ? पुरुषार्थ में कूदना है कहीं बाहर ? देवानुप्रिया ! क्या है ? ऐसा कि, यह व्यापार-धन्धा करना, वह पुरुषार्थ किसका होगा ? पुरुषार्थ कहाँ रहता होगा ? पुरुषार्थ कहाँ रहता होगा ? आत्मा में। तब पर में क्या करता होगा वह ?

मुमुक्षु : बाहर के साथ उसे कुछ सम्बन्ध होगा न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ नहीं होता। कैसे है ? देवानुप्रिया ! आत्मा है, उसमें वीर्य रहता है आत्मा का। वीर्य अर्थात् पुरुषार्थ। वह उसकी पर्याय में पुरुषार्थ उसे कहते हैं कि जो पुण्य और पाप के राग में पुरुषार्थ करे, उसे पुरुषार्थ नहीं कहा जाता। उस पुरुषार्थ का निषेध वीतराग की वाणी कराती है।

आत्मवीर्य, स्वरूप की रचना करे, उसे आत्मवीर्य कहते हैं। राग की रचना करे, उसे आत्मवीर्य नहीं कहा जाता। समझ में आया ? देवानुप्रिया ! जरा एक टहुको मारे अन्दर थोड़ा। स्पष्टीकरण करने के लिये। और वह भरी हों न विपरीतता वहाँ की। कोई कोई रह गयी हो। कहो, समझ में आया ?

कहते हैं, आहाहा ! एक तो शास्त्र उसे कहना और उसे वाँचन करना, उसे सुनना, उसे विचारना कि जो शास्त्र राग के अभाव की बात करे और आत्मा के स्वभाव की पूर्णता की प्राप्ति का उपाय बतावे, उसे आगम कहते हैं। उसे विचारना, उसे सुनना, उसे देखना।

मुमुक्षु : सुनना पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो सुनने का 'सुणह' कहा है न। 'सुणह' इस शास्त्र को सुन। है न ? पाठ में है देवानुप्रिया ! 'समयमिणं सुणह' है न ? सुन, सुन। आहाहा ! पिता भी कहते हैं न लड़के को। सुन एक बार। एक बार मैं कहता हूँ वह सुन। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, एक बार हमारी बात सुन। विकार के अभाव की और वीतराग स्वभाव की प्राप्ति की (बात) एक बार हमारे पास सुन। सुननेवाला अभी तो उसे ऐसा कहते हैं। कोई कहे कि यह तो कोई दूसरे के लिये दिया। सुना नहीं, उसे कहते हैं कि सुन, हम

कहते हैं वह बात। कहो, समझ में आया? यह रचना ही कोई कुन्दकुन्दाचार्य की ऐसी है न। चाहे जहाँ से निकालो बात यथार्थ। आहाहा! 'बोच्छामि' और यह मैं कहूँगा। वीतराग के मुख से वाणी निकली, आत्मस्वभाव की प्राप्ति की, विभाव के अभाव की। यह बात मैं कहूँगा। हे जीवों! श्रवण करो। समझ में आया?

परतन्त्रतानिवृत्ति जिसका लक्षण है और स्वतन्त्रताप्राप्ति जिसका लक्षण है.... देखो! मोक्ष। दूसरा बोल। शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धि.... अर्थात् अनुभवरूप पूर्ण 'निर्वाण का परम्परा से कारण'.... ऐसी जो वाणी। वह कैसी है? कि स्वतन्त्रता प्राप्ति जिसका लक्षण, ऐसे फलसहित आगम है। स्वतन्त्रता की प्राप्ति, वह स्वतन्त्रता। शुद्ध आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता द्वारा पूर्ण शुद्ध की प्राप्ति, वह स्वतन्त्रता। बाकी कोई स्वतन्त्रता है नहीं। वह निर्वाण आत्मा की मोक्षदशा हो, वह स्वतन्त्रता की प्राप्ति। कहो, बराबर है? कितने पराधीन होंगे, यह सब अब यह सब। चिल्लाहट मचाये कि हम ऐसे हो गये, हम स्वतन्त्र हो गये। सेठी! झण्डा चढ़ाओ। ... वह तो जड़ है। सुन न! वहाँ कहाँ स्वतन्त्रता आयी? यहाँ झण्डा चढ़ा, कहते हैं। रस्सी को चढ़ा सूत्र सम्यग्ज्ञान को। राग और पुण्य से भिन्न करके ज्ञान को आत्मा पर चढ़ा। यह स्वतन्त्रता की प्राप्ति का उपाय है। बाकी कोई उपाय नहीं है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ११, बुधवार, ११-१२-१९६३, गाथा-२-३, प्रवचन-६

षट्द्रव्य का स्वरूप भगवान तीर्थकरदेव ने कहा, उसी व्याख्या है। पहली गाथा में तो मांगलिक किया था और इस दूसरी गाथा में कहते हैं... भावार्थ। टीका आ गयी है।

भावार्थ :- वीतरागसर्वज्ञ महाश्रमण के मुख से निकले हुए.... भावार्थ की पहली लाईन। वीतरागसर्वज्ञ महाश्रमण के.... महासन्त साधु। उनके मुख से निकले हुए शब्दसमय को कोई आसन्नभव्य.... कोई आसन्न भव्य (अर्थात्) नजदीक जो मुक्ति के योग्य ऐसे आत्मा। सुनकर.... भगवान ने कहे हुए पंचास्तिकाय, छह द्रव्य का स्वतन्त्र स्वरूप क्या है, उसे सुनकर।

मुमुक्षु : आसन्नभव्य...

पूज्य गुरुदेवश्री : आसन्न भव्य अर्थात् नजदीक मुक्तिगामी ऐसा कहा। अर्थ अभी हो गया। मुक्ति जिसे समीप है। अल्प काल में मुक्ति के योग्य है। आसन्न-नजदीक, भव्यता—जिसकी भव्यता नजदीक है। मुक्ति की योग्यता नजदीक है। ऐसे पुरुष सुनकर, उस शब्दसमय के वाच्यभूत.... भगवान ने षट्द्रव्य और पंचास्तिकाय त्रिलोकनाथ ने कहा। उनके शब्द का वाच्य अर्थात् भाव क्या? पदार्थ? शब्द में कहा हुआ पदार्थ पंचास्तिकायस्वरूप अर्थ समय को जानता है.... पंचास्तिकाय में काल भी इकट्ठा अस्तिरूप से आ जाता है। पंचास्तिकाय स्वरूप अर्थ अर्थात् पदार्थ के, पदार्थ समय अर्थात् पदार्थ के, पदार्थ को ही पदार्थसमय कहा जाता है। जानता है। जो कोई नजदीक मुक्ति के गामी आत्मायें आसन्नभव्य भगवान की वाणी इस प्रकार सुनता है और उसमें कहे हुए अर्थ को जानता है।

और उसमें आ जानेवाले.... किसके अन्दर? पंचास्तिकाय के स्वरूप के पदार्थ में आ जाता है। शुद्धजीवास्तिकायस्वरूप अर्थ में... आत्मा शुद्ध चैतन्य, वह पुण्य के-पाप के विकल्प राग उठें, उनसे भिन्न, कर्म शरीर से भिन्न ऐसा पंचास्तिकाय में शुद्ध जीवास्तिकाय का गर्भित स्वरूप उसमें आ गया है। ऐसा शुद्ध चैतन्य आनन्द ज्ञायकमूर्ति

पूर्ण स्वभाव ऐसे स्वरूपरूप अर्थ अर्थात् पदार्थ, ऐसा आत्मा शुद्ध जीवास्तिकाय असंख्य प्रदेशी पूर्ण पवित्र का धाम, असंख्य प्रदेशी भगवान अपना आत्मा, ऐसे अर्थ अर्थात् पदार्थ में वीतराग निर्विकल्प समाधि द्वारा स्थित रहकर.... पहली तो दृष्टि वीतराग होती है कि मैं एक आत्मा शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द, पुण्य-पाप के राग और शरीर और कर्म से रहित ऐसी अन्तर में सम्यक् दृष्टि पहले होती है, वह भी एक वीतरागी निर्विकल्प समाधि और शान्ति कहने में आती है। समझ में आया ?

पहले धर्म की दृष्टि में भगवान त्रिलोकनाथ वीतराग के मुख में निकले हुए पंचास्तिकाय में यह शुद्ध जीवास्तिकाय। मैं शुद्ध हूँ, पवित्र हूँ, अखण्ड आनन्द का कन्द आत्मा हूँ। एक रजकण भी मुझमें नहीं और दया, दान, काम, क्रोध के विकल्प उठें, वह भी मेरी जाति में, स्वरूप में नहीं। ऐसे शुद्ध जीव को अन्तर्दृष्टि से अनुभव करके, प्रतीति करके अपने अर्थ को शान्तभाव से परिणमकर सम्यग्दर्शन प्रथम प्रगट करे, पश्चात् स्वरूप में स्थिरता का चारित्र प्रगट करे। भाई! देखो! यह दर्शन और चारित्र। आहाहा! शुद्ध जीव अस्ति—है, काय अर्थात् असंख्य प्रदेश, ऐसा जो स्वरूप, ऐसा जो आत्मा।

देखो! वीतराग निर्विकल्प समाधि द्वारा.... पहला तो सम्यग्दर्शन, यह श्रद्धा द्वारा पूरा पूर्ण आनन्द और शुद्ध जीव का अनुभव-ज्ञान करके प्रतीति करे, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। और तदुपरान्त फिर स्वरूप में वीतराग निर्विकल्प समाधि अर्थात् चारित्र। अन्तर में जो वस्तु ज्ञायकभाव चैतन्यसूर्य प्रभु, जो अन्तर में प्रतीति में स्वपदार्थ आया था, ऐसे सम्यग्दर्शन के पश्चात् जो स्वरूप दृष्टि में आया था, उस स्वरूप में स्थिरता का प्रयत्न करे, उसे निर्विकल्प चारित्रदशा कहते हैं। कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : टिकने का, स्थिर रहने का।

जो स्वरूप अपना है; पुण्य-पाप जो राग आता है दया, दान, वह सब राग है, हिंसा, झूठ वह पाप राग है, उससे भिन्न शुद्ध जीवास्तिकाय जैसा निर्मल भगवान का आत्मा है पर्याय में, वैसा मेरा स्वभाव निर्मल है। ऐसा निर्मल स्वभाव, ऐसा स्व-अर्थ अर्थात् पदार्थ, उसकी अन्तर्मुख दृष्टि करके सम्यग्दर्शन प्रगट करके, पश्चात् स्वरूप में

शान्ति की प्राप्ति के लिये स्वरूप में स्थिरता-रमणता अन्दर चरना,चारित्र अर्थात् चरना, रमना, जमना, लीन होना अन्तर स्वरूप में। ऐसी वीतराग निर्विकल्प समाधि द्वारा स्थित रहकर.... टिककर। लो, यह उपाय—यह मोक्षमार्ग। अपना शुद्धस्वरूप अन्तर आनन्दकन्द ज्ञायकमूर्ति पूर्ण स्वरूप परमात्मा अपना निज स्वरूप द्रव्य है। उसमें दृष्टि लगाकर श्रद्धा करना और स्थिरता करके चारित्र करना। यह भगवान ने कहे हुए शास्त्रों में पंचास्तिकाय, उसमें शुद्ध जीवास्तिकाय का ज्ञान करके उसकी दृष्टि की, उसमें स्थिरता करके चार गति का निवारण करके,.... लो। चारों ही गति का। स्वर्ग की गति भी पुण्य के कारण मिलती है। यह पुण्य भी विकार है, दोष है। उस दोष से रहित (हो), उसे चार गति का निवारण होता है, उसे चार गति में उपजना नहीं पड़ता। समझ में आया ?

निर्वाण प्राप्त करके,.... लो! निर्वाण को प्राप्त करके। किस उपाय द्वारा ? यह उपाय भी साथ में कह दिया। शुद्ध चैतन्य ज्ञानानन्द निर्मल पवित्र धाम भगवान को अन्तर में दृष्टि में लेकर स्थिरता करके निर्विकल्प शान्ति द्वारा, चार गति का निवारण अर्थात् व्यय—नाश और मोक्ष की उत्पत्ति, निर्वाण की प्राप्ति, परम शान्ति के अनाकुल भाव की प्राप्ति। लो, इसका नाम मोक्ष। बहुत संक्षिप्त शब्द में दूसरी गाथा का सार भावार्थ में कहा।

पश्चात् क्या प्राप्त करे उसमें निर्वाण में—मोक्ष में ? कि स्वात्मोत्पन्न.... आत्मा से उत्पन्न हुआ अतीन्द्रिय आनन्द। मोक्ष अर्थात् क्या ? संसार अर्थात् क्या ? कि संसार अर्थात् दुःख की उत्पत्ति का भाव, वह संसार। पुण्य और पाप, काम और क्रोध भ्रमणा मिथ्या आदि। यह सब दुःखरूप, इसलिए संसार। शुद्ध चैतन्यमूर्ति आनन्द में अन्तर अनुभव की दृष्टि करके, पश्चात् स्थिरता से उस दुःख का नाश किया, उसने चार गति का अभाव किया। उसे आत्मा की मुक्ति हो—मोक्ष होता है। कैसा मोक्ष ? कि स्वात्मोत्पन्न.... सुख। आत्मा के अन्तर में से प्रगट हुआ आनन्द जिसे प्रगट होता है।

अनाकुलतालक्षण.... जो आकुलता का अभाव, अनाकुलता आनन्द जिसका लक्षण है। अनन्त सुख को प्राप्त करता है। वह जीव अनन्त आनन्द को प्राप्त करे, उसे

मुक्ति कहा जाता है। इस कारण से द्रव्यागमरूप शब्दसमय.... देखो! अब सार। ऐसे हेतु से यह वीतराग की वाणी त्रिलोकनाथ परमात्मा जैन परमेश्वर के मुख्य से निकली हुई वाणी। वह शब्दसमय नमस्कार करने.... वह शब्द नमस्कार करनेयोग्य है, ये शब्द। चिल्लाहट मचाये। भगवान की वाणी जो निकली वह वीतरागरूप से और पंचास्तिकाय का स्वरूप बताकर, जीवास्तिकाय का स्वरूप बताकर, उसके उपाय को बताकर जो मोक्ष होता है इस प्रकार, ऐसा जो शब्द आगम, वह नमस्कार करने के योग्य है। वह वाणी भी नमस्कार करने की योग्य है। ...भाई! लो, अब यह शब्द जड़। भाई! जड़, परन्तु उसमें भाव समझाने की निमित्तता है, इसलिए उसे वन्दन करनेयोग्य शुभभाव ऐसा आये बिना रहता नहीं। भगवान के आगम।

द्रव्यागम.... अर्थात् वाणी। मुख से निकली हुई या लिखी हुई। पाठ में लिखा है, वीतराग के मुख से निकली हुई वाणी, हों! दूसरे कल्पना से किसी ने किया हुआ, वह नहीं। द्रव्यागमरूप शब्दसमय.... शब्दसमय नमस्कार करने तथा व्याख्या करनेयोग्य है। ऐसी ही वाणी नमस्कार करने के योग्य है और उसका ही उपदेश करने के योग्य है। दूसरा उपदेश करने के योग्य वाणी नहीं है। त्रिलोकनाथ के मुख से निकली हुई, परमात्मा परमेश्वर उन्होंने आत्मा का शुद्ध स्वभाव बताया, उसमें लीन होकर मुक्ति को प्राप्त करे, चार गति का निवारण करे। नीचे है जरा देखो। ऊपर आ गया है उसका।

चार गति का निवारण (अर्थात् परतन्त्रता की निवृत्ति).... चार गति का निवारण अर्थात् परतन्त्रता की निवृत्ति हो उसे और निर्वाण की उत्पत्ति (अर्थात् स्वतन्त्रता की प्राप्ति) वह समय का फल है। भगवान के आगम का यह फल है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहाँ उसकी बात ? स्वतन्त्र पूर्ण है और अटके कब ? पूर्ण स्वतन्त्र हो गये सिद्ध भगवान। मुक्त में पूर्ण स्वतन्त्र। कथंचित् स्वतन्त्र, कथंचित् परतन्त्र, ऐसा नहीं है। ऐसा कितने ही कहते हैं। स्वतन्त्र है, जीवों को यह बात, यह बात वीतराग की अन्तर में बैठना, अनन्त काल में उसे सम्यग्दर्शन हुआ नहीं। चारित्र तो किसका हो सम्यग्दर्शन बिना। अभी सम्यग्दर्शन बिना, क्या चीज़ है, उसका अनुभव बिना उसे

स्थिरता प्रगट नहीं होती। स्वतन्त्र। सर्वथा स्वतन्त्र। आत्मा शुद्ध चिदानन्द प्रभु, ऐसा भगवान ने कहा। उसमें स्थिर होकर निर्विकल्प शान्ति द्वारा पूर्ण अनन्त अनाकुल सुख की प्राप्तिरूप मोक्ष को प्राप्त करे, वह स्वतन्त्र है। चार गति परतन्त्रता का उसे नाश होता है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : एक अन्तर्मुहूर्त में हो जाता है। किसने इनकार किया ? अन्तर्मुहूर्त में होता है, परन्तु करे उसे न! क्या है ? करे पुरुषार्थ उसे न ? एक महीने में करोड़ रुपये पैदा हों। कहो। परन्तु किसे ? जिसका पुण्य हो उसे न ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता है। इतना पुरुषार्थ करे और सम्यग्दर्शन इतना करे तो न हो, ऐसा कभी नहीं होता। उल्टा पुरुषार्थ करता है। या राग को लाभ का कारण मानता है, या निमित्त को लाभ का कारण मानता, या पुण्यभाव को धर्म कारण मानता है। या व्यवहार करते-करते निश्चय होगा, या बाहर की क्रिया करते-करते धर्म प्राप्त होगा, ऐसी दृष्टि का पुरुषार्थ तो उल्टा है। क्या पुरुषार्थ करता है ? और कितने आते हैं अन्दर से शल्य ? अन्दर से आते नहीं ? डोकिया मारता है अन्दर, ऐसा हो... ऐसा हो। देवानुप्रिया !

भगवान आत्मा ने परमात्मा त्रिलोकनाथ ने आत्मा कहा, ऐसा ज्ञान में आकर प्रतीति अन्तर में करे और सम्यग्दर्शन न हो (ऐसा) तीन काल में नहीं होता। परन्तु यह रीति पकड़े बिना उल्टा करने जाये तो वह सम्यग्दर्शन होगा नहीं। सम्यग्दर्शन बिना चारित्र होगा ? करो चारित्र, लो व्रत। क्या व्रत ? कहाँ था चारित्र ? व्रत तो राग है। अभी व्रत ले वह। अन्दर स्वरूप में चिदानन्द मूर्ति ज्ञाता-दृष्टा का भान होने के बाद स्वरूप में शान्ति के वेदन में उग्ररूप से अन्तर में जाये, लीनता वीतरागी परिणति प्रगट हो, उसे भगवान चारित्र कहते हैं। चारित्र कहीं देह की क्रिया और यह वह क्रिया चारित्र नहीं है। अरे ! पंच महाव्रत के अहिंसा के परिणाम वह भी राग है, वह चारित्र नहीं। बात कहाँ इसने सुनी है कब ? और जैसा है, वैसा जाने और श्रद्धा करे और सम्यक् न हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता। जितना कारण चाहिए उतना दिया नहीं इसलिए सम्यग्दर्शन

होता नहीं। ऐसा है इसका अर्थ। बराबर है? महेन्द्रभाई! यह प्रश्न नारद है। प्रश्न को छंछेड़कर अन्दर (स्पष्ट कराता है)। कहो, समझ में आया?

भगवान ने कहे हुए पदार्थ को, जैसा पदार्थ आत्मा कहा.... भगवान ने छह द्रव्य कहे, उसका ज्ञान करके आत्मा वस्तु शुद्ध चिदानन्द असंख्य प्रदेशी अर्थात् काय। अनन्त गुण का धाम ऐसा अस्ति। ऐसा जीवास्तिकाय अपना। शरीर, वाणी, मन की क्रिया जड़ से पर और पुण्य-पाप के विकल्प दया, दान, काम, क्रोध के उठें, उनसे पर ऐसा शुद्ध जीवास्तिकाय ऐसा अन्तर ज्ञान करे और उसके सन्मुख की प्रतीति करे और अनुभव और सम्यग्दर्शन न हो, (ऐसा) तीन काल में बनता नहीं। परन्तु पकड़े दूसरी पद्धति कि ऐसा करूँगा तो ऐसा होगा, ऐसा करूँगा तो ऐसा होगा, कुछ दया पालूँगा, कुछ भक्ति करूँगा, कुछ व्रत करूँगा, कुछ त्याग करूँगा, उसमें से सम्यग्दर्शन होगा। वह तो मिथ्यादर्शन है। समझ में आया?

जो रास्ता लेना हो भावनगर का और चले ऐसे ढसा की ओर। ढसरडा हो। भावनगर नहीं आवे। ऐसा देखो न पूर्व में भावनगर और पश्चिम में ढसा है। भावनगर आत्मा। अखण्ड ज्ञान, दर्शन, आनन्द का नगर आत्मा है। जिसके सिर पर नगर-कर नहीं अर्थात् विकार-फिकार उसमें है ही नहीं। कर्म का सम्बन्ध तो नहीं परन्तु विकार का अन्दर कर नहीं। ऐसा चिदानन्द मूर्ति अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसकी अन्तर्मुख दृष्टि करे और आत्मा का अनुभव करे तो सम्यग्दर्शन होता ही है। परन्तु इस प्रकार करे तो (होता है)। दूसरे प्रकार से करने जाये तो होगा नहीं। राग की मन्दता करो, दया पालो, व्रत पालो, यह पालो और होगा। वह तो राग है। राग करते-करते सम्यग्दर्शन हो, यह दृष्टि मिथ्यात्व है—श्रद्धा मिथ्यात्व है। मूल बाधा ही श्रद्धा में है। समझ में आया? कहो, मीठालालजी! क्या प्रकाशचन्दजी! यह दिक्कत कहाँ है? दृष्टि में दिक्कत है जगत को। आहाहा!

पहला दर्शन हो (अर्थात्) कपाट खुल जाये। फिर तो कैसे अन्दर स्थिरता करना, वह पुरुषार्थ की गति का ख्याल आवे। पुरुषार्थ करने का तो जितना अन्दर काम करे, उतना कर सकता है। कोई हठ करके हो, ऐसी भी चीज़ नहीं है। ऐसी यह चीज़-वस्तु है भाई! आहाहा! भगवान सर्वज्ञ ने कहा हुआ आत्मा जो जानने में आवे और उसका

कल्याण न हो, यह तीन काल में नहीं होता। यह जाने बिना मर जाये दूसरा कर-करके। व्रत पालकर और अपवास कर-करके सूख जाये तो भी एक भव घटे नहीं। उसे जन्म-मरण मिटते नहीं। मिथ्यात्व का नाश होता नहीं। कहो, समझ में आया ?

ऐसी वीतराग की वाणी। वीतराग की वाणी यहाँ कहेंगे, देखो! वीतराग की वाणी वीतरागता बतलाती है। वीतराग की वाणी और राग करने का बतावे नहीं। वीतराग आत्मा शुद्ध समभावी प्रभु, उसे बताती है। उसकी श्रद्धा-ज्ञान और रमणता कर तो तेरा कल्याण होगा।

गाथा - ३

*समवाओ पंचणहं समउ त्ति जिणुत्तमेहिं पण्णत्तं।
सो चेव हवदि लोओ तत्तो अमिओ अलोओ खं॥३॥

पंचास्तिकाय समूह को ही समय जिनवर ने कहा।
यह समय जिसमें वर्तता वह लोक शेष अलोक है॥३॥

अन्वयार्थ :- [पंचानां समवादः] पाँच अस्तिकाय का समभावपूर्वक निरूपण [वा] अथवा [समवायः] उनका समवाय (-पंचास्तिकाय का सम्यक् बोध अथवा समूह) [समयः] वह समय है, [इति] ऐसा [जिनोत्तमैः प्रज्ञप्तम्] जिनवरों ने कहा है। [सः च एव लोकः भवति] वही लोक है। (-पाँच अस्तिकाय के समूह जितना ही लोक है।) [ततः] उससे आगे [अमितः अलोकः] अमाप अलोक [खम्] आकाशस्वरूप है।

टीका :- यहाँ (इस गाथा में) शब्दरूप से, ज्ञानरूप से और अर्थरूप से (शब्दसमय, ज्ञानसमय और अर्थसमय) — ऐसे तीन प्रकार से 'समय' शब्द का अर्थ कहा है तथा लोक-अलोकरूप विभाग कहा है।

वहाँ, (१) 'सम' अर्थात् मध्यस्थ यानि जो रागद्वेष से विकृत नहीं हुआ; 'वाद' अर्थात् वर्ण (अक्षर), पद (शब्द) और वाक्य के समूहवाला पाठ। पाँच अस्तिकाय का 'समवाद' अर्थात् मध्यस्थ (रागद्वेष से विकृत नहीं हुआ) पाठ (मौखिक या शास्त्रारूढ़ निरूपण) वह शब्दसमय है, अर्थात् शब्दागम, वह शब्दसमय है। (२) मिथ्यादर्शन के उदय का नाश होने पर, उस पंचास्तिकाय का ही *सम्यक् अवाय अर्थात् सम्यक् ज्ञान,

* मूल गाथा में 'समवाओ' शब्द है; संस्कृत भाषा में उसका अर्थ 'समवादः' भी होता है और 'समवायः' भी होता है।

* समवाय = (१) सम्+अवाय; सम्यक् अवाय; सम्यक् ज्ञान। (२) समूह। (इस पंचास्तिकायसंग्रह शास्त्र में यहाँ कालद्रव्य को कि जो द्रव्य होने पर भी अस्तिकाय नहीं है उसे - विवक्षा में गौण करके 'पंचास्तिकाय का समवाय वह समय है।' ऐसा कहा है; इसलिए 'छह द्रव्य का समवाय वह समय है' ऐसे कथन के भाव के साथ इस कथन के भाव का विरोध नहीं समझना चाहिए, मात्र विवक्षाभेद है ऐसा समझना चाहिए। और इसी प्रकार अन्य स्थान पर भी विवक्षा समझकर अविरुद्ध अर्थ समझ लेना चाहिए।)

वह ज्ञानसमय है, अर्थात् ज्ञानागम, वह ज्ञानसमय है। (३) कथन के निमित्त से ज्ञात हुए उस पंचास्तिकाय का ही वस्तुरूप से *समवाय अर्थात् समूह, वह अर्थसमय है, अर्थात् सर्व पदार्थसमूह, वह अर्थसमय है। उसमें यहाँ ज्ञान समय की प्रसिद्धि के हेतु शब्दसमय के सम्बन्ध से अर्थसमय का कथन (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव) करना चाहते हैं।

अब, उसी अर्थसमय का, ^१लोक और अलोक के भेद के कारण द्विविधपना है। वही पंचास्तिकायसमूह जितना है, उतना लोक है। उससे आगे अमाप अर्थात् अनन्त अलोक है। वह अलोक अभावमात्र नहीं है किन्तु पंचास्तिकायसमूह जितना क्षेत्र छोड़कर शेष अनन्त क्षेत्रवाला आकाश है (अर्थात् अलोक शून्यरूप नहीं है किन्तु शुद्ध आकाशद्रव्यरूप है)॥३॥

गाथा - ३ पर प्रवचन

अब तीसरी गाथा, देखो। यह क्या कहते हैं ? तीन बोल उठायेंगे इसमें।

समवाओ पंचणहं समउ त्ति जिणुत्तमेहिं पण्णतं।

सो चेव हवदि लोओ तत्तो अमिओ अलोओ खं ॥३॥

नीचे हरिगीत

पंचास्तिकाय समूह को ही समय जिनवर ने कहा।

यह समय जिसमें वर्तता वह लोक शेष अलोक है ॥३॥

पहले जरा इसका शब्दार्थ। देखो। है न अन्वयार्थ ? पाँच अस्तिकाय का समभावपूर्वक निरूपण... देखो ! पहला समभावपूर्वक निरूपण। अथवा उनका समवाय.... अर्थात् जत्था और बोध। इसके दो अर्थ हैं। समवाय—सम-अवाय, इसका बोध और समवाय—इसका समूह। वह समय है,... तीनों आ गये। कहना, जानना और पदार्थ। तीनों आ गये इसमें। पंचास्तिकाय का समभावपूर्वक निरूपण... यह शब्द आया। समवाय, इसमें बोध आया, ज्ञान आया। और समवाय पूरी चीज़। सम-अवाय

१- 'लोक्यन्ते दृश्यन्ते जीवादिपदार्थ यत्र स लोकः' अर्थात् जहाँ जीवादिपदार्थ दिखाई देते हैं, वह लोक है।

उसमें बोध आया और समवाय—पूरा समुदाय, उसमें समूह आया। एक समवाय के दो अर्थ हुए। वह समय है, ऐसा जिनवरों ने कहा है। वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा जिनदेव अनन्त तीर्थकर ऐसा कहते हैं। महाविदेहक्षेत्र में परमात्मा सीमन्धर प्रभु साक्षात् विराजते हैं, वे ऐसा ही कहते हैं। अनन्त तीर्थकर इसी प्रकार वस्तु का स्वरूप कहते हैं।

वही लोक है (-पाँच अस्तिकाय के समूह जितना ही लोक है); उससे आगे अमाप अलोक आकाशस्वरूप है। नास्ति नहीं आकाश। अस्ति ऐसा का ऐसा। यह चौदह ब्रह्माण्ड छह द्रव्य से भरपूर, इससे खाली अनन्त... अनन्त... अनन्त... अमाप 'खं' अमाप, है न? 'अमिओ अलोओ खं' आकाश-आकाश। अस्ति अनन्त... अनन्त... अनन्त। ऐसा भगवान के ज्ञान में लोक और अलोक पूरा आया।

अब इसकी टीका :— यहाँ (इस गाथा में) शब्दरूप से.... शब्द कहा न? समवाय का निरूपण यह। ज्ञानरूप सम और अवाय। सम-अवाय। वह ज्ञानरूप से और अर्थरूप से.... समवाय पूरा पदार्थ। (-शब्दसमय, ज्ञानसमय और अर्थसमय)— ऐसे तीन प्रकार से 'समय' शब्द का अर्थ कहा है... इतना तो तीन पद का अर्थ हुआ। समझ में आया? 'जिणुत्तमोहिं पण्णत्तं' तथा लोक— तीसरे पद का लोक और अलोकरूप विभाग कहा है। भगवान ने यह चौदह ब्रह्माण्ड है, छह द्रव्य से भरपूर और एक खाली अलोक अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... है। ऐसे लोक-अलोक के दो भाग हैं। ऐसा भगवान वीतराग परमेश्वर ने कहा है।

अब इसकी व्याख्या। देखो! इस ओर एक शब्द रह गया है। ८वाँ पृष्ठ। वह मूल पाठ समवाय है न आठवें पृष्ठ पर। मूल गाथा में 'समवाओ' शब्द है;.... नीचे नोट। संस्कृत भाषा में उसका अर्थ 'समवादः' भी होता है.... है। 'समवादः'—कहना। 'और समवायः' सम-अवाय। अवाय और समूह, दो। ऐसा। समवाद भी होता है अर्थात् सम्यक् प्रकार से कहना। और समवाय होता है। सम्यक् प्रकार से अवाय निर्णय करना और समवाय पूरा समूह, पंचास्ति का समूह। ऐसे उसके तीन अर्थ उसमें से खड़े होते हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : संस्कृत पढ़े हों, उन्हें इसमें समझ में आये। अभी पूछ देखा था पण्डितजी को। क्या है भाई इसमें? तीन शब्द कहाँ से निकाले? शब्दों में से निकाले तो जानना चाहिए या नहीं? यह 'समवाओ' में से निकाले। देखो न! अर्थ में आता है टीका में।

'समवादः' शब्द है न? देखो 'समवाओ' इसके दो अर्थ। एक समवाद, एक समवाय। पहला शब्द है या नहीं? क्या? 'समवाओ' इसका एक अर्थ समवाद... समवाद। समवाद अर्थात् सम्यक् प्रकार से भगवान ने कहे हुए पदार्थ का कथन करना। यह समवाद। वाद—कथन करना। दूसरा अर्थ समवाय—समवाय। सम—अवाय। इसके दो अर्थ। समवाय के दो अर्थ। सम—अवाय—सम्यक् प्रकार से अवाय अर्थात् ज्ञान करना। और इस समवाय का दूसरा अर्थ समवाय—समुदाय। छह द्रव्य का समुदाय कहना। ऐसे एक समवाय के दो अर्थ होते हैं। समवाद का एक अर्थ और समवाय के दो अर्थ। ऐसा कहकर 'समवाओ' कहने में आया है। समझ में आया? है या नहीं सामने पुस्तक? उसमें है या नहीं? क्यों रतिभाई! पुस्तक दी है या नहीं रतिभाई को? बहुत है दूसरी पुस्तकें। एक-एक लो न भाई, साथ क्यों रखा? पुस्तक नहीं है दूसरी?

अब पहले शब्द की व्याख्या करते हैं। कैसे शब्द होते हैं? सम अर्थात्... है न? वहाँ, (१) 'सम' अर्थात् मध्यस्थ यानी जो रागद्वेष से विकृत नहीं हुआ;.... देखो! विशिष्टता यहाँ है। जो शब्दों में राग-द्वेष से रहित वाणी हो। वाणी भी वीतरागपना बतलाती हो तो उस वाणी को वाणी कहा जाता है, शब्द को। शब्द आगम कहा जाता है। समझ में आया? देखो! राग-द्वेष से विकृत। पुण्य-पाप के भाव से विकृत नहीं बना हुआ शब्द। जिस शब्द में पुण्य-पाप का स्थापन हो कि पुण्य-पाप करनेयोग्य है, वह वीतराग के आगम और वीतराग की वाणी नहीं है। समझ में आया?

रागद्वेष से विकृत.... अर्थात् विकारी नहीं बना हुआ। 'वाद' अर्थात्.... अब वाद की व्याख्या। पहले सम की व्याख्या की। रागद्वेष से विकृत.... अर्थात् कि शब्दों में राग-द्वेष का स्थापन न हो। वीतरागपने का शब्दों में स्थापन हो। आत्मा शुद्ध वीतराग दृष्टि करे, वीतरागी ज्ञान करे, वीतरागी अन्तर चारित्र करे, ऐसा जिस वाणी में कथन हो,

उसे समवाद, वीतरागी वाणी और शब्द-शब्दागम कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? कैसी बात समवाय में करते हुए भी डाली है!

‘वाद’ अर्थात् वर्ण (अक्षर), पद (शब्द) और वाक्य के समूहवाला पाठ। वर्ण और पद का वाक्य पूरा। जैसे कि वीतरागी आत्मा है। वीतरागी आत्मा है। एक-एक अक्षर, उसका शब्द और पूरा वाक्य हो गया। वीतरागस्वरूप आत्मा है। स्वभाव उसका वीतरागस्वरूप है। पुण्य-पाप के राग, वह उसका स्वरूप नहीं। शरीर, कर्म उसका स्वभाव उसमें नहीं। ऐसे अक्षर और शब्द और वाक्य के समूहवाला। बहुत वाक्य वापस। ऐसा पाठ, ऐसा पाठ।

पाँच अस्तिकाय का ‘समवाद’.... अब अखण्ड करते हैं। यह पाँच अस्तिकाय का समवाद। पहले दो टुकड़े कर डाले—सम और वाद। समझ में आया? फिर इकट्ठा कर डालते हैं। पाँच अस्तिकाय का ‘समवाद’ अर्थात् मध्यस्थ (-रागद्वेष से विकृत नहीं हुआ) पाठ.... लो! समवाद। सम अर्थात् राग-द्वेष से विकारी नहीं बना हुआ। वाद अर्थात् वर्ण और अक्षर, अक्षर और शब्द। और उसके वाक्य, जिसमें वीतराग का स्थापन हो, जिसमें राग-द्वेषना हो नहीं, जिसमें पुण्य और पाप और संसार मिले, संसार फले, इस बात का स्थापन न हो। ज्ञान करावे। समझ में आया? आहाहा! शब्द वीतरागपने के प्राप्त करावे। ऐसे तो शब्द होते हैं। जो वाणी राग को लाभ मनावे, वह वीतराग की वाणी नहीं है, वह वीतराग का उपदेश नहीं है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य भी राग है। पुण्य होली है। पुण्य में क्या है? क्या है इस पुण्य के फल में? धूल है यह। धूल में कहाँ सुख था? स्वर्ग में कहाँ सुख था? धूल में भी नहीं।

मुमुक्षु : अनुकूलता (मिले)।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुकूलता। किसे कहना अनुकूलता? होली अन्दर सुलगती हो। पचास लाख की पूँजी पड़ी हो और अन्दर में श्वास चढ़ता हो, दम चढ़ता हो। किसे कहना चैन उसमें?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु श्वास न चढ़ता हो तो भी आकुलता राग है। वह यह मेरा और यह तेरा, यह मेरा। यह राग की आकुलता है। धूल में कब सुख था? पुण्य और पाप दोनों गुच्छा राग का है, ऐसा कहते हैं। इस गुच्छे को सुलगाने की बात भगवान करते हैं। समझ में आया?

‘सम’ अर्थात् मध्यस्थ यानी जो रागद्वेष से विकृत नहीं हुआ;.... राग आवे, हो, परन्तु वीतराग की वाणी में वीतरागपने के भाव का स्थापन हो। दृष्टि का वीतरागीपना, ज्ञान का वीतरागीपना, चरित्र का वीतरागीपना, मोक्षमार्ग का वीतरागीपना, उसका स्थापन हो। समझ में आया? जिन शब्दों में ऐसा आवे कि राग करनेयोग्य है और राग से लाभ होता है, वे भगवान के आगम नहीं, वे शब्द आगम नहीं हैं, वह वाणी वीतराग की नहीं है। बराबर है?

मुमुक्षु : लक्ष्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसका लक्ष्य वीतरागपने होना चाहिए। राग आवे, हो। उसका ज्ञान करने में आता है, आदरणीय नहीं है।

क्या कहा? पहला एक शब्द का अर्थ हुआ। किसका? कि समवाद। समवाद। सम अर्थात् राग-द्वेष से विकारी नहीं बना हुआ, ऐसा वाद अर्थात् वाक्य के समूहवाला पाठ। अक्षर, पद और वाक्य के समूहवाला पाठ। शुद्ध आत्मा, वह प्राप्त करनेयोग्य है, उसका फल मुक्ति है। लो, यह पाठ पूरा हुआ न पाठ? ऐसा पाठ पाँच अस्तिकाय का समवाद अर्थात्... अब पूरा शब्दार्थ करते हैं—(-रागद्वेष से विकृत नहीं हुआ) पाठ (-मौखिक...) हो। वाणी निकलती हो तो भी विकाररहित वाणी होनी चाहिए। विकार का अनुमोदन, विकार का करना, विकार का कराना, विकार का अनुमोदन जिस वाणी में न आवे, उस वाणी को वीतराग का आगम कहने में आता है। समझ में आया?

(-मौखिक या शास्त्रारूढ़...) पाठ हो। लिखा हुआ पाठ हो। परन्तु उस पाठ में वीतरागता बतलाने का पाठ हो। कहो, जयन्तीभाई! है उसमें यह? है या नहीं उसमें यह? यह कहना है अब पीछे?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : किस आश्रम में ? किस आश्रम में ? लो, कोई आश्रम बैठा निवृत्त होकर, वीतरागी हो गया वह ! ऐसा कहते हैं । यह तुमने पहले कहा, उसमें ख्याल तो आया था । परन्तु कौन सा आश्रम तुम्हारे मुख से कहलवाना था । जहाँ जाये और वस्त्र बदलकर बैठे, वहाँ हो गये वीतरागी ।

यहाँ तो वीतरागी (का) अर्थ, जिसकी दृष्टि में शरीर, वाणी, मन की क्रिया भी मेरी नहीं, यह हलन-चलन की अवस्था होती है, वह मेरी नहीं और पुण्य-पाप का भाव होता है, वह मुझे लाभदायक नहीं । मेरा चैतन्य पूर्णानन्दस्वरूप है, वह मुझे लाभदायक है । ऐसी जहाँ वाणी हो, उस वाणी को आगम कहा जाता है । उस आगम के माननेवाले वीतरागभाव को माननेवाले होते हैं । कहो, देवानुप्रिया ! कैसी शैली की है न ! ओहोहो ! कुन्दकुन्दाचार्य ने भी गजब बात की है !

पाठ ऐसा हो, कहते हैं । मुख में से निकलती वाणी ऐसी हो कि जिसमें पुण्य और पाप के फल और पुण्य-पाप दोनों का करने जैसा है, ठीक है, यह वाणी में आवे नहीं । वह वाणी वीतराग हुए हैं, उनकी वाणी वीतरागभाव का स्थापन करती हुई आती है, उसे द्रव्यआगम, शब्दआगम, मौखिक उपदेश या शास्त्रारूढ़ शब्दों में ऐसा हो, उसे आगम कहा जाता है । आहाहा ! कहो, समझ में आया ? आहाहा ! सर्व शास्त्र का तात्पर्य तो वीतरागता है । तब उसके आगम में, शब्दों में वीतरागता आवे तो वीतराग तात्पर्य हो या उसके बिना कहाँ से होता था ?

जो कहा हो, वैसा परिणमे उसे वीतरागता होती है । कहा हो कुछ और परिणमे कुछ उसे वीतरागता हो, ऐसा बने ? त्रिलोकनाथ वीतराग की वाणी, वीतराग के मुख से निकलो या मुनियों के मुख से निकलो या समकिति के मुख से निकलो, उस वाणी में वीतराग अविकारी स्वभाव का स्थापन होता है । अविकारी स्वभाव की प्राप्ति कर, अविकारी का ज्ञान, अविकारी स्थिरता कर । विकार बीच में आवे, उसका यहाँ ज्ञान कर, यह भी नहीं उसमें करने की आवश्यकता । वह तो यह कर, उसमें यह विकारी कुछ बाकी रह गया हो, उसका ज्ञान अविकारी श्रद्धा और अविकारी का ज्ञान करने से

विकारी भाव रह गया, उसका ज्ञान इकट्ठा आ जाता है। समझ में आया ? रतिभाई ! गजब बात भाई !

सम-वाद। उसमें से सम-वाद। वाद अर्थात् कहना या लिखा हुआ शब्द। सम-वीतरागभाव, राग-द्वेष, पुण्य-पाप के भावरहित उस वाणी में वीतरागपने का कथन आवे, ऐसे शब्दों को द्रव्यआगम, शब्दआगम कहने में आता है। कहो, बराबर है ? परन्तु एक ओर सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग और उनकी वाणी में राग का स्थापन आवे तो वह वीतराग हुए किसलिए ? परन्तु अभी राग किसे कहना, उसकी इसे खबर नहीं। ऐसे तो पर की दया का विकल्प उठे (कि) यह करूँ, वह सब राग है। वह राग करनेयोग्य है, वह वाणी आगम की नहीं है। उस वाणी का उपदेश आगम का नहीं है, वह धर्मकथा नहीं है, वह धर्मकथा नहीं है।

धर्मकथा मौखिक उसे कहते हैं.... आहाहा ! कि जिसमें निमित्त और राग की उपेक्षा करके, चैतन्यस्वरूप स्वभाव की अपेक्षा की दृष्टि, ज्ञान और रमणता करे, ऐसा जिस वाणी में आवे, उसे धर्मकथा कहा जाता है। जिस कथा में राग से चैतन्य को लाभ हो, संयोग से, निमित्त से लाभ हो, उस वाणी को वीतराग का उपदेश न कहकर उसे विकथा कहा जाता है।भाई ! आहाहा ! गजब ! बराबर है ? मीठालालजी ! कैसे भाई !

राग हो, वह दूसरी बात है। परन्तु राग-द्वेष परिणाम, उनसे तेरी चीज़ भिन्न है, ऐसी दृष्टि, उसका ज्ञान, उसकी लीनता, ऐसा जो निश्चयमोक्षमार्ग, वही वीतराग की वाणी में कहने में आता है। आहाहा ! यह व्यवहार बीच में आवे न। परन्तु बीच में आवे, उसका यहाँ तो ज्ञान करना, वह भी नहीं लिया इनने। करने का तो नहीं, परन्तु उस अरागी वाणी में, अरागीपना करने का आता है, अरागी दृष्टि-ज्ञान और लीनता हुई, बाकी राग रहा, उसका ज्ञान उसमें आ जाता है। इसलिए अरागी का ज्ञान होने पर राग का ज्ञान हो जाता है। छोटभाई ! बराबर है ? आहाहा ! अस्ति का ज्ञान होने पर राग उसमें नहीं है और बाकी रहा, उसका ज्ञान आ जाता है। ओहोहो ! कुन्दकुन्दाचार्य की पद्धति कोई न भूतो न भविष्यति। इस पंचम काल की यह वाणी उसकी रीति और पद्धति गजब की है !! समझ में आया ?

मौखिक। मौखिक अर्थात् मुख से निकलते शब्द। इन शब्दों में राग और द्वेष, पुण्य और पाप, उनके बिना की वाणी, उस वाणी में कथन होता है। निर्दोषता तो बतलानेवाली वाणी हो। पुण्य-पाप वह सदोष भाव है। उसे कर, ऐसा वाणी में हो नहीं सकता। समझ में आया ? (पुण्य) करनेयोग्य है, यह वाणी में हो नहीं सकता। स्वरूप राग और पुण्यरहित चिदानन्द प्रभु है, उसकी दृष्टि कर, लीनता कर, उसमें समा, उसका फल पूर्ण वीतराग परमात्मा है। ऐसा वीतराग के आगम मुख से कहते हों या लिखे हुए हो, उस लिखे हुए में ऐसा हो तो उसे द्रव्यशब्द और आगम कहा जाता है। समझ में आया इसमें कुछ ? किसका अर्थ किया ? समवाद का अर्थ किया। समझ में आया ?

सम अर्थात् वीतरागभाव से, वीतरागपना बतलानेवाली वाणी। वीतरागपना बतलानेवाली वाणी। राग-द्वेष से विकारी नहीं बना हुआ शब्द। विकारी शब्द अर्थात् ? शब्द में कहाँ विकार-फिकार राग-द्वेष घुस गये हैं ? परन्तु राग-द्वेष का जिसमें स्थापन करना है, ऐसी वाणी नहीं है। जिस वाणी में वीतरागी अविकारी निर्दोष श्रद्धा, निर्दोष ज्ञान, निर्दोष चरित्र, निर्दोष आत्मा, निर्दोष मोक्ष को बतलानेवाली वाणी, उसे वीतराग के आगमों को मौखिक उपदेश उसे कहा जाता है। कहो, जयन्तीभाई! लो, यह सब पुराने लोग थे। पकड़ के ऐसे पकड़े थे पूर्व में। परन्तु वापस धीरे.... धीरे.... धीरे.... स्थिर हुए अब। काका थे, उन्हें नहीं सुहाता था पहले, हों! उसे भी। परन्तु बापू! तुम परिचय करो, यह क्या चीज़ है। ऐसे का ऐसा ऊपर-ऊपर से एक-दो दिन में समझ में आ जाये, ऐसी चीज़ नहीं है। अनन्त काल का अनजाना मार्ग, उसके जानकपने के भाव प्राप्त करना, वह अपूर्व मार्ग है। अभी तो सम्यग्दर्शन की बात चलती है। सम्यग्दर्शन के पश्चात् उसे चरित्र में रमणता कैसी होती है, यह बाद में बात है। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन का भान न हो और व्रत लो, तप लो, क्रिया करो। रण में शोर मचाने जैसी सब क्रिया है। जयन्तीभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : मर्यादा रखी न। वीतरागपने की दृष्टि प्रगट कर पहले। मर्यादावाली। राग न छूटे, अस्तिरता न टले, चरित्र न हो परन्तु दृष्टि पहले कर। यह

मर्यादा। पश्चात् मर्यादा बिना की स्वरूप में स्थिरता कर, उस मर्यादारहित स्थिरता का आनन्द आगे ले। कहो, क्या है ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहे तो यह है। राग की कोई मर्यादा तो चाहिए न ? कहते हैं न यह। आहाहा!

आत्मा में आत्मा जो वीतरागस्वरूप भगवान ने कहा वह, भाई! तेरा आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति है। हम भी ऐसे थे और उसमें उसका आश्रय करके केवलज्ञान पाये हैं। तेरा आत्मा भी पवित्र का धाम अखण्ड आनन्द अन्दर धाम है। उसकी दृष्टि कर। तेरा अपरिमित राग टल जायेगा। पश्चात् परिमित राग रहेगा। क्या कहा ? ऐसी वाणी में ऐसा आता है, वीतराग की।

प्रभु आत्मा एक समय में अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप, उसका अनादर करके श्रद्धा में राग की मन्दता कर और पुण्य बाँध, वह मिथ्यात्वसहित पुण्य है। अनन्त जन्म-मरण का वह मूल है। भगवान आत्मा ऐसे ज्ञान, दर्शन, आनन्द अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... शक्ति का एक रस। उसका आदर, उसकी प्रतीति, उस ओर के झुकाव के ढाल से श्रद्धा हुई। उस श्रद्धा में अनन्तानुबन्धी का अमाप कषाय है, वह नाश होती है। बाद का राग सम्यग्दृष्टि को रहता है। परिमित दोष रहते हैं। तीन कषाय का राग परिमित दोष है। उसे स्वरूप की स्थिरता द्वारा उसका नाश हो सकता है। इसके अतिरिक्त दूसरा उपाय वीतराग की वाणी में नहीं आता। और दूसरा कहे तो वह वीतराग का उपदेश नहीं है। यह इसने-अज्ञानी ने घर की कथा करके बात की है। कहो, बराबर है ? आहाहा!

अब समयसार एक ओर लो, एक ओर प्रवचनसार लो, एक ओर नियमसार, वह तो कोई भी उठायो.... गजब की बात करते हैं ! कोई एक शब्द में भी किंचित् दूसरी (वीतरागता की) बातें हैं। समवाय। समवाद पहला शब्द। समवाय में से पहला शब्द समवाद। सम्यक् प्रकार का कथन, वीतरागी भाव का कथन, निर्दोष आत्मा के स्वभाव को बतलानेवाला कथन, सदोष को उथापनेवाला कथन, ऐसा भी यहाँ तो नहीं। निर्दोषपना बतलानेवाला कथन, उसमें सदोष का उत्थापन आ जाता है। कहो, समझ में आया ?

आहाहा! देखो! तो एक न्याय भी। चारों ओर पहलू देखो तो ऐसी एक धारा बहती है। किसी जगह कहा, शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष का मार्ग। उसका फल केवल (ज्ञान)। चारों ओर से.... राग आया हुआ जाना हुआ प्रयोजनवान है। यह आदरा हुआ है। एक-एक बात में पहलू देखो तो ऐसे सत्य, परम सत्य खड़ा होता है। आहाहा! समझ में आया ?

अब अपने आग्रह छोड़कर सुने, समझे तो समझ में आये ऐसा है। नहीं तो ऐसा तो अनन्त काल से ग्यारह अंग पढ़ा था, नौ पूर्व अनन्त बार पढ़ा और द्रव्यलिंगी चारित्र (पालन किया)। 'द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक पायो फेर पीछो पटक्यो' द्रव्यक्रिया संयम की पंच महाव्रत की अनन्त बार कर चुका है, प्रत्येक प्राणी। परन्तु आत्मा वीतरागी स्वरूप, उसकी वीतरागी दृष्टि की रुचि, वह दृष्टि—ऐसा जिस वाणी में कहने में आया, वैसा इसने कभी किया नहीं। वाच्य जो कहा, वैसा इसने किया नहीं। इसलिए वाणी में अकेला वीतराग स्वभाव.... स्वभाव.... स्वभाव.... वह वाणी कहती है। समझ में आया ?

जिसमें सम्यग्दर्शन की व्याख्या भी वीतरागी दृष्टि की हो, सम्यग्ज्ञान की व्याख्या भी वीतरागी ज्ञान की हो, चारित्र की व्याख्या भी अकषाय चारित्र की व्याख्या हो। उसके फलरूप भी पूर्ण अरागी वीतरागी परम आनन्द प्राप्त हो। उसमें बन्ध का ज्ञान, अपूर्णता का ज्ञान, राग का ज्ञान सब अन्दर आ जाता है। समझ में आया ?

ऐसा मौखिक पाठ या शास्त्रारूढ़ निरूपण, वह शब्दसमय है। देखो! इस शास्त्र को परखने की चाबी। सिद्धान्त के उपदेश को अभवा उपदेशक को परखने की यह चाबी। ऐई! देवानुप्रिया! इसमें तो बड़ा धोका (दगा) है, हों! धोका समझते हो ?

मुमुक्षु : लोहे का बख्तर पहना हो तो क्या हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं,... तैयार कराते हैं अधिक।

मुमुक्षु : यह तो सामान्य बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहते हैं, मुझे लागू पड़ता है न। कहते हैं मेरे ऊपर का। ऐसे कि साधारण हथियार उसे लागू नहीं पड़ता। क्योंकि उसने बख्तर पहना हुआ है। सेठी! आहाहा!

जिसके घर में वीतरागता घुल गयी है वीतराग की। निर्विकल्प समाधि के अनन्त रस के पर्याय में, अनुभव में जो पड़े हैं। अरे! उनकी वाणी कैसी होगी? उनकी वाणी में तो निर्विकल्प शान्ति के अंश से वह पूर्णता, उसे बतलानेवाली वाणी होती है। उसमें रागादि का भाग अशान्ति है, उसका ज्ञान कराते हैं। समझ में आया? तब शास्त्र में चरणानुयोग में बहुत आता है, जरा ऐसा करो, कुदेव को मानते हो, इसकी अपेक्षा इसमें.... इसमें इतना राग घटाने का है। राग वृद्धि करना, पुष्टि करना—ऐसा उपदेश उसमें नहीं हो सकता।

किसी भी प्रकार से राग के अंश को घटाने की बात है। अज्ञानी पूर्ण राग न घटाये तो भाई इतना तो रख। ऐसा करके अभाव करने का है। राग करने का उसमें है नहीं। समझ में आया? ऐसी मौखिक.... और यह तो शास्त्र अर्थात् हो गया। यह वाणी जिसने सुनी और जिसे ज्ञान यह हुआ, वह वीतराग होकर खड़ा रहनेवाला है। उसने सुना कहलाता है। नहीं तो सुना नहीं है। कहो, समझ में आया इसमें?

‘वह शब्द समय है।’ एक बात की। शब्द समय के कितने अर्थ किये? दो। सम और वाद। सम अर्थात् वीतरागभाव से अर्थात् राग-द्वेष से विकारी नहीं बना हुआ अर्थात् राग-द्वेष जिसमें स्थापन नहीं, ऐसे शब्द, वे मौखिक हों या लिखे हुए हों, उन दोनों को शब्दसमय, आगम, द्रव्यआगम कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : घण्टे भर किसलिए टिके? सादि-अनन्त टिके, ऐसा यह है। अनादि-अनन्त है, उसमें सादि-अनन्त टिकना, उसमें क्या है? अनादि-अनन्त भगवान् पूर्णानन्द चैतन्य सत् सत्ता का धाम है। यहाँ दृष्टि करके सादि-अनन्त पर्याय से स्थिर हुआ। द्रव्य से अनादि-अनन्त। समझ में आया? परन्तु इस बात की अन्दर में महिमा और क्या कहते हैं, यह समझ आये बिना इस बात की तह नहीं बैठती। और पर के घर में भटकता है और यह भगवान् की वाणी ऐसा कहती है.... ऐसा कहती है... उसे किसी प्रकार घर हाथ नहीं आता। समझ में आया? पाँच अस्तिकाय को कहूँगा। समवाय में से ऐसा निकाला।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही बात हो न परन्तु।

देखो ! अब मिथ्यादर्शन के उदय का नाश होने पर,.... देखो ! समझ में आया ? मिथ्यादर्शन के उदय का नाश होने पर,.... मिथ्याश्रद्धा। राग से लाभ होता है, निमित्त को प्राप्त कर दूर कर सकूँ, राग करते-करते कल्याण होगा, ऐसी श्रद्धा का नाश होने से स्वभाव के आश्रय से शान्ति और आनन्द है, ऐसी लाभदशा प्रगट होने पर, मिथ्यादर्शन के उदय का नाश होने पर,.... उसके उल्टे अभिप्राय का नाश होने से, पंचास्तिकाय का ही सम्यक् अवाय.... सम्यक् अवाय। समवाय में से दूसरा अर्थ निकाला। सम-अवाय, अर्थात् सम्यक् ज्ञान, वह ज्ञानसमय है,.... समझ में आया ? देखो नीचे। इस समवाय के दो अर्थ। यह वह सम्यक् है और बाद में आयेगा समवाय आयेगा दूसरी लाईन में। दोनों का इकट्ठा अर्थ करते हैं नीचे।

पहले अर्थ कर देते हैं देखो, सम्यक् अवाय; सम्यक् ज्ञान। यह ज्ञानसमय है। क्या कहा ? इस पंचास्तिकाय का जो वास्तविक स्वरूप, उसमें शुद्ध जीवास्तिकाय का वास्तविक स्वरूप, ऐसा बतलानेवाली वाणी, उससे हुआ ज्ञान, (वाणी) वह निमित्त है। उसमें हुआ ज्ञान-सम्यग्ज्ञान। सम्यग्दर्शन उसमें आ गया। वह सम्यग्ज्ञान, वह ज्ञानसमय है। जो ज्ञान अपने शुद्ध आत्मा को जाने, जो ज्ञान शुद्धात्मा को जानने से राग बाकी (रहा), उसे भी जानता है। पंचास्तिकाय को जिसने जाना। शुद्ध जीवास्तिकाय, भगवान ने वाणी में कहा है, वैसा ज्ञान किया और ऐसे ही सब आत्मायें शुद्ध हैं, अशुद्धता पर्याय में है, ऐसा जिसने ज्ञान किया। ऐसा सम्यग्ज्ञान, उसे ज्ञानसमय कहा जाता है। ज्ञानसमय अर्थात् ? अवाय। सम्यक् अवाय, सम्यग्ज्ञान। उसमें यह आया।

शुद्ध चैतन्य आत्मा, वह आदरणीय है, ऐसा ज्ञान हुआ। राग है, वह आदरणीय नहीं, ऐसा ज्ञान हुआ। तब उसे पंचास्तिकाय का शुद्ध जीवास्तिकाय, राग बाकी रहा हुआ, उसका ज्ञान और दूसरे पंचास्तिकाय आदि पदार्थों का स्व के शुद्ध का ज्ञान होने पर ज्ञानसमय से सम्यक् चैतन्य को प्रगट अनुभव करने पर उन सब पंचास्ति का ज्ञान उसमें समा जाता है। समझ में आया ? बराबर है, शंकरभाई ! जरा तुलना तो करे। ज्ञान

में जानने का, श्रद्धा में रुचि का, प्रयत्न में वीर्य का इस गति में यह बात तो इसके वेग में ले। दूसरे उल्टे वेग में चढ़ा है यह अनादि से।

कहो, **पंचास्तिकाय का ही...** ऐसा। जैसा भगवान, पंचास्तिकाय वाणी द्वारा वीतरागभाव का वर्णन किया, उसका ही सम्यक् अवाय—सम्यग्ज्ञान, वह ज्ञानसमय है। **अर्थात् ज्ञानागम वह ज्ञानसमय है।** उसका सम्यग्ज्ञान हुआ शुद्ध का शुद्धरूप से, अशुद्ध का अशुद्धरूप से, जड़ का जड़रूप से, चैतन्य का चैतन्यरूप से, सिद्ध का सिद्धरूप से, निगोद का निगोदरूप से। पंचास्तिकाय में सब आ गया न? इसलिए वह सम्यग्ज्ञान राग से रहित होकर, चैतन्य के ज्ञान का ज्ञान किया, तब राग का ज्ञान हुआ, सिद्ध का ज्ञान हुआ, निगोद का ज्ञान हुआ, धर्मास्ति-अधर्मास्ति आदि पाँचों ही अपने से भिन्न, उनका भी ज्ञान हुआ। तेरा ज्ञान उसमें आ गया। ऐसे ज्ञान को ज्ञानागम अर्थात् ज्ञानसमय कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

इस सम्यग्ज्ञान में भी वीतरागपने का आदर हुआ तब ज्ञान सम्यक् कहलाया। चैतन्य स्वभाव वीतरागरूप से अस्ति है, उसका उस रूप ज्ञान हुआ। राग है, उसे रागपने का ज्ञान हुआ। संयोग, उसे संयोगपने का ज्ञान हुआ। अभेद स्वभाव को अभेद स्वभाव का ज्ञान हुआ। ऐसे ज्ञान के सम्यक्पने में सम्यग्दर्शन साथ आ गया। यहाँ ज्ञानसमय से बात है न इसलिए। उसे यहाँ ज्ञानसमय, ज्ञानागम अर्थात् ज्ञानसमय कहने में आता है। वह ज्ञान आगम हुआ। सम्यग्ज्ञान में वह चैतन्य के स्वभाव जैसा पंचास्तिकाय में शुद्ध द्रव्यस्वभाव है, गुणस्वभाव है, ऐसा वीतरागी ज्ञान हुआ और राग बाकी रहा, उसका ज्ञान हुआ। सिद्ध का ज्ञान तब इसे हुआ, पंचास्तिकाय में आये हुए। तब निगोद का ज्ञान हुआ, ऐसे सम्यग्ज्ञान को ज्ञानागम और ज्ञानसमय कहा जाता है।

अब रहा एक अर्थसमय। वह समवाय शब्द में से अर्थ (निकाला)। समवाय अर्थात् समूह। उसमें सम-अवाय ऐसा निकाला था। अब समवाय अर्थात् समूह। उसमें से निकालते हैं। इसका अर्थ आयेगा.... अभी बाकी है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण १२, गुरुवार, १२-१२-१९६३, गाथा-३-४, प्रवचन-७

पंचास्तिकाय, कुन्दकुन्दाचार्यकृत। इसमें षट्द्रव्य और पंचास्तिकाय का स्वरूप है। तीसरी गाथा चलती है तीसरी। तीसरी गाथा में दो प्रकार वर्णन किये। एक तो समय कितने प्रकार के और लोक और अलोक का विभाग। ऐसे दो प्रकार से तीसरी गाथा का वर्णन किया। उसमें पहला शब्दरूप से शब्द आगम समय, ज्ञानरूप से ज्ञानसमय और अर्थरूप से अर्थसमय। इसकी दो व्याख्या हो गयी। एक तो शब्द। जिनकी वाणी, वाणी में राग-द्वेष और विकार रहित हो। पाठ ऐसा है न? 'रागद्वेषाभ्यामनुपहतो' (राग-द्वेष) रक्त न हो। राग-द्वेषवाली वाणी न हो।

जिस शब्द में पुण्य और पाप का करना स्थापन ऐसा न हो। स्थापन अर्थात् उससे लाभ होगा ऐसा। समझ में आया? पुण्य-पाप के भाव को बतलावे, परन्तु पुण्य-पाप के रागादि भाव, उससे लाभ होता है, ऐसी वाणी नहीं होती। उस वाणी को यहाँ शब्द आगम कहा जाता है। राग-द्वेष से विकृत नहीं बना हुआ पाठ। कहो, समझ में आया? वह मुख से बोलता हो या लिखा हुआ हो। उन शब्दों में विकारी सदोषभाव का लाभरूप से स्थापन न हो, ऐसी वाणी को शब्द आगम कहा जाता है अथवा शब्दसमय कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

और तीसरा ज्ञानसमय। यह बात आ गयी है। देखो फिर से। मिथ्यादर्शन के उदय का नाश होने पर,... देखो! तब पंचास्तिकाय का ज्ञान सच्चा कहलाता है। दूसरा भाग है। दो है न? मिथ्यादर्शन के उदय का नाश होने पर,... पंचास्तिकाय का सम्यक् अवाय अर्थात् सम्यग्ज्ञान, वह ज्ञानसमय है। कहो, क्या समझ में आया इसमें? जिसके अभिप्राय में से राग और पुण्य के विकल्पों से लाभ होता है, यह दृष्टि गयी है। उसके अभिप्राय में से, शरीर आदि की क्रिया से धर्म होता है, यह अभिप्राय गया है, जिसके अभिप्राय में शुद्ध चैतन्यस्वरूप ज्ञानानन्द, निर्मलानन्द हूँ, ऐसी जहाँ प्रतीतिपूर्वक ज्ञान हुआ है, उसे शुद्ध जीवास्तिकाय के ज्ञान के भाव में दूसरे पंचास्तिकाय अपने अतिरिक्त के भी, उनका उसमें सम्यग्ज्ञान हो जाता है। कहो, समझ में आया इसमें?

राग-द्वेष की रुचि बिना का आत्मा के स्वभाव की रुचि का भाव, ऐसा जो आत्मा का सम्यग्ज्ञान कि जो शुद्ध चैतन्य को ज्ञान में बराबर जाना है। अशुद्धता है, उसे उस प्रकार से अशुद्धता को अशुद्धता रीति से ज्ञान में जाना है। पर को पररूप से उसका जो स्वभाव है द्रव्य-गुण-पर्याय, उसे उस रीति से जाना है। वह मिथ्या अभिप्रायरहित अपने आत्मा सहित का पंचास्तिकाय का अन्तर ज्ञान, उसे सम्यग्ज्ञान अथवा ज्ञानसमय कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें? इसका नाम ज्ञानसमय। यह आगम का ज्ञान। सम्यग्ज्ञान, वह आगम का ज्ञान। शब्द रह गये आगम में-शब्दसमय में। ज्ञान आया, वह शब्दसमय का, अर्थसमय का, पंचास्तिकाय का जैसा स्वरूप है, वैसा। उसमें आत्मा कैसा शुद्ध ज्ञानान्दमय है, ऐसा उसमें ज्ञान आया। उस ज्ञान को ज्ञानसमय कहा जाता है। वह सम्यग्ज्ञान उसे कहा जाता है। कहो, समझ में आया? देखो! अर्थात् कि **ज्ञानागम वह ज्ञानसमय है।** सेठी! एक गाथा में तीन में तो कितना समाहित कर दिया है!

पंचास्तिकाय का ही सम्यग्ज्ञान, ऐसा कहते हैं। पंचास्तिकाय में स्वयं आ गया या नहीं? जीवास्तिकाय में भी वापस स्वयं। स्वयं अर्थात् शुद्ध जीव चैतन्यमूर्ति, वस्तु के अनन्त-अनन्त शुद्ध स्वभाववाला तत्त्व, जिसके सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में आ गया है। जिसका ज्ञान शुद्ध चैतन्य हूँ, ऐसा भान हुआ है। अशुद्धता के रागादि भाग, वे भी आस्रव आदि तत्त्वों का जिसके सम्यग्ज्ञान में यह भान हुआ है। और जिस सम्यग्ज्ञान में अपने अतिरिक्त अनन्त सिद्ध, पाँच परमेष्ठी और निगोद आदि, उनका जैसा स्वरूप है, वैसा अपने ज्ञान में स्व शुद्धात्मा का ज्ञान होने पर दूसरे का ज्ञान उसमें आ जाता है। महेन्द्रभाई! बहुत लम्बी बात, बहुत लम्बे शब्द। कहो, अमृतलालभाई! सुनाई देता है न? सुनाई देता है न इन्हें? समझ में आया इसमें? क्या कहा?

ज्ञानसमय उसे कहते हैं कि जहाँ अपना ज्ञान, जो अवस्था है, वह अपने शुद्ध आत्मा का ज्ञान करे, उसमें अशुद्धता नहीं और अशुद्धता का ज्ञान करे, उसमें शुद्धता नहीं। पर का ज्ञान करे, उसमें मैं नहीं और मेरे ज्ञान में वस्तु में पर नहीं। ऐसा जो अन्तर भेदज्ञानरूप से सम्यग्ज्ञान हो, उसे समय आगम कहा जाता है। समय अर्थात् ज्ञान आगम। वह शब्द नहीं। कहो, देवानुप्रिया! कितना रखा इसमें! ओहो! पंचास्तिकाय में तो अनन्त सिद्ध,

लाखों केवली, मुनिमार्ग, बन्धमार्ग कैसा है यथार्थरूप से वह सब पंचास्तिकाय का अपने शुद्ध स्वभाव का ज्ञान और उसमें प्रतीति होने पर उन सबका ज्ञान उसमें स्व-परप्रकाशक ज्ञान में आ जाता है। समझ में आया ? भाई ! यह तो वहाँ सुना नहीं होगा जिन्दगी में।

भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग परमेश्वर, जिन्हें एक समय में तीन काल, तीन लोक का अपने ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हो गये, वे भगवान ऐसा कहते हैं (कि) जो वाणी राग-द्वेष और मिथ्या अभिप्राय रहित हो, उस वाणी को हम आगम और शास्त्र कहते हैं। उसके उपदेश को हम आगम का-सिद्धान्त का... कहा जाता है। जिस उपदेश में मिथ्या अभिप्राय (स्थापित होते हों), मिथ्या अभिप्राय होता हो, उसमें राग-द्वेष होते हों, उसमें लाभ मनाने का हो, उसे हम शास्त्र और उपदेश नहीं कहते। ऐई ! अपना ज्ञान, पर का ज्ञान, वह सब उसे छह द्रव्य का समूह कहा जाता है। वह छह द्रव्य का समूह... यह बतलाने की रीति से.... द्रव्य की एक समय की पर्याय में अपने को और पर को झेलने की ताकतवाली पर्याय है। वह छह द्रव्य न स्वीकार करे, न माने तो यहाँ ज्ञान की पर्याय को स्व और पर दोनों को एकरूप माने... ऐसी अपनी पर्याय का भी उसने स्वीकार किया नहीं।

अनन्त सिद्ध, अनन्त निगोद, अनन्त परमाणु आदि षट्द्रव्य एक है, उसका आत्मा में ज्ञान... जानने के सामर्थ्यवाला है। छह द्रव्य को... नहीं जगत में, एक ही है तो उसके ज्ञान की एक समय की पर्याय का जितना सामर्थ्य है, उतना उसने स्वीकार नहीं किया। उतना स्वीकार नहीं किया तो उसने आत्मा को भी स्वीकार नहीं किया। समझ में आया ? देवानुप्रिया ! बराबर होगा ? क्या.... पीछे ? कौन नाश करे ? यह कौन नाश करे ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादर्शन के उदय का नाश हुआ न। ...कर्म उदय अपने आप नाश होगा। अपने आप नाश होते होंगे ? कर्म का उदय भी अर्थसमय में जाता है। ...समझ में आया ? उसमें यह जाता है। षट्द्रव्य, वह उदय भी षट्द्रव्य में जाता है। समझ में आया ? कर्म परद्रव्य में जाता है। ...जब ज्ञान किया, तब उदय का भाव उसे अन्दर होता नहीं। नाश होता है।

चैतन्य वस्तु एक समय में शुद्ध चैतन्य की मूर्ति द्रव्य है। द्रव्य अनन्त गुणवाला तत्त्व, उसमें एक गुण की, एक ज्ञान की, एक समय की एक पर्याय, उसमें यह पूरा आत्मा, उसके गुण, उसकी पर्याय, राग, अनन्त... सिद्ध, अनन्त केवली, षट्द्रव्य में आते हैं या नहीं अनन्त केवली? बराबर समझ में आता है या नहीं? धीरुभाई! षट्द्रव्य में केवली आते हैं या नहीं? जीव में, हों! पंचास्तिकाय में अनन्त सिद्ध आये। अनन्त सिद्ध, लाखों अरिहन्त महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं वे, करोड़ों मुनि, आचार्य, उपाध्याय, निगोद के एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय आदि जीव, वे सब षट्द्रव्य में आते हैं।

जिसे अन्तर में षट्द्रव्य का ज्ञान हुआ, उसे स्व का ज्ञान होता है, तब उसमें षट्द्रव्य का ज्ञान हुआ, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? भिन्न-भिन्न चीज़, किसी के साथ कोई सम्बन्ध लेना और देना। पिता-पुत्र को सम्बन्ध होगा या नहीं कुछ? पुत्र पुत्र को और पिता... इनकार करते हैं। सब सब में.... कहो, समझ में आया? सब का किया सब भोगते हैं अर्थात् सबके राग का भोक्ता वह और राग का कर्ता वह। दूसरा कोई है नहीं। आहाहा! क्या कहा परन्तु देखो! यह गाथा!

....षट्द्रव्य का कथन है शब्द समय में। ...कथन में शब्दसमय आता है या नहीं? अर्थसमय में षट्द्रव्य आये और ज्ञानसमय में षट्द्रव्य का ज्ञान आया। आहाहा! समझ में आया? कितनी गम्भीर भाषा है न! कुन्दकुन्दाचार्य की ऐसी शैली की। पहलू खोलकर आये थे न, केवली के पास गये थे आठ दिन। आये और उसमें से वाणी आयी। अलौकिक रचना! आहाहा! किस प्रकार समाहित कर दिया। कहो, उन लोगों में तो कहीं बत्तीस, पैतालीस (सूत्र) में नाम भी नहीं मिलते। शब्दसमय क्या, ज्ञानसमय क्या, अर्थसमय क्या? क्या होगा?

यहाँ कहते हैं, ओहो! जिन शब्दों में अर्थात् उपदेश में या लिखे हुए अक्षरों में राग-द्वेष बिना की बातें जिसने की हो, अर्थात् राग-द्वेष की बात भले करे, परन्तु राग-द्वेष बिना का आत्मा और राग-द्वेष से लाभ नहीं होता, ऐसा आत्मा, ऐसी जिसने शब्दों में ऐसी बात (की हो) उसे हम शब्दसमय को ही हम उपदेश और भगवान की वाणी

कहते हैं। पश्चात् समकिती कहते हों, मुनि कहते हों या भगवान की वाणी में निकलता हो, उसे हम आगम कहते हैं। लो भाई! वह आया था न? नियमसार। हमारे मुख में से परमागम झरता है। पद्मप्रभमलधारिदेव ने। नियमसार के टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव, पद्मप्रभमलधारिदेव। उसमें अभी कितने ही शंकाएँ करते हैं। इस टीका में ऐसा है... इस टीका में ऐसा है। अरे! भगवान! तुझे खबर नहीं। यह कहते हैं, हमारे मुख में से परमागम झरता है। ऐसा कहा है। क्योंकि जो वीतराग के भावों को जिस प्रकार से वर्णन करना है, उस प्रकार से हम आत्मा का मोक्षमार्ग राग की अपेक्षा बिना का चिदानन्द भगवान, उसकी श्रद्धा-ज्ञान-रमणता निश्चय मोक्षमार्ग का कथन कहते हैं। व्यवहार मोक्षमार्ग हो, उसका ज्ञान कराते हैं, षट्द्रव्य है, उसे समझाते हैं, वह वाणी परम आगम ही है। परम आगम कहो या शब्दसमय कहो या आगमसमय कहो। आहाहा! वाह!

इस शब्दसमय से कहे गये षट्द्रव्यों में भगवान आत्मा स्वयं भी आ जाता है। मेरे बिना दूसरा। परन्तु तेरे बिना दूसरा कहेगा तो तू किसे जानेगा? तेरे बिना यह दूसरा है, उसे जानेगा कौन? इसी प्रकार तेरे आत्मा सहित दूसरे सब हैं, सब हैं, ऐसी सब सत्ता के अस्तित्व का भान, वह अपने चैतन्य महा ज्ञानसत्ता के अस्तित्व की श्रद्धा-ज्ञान में पर का सब अस्तित्व जिस प्रकार से है, उस प्रकार से उसके ज्ञान में आ जाता है। उसे ज्ञानसमय कहा जाता है। वह सच्चा ज्ञान उसे कहा जाता है। समझ में आया इसमें? इसमें तो जरा बुद्धि काम करनी चाहिए भाई अन्दर।

यह तो वीतराग मार्ग.... आहाहा! केवली पूर्णानन्द को प्राप्त अनन्त सर्वज्ञ, उनका कहा हुआ मार्ग वह कहीं साधारण ऐरे-गैरे रंक ले लेवे कि ऐसा है और वैसा है। वह मार्ग ऐसा नहीं है। यह तो बड़े इन्द्र जिसे सौ-सौ इन्द्र जिसे स्वीकार करते हैं, बाघ जिसे स्वीकार करे, नाग जिसे स्वीकार करे, इन्द्र जिसे स्वीकार करे, चक्रवर्ती जिसे स्वीकार करे, गणधर जिसे स्वीकार कर चारित्रसहित अनुभव करे। समझ में आया? आहाहा! ऐसी वीतराग की वाणी परमेश्वर, जैन परमेश्वर कि जिस वाणी में अकेला जैनपना अर्थात् वीतरागपना ही झरता हो और जिसके ज्ञान में भी वीतरागी ज्ञान हुआ हो, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। उसका तो वीतरागी ज्ञान है ही। परन्तु भगवान की वाणी से निकले

हुए छह पदार्थ, वे ज्ञात हुए, वही उनका समूह छह द्रव्य, उनका जिसे ज्ञान हुआ। ओहो! उस ज्ञान में स्वसहित, पर रागसहित, शुद्धता सहित राग, सबका ज्ञान यथार्थरूप से आ गया है। उस ज्ञान को... आहाहा! उस ज्ञान में अनन्त सिद्धों को झेला, स्वीकार किया। जिस ज्ञान ने अनन्त-अनन्त सिद्ध से अनन्तगुणे निगोद के अस्तित्व को स्वीकार किया, ओहो! जिस ज्ञान ने अपने अनन्त-अनन्त भाववाला पदार्थ, उसे स्वीकार किया। आहाहा! उस भाव की-ज्ञान की क्या कीमत! यह तो अभी श्रुतज्ञान की बात चलती है, हों! आहाहा! समझ में आया? रतिभाई! समझ में आता है या नहीं यह? देखो न शैली!

अर्थात् सर्वपदार्थसमूह वह अर्थसमय है। आहाहा! यह तो शब्द भी इसमें आ गये, ज्ञान भी इसमें आ गया। छह पदार्थ सब आ जाते हैं। बाकी रहता नहीं।

अब उसमें, यहाँ.... उसमें यहाँ—इन तीन में यहाँ ज्ञानसमय की प्रसिद्धि के हेतु.... देखो! इस ज्ञानसमय को प्रगट करने की प्रसिद्धि के लिये। आहाहा! आत्मा सम्यग्ज्ञानपने की प्रसिद्धि को पावे, वह सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन उसके साथ आ जाता है। यहाँ ज्ञानसमय की प्रसिद्धि के हेतु.... इस सम्यग्ज्ञान की प्रसिद्धि के लिये। गजब बात! सन्तों की-मुनियों की भाषा कोई अलौकिक! ज्ञानसमय की अर्थात् ज्ञान सम्यग्ज्ञान ऐसा होता है, उसकी प्रसिद्धि के लिये शब्दसमय के सम्बन्ध से.... वाणी के सम्बन्ध से। शब्दसमय आया। ज्ञानसमय की प्रसिद्धि के लिये सम्यग्ज्ञानरूपी, शान्तिरूपी ज्ञान, ऐसी शान्ति का ज्ञान, आकुलता का भी ज्ञान, ऐसी सम्यग्ज्ञान की प्रसिद्धि के लिये शब्दसमय के सम्बन्ध से.... वाणीरूपी समय अर्थात् आगम के सम्बन्ध से अर्थसमय का कथन करना.... छह द्रव्य को कहने का। समझ में आया? षट्द्रव्य में क्या बाकी रहता होगा? मोक्षमार्ग, बन्धमार्ग, मिथ्यादर्शन यह षट्द्रव्य में आता होगा? ऐई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ले, यह कहाँ बात यहाँ है? मिथ्यादर्शन षट्द्रव्य में आता है या नहीं, इतना प्रश्न था। षट्द्रव्य में आता है। मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र षट्द्रव्य में क्या नहीं होगा? कोई वस्तु बाकी न रही। पर्याय है, वह षट्द्रव्य में आ जाती

है। समझे न? इसमें बीच में डाली विपरीतता। क्या? कि इतना सब ज्ञान संक्षेप रुचिवाले को कहाँ से होगा? ऐसा कहा इसमें। परन्तु अब उत्तर देते हैं।

मुमुक्षु : किसलिए नहीं होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसलिए नहीं होगा ? यहाँ ज्ञान उसे कहते हैं। उसके भेद के पहलुओं के पहलू न हों। परन्तु उसके ज्ञान में... इसीलिए तो पहले कहा कि संक्षेपरुचि के ज्ञान की पर्याय का भी इतना सामर्थ्य है कि स्व पूरा पूर्ण और पर अनन्त—दोनों को जानने की ताकतवाली एक समय की ज्ञान की—श्रुतज्ञान की पर्याय है। समझ में आया? उसके भेद और पहलू अलग नहीं कर सकते। परन्तु यह सब जैसा है, उस ज्ञान में गुण की पर्याय का ही ऐसा स्वभाव है। फिर भले थोड़ा ज्ञान हो। वह ज्ञान थोड़ा हो परन्तु ज्ञान की एकसमय की व्यक्त जो सम्यक्त्व पर्याय हुई, उस पर्याय का इतना धर्म, इतनी ताकत, इतना सामर्थ्य है कि छह द्रव्य अपने शुद्ध आत्मा सहित छह द्रव्य को स्वीकार करे, इतना उसका सामर्थ्य है। समझ में आया? धर्मदास क्षुल्लक तो ऐसा कहते हैं कि जिसे छह द्रव्य का यथार्थ ज्ञान नहीं, उसे आत्मा का ज्ञान नहीं होता। छह द्रव्य की ही अभी अस्ति की स्वीकृति नहीं। एक-एक आत्मा है, एक आत्मा है और परमाणु अनन्त नहीं और अमुक नहीं, कालाणु नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : पहला सिद्ध कौन हुआ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : लो, पहला सिद्ध कौन हुआ, अब इस अर्थसमय में? पहला कब था? अनादि है। अर्थसमय में अनादि सिद्ध हैं। अर्थसमय। अर्थसमय वह अनादि के हैं। वह अर्थसमय वह अनादि-अनन्त काल रहनेवाले हैं। बराबर है या नहीं? तो अर्थसमय अर्थात् छह द्रव्य। उसमें अनन्त सिद्ध आ गये। वे अनन्त सिद्ध अर्थसमयरूप से अनादि के हैं। एक व्यक्तिरूप से नये, परन्तु अनादि के सिद्ध पहले नहीं थे और सीधा पहला सिद्ध कोई हुआ, ऐसा कभी नहीं हो सकता। आहाहा! संसार से सिद्ध आठ वर्ष छोटा। किसी में कहते नहीं। तुम्हारे में एक कहते हैं। नाम नहीं देते, हों! है न पुस्तक में है। क्योंकि पहला आठ वर्ष संसारी हो, तब मुक्ति हो न? परन्तु कब पहला-बाद में था? सुन न! तुझे अर्थसमय की खबर नहीं।

छह द्रव्य, और उनकी पर्याय भी अनादि की है। अनादि की है। और अनन्त काल ऐसी की ऐसी रहेगी। उसमें तेरी पर्याय भी अनादि की अनन्त काल तक रहेगी। ऐसा जिसे छह द्रव्य का सम्यग्ज्ञान की प्रसिद्धि के लिये शब्द के सम्बन्ध से छह द्रव्य की अनादि-अनन्तता, जिस प्रकार से है, वैसे उसके ज्ञान में प्रसिद्ध पावे, इसलिए शब्द के सम्बन्ध से षट्द्रव्य का स्वरूप कहने में आया है। कहो, समझ में आया इसमें? है... है... है... है... उसे फिर आदि कैसी? देखो न! यह आकाश का भाग आयेगा। अभी आयेगा। न्याय, उसके साथ रखा है। स्वभाव रखा है। लोक-अलोक। आहाहा!

अलोक... अलोक... खं... खं.... आकाश। कहीं समाप्त न हो। खं—आकाश। कहाँ पूरा हो? कहाँ पूरा हो? एक वस्तु तो देखो। आहाहा! दशों दिशाओं में ऐसे के ऐसे चले जाओ। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... जिसका तर्क साधारण स्वभाव के भान बिना, उसका तर्क काम न करे। वस्तु ही ऐसी कोई है। जगत के स्वभाव, क्षेत्र स्वभाव, काल स्वभाव, ध्रुव स्वभाव, ज्ञान की पर्याय का स्वभाव सामर्थ्यभाव ऐसा ही कोई अनन्त है। अज्ञानी गोता खाता है कि यह क्या? यह कैसे है? समझ में आया? देखो! यह ऐसा कहकर उसके साथ यह डाला है। उस तीसरी गाथा में। अभी यह चलता है। है न?

‘अमिओ अलोओ खं।’ यह वस्तुस्वभाव है, ऐसे क्षेत्र स्वभाव भी लोक और अलोक। देख ले तू यह। तेरे ज्ञान में तैर तो सही। अपार अलोक, अपार आत्मा का स्वभाव, उसके क्षेत्र की हद आवे परन्तु स्वभाव की हद नहीं आती। यहाँ क्षेत्र की हद नहीं आती, यहाँ स्वभाव की हद नहीं आती, यहाँ काल की हद नहीं आती। अनन्त-अनन्त द्रव्य की पर्याय की हद नहीं आती। वह कब पर्याय पूरी होगी? पूरा कब? यह तो बातें... समझ में आया? कब पर्याय नहीं होगी अब? अन्तिम पर्याय कौन सी होगी? अन्तिम कब द्रव्य नाश होगा? आहाहा! कहो, रतिभाई!

ईश्वर के माननेवाले और यह करनेवाले एक ही हैं, (ऐसा माननेवाले को) उसे इस बात की खबर नहीं कि यह तो चीज़ (क्या)? देख न तू। ईश्वर परन्तु ईश्वर क्या करेगा? अमाप.... अमाप.... अमाप.... जिसका माप नहीं, जिसका कोई माप नहीं।

क्या चीज़ है। पोला... पोला.... पोला.... परन्तु अस्तित्व है, हों! यह यहाँ कहेंगे। अलोक भी अस्ति है। अस्तित्व नियत अस्ति यह चौथे में आयेगा। अस्तित्व में यह नियत है। निश्चय से उसका अस्तित्व अलोक का अनन्त.... अनन्त.... अनन्त.... अनन्त है। अरे! ख्याल तो कर। इस ज्ञान की पर्याय में इतनी ताकत है ज्ञानसमय में। अपने अनन्त भावों को भी स्वभाव सन्मुख होकर ज्ञान होने पर अनन्त स्वभाव का ज्ञान भी कर सकता है। अनन्त क्षेत्र और काल और अनन्त द्रव्य का ज्ञान कर सकता है। ऐसी सम्यग्ज्ञान की प्रसिद्धि के लिये शब्दसमय के सम्बन्ध से छह द्रव्य का अस्तित्व कहने में आता है। आहाहा! सर्वज्ञ वीतरागस्वभाव के अतिरिक्त यह बात कहीं तीन काल-तीन लोक में नहीं है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अस्ति किसकी होगी परन्तु ? एक आकाश। आकाश कितना, वह कहाँ है उसमें ? है आकाश इसे ? आकाश है, एक आकाश है।

मुमुक्षु : लोक-अलोक ही कहाँ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : लोक-अलोक क्या ? यह दो भाग किस प्रकार ? वस्तु ही ऐसी, वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है ऐसा। ऐ... वस्तु। वह खाली भाग। एक वर्तमान काल, एक भूतकाल (परन्तु) आदि नहीं। भविष्य काल (परन्तु) अन्त नहीं। ऐसा का ऐसा, ऐसा का ऐसा है। ऐसा उसके ज्ञान में सम्यक्पना प्रसिद्धि के लिये यह शब्दसमय के सम्बन्ध से जैसा वाच्य है, वैसा ही वाचक हो, उसका कहनेवाला। उसे वाचक के सम्बन्ध से वाच्य का ज्ञान होने अर्थात् ज्ञान की प्रसिद्धि के लिये जो छह द्रव्य अर्थसमय का कथन (श्रीमद् भगवतकुन्दकुन्दाचार्यदेव) करना चाहते हैं। समझ में आया ? है न इसमें ? 'अभिधातुमभिप्रेतः' यह दसवें पृष्ठ पर पहली लाईन। 'ज्ञानसमयप्रसिद्धर्थ शब्दसमयसम्बन्धेनार्थसमयोऽभिधातुमभिप्रेतः' अमृतचन्द्राचार्य ऐसा कहते हैं। अहो! महामुनि। भावलिंगी सन्त, अविकारी, निर्विकल्प समाधि में झूलनेवाले। जिन्हें यह विकल्प आया है, ऐसा कहते हैं, अहो! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का इसमें अभिप्राय पंचास्तिकाय कहने में सम्यग्ज्ञान की प्रसिद्धि के अर्थ शब्दसमय के सम्बन्ध से यह

षट्द्रव्य कैसे हैं, ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव का अभिप्राय है। समझ में आया ? अहो ! इसमें तो भाई यह वीरों का काम है। उत्साहहीन ऐं...ऐं... हो जाये, उसका यह काम नहीं। वीरता से कूद पड़े, (वह) हो केवलज्ञानी।

ओहो ! चैतन्य प्रभु, जिसके एक समय के ज्ञान की प्रसिद्धि, भले उपयोग असंख्य समय का हो, वह ज्ञान की प्रसिद्धि। ज्ञान जिसे यह हुआ षट्द्रव्य का, उसे केवलज्ञान होगा ही। उसे षट्द्रव्य प्रत्यक्ष होने में असंख्य समय की देरी (रही)। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह डालते हैं। प्रमाद टालकर चरित्र, यह कमर कसना, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह सब लेकर बैठे हैं कि हम व्रतधारी हैं और यह हैं। यह नहीं। आहाहा!

यह बात तीन समय की हुई। अब एक चौथी। चौथा पद है न। अथवा अन्तिम दो पद। 'सो चेव हवदि लोओ।' यह 'सो चेव' अर्थात् षट्द्रव्य का समुदाय, वह लोक। और 'अमिओ अलोओ खं।' इसका अर्थ करते हैं। अब, उसी अर्थसमय का.... छह द्रव्य का। लोक.... नीचे (फुटनोट)। 'लोक्यन्ते दृश्यन्ते जीवादिपदार्था यत्र स लोकः' अर्थात् जहाँ जीवादिपदार्थ दिखाई देते हैं, वह लोक है। जहाँ जीव और जड़, सिद्ध और निगोद, परमाणु और स्कन्ध देखने में आते हैं। लो ! लो, यह आया भाई इसमें। यह सिद्ध लोक में देखने में आते हैं, इसलिए लोक। आहाहा ! वे सिद्ध अलोक में देखने में नहीं आते। कहते हैं न, अलोक में जाते, ऐसा जाते, धर्मास्ति नहीं होता तो। अरे ! जाये कहाँ से ? सुन न !

'लोक्यन्ते दृश्यन्ते जीवादिपदार्था' जीवादि पदार्थ में सिद्ध आये या नहीं ? 'लोक्यन्ते' जिसमें सिद्ध पदार्थ (रहे हुए हैं), उसे लोक कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें ? अनन्त सिद्ध भी लोक में हैं। खाली भाग अनन्त... अनन्त... अनन्त...

अनन्त... उसमें एक आकाश का भाग होता है। 'लोक्यन्ते दृश्यन्ते जीवादिपदार्था यत्र' 'यत्र'—लो! जहाँ जीवादि पदार्थ देखने में आते हैं जहाँ, वह लोक है। जहाँ जीवादिपदार्थ दिखाई देते हैं, वह लोक है। जहाँ सिद्ध देखने में आते हैं, वहाँ लोक है। जहाँ निगोद देखने में आते हैं, वहाँ लोक है। जहाँ परमाणु देखने में आते हैं, वहाँ लोक है। जहाँ अनन्त जीव देखने में आते हैं, वहाँ लोक है। सिद्ध लोक में देखने में आते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ तक ऐसा है। जहाँ तक धर्मास्तिकाय देखने में आवे, वहाँ तक लोक है। जहाँ तक सिद्ध देखने में आवे, वहाँ तक लोक है। जहाँ तक धर्मास्तिकाय देखने में आवे, वहाँ तक लोक है। उसे ऐसा कि.... आगे अधर्मास्तिकाय....

यही कहते हैं विशिष्टता कि 'लोक्यन्ते दृश्यन्ते जीवादिपदार्था' जो धर्मास्ति, अधर्मास्ति, जीव, पुद्गल जितने में प्रत्यक्ष दिखे, उसे लोक कहा जाता है। अब क्या बाकी रह गया? आहाहा! कथन की शैली वह कोई! जहाँ 'लोक्यन्ते (दृश्यन्ते जीवादिपदार्था यत्र स) लोक:'

मुमुक्षु : लोक को बड़ा करने का अधिकार हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : लोक कौन बड़ा करे ? वह आवे कि यदि ऐसा हो तो अलोक छोटा हो जायेगा, लोक बड़ा हो जायेगा। ऐसा आवे न, सिद्ध करना हो इसलिए। यदि आकाश ही गति में निमित्त हो तो आगे ही चला जाये जीव, तो लोक की मर्यादा नहीं रहे और अलोक घट जायेगा। अलोक घटेगा ? यह तो बात है। सिद्ध करने के लिये बात है। जहाँ तक चौदह ब्रह्माण्ड असंख्य योजन का पदार्थ है, चौदह लोक पुरुष के आकार, उसमें जीवादि पदार्थ देखने में आते हैं। बाहर हो नहीं सकते। बाहर एक भाग दिखे आकाश का। यहाँ तो सब पदार्थ की बात है न ? 'जीवादिपदार्था यत्र स लोक:' जहाँ। 'यत्र' का अर्थ हुआ न ? कि वहाँ वे अर्थात् जहाँ उसके साथ इकट्ठा आया। समझ में आया ? उसमें से निकाला न यह ? 'यत्र' अर्थात् यहाँ। इसलिए वहाँ से फिर जहाँ। वहाँ अर्थात् कि जहाँ। जहाँ लोक है, जहाँ द्रव्य है, जहाँ लोक है, जहाँ लोक है, वहाँ द्रव्य है। समझ में आया ? और अलोक के भेद के कारण, अलोक खाली। आहाहा!

आकाश का अन्त न आवे परन्तु तेरे ज्ञान में उसका ज्ञान आ जावे। अलोक का अन्त वहाँ नहीं। परन्तु ज्ञान में अन्त आ जाये। अमाप है, उसका ज्ञान हो जाये। अमाप का ज्ञान हो जाये। अमाप आकाश खाली... खाली... (ऐसा) ज्ञान हो जाये। अस्ति है सदा, हों! कहेंगे। अस्ति नियत है, अस्ति नियत। समझ में आया ?

लोक और अलोक के भेद के कारण द्विविधपना है। क्षेत्र से। वही पंचास्तिकाय-समूह जितना है, उतना लोक है। पंचास्तिकाय पूरे (समूहरूप) जिसमें पूर्ण है, एक भाग तो उस ओर रखो। उससे आगे अमाप अर्थात् अनन्त अलोक है। यह अर्थसमय में जाता है सब, हों! यह अर्थसमय इतने में है। वह अलोक अभावमात्र नहीं है... विशिष्टता देखो। यह अलोक खाली... खाली... खाली... अर्थात् पोला, अर्थात् कुछ नहीं, ऐसा नहीं। किन्तु पंचास्तिकायसमूह जितना क्षेत्र छोड़कर.... पंचास्तिकाय के चौदह राजूलोक में है, जितना क्षेत्र छोड़कर शेष अनन्त क्षेत्रवाला आकाश है.... वह अनन्त क्षेत्रवाला आकाश है। (अर्थात् अलोक शून्यरूप नहीं है...) वापस कोई ऐसा कहे, शून्य है, वह आकाश। शून्य है, वह अलोक। शून्य है, वह अलोक। नहीं, वह शून्य नहीं। वह अशून्य अस्ति है। आहाहा! केवलज्ञान के अतिरिक्त और अन्तर के ज्ञान की महिमा के अतिरिक्त यह बात आती नहीं। समझ में आया ? कहते हैं, वह क्षेत्र शून्य नहीं। यह नहीं—जीव और पुद्गल और धर्मास्ति, अधर्मास्ति, काल, परन्तु आकाश तो है। अस्ति है। आकाश से भरपूर पूरा अलोक। आकाश.... आकाश.... आकाश.... दसों दिशाओं में। ऐसा अलोक शून्य नहीं है।

(किन्तु शुद्ध आकाशद्रव्यरूप है।) शुद्ध किसलिए (कहा) ? पंचास्तिकाय उसमें नहीं, इसलिए (शून्य कहा)। पर की अपेक्षावाला नहीं, जिसमें क्षेत्र; इसलिए उसे शुद्ध कहा है। बाकी आकाश तो शुद्ध ही है। पंचास्तिकाय यहाँ है आकाश में, उसमें दूसरे द्रव्य हैं न, इस अपेक्षा से उसे—शुद्ध कहा। ऐसी अपेक्षा में नहीं....। बाकी आकाश तो शुद्ध ही है। शुद्ध का अर्थ वहाँ दूसरा नहीं है, ऐसा। शुद्ध आकाशद्रव्यरूप है। कहो, समझ में आया ? यह तीन गाथा हुई। पहले मांगलिक की। समझ में आया ? दूसरे भगवान के मुख से निकली हुई वाणी यह, उसे कहूँगा और तीसरी यह ज्ञानसमय, शब्दसमय, अर्थसमय और इस लोक-अलोक का भाग।

अब छह द्रव्य को कहते हैं। देखो! परन्तु यह छह द्रव्य का ज्ञान, वह आत्मा का ज्ञान है अन्दर। समझ में आया? और वह भी विकल्प बिना का। श्रुतज्ञान के एक समय में अपने सहित छह द्रव्य ज्ञात हों, उस विकल्प बिना के ज्ञान में ज्ञात होते हैं। विकल्प तो राग है। उसमें ज्ञात होते हैं? क्या कहा, समझ में आया?

जो आत्मा शुद्ध चैतन्य है, उसका ज्ञान, उसमें पंचास्तिकाय का, छह द्रव्य का ज्ञान और लोक-अलोक के भाग का ज्ञान, वह सब ज्ञान, राग का साथ में विकल्प है, उसमें वह नहीं। वह तो ज्ञानसमय में उसका ज्ञान है। समझ में आया इसमें? केवलज्ञानी को अकेले ज्ञान की पर्याय में सब ज्ञान है। यहाँ राग होने पर भी उस ज्ञान की पर्याय में इतना ज्ञान है। समझ में आया? इसलिए उसे परोक्ष कहा जाता है। विकल्प निकल जाता है, इसलिए उस ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा जाता है। समझ में आया? समझ में आया इसमें? ओहो! यह तो सब वीतरागी व्याख्या है। वीतरागीस्वभाव की व्याख्या है। 'सुणंताणं' आता है न आगे? इसमें ही आता है न? लोकस्वभाव 'लोगसहावं सुणंताणं' तब आया था। निकाला नहीं था? कितनी गाथा। ९५। ९५-९५।

तम्हा धम्माधम्मा गमणट्टिदिकारणाणि णागासं।

इदि जिणवरेहिं भणिदं लोगसहावं सुणंताणं ॥९५॥

आहाहा! भगवान् त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी में समवसरण में स्वभाव के सुननेवाले बैठे थे। 'तम्हा धम्माधम्मा गमणट्टिदिकारणाणि णागासं।' इस लोक के भाग पड़े लोक में (वे) इस आकाश के कारण नहीं परन्तु धर्मास्ति, अधर्मास्ति के कारण। वहाँ तक गति, स्थिति जड़ चैतन्य की है। 'णागासं' आकाश के कारण भाग नहीं हैं। आकाश तो व्यापक है। 'णागासं' है न शब्द? 'इदि जिणवरेहिं भणिदं लोगसहावं सुणंताणं' ऐसा जिनवरदेवों ने परमेश्वर की सभा में जगत के स्वभाव के सुननेवालों को भगवान् की वाणी में ऐसा कहा था। आहाहा!

'लोगसहावं' यहाँ तो भाषा ऐसी विशिष्टता है यह बात। लोक का स्वभाव, अलोक का स्वभाव, जीव का स्वभाव। लोकस्वभाव में भाई आया या नहीं यह? जीव का स्वभाव, गुण का स्वभाव, पर्याय का स्वभाव, विकार का स्वभाव, जड़ का स्वभाव,

कालद्रव्य का स्वभाव, स्कन्ध का स्वभाव, वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श का स्वभाव वह 'लोगसहावं सुणंताणं' आहाहा! लोक में छहों द्रव्यों का स्वभाव, स्वभाव ऐसे सभा में बैठे हुए श्रोताओं को भगवान ने कहा, तत्प्रमाण लोक का स्वभाव सुननेवालों को कहा है। यह कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं, सुननेवाले। स्वयं भगवान के निकट सुना है, ऐसा कहते हैं। साक्षात् सीमन्धर भगवान कहते थे, हम पास में सुननेवाले हम वहाँ थे, ऐसा कहते हैं। कहो, सेठी!

अकेला स्वभाव.... स्वभाव.... स्वभाव.... चौथी गाथा में यह वर्णन करते हैं, देखो।

गाथा - ४

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा तहेव आगासं।
अत्थित्तम्हि य णियदा अणणमइया अणुमहंता॥४॥

आकाश पुद्गल जीव धर्म अधर्म ये सब काय हैं।
ये हैं नियत अस्तित्वमय अरु अणुमहान अनन्य हैं॥४॥

अन्वयार्थ :- [जीवाः] जीव, [पुद्गलकायाः] पुद्गलकाय, [धर्माधर्मो] धर्म, अधर्म [तथा एव] तथा [आकाशम्] आकाश [अस्तित्वे नियताः] अस्तित्व में नियत, [अनन्यमयाः] (अस्तित्व से) अनन्यमय [च] और [अणुमहान्तः] *अणुमहान (प्रदेश से बड़े) हैं।

टीका :- यहाँ (इस गाथा में) पाँच अस्तिकायों की विशेष संज्ञा, सामान्य विशेष-अस्तित्व तथा कायत्व कहा है।

वहाँ जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश—यह उनकी विशेष संज्ञाएँ *अन्वर्थ जानना।

वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमयी सामान्यविशेषसत्ता में नियत-व्यवस्थित (निश्चित विद्यमान) होने से उनके सामान्यविशेष-अस्तित्व भी है, ऐसा निश्चित करना चाहिए। वे अस्तित्व में नियत होने पर भी (जिस प्रकार बर्तन में रहनेवाला भी बर्तन से अन्यमय है उसी प्रकार) अस्तित्व से अन्यमय नहीं है; क्योंकि वे सदैव अपने से निष्पन्न (अर्थात् अपने से सत्) होने के कारण (अस्तित्व से) अनन्यमय है (जिस प्रकार अग्नि उष्णता से अनन्यमय है उसी प्रकार) 'अस्तित्व से अनन्यमय' होने पर भी उनका 'अस्तित्व में नियतपना' नयप्रयोग से है। भगवान ने दो नय कहे हैं—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। वहाँ कथन एक नय के आधीन नहीं होता किन्तु उन दोनों के आधीन होता है। इसलिए

* अणुमहान = (१) प्रदेश में बड़े अर्थात् अनेकप्रदेशी; (२) एकप्रदेशी (व्यक्ति-अपेक्षा से) तथा अनेकप्रदेशी (शक्ति-अपेक्षा से)।

* अन्वर्थ=अर्थ का अनुसरण करती हुई; अर्थानुसार। (पाँच अस्तिकायों के नाम उनके अर्थानुसार है।)

वे पर्यायार्थिक कथन से जो अपने से कथंचित् भिन्न भी है ऐसे अस्तित्व में व्यवस्थित (निश्चित स्थित) हैं और द्रव्यार्थिक कथन से स्वयमेव सत् (विद्यमान) होने के कारण अस्तित्व से अनन्यमय हैं।

उनके कायपना भी है क्योंकि वे अणुमहान हैं। यहाँ अणु अर्थात् प्रदेश-मूर्त और अमूर्त निर्विभाग (छोटे से छोटे) अंश; 'उनके द्वारा (-बहु प्रदेशों द्वारा) महान हो' वह अणुमहान; अर्थात् प्रदेशप्रचयात्मक (-प्रदेशों के समूहमय) हो वह अणुमहान है। इस प्रकार उन्हें (उपर्युक्त पाँच द्रव्यों को) कायत्व सिद्ध हुआ। (ऊपर जो अणुमहान की व्युत्पत्ति की उसमें अणुओं के अर्थात् प्रदेशों के लिये बहुवचन का उपयोग किया है और संस्कृत भाषा के नियमानुसार बहुवचन में द्विचन का समावेश नहीं होता, इसलिए अब व्युत्पत्ति में किंचित् भाषा का परिवर्तन करके द्वि-अणुक स्कन्धों को भी अणुमहान बतलाकर उनका कायत्व सिद्ध किया जाता है) 'दो अणुओं (-दो प्रदेशों) द्वारा महान हो' वह अणुमहान — ऐसी व्युत्पत्ति से द्वि-अणुक पुद्गलस्कन्धों को भी (अणुमहानपना होने से) कायत्व है। (अब, परमाणुओं को अणुमहानपना किस प्रकार है, वह बतलाकर परमाणुओं को भी कायत्व सिद्ध किया जाता है) व्यक्ति और शक्तिरूप से 'अणु तथा महान' होने से (अर्थात् परमाणु व्यक्तिरूप से एक प्रदेशी तथा शक्तिरूप से अनेक प्रदेशी होने के कारण) परमाणुओं को भी, उसके एक प्रदेशात्मकपना होने पर भी (अणुमहानपना सिद्ध होने से) कायत्व सिद्ध होता है। कालाणुओं को व्यक्ति-अपेक्षा से तथा शक्ति-अपेक्षा से प्रदेशप्रचयात्मक महानपने का अभाव होने से, यद्यपि वे अस्तित्व में नियत है तथापि, उनके अकायत्व है — ऐसा इसी से (-इस कथन से ही) सिद्ध हुआ। इसलिए, यद्यपि वे सत् (विद्यमान) हैं तथापि, उन्हें अस्तिकाय के प्रकरण में नहीं लिया है।

भावार्थ :- पाँच अस्तिकायों के नाम जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश हैं। वे नाम उनके अर्थानुसार हैं।

ये पाँचों द्रव्य पर्यायार्थिकनय से अपने से कथंचित् भिन्न ऐसे अस्तित्व में विद्यमान हैं और द्रव्यार्थिकनय से अस्तित्व से अनन्य हैं।

पुनश्च, यह पाँचों द्रव्य कायत्ववाले हैं क्योंकि वे अणुमहान हैं। वे अणुमहान

किस प्रकार हैं, सो बतलाते हैं:— 'अणुमहान्तः' की व्युत्पत्ति तीन प्रकार से है :-
 (१) अणुभिः महान्तः अणुमहान्तः अर्थात् जो बहु प्रदेशों द्वारा (-दो से अधिक प्रदेशों द्वारा) बड़े हों, वे अणुमहान हैं। इस व्युत्पत्ति के अनुसार जीव, धर्म और अधर्म असंख्यप्रदेशी होने से अणुमहान हैं; आकाश अनन्तप्रदेशी होने से अणुमहान है; और त्रि-अणुक स्कन्ध से लेकर अनन्ताणुक स्कन्ध तक के सर्व स्कन्ध बहुप्रदेशी होने से अणुमहान है। (२) अणुभ्याम् महान्तः अणुमहान्तः अर्थात् जो दो प्रदेशों द्वारा बड़े हों, वे अणुमहान हैं। इस व्युत्पत्ति के अनुसार द्वि-अणुक स्कन्ध अणुमहान हैं। (३) अणवश्च महान्तश्च अणुमहान्तः अर्थात् जो अणुरूप (-एक प्रदेशी) भी हों और महान (अनेक प्रदेशी) भी हों, वे अणुमहान हैं। इस व्युत्पत्ति के अनुसार परमाणु अणुमहान है, क्योंकि व्यक्ति-अपेक्षा से वे एकप्रदेशी हैं और शक्ति-अपेक्षा से अनेकप्रदेशी भी (उपचार से) हैं। इस प्रकार उपर्युक्त पाँचों द्रव्य अणुमहान होने से कायत्ववाले हैं, ऐसा सिद्ध हुआ।

कालाणु को अस्तित्व है किन्तु किसी प्रकार भी कायत्व नहीं है, इसलिए वह द्रव्य है किन्तु अस्तिकाय नहीं है॥४॥

गाथा - ४ पर प्रवचन

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा तहेव आगासं।
 अत्थित्तम्हि य णियदा अणणमइया अणुमहंता॥४॥
 आकाश पुद्गल जीव धर्म अधर्म ये सब काय हैं।
 ये हैं नियत अस्तित्वमय अरु अणुमहान अनन्य हैं॥४॥

देखो! यह सम्यग्ज्ञान की महिमा! कि जिस ज्ञान में छह द्रव्य और स्वसहित का भान हो, वह विकल्प के अवलम्बन बिना। आहाहा! बहुत सूक्ष्म। इसलिए लोगों को चढ़ा दिया न बाहर। वस्त्र बदल डालो और बैठो वहाँ डालो जनेऊ जेब में। जेब में क्या डाले? गले में। और हो जाये साथ में रोटियाँ खाने इकट्टे। उदासीन। अरे! उदासीन की व्याख्या क्या है? उद्-आसीन। विकार से ऊँचा होकर आसन डाले चैतन्य के स्वभाव

में, उसे उदासीन कहते हैं। समझ में आया ? पुण्य-पाप और निमित्त से दृष्टि हटाकर, डाल चैतन्य के ज्ञायकस्वभाव में स्थान। वहाँ आसन लगा। स्त्री-पुत्र मर गये, अकेला रहा हो, इसलिए वस्त्र बदले और बैठे वहाँ जाकर। कहो, समझ में आया ? किसी को हो, लो न! अरे! भाई! बापू! कहाँ से ? उदासीन दशा किसे कहना ? भाई! समझ में आया ? इस उदासीन का ऐसा अर्थ है, हों! कहा था एक बार। कहा था, ऐई! देवानुप्रिया! यह कहीं अर्थ है उसमें भाई में। श्रीमद् में है। उसमें भी कहीं है। उदासीन।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उदासीन शब्द है।

‘सुख की सहेली है अकेली उदासीनता।’ ‘अध्यात्म की जननी है....’ परन्तु वह कौन सी उदासीनता ? अनन्त पदार्थ मेरे अतिरिक्त भिन्न हैं, उनकी उपेक्षा करनेवाला और पुण्य-पाप के विकल्प उठे, उनकी उपेक्षा करनेवाला और ज्ञानानन्द चैतन्यमूर्ति के अनन्त धाम में आसन लगानेवाला। उसमें दृष्टि लगाकर उसमें—अस्तित्व में स्थिर रहनेवाला, उसे भगवान उदासीन कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे गुणस्थान में जघन्य। तो क्या है ? परन्तु इस प्रकार हो, उसकी बात है। दूसरी पद्धति वहाँ नहीं होती। ऐसा। जघन्य, उत्कृष्ट दूसरे प्रकार से तुम कहो (कि) यह छोड़े उसे जघन्य और अमुक छोड़े ऐसा नहीं। डाला न अज्ञान में वह सब। उसे वह जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट में वह कहीं जघन्य में डालना है ? डाला। उल्टे को जघन्य में डालते होंगे ? जहर का योगफल अधिक करे तो जहर आवे और उसके थोड़े में भी जहर आवे। अमृत थोड़े में भी अमृत और अधिक में भी अमृत। अमृत का गुणाकार करने से तो अमृत ही आता है। जहर का गुणाकार करे तो अमृत आता होगा ? नाम है अमृत। स्वभाव है अमृत। समझ में आया ?

यह अमृतचन्द्राचार्य देखो, देखो! आहाहा! अमृत प्रभु, मृतक कलेवर में मूर्च्छित हो गया उसे अमृत कैसे कहें ? वह मरे हुए पुण्य-पाप के भाव, मरे हुए विकारी मुर्दे, उसकी प्रीति और प्रेम करे, उसे अमृत कैसे कहें ? आहाहा! समझ में आया ? आया है

न ९६ गाथा में? यह तो देवानुप्रिया भी बोलता है। इसे याद है। सब बहुत पढ़ा है। कुछ काम नहीं होता। धन्धा नहीं होता। फिर यहाँ का बजाये, यहाँ का बजाये सब। ढोलकी बजाये। कल कहते थे, व्याख्यान करता हूँ, हों! कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! लो!

पहले जरा-थोड़ा शब्दार्थ करते हैं, हों! अस्तित्व नियत आता है न? उसमें अस्ति नियत आगे आयेगा। जीवो,.... अन्वयार्थ है न? पुद्गलकाय, धर्म, अधर्म तथा आकाश अस्तित्व में नियत,.... यह अस्तित्व में निश्चय है। अस्तिवाले तत्त्व हैं। सत् में नियत हैं। सत् है, सत् है छहो द्रव्य। उसमें निश्चय है। एक। और (अस्तित्व से) अनन्यमय.... दो। अस्तित्वमय है अर्थात् अस्तित्ववाले नियत है और अनन्यमय है। अस्तित्व से अनन्य है। अनन्य अर्थात् अन्य नहीं। गुण की बात की। सत्तागुण—है सब। उसके गुण से वह अनन्यमय है, छहों द्रव्य।

अनन्यमय समझ में आया? सत्ता अन्य गुण और सत्तावान अन्य, ऐसा नहीं। दोनों अलग नहीं है। सत्ता नाम का गुण अस्तित्व में रहा हुआ है (द्रव्य) और वह अस्तित्व नाम के गुण से वे द्रव्य अनन्य एकमेक अभेद है। और अणुमहान (प्रदेश में बड़े) हैं। यह व्याख्या की। अणुमहान प्रदेश से। नीचे है देखो प्रदेश में बड़े अर्थात् अनेकप्रदेशी; (२) एकप्रदेशी (व्यक्ति-अपेक्षा से) तथा अनेकप्रदेशी (शक्ति-अपेक्षा से)। अणुमहान। कितने ही एक हो तो भी महान कहने में आता है। कितने ही महान हों तो भी महान है। इसकी व्याख्या करेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

 कार्तिक कृष्ण १३, शुक्रवार, १३-१२-१९६३, गाथा-४, प्रवचन-८

पंचास्तिकाय, षट्द्रव्य का वर्णन। भगवान तीर्थंकर परमात्मा ने सर्वज्ञपद में जो तीन काल-तीन लोक देखने में आये, उसमें षट्द्रव्य और पंचास्तिकाय जानने में आया। जैसा स्वरूप है, वैसा यहाँ वर्णन षट्द्रव्य और पंचास्तिकाय का करते हैं। गाथा का अन्वयार्थ हो गया है।

यह षट्द्रव्य और पंचास्तिकाय का ज्ञान करके उसमें रहा हुआ आत्मा, छह द्रव्य में, पंचास्तिकाय में है न यह आत्मा? यह आत्मा स्वयं अनन्त गुण का पिण्ड है और असंख्य प्रदेशी कायवन्त है। ऐसा यह छह द्रव्य में इसका ज्ञान आ जाता है। यह आत्मा असंख्य प्रदेशी अर्थात् कायवान और अनन्त गुण के अस्तित्ववाला ऐसी जो आत्मवस्तु, उसके ऊपर पर्यायें जो अनादि से चली आती है—राग और द्वेष, राग और द्वेष, मिथ्यात्व और राग और द्वेष, पर्याय अर्थात् अवस्था, वह अधर्मदशा है। ध्रुव वस्तु तो ध्रुव है वह है। यहाँ उत्पाद, व्यय और ध्रुव कहेंगे।

वस्तु चिद्घन द्रव्य तो अनादि ऐसा का ऐसा, ऐसा का ऐसा है। ऊपर जो पर्याय होती है—अवस्था, वह अनादि से राग और द्वेष और मिथ्याश्रद्धा की पर्याय कर रहा है। वस्तु देखो तो ऐसी की ऐसी है। परन्तु उसकी दशा में अनादि काल से उसकी पर्यायें विकारमय हो रही है। शुभ और अशुभ और मिथ्या भ्रमणा। ऐसी पर्यायें अनन्त-अनन्त द्रव्य अर्थात् ध्रुव ऊपर जीव स्वयं अनन्त काल से करता आता है। उसे धर्म करना हो तो कैसे, उसका यह वर्णन इसमें इस प्रकार का है।

जो विकारी पर्याय होती है, उससे तेरी चीज़ अन्दर शुद्ध ज्ञानानन्द भिन्न है। ध्रुव चीज़, ध्रुव द्रव्य-वस्तु। यह उत्पाद-व्यय विकार के एक क्षणिक दशा में है। त्रिकाल स्वभाव में वह विकार नहीं। इस विकार का उत्पन्न होना अनादि से चला आता है, निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक (तक)। परन्तु निर्विकारी पर्यायरूपी धर्म उसमें अनन्त काल में एक सेकेण्ड भी किया नहीं। वह निर्विकारी पर्याय अर्थात् अवस्था का धर्म कहो या सुख कहो या शान्ति कहो या धर्म कहो या सम्यग्दर्शन कहो, सब एक ही चीज़

है। वह धर्म की पर्याय वस्तु में शुद्धता और आनन्द है ध्रुव, उसके लक्ष्य से धर्म की पर्याय होती है। उसके बिना धर्म की दशा नहीं होती। कहो, समझ में आया इसमें? इस बात का वर्णन करने के लिये यह सब वर्णन है। भगवान के ज्ञान में वीतराग परमेश्वर के ज्ञान में छह द्रव्य ज्ञात हुए। उन द्रव्यों का क्या स्वरूप है, उसमें आत्मा का भी क्या स्वरूप, उसमें साथ में आ जाता है। देखो!

टीका - इस गाथा में.... इसकी टीका है न? शब्दार्थ हो गया है। **पाँच अस्तिकायों की विशेषसंज्ञा,....** इस जगत में पाँच अस्ति अर्थात् अस्तिवाले पदार्थ हैं और काय है अर्थात् बहुत प्रदेशवाले पदार्थ हैं। उसकी विशेष संज्ञा इसमें कही गयी है। सामान्य-विशेष उसका अस्तित्व कहा गया है। कहेंगे, बाद में कहेंगे। यहाँ तो अभी शब्दार्थ है।

पाँच अस्तिकायों की विशेषसंज्ञा,.... अर्थात् यह धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, पुद्गल और जीव—ऐसे नाम, उसके पहले में कहने में आयेगे। समझ में आया? कहने में आये हैं। पाँच अस्तिकाय की विशेष संज्ञा अर्थात् खास उसका नाम। जीव का जीव नाम, पुद्गल का पुद्गल नाम, धर्मास्ति का धर्मास्ति, अधर्मास्ति (का अधर्मास्ति), आकाश का आकाश नाम, यह कहेंगे। **पाँच अस्तिकायों की विशेषसंज्ञा,....** टीका की पहली लाईन है। **सामान्य-विशेष अस्तित्व....** जगत के पदार्थ भगवान ने जो देखे, उनका सामान्य अस्तित्व अर्थात् सामान्य अर्थात् एकरूप रहना, उनका अस्तित्व और विशेषरूप से उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय पर्याय का विशेषपने अस्तित्व, उसकी इसमें बात करेंगे। क्यों आया या नहीं? सेठी!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न पहला। इसलिए तो पहले कहा।

यह आत्मा, इसका नाम आत्मा-जीव। यह काय अर्थात् असंख्य प्रदेश। अभी वस्तु की खबर नहीं होती कि मैं कहाँ हूँ? कितना हूँ? धर्म कहाँ से इसे करना? यह आत्मा, इसका नाम आत्मा। एक विशेष संज्ञा हुई। फिर सामान्य-विशेष अस्तित्व। सामान्य अर्थात् आत्मा कायम ध्रुवरूप से रहा। इसलिए यह पहले थोड़ी बात की। वह सामान्य ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... और विशेष, विकार की पर्याय या अस्तित्व

आदि गुण की पर्याय विशेष-विशेष अवस्था उसे विशेष अस्तित्व कहते हैं। त्रिकाल ध्रुव को सामान्य अस्तित्व कहते हैं।

भगवान जाने आत्मा क्या होगा? और अब इसे धर्म करना। जयन्तीभाई! यह सूक्ष्म है, हों! इसमें कुछ दिमाग चाहिए। ऐसा कहते हैं। ऐसे के ऐसे यह रूपये तो मिल जाये पुण्य के कारण, हों! उसमें बुद्धि का काम जरा भी नहीं। हराम बुद्धि का काम हो तो। ऐसा होगा? मीठालालजी! पैसा-बैसा मिले, उसमें बुद्धि चाहिए? नहीं। चतुर लोग हों तो अधिक पैदा करे, ऐसा होगा या नहीं? लो, इसमें भी हाँ पाड़ने में देरी लगती है। धूल में भी नहीं अब। चतुर के बहुत पुत्र दिखते हैं। पाँच सौ पैदा नहीं सकते महीने में। और बुद्धि के खाली बारदान हों, पाँच-पाँच लाख महीने में अभी पैदा करते हैं। परन्तु अब उसमें क्या है? समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : बुद्धि की कीमत उसमें रही। पर में कहाँ से आयी? कैसे में कहाँ बुद्धि की कीमत आ गयी?

यहाँ तो कहते हैं कि तेरा नाम आत्मा। यह विशेष संज्ञा। यह छहों के ना देंगे, उसमें तेरा (नाम)। तेरा अस्तित्व सामान्य विशेष। सामान्य अर्थात् ध्रुव अनादि-अनन्त ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... है.... है.... है।

मुमुक्षु : ध्रुव तारा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तारा नहीं। तारा होगा?

यहाँ है आत्मा। आत्मा है। है.... है.... है.... है.... है.... है.... अनादि से ऐसी 'है' शक्ति को सामान्य ध्रुवरूप से सामान्य अस्तित्व कहते हैं। एकरूप त्रिकाल रहनेवाला तत्त्व, उसे सामान्य तत्त्व कहते हैं। और उत्पाद-व्यय नयी-नयी अवस्था हो, विकारी हो, जाये, विकार हो, जाये, अस्तित्व आदि गुण की पर्याय भी (उत्पाद-व्यय हो)। अनन्त गुण हैं। अनन्त गुण हैं एक वस्तु में। आत्मा में असंख्य प्रदेश हैं, वह काय। अनन्त गुण हैं, उनकी शक्ति। वह सामान्य। और उसकी दशाओं में अनादि से उत्पाद-व्यय नयी अवस्था का होना, पुरानी का जाना, नयी का होना, पुरानी का जाना—ऐसे

उत्पाद-व्यय को विशेष अस्ति, विशेष पर्यायरूपी अस्तित्व कहते हैं। और उसके पीछे ध्रुव कायम रहनेवाला, उसे ध्रुव अस्तित्व कहते हैं। वस्तु का ज्ञान नहीं होता। द्रव्य, गुण, पर्याय वीतराग क्या कहते हैं? और धर्म करना है। कहाँ से धर्म होता होगा? धर्म क्या होगा? पर्याय होगी, गुण होगा या द्रव्य होगा? इसकी भी खबर नहीं होती।

मुमुक्षु : सभी सम्प्रदाय में आत्मा का....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा आत्मा का स्वरूप नहीं कहने में आता। देवानुप्रिया।

सामान्यरूप से आत्मा और विशेषरूप से आत्मा, ऐसा वीतराग के अतिरिक्त कहीं नहीं हो सकता। आत्मा है, इतना ही कहते हैं। सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर के अतिरिक्त सामान्य अर्थात् कि एकरूप टिकता तत्त्व, विशेष अर्थात् पलटता तत्त्व, लाओ, यह बात अन्यत्र (होवे तो)। पर्याय की बात लाओ। पर्याय एक समय में अनन्त गुण की अनन्त, एक द्रव्य की अनन्त, यह विशेष है। और उसका ध्रुवपना सामान्य, जैसे सोना सोनारूप से सोना.... सोना.... सोना.... सोना.... सोना.... सोना, वह ध्रुव है। कुण्डल और कड़ा और अँगूठी की अवस्थाएँ, वे विशेष हैं। विशेष भी है, सामान्य भी है। दोनों होकर सामान्य और विशेष की अस्ति पदार्थ रखता है। इसी प्रकार आत्मा भी सामान्य और विशेषरूप से अस्ति रखता है। उसका ज्ञान हुए बिना विशेष में दुःख की दशा अनादि की पुण्य-पाप, काम-क्रोध की होती है, वह दुःख है। उसे धर्म की दशा प्रगट करना हो तो वह सामान्य जो त्रिकाल ध्रुव-ध्रुव अखण्डानन्द चैतन्य ध्रुव सामान्य है, उसके ऊपर दृष्टि देने से धर्म की पर्याय अनन्त काल में नहीं हुई, वह पर्याय होती है। उसे विशेष अस्तित्व कहते हैं। अरे! वीतराग सर्वज्ञ क्या कहते हैं, उसकी खबर नहीं होती। छह द्रव्य क्या? नाम भी आते न हों अभी तो। वस्तु तो कहाँ रही? समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं, देखो!

यह पाँच अस्तिकाय। अस्ति अर्थात् है और काय अर्थात् प्रदेशों का समूह। अब प्रदेश का समूह क्या होगा? गाँठड़ी होगी यह? प्रत्येक वस्तु ऐसी है। भगवान ने देखी और ऐसा है। एक परमाणु है न यह पॉइन्ट? वह तो मूल वस्तु नहीं। वह तो जड़ और अनन्त रजकण का पिण्ड दिखता है यह मिट्टी। इसका अन्तिम पॉइन्ट टुकड़ा करते...

करते... करते... करते... अन्तिम टुकड़ा रहे, उसे भगवान परमाणु कहते हैं। वह परमाणु जितनी जगह को रोके, उस जगह को प्रदेश कहते हैं। ऐसे प्रदेश जिसमें अधिक हो, उसे काय कहा जाता है। यह काय नहीं। उसकी काय। जीवास्तिकाय। जीव अर्थात् वस्तु, अस्ति और उसकी काय। उसकी काय अर्थात् असंख्य प्रदेश, उसकी काय कहलाती है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : असंख्य शब्द तो जैन का अनादि का है। उसके तो बालक के पहले में शुरुआत में होता है। परन्तु अब यह बात चलती नहीं, सुनने की दरकार नहीं होती। कहो, समझ में आया इसमें ?

भगवान आत्मा जीव अस्तिकाय है। जीव अर्थात् चैतन्यमूर्ति, अस्ति अर्थात् है। काय अर्थात् असंख्य प्रदेशी समूह। उसे यहाँ जीवास्तिकाय कहा जाता है। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ केवलज्ञानी प्रभु, जिन्होंने एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में छह द्रव्य और पंचास्तिकाय देखे, यह उसकी व्याख्या है। जैन में जन्मे हों, उसे भी इसकी खबर न हो। और कहे कि हम धर्म करते हैं। किसका धर्म ? कहाँ था धर्म ? समझ में आया ? बराबर है या नहीं इसमें ? शंकरभाई ! कमाने के कारण सूझा है कभी ? यह कमाना.... कमाना.... कमाना.... कमाना.... रोना। राग और द्वेष.... राग और द्वेष.... राग और द्वेष, यह रोना है। कषाय.... कषाय.... कषाय.... अनादि का। और इस कषाय से मुझे कुछ लाभ हुआ, (ऐसा मानना)। मिथ्यादर्शन शल्य है। समझ में आया ?

ऐसा कहते हैं कि तेरा सामान्यपना अर्थात् चैतन्य कायम रहनेवाला (तत्त्व है)। जैसे सोना.... सोना.... सोना.... सोना.... सोना.... सोना.... वैसे चैतन्य.... चैतन्य.... चैतन्य.... चैतन्य.... उसे सामान्य कहते हैं, सामान्य कहते हैं। सदृश्य रहनेवाला। उसमें अवस्थायें होती हैं। क्षण-क्षण में अनन्त अवस्थायें, उसमें अनन्त गुण हैं इसलिए। वह अनन्त। ऐसे अनन्त परमाणु भी ऐसे हैं। यहाँ तो अभी आत्मा की बात करते हैं। परमाणु भी एक रजकण पॉइन्ट लो इसका टुकड़ा, तो एक प्रदेशी वस्तु है। उसमें अनन्त गुण हैं। उन अनन्त गुण की एक समय में अनन्त पर्यायें, इसलिए उत्पाद-व्यय विशेष अस्तित्व

होता है। परमाणुरूप से वर्ण, गन्ध, रस का पिण्ड जो है, वह सामान्यरूप से ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव.... सदा है। और उसकी अवस्था लाल, काली, पीली अवस्था (होती है), वह अवस्था विशेष अस्तित्व है। यह सामान्य और विशेष अस्तित्वरूप से यह पूरा पूर्ण पदार्थ का स्वरूप है। ओहोहो! समझ में आया ?

अभी यहाँ अपने निकालना है न उसमें विशेष का स्पष्टीकरण बाद में करेंगे। देखो! यहाँ तो अभी सामान्य और विशेष अस्तित्व और कायत्व। तीन बोल इसमें—इस गाथा में कहेंगे। आहाहा! भगवान ने केवलज्ञान में तीन काल-तीन लोक देखे हैं अरिहन्तपद में। चार कर्म का नाश होकर पुरुषार्थ की जागृति से केवलज्ञान को प्राप्त वीतराग। तब उन्होंने छह द्रव्य ज्ञान में देखे अनादि-अनन्त। वह तो अनादि केवली होते (आते हैं)। यह तो दूसरी गाथा में आ गया। अनादि केवली होते आते हैं। अभी लाखों केवली महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। अनन्त काल में अनन्त-अनन्त केवली भरत और ऐरावत और महाविदेह में भविष्य में होंगे। उन सब केवली भगवान ने अपने ज्ञान में यह छह द्रव्य और पाँच अस्तिकाय। अर्थात् छह द्रव्य में काल मिल जाता है। पाँच अस्तिकाय में काल नहीं आता, क्योंकि काल एक अणु.... अणु.... अणु.... अणु.... है। उसका प्रदेशों का समूह इकट्ठा नहीं होता। इसलिए उसे अस्ति कहा जाता है। है, ऐसा अवश्य, परन्तु काय-उसके प्रदेशों का समूह नहीं है। छह द्रव्य में पाँच को प्रदेश हैं। एक को प्रदेश अधिक नहीं, इसलिए उन्हें—पाँच को पंचास्तिकाय कहा जाता है। छहों को छह द्रव्य कहा जाता है। आहाहा!

यह तो अभी मूल एकड़ा की बात है। धर्म होने के पहले इसे कौन धर्म करनेवाला कैसा है? वह धर्म, वह उसकी दशा में कैसे होता है? और अधर्म अनादि से कैसे हो रहा है इसकी दशा में? (इसका ज्ञान करना चाहिए)। यह अधर्म, वह विशेष सत्ता है। आहाहा! विशेष सत्ता क्या होगी? विशेषणपने, पर्यायपने अस्तित्व। राग और द्वेष, पुण्य और पाप, काम और क्रोध, विकारी भाव का अधर्मपना, उसका अस्तित्व, वह विशेष अस्तित्व है। और उसका कायम चिदानन्द ज्ञानानन्द कन्द, वह उसका सामान्य अर्थात् कायम अस्तित्व है। कहो, समझ में आया इसमें?

कहते हैं कि यह छह द्रव्य अथवा पाँच के नाम कहूँगा। उनके सामान्य और

विशेष उनका अस्तित्व कहूँगा। और उनका कायत्व। बहुत प्रदेशोंवाले हैं, बहुत प्रदेशोंवाले हैं। कायापना अर्थात् समूहपना। प्रदेशोंवाले हैं, यह तीन बात इस गाथा में कहूँगा। अब इसमें पहले की बात। विशेष संज्ञा की बात।

वहाँ जीव,.... यह संज्ञा जीव का नाम। यह विशेष संज्ञा पहला बोल है, उसका नाम है यह। जीव अनन्त हैं। जीव अनन्त हैं। उनका नाम जीव। दूसरे से इसका नाम अलग। समझ में आया ?

पुद्गल,.... यह परमाणु, यह मिट्टी। यह अनन्त है। ऐसी मिट्टी, यह वाणी मिट्टी है, यह मिट्टी है, पैसा मिट्टी है, कपड़े मिट्टी हैं। इस मिट्टी को भगवान पुद्गल कहते हैं। क्या कहा ? यह वाणी उठे, वह पुद्गल है, मिट्टी है। यह मिट्टी है। कर्म मिट्टी अन्दर है। यह शरीर, अन्दर कर्मणशरीर, वह मिट्टी है। और तैजसशरीर एक है और यह सब दिखता है, वह सब मिट्टी पुद्गल है।

मुमुक्षु : इन्द्रियगम्य दिखे वह सब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इन्द्रियगम्य दिखे, वह सब पुद्गल की वैभाविकपर्याय दिखती है। मूल द्रव्य नहीं। अरे! समझ में आया ? क्या है ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : इस जगत के परमाणु, यह सब मिट्टी है। उसे भगवान पुद्गल अस्तिकाय कहते हैं। उसका नाम पुद्गल है। यह तो विशेष संज्ञा की बात चलती है। इन सबका नाम पुद्गल। कपड़े, गहने, मिट्टी, मकान यह सब वस्त्र, पुस्तकें, वाणी, शरीर, कर्म, इन सबको भगवान पुद्गल कहते हैं, मिट्टी कहते हैं, अजीव कहते हैं। इसका नाम पुद्गल संज्ञा है। इन जीवों का नाम जीव है, इसका नाम पुद्गल है। दोनों भिन्न-भिन्न चीज़ है। कहो, समझ में आया ? यहाँ तो छहों द्रव्य की बात है, हों! अभी तो।

वापस एक धर्मास्ति नाम का द्रव्य है। भगवान ने केवलज्ञान से यह लोक चौदह ब्रह्माण्ड में एक धर्मास्ति नाम का एक अरूपी पदार्थ देखा है। इसका नाम धर्मद्रव्य है। जो जड़ और चैतन्य गति करे, तब इसमें निमित्तरूप एक पदार्थ है चौदह राजूलोक में—पूरे चौदह ब्रह्माण्ड में, उसे अरूपी एक जड़ अजीव धर्मास्ति नाम का अरूपी तत्त्व है,

उसका नाम धर्म, वह विशेष संज्ञा है। यह धर्म करने की बात धर्म वह नहीं। उस पदार्थ का नाम धर्म है। जिसे भगवान अभी धर्मास्तिकाय कहेंगे। यहाँ तो अभी नाम देते हैं न! फिर उनका अस्तित्व कहेंगे। समझे न? फिर उनका कायपना कहेंगे। इस गाथा में तीन बोल कहेंगे। समझ में आया?

एक अधर्म,.... द्रव्य है। चौथा। पहला जीव, दूसरा पुद्गल, तीसरा धर्मास्ति और चौथा अधर्म। यह चौदह राजूलोक में एक अरूपी द्रव्य है। अमूर्त जड़। कि जो जड़ (पुद्गल)-चैतन्य को गति होकर स्थिर हो, उसमें निमित्तरूप है। ऐसा भगवान ने केवलज्ञान में यह द्रव्य प्रत्यक्ष ज्ञान में देखे हैं। उनके यह नाम हैं, ऐसा अभी कहा जाता है।

आकाश.... आकाश यह दिखता है वह नहीं, हों! ऐसा सर्वव्यापक आकाश अरूपी है। यहाँ सर्वत्र आकाश है। पूरे लोक में एक अरूपी आकाश है। और अलोक खाली... खाली... दसों दिशा। चौदह राजूलोक यह ब्रह्माण्ड पूरा हो रहे जगत, पश्चात् खाली अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... पोल है खाली, उसका नाम भगवान ने आकाश (कहा है)। वह आकाशद्रव्य भगवान ने देखा है। वह आकाश सर्वव्यापक है। लोक में भी है और खाली अनन्त भाग चारों दिशा जहाँ माप नहीं, खाली का माप नहीं, अमाप.... अमाप.... अमाप.... अमाप.... आकाश नाम का अरूपी पदार्थ भगवान ने केवलज्ञान में प्रत्यक्ष देखा है। उसका नाम आकाश है। यह पाँच नाम हुए। काल का इसमें गौणरूप से है। अस्तिकाय का विशेष वर्णन है न, इसलिए पाँच नाम लिये। काल नाम के असंख्य अणु हैं, उन्हें गौणरूप से दूसरे प्रकार से कहेंगे।

क्या कहा यह? यह उनकी विशेष संज्ञाएँ अन्वर्थ जानना। नीचे अन्वर्थ है। अर्थ का अनुसरण करती हुई; अर्थानुसार। नीचे इसका अर्थ है। (पाँच अस्तिकायों के नाम उनके अर्थानुसार है।) भगवान ने-केवलज्ञानी ने देखा ऐसे उनके नाम इस प्रमाण हैं। पहले तो विशेष संज्ञा—नाम दिये। पाँच अस्तिकाय के नाम दिये। समझ में आया? अब अब उसका सामान्य-विशेष अस्तित्व दूसरा बोल, जो पहली लाईन में आया है वह। सामान्य-विशेष अस्तित्व। अस्तित्व अर्थात् होनापना वह क्या, उसकी बात करते हैं। आहाहा!

वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमयी सामान्यविशेषसत्ता में नियत—व्यवस्थित (निश्चित विद्यमान) होने से उनके सामान्य विशेष अस्तित्व भी है, ऐसा निश्चित करना चाहिए। क्या कहा ? यह तो विद्यालय दूसरे प्रकार का है, शंकरभाई ! आहाहा ! भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने देखा, उसे जानने का विद्यालय है और यह जाने बिना इसे धर्म तीन काल में नहीं होगा। क्या चीज़ मुझमें है ? क्या चीज़ पर में है ? मेरा सामान्य-विशेषपने क्या है ? पर का सामान्य-विशेषपने क्या है ? उसका ज्ञान हुए बिना अपनी पृथक्ता पर से भिन्न भासित नहीं होती और पर की पृथक्ता अपने से भिन्न भासित नहीं होती। समझ में आया ?

कहते हैं, देखो ! उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमयी सामान्यविशेषसत्ता में... ये पाँचों ही जो द्रव्य कहे वे नियत—व्यवस्थित (निश्चित विद्यमान) होने से उनके सामान्य विशेष अस्तित्व.... अर्थात् होनापना भी है, ऐसा निर्णय करना। अब उसमें-आत्मा में उतारते हैं। देखो ! यह तो छहों द्रव्यों की बात है, हों ! पाँचों (अस्तिकाय की)। यह पाँचों की सूक्ष्म बात है। यह तो मूल सिद्धान्त है। अनन्त काल में इसने एकडा यथार्थ सीखा नहीं।

कहते हैं कि यह आत्मा। ऐसे पाँच अस्तिकाय। अब एक आत्मा अपन लेते हैं। आत्मा में उत्पाद-व्यय-ध्रुवमय सामान्य-विशेष सत्ता है। वह सामान्य और विशेष। नयी-नयी अवस्था उपजे और पुरानी अवस्था जाती है। समय-समय में नयी-नयी। नये-नये विचार होते हैं या नहीं ? वे विचार होते हैं, पुराने जाते हैं, नये होते हैं, पुराने जाते हैं। ये नये हों, उसे उत्पाद कहते हैं; पुराने जायें, उसे व्यय—अभाव—नाश कहते हैं। यह उत्पाद-व्यय की दशायें आत्मा में अनन्त गुण की अनन्त एक समय में हो रही है।

आत्मा विशेष संज्ञा तो कही आत्मा। अब यहाँ सामान्य—विशेष अस्तित्व बताते हैं। सामान्य अर्थात् ध्रुव। जो वह तीसरा बोल है, वह। तीसरो जो ध्रुव। त्रिकाल है.... है.... है.... है.... है.... है.... उसे सामान्य अस्तित्व कहते हैं। सामान्यरूप से सदृश्यपने अस्तित्व। गुण का, अनन्त गुण का सामान्यपने ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, अस्तित्व,

स्वच्छत्व, वस्तुत्व, विभुत्व, प्रदेशत्व, ऐसे एक आत्मा में अनन्त गुण रहे हुए हैं। उन गुणों का यहाँ ध्रुवपने, सामान्यपने 'है' ऐसा कहा जाता है। मगनभाई! कहो, जयन्तीभाई! यह ध्रुव में गया सामान्यपना। उस सामान्य में है आत्मा। सामान्य में है आत्मा। अस्तित्व कहा न? सामान्य में 'है' आत्मा। ऐसे विशेष में 'है' आत्मा। विशेष अर्थात्? यह आत्मा असंख्य प्रदेशी। काय बाद में कहेंगे। परन्तु असंख्य प्रदेशी का अस्तित्व, उसमें अनन्त गुण का अस्तित्व, उन अनन्त गुण की जो वर्तमान दशायें—हालत समय-समय में अनादि की होती है। अभी भी एक समय में सेकेण्ड के असंख्य भाग में 'अ' बोलें उसमें असंख्य समय जाते हैं। उसमें एक समय में आत्मा की दशा में अनन्त पर्यायें, अनन्त गुण की अनन्त अवस्था उपजती है। पुरानी पहले समय की अवस्था का व्यय होता है। यह उत्पाद और व्यय यह जीव का विशेष अस्तित्व है। इस विशेष और सामान्य में आत्मा रहा हुआ है। आहाहा! समझ में आया? छोटाभाई! यह समझे हो? कभी सुना था? भगवान जाने। कमाना और वहाँ जाकर एक सामायिक कर डाली लो! कहाँ गये? कपूरभाई! है या नहीं? परन्तु ठीक रुके हैं अब यहाँ। सुने तो सही।

अरे! भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर का मार्ग कोई अलौकिक दूसरा है। यह तो वीतराग का कहा हुआ तत्त्व है। यह कोई किसी ऐरा-गैरा मान बैठे कि ऐसा हो और ऐसा हो, ऐसा नहीं है। सर्वज्ञ परमेश्वर जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए हैं। अनन्त तीर्थकर हुए। वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में बीस तीर्थकर मौजूद विराजमान हैं। लाखों केवली भी विराजमान हैं। उन्होंने यह कहा हुआ पदार्थ क्या है उसका यह वर्णन चलता है। इस पदार्थ के भान और ज्ञान बिना क्या मुझमें है? क्या पर में है? पर में क्या होता है? मुझमें क्या होता है? क्या होता है और कैसे रहता हूँ? कैसे रहता हूँ, यह सामान्य। क्या होता है, यह विशेष। समझ में आया? यह तो ऐसी कोई शैली (आयी है) कि थोड़े में गागर में सागर भर दे, ऐसी कथनी है।

यह कहते हैं कि उत्पाद-व्यय-ध्रुवमय सामान्य-विशेष सत्ता में नियत-निश्चित—व्यवस्थित रहा हुआ आत्मा। यह तो पाँचों की बात, छहों की है। परन्तु अभी अपने आत्मा में उतारा न! उत्पाद-व्यय, अनन्त गुण की एक समय। समय अर्थात् आँख

मींचकर उघाड़े उसमें असंख्य समय जाते हैं। उसमें एक समय में आत्मा में अनन्त गुण की नयी अवस्था का उत्पाद होता है और पूर्व की अवस्था जो उत्पाद हुई थी, उसका उस समय व्यय अर्थात् नाश होता है। वह उत्पाद-व्ययमय विशेष सत्ता और ध्रुवमय सामान्य सत्ता। कायम वह का वह, वह का वह ध्रुवरूप से सदा कायम अनन्त गुण (रहे), वह सामान्य सत्ता। पर्याय की उत्पाद-व्यय विशेष सत्ता। वह आत्मा सामान्य और विशेष सत्ता के अस्तित्व में निश्चित रहा हुआ है, उसमें रहा हुआ है। यह परमाणु में नहीं, शरीर में नहीं, कर्म में नहीं, किसी के घर में नहीं। समझ में आया? अरे! यह गजब बात, भाई! मगनभाई! कहते हैं, कहाँ तू रहा है? भगवान जाने। कहाँ रहा? खबर नहीं हमें तो।

भगवान कहते हैं कि एक बार सुन। तेरी सामान्य सत्ता ध्रुवपना कायम रहनेवाली शक्ति; और विशेष सत्ता उत्पाद-व्यय। नयी अवस्था का होना, पुरानी का जाना। जैसे सोने में सोनापना रहकर, पीलापन, चिकनापन कायम रहकर कुण्डल की अवस्था का नाश होकर, कड़ा का उपजना होता है। कुण्डल हो, उसका नाश होकर कड़ा की अवस्था (होती है)। ऐसी अवस्था एक के बाद एक होती है। उस अवस्था का होना, उसे उत्पाद कहते हैं, पूर्व की अवस्था का जाना, उसे व्यय कहते हैं, और स्वर्णपने में पीलाश, चिकनापन का रहना, उसे ध्रुव कहते हैं।

इसी प्रकार भगवान आत्मा, यह आत्मा, वैसे प्रत्येक अनन्त आत्मा। ऐसे निगोद के अनन्त आत्मा, सिद्ध के अनन्त आत्मा, केवलियों के लाखों आत्मा, एकेन्द्रिय के असंख्य दूसरे प्रत्येक के आत्मा। दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय के असंख्य आत्मायें। यह सब अपने सामान्य और विशेष अस्तित्व में रहे हुए हैं। क्या कहा इसमें? देवानुप्रिया! क्या है तब पीछे अब? कुछ नहीं। चले ऐसा होगा। आहाहा!

यह तो वस्तु सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा के एक ज्ञान में सिद्ध हुई और इसके ख्याल में आवे ऐसी है। परन्तु कभी ख्याल किया नहीं, विचार किया नहीं, अन्धी दौड़ ऐसे का ऐसा मुट्टी बाँधकर छोड़ा है अज्ञान में। अज्ञान की पर्याय उत्पन्न हो और अज्ञान का नाश हो, समय-समय और ध्रुवरूप से चैतन्य कायम रहे। न्यायसर है या नहीं? लॉजिकसर है या नहीं?

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमयी सामान्यविशेषसत्ता में.... अर्थात् अस्तित्व में नियत.... निश्चय व्यवस्थित (निश्चित विद्यमान) होने से.... कौन ? यह पाँचों ऊपर कहे वे । उनके सामान्य विशेष अस्तित्व... अर्थात् अस्तित्व भी है, ऐसा निश्चित करना चाहिए । ओहो ! देखो ! यह परमाणु है या नहीं ? अब इसका सामान्य-विशेष लेते हैं । यह आत्मा का लिया पहले । यह परमाणु । यह तो बहुत रजकण के पिण्ड इकट्ठे हैं । वहाँ तो धूल होकर उड़कर रजकण-रजकण पृथक् हो जायेंगे । यह कहीं मूल चीज़ नहीं है । एक-एक रजकण जड़-रूपी है । अब इस रजकण में सामान्य-विशेष अस्तित्व है । उस रजकण में सामान्यपना क्या ? कि उसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श का गुणपना-शक्तिपना वह सामान्य और उसकी यह अवस्था दिखती है, यह सफेद, काली, हरी, पीली अवस्था, वह उसका विशेष है । उस एक-एक परमाणु में अनन्त गुण एक प्रदेश में, उसके अनन्त गुणों का ध्रुवपना, वह वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श का ध्रुवपना, वह सामान्य सत्ता और अवस्था हरी, काली, सफेद, कोमल उसकी विशेष अवस्था । वह परमाणु उसकी सामान्य और विशेष सत्ता में रहा हुआ है । आत्मा में रहा हुआ नहीं । एक-एक रजकण दूसरे रजकण में रहा हुआ नहीं । वह रजकण दूसरे आत्मा में रहा हुआ नहीं । एक आत्मा अपने सामान्य-विशेष में रहा हुआ है, वह दूसरे के आत्मा के सामान्य-विशेष में रहा हुआ नहीं । आहाहा ! सेठी ! अरे, भगवान !

अरे ! क्या भगवान कहते हैं और क्या भगवान ने देखा ? क्या है वस्तु में ? इसे निर्णय किये बिना तुझे धर्म कहाँ से होगा और अधर्म कहाँ से टलेगा ? चन्दुभाई ! न्याय से है या नहीं यह ? देखो ! यह तो बुद्धि में पकड़ में आये, ऐसी बात तो सादी भाषा से कही जाती है । यह शास्त्रभाषा तो बहुत गूढ़ है परन्तु इसका यह अर्थ है । समझ में आया ?

कहते हैं कि यह एक-एक परमाणु-पॉइन्ट.... पहले रजकण में इस रजकण की अवस्था आटे की थी । पहले गेहूँ की थी, उसके पहले धूल की थी । परमाणु तो ध्रुवरूप से वह का वह रजकण है । पहले धूल की थी, फिर गेहूँ की हुई, फिर आटे की हुई, पश्चात् यह रक्त की हुई । यह अवस्था हो, बदले जाये, बदले जाये, उसे उत्पाद-व्यय कहते हैं । नयी अवस्था उपजे और पुरानी अवस्था जाये । और रजकण के रंग, गन्ध,

रस, स्पर्श का अस्तित्व सामान्यरूप से, ध्रुवपने कायम रहना, उसे सामान्य अस्तित्व कहते हैं। यह एक-एक परमाणु, उसके सामान्य और विशेष अस्तित्व में रहा है। दूसरे के सामान्य और विशेष अस्तित्व में वह रहा नहीं है। आहाहा! कहो, सुनाई देता है या नहीं? सुनाई देता है। ऐई! देवानुप्रिया! जेचन्दभाई! यह क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : कहते हैं बराबर, परन्तु कठिन पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो भगवान कहते हैं। आत्मा को समझाने के लिये कहते हैं, तब यह समझने के योग्य हो, उसे कहते हैं या नहीं समझने के योग्य जड़ को कहते हैं? समझे, उसे समझने का कहते हैं। सुन तू, हम यह कहते हैं। हमने देखा ऐसा है, वैसा कहते हैं, ऐसा तू है। हमने देखा वैसा है, वैसा कहते हैं, वैसा तू है। पहली गाथा में आ गया। समझ में आया? शब्दसमय, ज्ञानसमय, अर्थसमय तीन आ गये हैं।

यह तो अलौकिक शास्त्र अर्थात् वीतराग की वाणी की रचना! जगत को एक क्षण में पूरे जगत की चीज़ क्या है, उसके ख्याल में आ जाये, ऐसा इसका कथन है। परन्तु इसका कभी प्रयत्न नहीं, कभी सुनने को मिले नहीं। समझ में आया? छह काय की दया पालो.... छह काय की दया पालो। यहाँ कहते हैं, परन्तु छह काय के जीव उनके सामान्य-विशेष में रहे हुए हैं। उनका शरीर उनके सामान्य-विशेष में परमाणु रहे हुए हैं। तू तेरे सामान्य-विशेष में रहा हुआ है। तू किसका विशेष करेगा? किसकी विशेष दशा होने में तू जाकर रहेगा? खबर नहीं होती। मीठालालजी! समझ में आया?

भगवान आत्मा प्रत्येक आत्मा, हों! अनन्त आत्मायें। एक निगोद के एक शरीर में अनन्त आत्मा है। आलू का एक राई जितना टुकड़ा लो, शकरकन्द का (लो), तो उसमें असंख्य तो औदारिकशरीर हैं। उसमें एक-एक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए, उससे अनन्तगुणे जीव हैं। वह एक-एक जीव अपनी सामान्य-विशेष सत्ता में रहा हुआ है। किसी के कारण से नहीं और उसकी विशेष सत्ता अवस्था उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय हो, उसे दूसरा कर दे, तब तो उसके विशेष अस्तित्व का नाश होता है। समझ में आया? कहो, यह दूसरे द्रव्य का सुधार सकता है या नहीं? ऐई! देवानुप्रिया! सुधारे तो क्या बाधा आवे?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। उसका सुधारे तो उसका विशेष अस्तित्व उसमें रहा नहीं। दूसरे ने उसका विशेष अस्तित्व किया। तो यहाँ तो कहते हैं, सामान्य-विशेष अस्तित्व में रहे हुए तत्त्व है। उन्हें दूसरा कोई सामान्य—विशेष में रहे हुए को दूसरे तत्त्व दूसरे को कुछ कर सके, ऐसा तीन काल-तीन लोक में नहीं बन सकता। नहीं तो उसके विशेष अस्तित्व का नाश होता है। ऐई! देवानुप्रिया! भंगभेद कठिन पड़े। मुश्किल-मुश्किल से.... अब यह जेचन्दभाई जैसे अभी कठिन पड़े, ऐसा कहते हैं, लो। रुपये में कठिन नहीं पड़ता था वहाँ? समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि इस शरीर का एक रजकण है न? एक रजकण / पॉइन्ट हों! यह तो अनन्त रजकण का दल-मिट्टी-धूल है। यह कहाँ आत्मा था? पुद्गल है। पुद्गल का यह तो ढींकणा बड़ा। उसका एक पॉइन्ट रजकण। भगवान कहते हैं कि एक-एक रजकण में उसका ध्रुवपना रहा हुआ है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श के गुण का। ऐसे अनन्त गुण, हों! एक रजकण में अनन्त गुण। और उसकी पर्याय जो यह हरी, पीली, काली, कोमल होती है, वह उसका उत्पाद-व्यय है। वह उत्पाद—व्यय, पर्याय और ध्रुव गुण, उसमें यह द्रव्य रहा हुआ है। उसे उल्लंघकर उसका समाप्तपना अन्यत्र नहीं हो सकता। इतने में वह पूरा पड़ जाता है। इसलिए बाहर निकले, बाहर निकले, तब किसी का करे न? आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? इसमें समझ में आता है या नहीं, ऐसा कहा। वह तुम समझकर बैठे, वह नहीं।

मुमुक्षु : उसे उखेड़ डालकर।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे उखेड़कर यह समझना है। यह क्या है? यह कहते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उल्टी मान्यता की हो तो क्या करे? उल्टी मान्यता की हो तो फिर नहलावे ही न? नहलाते हैं न। मैलवाले को नहलाते हैं या धोये हुए लड़के को नहलाते हैं। वह मैल भी इसकी दशा में इसने उत्पन्न किया हुआ विशेष अस्तित्व है। क्या? मिथ्याश्रद्धा, राग और द्वेष, यह आत्मा की विशेष अवस्था के अस्तित्व में वह है।

कर्म के अस्तित्व के कारण नहीं, शरीर के अस्तित्व के कारण नहीं। समझ में आया ? सबके चौका अलग हैं अनन्त द्रव्यों के।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : चौका कहते हैं न ? क्या कहते हैं ?

बहुत संक्षिप्त में भी पूरी गागर में सागर। चौदह ब्रह्माण्ड को विभाजित कर भिन्न बताया है यह, कि भाई ! एक बार सुन तो सही प्रभु ! तेरी प्रभुता सामान्य और विशेष में व्याप्त है। तेरी प्रभुता दूसरे के काम करने में व्यापे, ऐसा होवे तो उसका सामान्य और विशेषपना उसका अस्तित्व है, वह नहीं रहता।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : तेरा भी नहीं रहता और उसका भी नहीं रहता। तेरी मिथ्या श्रद्धा में गड़बड़ी उठती है। तुझे अधर्मदृष्टि उठी है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ओहो ! यह समझण हो फिर क्या करना ? मार्ग देखा, फिर क्या करना, ऐसा उसे नहीं पूछना पड़ता। क्या कहा ? यह मार्ग देखा कि यह सीधा, ऐसा चला जाये ऐसे, सीधा सपाटा मार्ग में। यहाँ नहीं और ऐसा नहीं। फिर क्या करना ? कि उसे गाँव जाना हो तो चलने लगना उस रास्ते।

इसी प्रकार यह सामान्य और विशेष मेरा अस्तित्व मुझमें, पर का अस्तित्व पर में। अब इतना खाली हो गया है। किस प्रकार खाली हुआ ? कि पर की विशेष दशा मेरे कारण नहीं। पर की दशायेँ होती हैं जीने की, मरने की, परमाणु की सुधरने की-बिगड़ने की, मेरे कारण नहीं। दृष्टि में पर से निवृत्त हो गया। अब आया अपने में तो मुझमें अभी विशेष अवस्था होती है, वह किसकी होती है ? राग और द्वेष, विकार और भ्रमणा। तो वह क्या है ? वह कैसे होती है ? इसे निर्णय करना चाहिए। ऐसे निर्णय करने से उसका वस्तुस्वभाव क्या है ? मैं तो ध्रुव चैतन्य हूँ और यह विशेष यह अवस्था, यह मलिन कैसे ? मेरा स्वभाव है, वैसी अवस्था निर्मल होना चाहिए। सामान्य है, वैसा विशेष निर्मल होना चाहिए। तो यह राग और द्वेष, पुण्य और पाप, काम और क्रोध

विकार दशा वह है मेरे अस्तित्व में, परन्तु विशेष मेलवाला अस्तित्व है। परन्तु मेरी त्रिकालशक्ति जो ज्ञानानन्दस्वरूप है, ध्रुव सामान्य, उसके ऊपर दृष्टि देने से उसकी मेल की दशा की रुचि टले और सम्यग्दर्शन की रुचि अन्तर प्रगट हो, यह उसे धर्म कहते हैं। भगवान जाने धर्म क्या होगा ? समझ में आया ?

भगवान सर्वज्ञदेव परमात्मा (द्वारा) सौ इन्द्र के मध्य में समवसरण में कही हुई यह बात है। 'लोगसहावं सुणंताणं' पहले कहा-आगे कहा न, ९५वीं गाथा में। लोक के स्वभाव सुननेवाले को भगवान की वाणी में ऐसा आया है। अभी महाविदेहक्षेत्र में त्रिलोकनाथ सीमन्धर परमात्मा केवलज्ञानी यह बात कर रहे हैं। भगवान यह कह रहे हैं। आहाहा! परन्तु इसका घर छोड़कर आगे गया, उसे क्या करना, इसकी खबर नहीं पड़ती। देवानुप्रिया! क्या करना फिर ? लड्डू तैयार किये, फिर क्या करना ?

इसी प्रकार वस्तु जानी कि ओहो! जगत के सब तत्त्व उनके ध्रुव और उत्पाद-व्यय में रहे हुए हैं। मेरा उसे क्या काम है ? और मैं भी मेरे सामान्य और विशेष सत्ता के अस्तित्व में रहा हुआ हूँ, मेरे कार्य के लिये पर का मुझे क्या काम है ? मेरे लिये दूसरे सब शून्य हैं। मेरे लिये मैं पूरा भरपूर हूँ। एक आत्मा के लिये अनन्त पदार्थ मेरे लिये शून्य है लाभ के लिये। मेरे आत्मा के लाभ के या नुकसान के लिये मैं भरपूर हूँ। तो नुकसान तो अनादि काल से कर रहा हूँ। विकार और पुण्य और पाप अनन्त काल से वह तो उसकी पर्याय का ऐसा प्रवाह देखो, द्रव्य तो ध्रुव है वस्तु, उसकी पर्याय का उत्पाद.... उत्पाद.... उत्पाद उसका अनादि का प्रवाह प्रवाह देखो अनादि का, तो कभी इसने सम्यक् धर्म की पर्याय अनन्त काल में की नहीं। मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष.... मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष.... मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष। उसके अनन्त प्रकार वह अनन्त काल के प्रवाह में उसकी पर्याय में अनन्त प्रवाह में हो रहा। अब यह जब सामान्य—विशेष मेरा मुझमें, पर का पर में, तो उसकी विशेष दृष्टि टलकर सामान्य दृष्टि करे, तब उसे सम्यग्दर्शन का धर्म प्रगट होता है। उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह पहले में पहला धर्म उसे भगवान कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : अपने दोष से बन्धन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे किसके कारण बन्धन है ? शिथिल पड़कर आये सवेरे ।
 ऐं... ऐसा होता है । आज वापस शिथिल पड़कर आये । घड़ीक में कुछ.... घड़ीक में
 कुछ हो, लो । यह क्या है ? यह अवस्था है या कायमपना है ? अवस्था । यह अवस्था
 बदला करे । यह कौन बदलाता है ? स्वयं ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी शरीर के कारण नहीं । शरीर, शरीर में रहा । यहाँ
 क्या चलता है ? यह इसमें आया कहीं ? सामान्य और विशेष अस्तित्व में रहे हुए
 परमाणु परमाणु में हैं । तुझमें बिल्कुल एक अंश नहीं । शरीर का सामान्य-विशेष तुझे
 स्पर्शा नहीं, तेरा सामान्य—विशेष पर को स्पर्शा नहीं तीन काल-तीन लोक में । नहीं तो
 सामान्य-विशेष में नियत—व्यवस्थित (निश्चित विद्यमान) होने से... नियत—निश्चय
 रहा हुआ होने से । शरीर में रहा है आत्मा ? आत्मा, आत्मा में है । शरीर, शरीर में है ।
 शंकरभाई ! ऐसा कहते हैं कि हम भगवान ने कहे हुए द्रव्य मानते हैं । कहे हुए मानते हैं ।
 समझे नहीं कुछ । क्या समझे बिना माना तूने ? समझ में आया ? उल्टी मान्यतायें, उल्टे
 प्रकार और हमने भगवान का माना । क्या मानता है तू भगवान का ? भगवान का माने
 उसकी आँखें उघड़ जानी चाहिए । समझ में आया ? आहाहा !

कहते हैं, पहले तो नाम कहे थे । यह सामान्य-विशेष अस्तित्व इसमें कहा ।
 समझ में आया ? प्रत्येक वस्तु अर्थात् यह तो दो की अपने बात की—एक आत्मा और
 परमाणु । परन्तु ऐसा एक धर्मास्ति है, अधर्मास्ति है, आकाश है, असंख्य कालाणु है ।
 प्रत्येक में सामान्य-विशेष अस्तित्व है । काल में काय नहीं इसलिए आगे यह बात
 करेंगे । कहो, समझ में आया या नहीं इसमें ? ऐसे का ऐसे पढ़ जाये तो कुछ समझ में
 आये ऐसा नहीं है उसमें । ऐकड़िया का कक्का बारह खड़ी का पढ़ा हुआ एम.ए. की
 पुस्तक पढ़े । अक्षर गुजराती में लिखा हो तो पढ़े तो सही । समझे कुछ ?

मुमुक्षु : तो की ।

पूज्य गुरुदेवश्री : कब की है किसी दिन अनन्त काल में । सत्य नव तत्त्वों में
 जीवतत्त्व कौन है ? पुण्यतत्त्व क्या है ? (यह जाना नहीं) ।

नव तत्त्व के ज्ञान में जीव और अजीव दो द्रव्य हैं। और उनके साथ उनके उत्पाद-व्यय की पर्याय है। यहाँ तो यह सामान्य-विशेष में डालना है न यहाँ?

नव तत्त्व है या नहीं? यहाँ छह द्रव्य के अन्तर्भेद से नौ होते हैं। तो छह द्रव्य में सामान्य विशेषण, उसमें नौ तत्त्व में सामान्य-विशेष अर्थात् क्या? उसमें जीव और अजीव दो द्रव्य जो कायम रहे हुए तत्त्व, उसे सामान्य अर्थात् ध्रुव कहते हैं। और उसकी सात पर्यायों को उत्पाद-व्यय कहते हैं। आत्मा में जो दया, दान के परिणाम होना, वह पुण्यरूपी तत्त्व, आस्रवरूपी तत्त्व, विशेषरूपी भाव। और अटका है स्वभाव वहाँ इसलिए बन्धरूप विशेषभाव उत्पाद। समझ में आया? और इस आत्मा में यह बन्ध और आस्रव की रुचि छोड़कर ज्ञानानन्द चिदानन्द सत् प्रभु आत्मा पूर्ण आनन्द ध्रुव सामान्य हूँ, ऐसी दृष्टि अन्तर में होने से जो अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान, शान्ति की-धर्म की पर्याय उत्पन्न होती है, उसे संवर और निर्जरा कहते हैं। वह संवर और निर्जरा वह उत्पाद-व्यय की पर्याय है। और पूर्ण शुद्धि प्रगट हो, उसे मोक्षपर्याय कहते हैं। वह मोक्ष भी उत्पाद-व्ययवाली पर्याय है। आहाहा! भगवान जाने। नौ के नाम भी न आवे। उसमें और नौ में सामान्य और विशेष क्या? सेठी! समझ में आया इसमें कुछ?

श्रीमद् ने लिखा है मोक्षमाला में। नौ के नाम भी अँगुली के पोर पर गिने इतने कोई होंगे जैन में। नाम, हों! नाम ठीक से, हों! जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध (मोक्ष), नाम अभी। यह विशेष संज्ञा कही न—नाम। फिर उनका सामान्य अस्तित्व और विशेष अस्तित्व।

एक परमाणु शरीर आदि जो अजीव मिट्टी है, पाँच द्रव्य। एक आत्मा के अतिरिक्त पाँच। उन द्रव्यों में ध्रुवपना रहना, वह सामान्य है और अवस्था होना, वह विशेष है। वह मुझसे वे सब भिन्न हैं। अब रहा अपना आत्मा अथवा दूसरे का आत्मा। दूसरे के आत्मा भी सामान्य और विशेषरूप से त्रिकाल अपने कारण से अस्तित्व से टिक रहे हैं। उन्हें मेरी आवश्यकता नहीं, उनकी मुझे आवश्यकता नहीं। अब मैं रहा सामान्य और विशेष। तो सामान्य तो आनन्दकन्द ध्रुव ज्ञानगुण का पिण्ड आत्मा ध्रुव। और विशेष में उनकी दशायें। विशेष में दशायें जो विकारी या अविकारी। अस्तित्वगुण

की, वस्तुत्वगुण की अविकारी है और रागादि चारित्रगुण की विकारी है। उस विशेष अवस्था में अब मुझे धर्म करना हो तो क्या करना ? उस विशेष दशा का लक्ष्य छोड़कर, त्रिकाल ज्ञानानन्द ध्रुव है, उसकी दृष्टि का ध्येय करके और जो निर्मलदशा होती है, उसे भगवान नया धर्म उत्पाद-व्यय का कहते हैं। यह भाषा किस प्रकार की ! कहो, रतिभाई ! बहुत सरस है। हेडमास्टर है न यह ! यह तुम्हारे विद्यालय में आता नहीं ऐसा कुछ, आता है ? हेडमास्टर में ?

अब यह अस्तित्व में है, ऐसा जो कहा न ? वह तो फिर काल एक अणु है असंख्य हों, अरूपी। उसमें भी सामान्य-विशेषपना है और आकाश है न पूरा व्यापक, उसमें भी सामान्य-विशेष है। सामान्य अर्थात् आकाश अरूपी है, उसका ध्रुवपने रहना, गुणपने वह ध्रुव सामान्य है। और नयी.... नयी.... नयी.... नयी.... अवस्था आकाश में उत्पाद-व्यय होता है। यह आकाश नहीं, हों ! यह तो पुद्गल दिखता है यह। यहाँ गहरा आकाश है। यह आकाश नहीं। आकाश तो सर्वव्यापक लोक में और अलोक में भगवान ने अरूपी पदार्थ देखा अनादि-अनन्त सर्वव्यापक। अरूपी। उसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं। परन्तु उसमें सामान्य और विशेष अस्तित्वपना है। आकाश में सामान्य और विशेष अस्तित्वपना।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : आ गया न पहले। आकाश भी एक पदार्थ है न ! ऊपर कहा न ? आकाश भी एक विशेष संज्ञावाला पदार्थ है। अनादि-अनन्त भगवान ने ज्ञान में देखा हुआ। उस आकाश के दो प्रकार हैं। कायम रहना ऐसा ध्रुवपना गुण का, उसे सामान्य सत्ता कहते हैं। नयी-नयी उत्पाद-व्यय अवस्था (हो वह विशेष)। उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। कोई भी पदार्थ हो, वह तीन अंश बिना का नहीं होता। उत्पाद-नयी अवस्था होना, पुरानी अवस्था जाना और टिकना। यह उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। यह इस सत् की व्याख्या चलती है। तो अस्तित्व के तीन अंश वह आकाश में भी पलटन होना, पलटन क्षण-क्षण में नयी अवस्था का होना, अरूपी का होना कहाँ नजर पड़े, ऐसा है बाहर ? समझ में आया इसमें ? यह आकाश।

धर्मास्ति में भी ऐसा है। इस लोक में धर्मास्ति व्याप्त है न एक अरूपी, उसमें भी सामान्य और विशेष अस्तित्व है। नयी-नयी धर्मास्ति में भी अवस्था होती है, अधर्मास्ति में होती है, आकाश में होती है और काल-अणु (कालाणु) है। यहाँ तो अस्तिकाय लेना है न, इसलिए उसमें नहीं लिया। परन्तु वह कालाणु चौदह ब्रह्माण्ड में असंख्य हैं। एक-एक आकाश प्रदेश में एक-एक अणु अरूपी.... अरूपी... अरूपी.... उसमें भी अनन्त गुण हैं। गुण हैं, वे ध्रुव हैं। और नयी-नयी अवस्था पलटती है परिणामन में, वह उसका उत्पाद-व्यय है। ऐसा वह वस्तु का स्वयंसिद्ध (स्वरूप) किसी ने किया नहीं है। परन्तु क्या करे ?

आत्मा ज्ञानज्योति चैतन्यशक्ति का सत्त्व। अब उसे करे कौन ? ज्ञान को उपजावे कौन ? वह ज्ञान की मूर्ति चैतन्य सूर्य है। आत्मा अर्थात् ज्ञानस्वरूप पूरा चैतन्य। है, करे कौन ? ईश्वर-फीश्वर कर्ता-फर्ता आया कहाँ से ? समझ में आया ? ऐसे छहों द्रव्यों का जो स्वभाव है। है, उसका स्वभाव करो। परन्तु करे अर्थात् क्या ? इसलिए आचार्य महाराज यहाँ सर्वज्ञ का कहा हुआ सादी भाषा में कि छहों द्रव्यों का सामान्य विशेषरूप से अस्तित्व, वह उसका स्वभाव है। वे उसके स्वभाव में प्रत्येक पदार्थ अनादि से रहे हुए हैं। किसी के कारण कोई रहा है, ऐसा वस्तु के स्वरूप में नहीं है। कहो, समझ में आया इसमें ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या है ? इसके लिये तो यह लगायी है। किसके लिये लगायी है। जीवद्रव्य की पर्याय में मिथ्याश्रद्धा, यह दूसरे का कर दूँ, दूसरे मुझे कर दे और दूसरे का अच्छा करना, ऐसा महामिथ्यात्व का पाप अधर्म, वह दुःख है। जड़ को दुःख होगा ? मिट्टी को क्या दुःख होगा ? वह स्कन्धरूप से होओ या परमाणुरूप से रहो। विभावरूप से यह विभाव हो, वह जड़ की अवस्था। बहुत स्कन्ध रजकण इकट्टे हैं, (वह) विभाव है न ? उसे विभाव हो तो दुःख नहीं और अकेला हो तो सुख नहीं।

इस आत्मा की इसे खबर नहीं, इसलिए यह कर दूँ, पर का कर दूँ, पर को हिला दूँ, पर को सुधार दूँ, पर को बिगाड़ दूँ, पर को समझाकर मेरे कारण से पर की दशा हो।

यह मिथ्या मान्यता, मिथ्यादर्शन शल्य, महान पाप, उसे दुःख कहते हैं। परन्तु वह दुःख तो इसे ख्याल में आता नहीं। दरिद्रपना हो, पैसा न हो, निर्धन हो तो दुःखी। धूल में भी दुःखी नहीं। निर्धन दुःखी है? कौन कहता है? निर्धनपने के कारण दुःखी है? सधनपने के कारण सुखी है? सधनपना, वह गुण है? निर्धनपना, वह अवगुण है? बिल्कुल नहीं। वह तो जगत की दशा के संयोग-वियोग की बात है। उसके साथ आत्मा को क्या है? बराबर है? दुनिया तो ऐसा कहती है न, पैसेवाले के लड़के होशियार, ऐसा लोग कहते हैं न? पैसेवाले के लड़के, ऐसे पैसे। धूल में भी होशियार नहीं। अब पैसेवाले सब थोथेथोथा खड़े हों। बड़ी मूर्खाई से भरे हुए। वास्तविक आत्मा और वास्तविक परमाणु और वास्तविक उसके द्रव्य-गुण-पर्याय के भान बिना की मूर्खाई से भरपूर उसे चतुर कहे कौन? ऐई! देवानुप्रिया!

यहाँ तो कहते हैं कि शास्त्र पढ़कर बैठा हो ग्यारह अंग करके, तो भी यह सामान्य और विशेष मेरी दशा मुझसे है, पर की पर से है। मेरी विशेष दशा में मेरे चैतन्य के अवलम्बन से मुझे अन्तर गुण की दृष्टि करने से अखण्डानन्द प्रभु चैतन्य ध्रुव जिसमें शान्ति का पार नहीं, उस पर नजर करने से मेरी धर्मपर्याय होती है, ऐसा जिसे ज्ञान नहीं। उसे तो भगवान अज्ञानी और मूर्ख कहते हैं। फिर राजा हो तो भी मूर्ख है और देव हो तो भी मूर्ख है। स्वर्ग के देव। पुण्य के फल से स्वर्ग में गये। मूर्ख कहो या मूढ़ कहो या मिथ्यादृष्टि कहो। एक ही बात है न।

यह यहाँ कहते हैं। अब यह अस्तित्व में होने पर भी, ऐसी यह चीज़ नहीं कि जैसे बर्तन में दूध रखा हो, ऐसा है। आत्मा एक मानो अस्तित्व में रहा है। अर्थात् कि जैसे बर्तन में दूध रखा हो, ऐसे अस्तित्व में आत्मा रहा है, ऐसा नहीं है। परन्तु सफेदी में जैसे दूध रहा है, वैसे अस्तित्वगुण में आत्मा रहा हुआ है। इस प्रकार प्रत्येक अस्तित्व में वह द्रव्य रहा हुआ है। समझ में आया? इसकी विशेष बात करेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

 कार्तिक कृष्ण १४, शनिवार, १४-१२-१९६३, गाथा-४, प्रवचन-९

पंचास्तिकाय । षट्द्रव्य पंचास्तिकाय का वर्णन है । उसमें चौथी गाथा का वर्णन है । भगवान तीर्थकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा के ज्ञान में पूर्णता जहाँ प्रगट हुई, इससे उनके ज्ञान में छह द्रव्य अर्थात् छह प्रकार के जगत के स्वभाव वह जाति ज्ञान में देखने में आयी । उस जाति का क्या स्वरूप है, वह.... कहो, समझ में आया ? क्या कहते हैं ?

प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु अनन्त जितने हैं, वे सब सामान्य और विशेष अस्तित्वरूप से है—ऐसा निर्णय करना (कि) ऐसा है ऐसा । ऐसा आचार्य आदेश करते हैं । अमृतचन्द्राचार्य । ऐसा निर्णय कर कि प्रत्येक परमाणु अपनी जाति को सदृशरूप से बनाये रखकर विशेष अवस्था को क्षण-क्षण में उसके अस्तित्व में विशेषपना करता है, ऐसा निर्णय कर कि उसे जिससे तेरे कारण उसमें हो, और एक परमाणु के कारण दूसरे परमाणु में हो, ऐसी तेरी भ्रमणा टल जाये । कहो, समझ में आता है यहाँ ? जेचन्दभाई ! शक्तिहीनता कहाँ तक रखना है, यह कहते हैं । ऊँचे कांगड़ा डालकर खड़ा करते हैं । कांगड़ा नहीं समझते तुम ? ढोर होते हैं न ? पैर में दम नहीं हो तो फिर लकड़ी डाले अन्दर, खड़े करने के लिये परन्तु अन्दर कस बिना कहाँ तक खड़े रहें ?

इसी प्रकार भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा की जो तत्त्व की पद्धति और वस्तु का स्वरूप है, उसे आचार्य कहकर कहते हैं कि निर्णय कर । प्रत्येक आत्मा अपने सामान्य अर्थात् अपना सदृश्यपना, विशेष अर्थात् विशेष उत्पाद-व्ययरूप से, उसमें रहे हैं । ऐसे प्रत्येक परमाणु उसके सामान्य और विशेष में रहे हुए हैं । ऐसी दृष्टि होने पर उसे पर के ऊपर से पर का करना और पर के अस्तित्व में मेरा कुछ फेरफार करने का अधिकार है, ऐसी भ्रमणा का चूरा हो जाता है । कहो, समझ में आया ?

वे अस्तित्व में नियत होने पर भी.... अब जरा इससे सूक्ष्म आयेगा थोड़ा, हों ! (जिस प्रकार बर्तन में रहनेवाला घी बर्तन से अन्यमय है उसी प्रकार)... बर्तन और बर्तन में घी । वह तो दो भिन्न चीज़ है । बर्तन और बर्तन में घी । उसी प्रकार अस्तित्व से अन्यमय नहीं है;.... ऐसा प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक यह परमाणु उसके अस्तित्वगुण से

उसका पृथक्पना नहीं है कि भाई एक अस्तित्व नाम का गुण है, जैसे बर्तन, उसमें रहा हुआ घी, उसमें रहा द्रव्य। अस्तित्व नाम का एक गुण है, वह बर्तन की भाँति और बर्तन में जैसे घी रहा, वैसे अस्तित्व नाम का गुण और उसमें रहा पदार्थ। ऐसा नहीं। ऐसा पृथक्पना नहीं। समझ में आया ? सेठी !

अस्तित्व से अन्यमय नहीं है;.... आत्मा और यह परमाणु जड़ पदार्थ; भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा ने देखे, वे ऐसे हैं—ऐसा आचार्य कहते हैं। ऐसा निर्णय करने पर उसे पर वस्तु का मेरे कारण ऐसा हुआ, उसके कारण मुझमें ऐसा हुआ, यह सब भ्रमणा टूट जाती है। भ्रमणा टूट जाती है। कहो, समझ में आया इसमें ?

मुमुक्षु : भ्रमणा लगे तो न !

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए तो कहते हैं कि भ्रमणा नहीं तुझे ? देख न। प्रत्येक वस्तु के सामान्य-विशेषपने में रहा हुआ तत्त्व, उसे तू कहता है कि मैं इसका ऐसा कर दूँ और अमुक का कर दूँ और स्त्री का कर दूँ और पैसे का कर दूँ, मकान का करूँ, यह तुझे भ्रमणा नहीं ? ऐसा तो साबित करते हैं। किसी के अस्तित्व में तेरा अस्तित्व प्रवेश नहीं करता और तू दूसरे का कर दे, यह किस प्रकार कर सके ? तेरी भ्रमणा है। बराबर है ?भाई !

मुमुक्षु : परोपकार है या भ्रमणा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भ्रमणा है। परोपकार कैसा था ? कहो, समझ में आया ?

प्रत्येक आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड वह गुणरूप सदृश्य सामान्य और पर्यायरूप विशेष उत्पाद-व्यय। ध्रुवरूप से गुण और उत्पाद-व्ययरूप से पर्याय। ऐसे गुण-पर्यायरूप से अस्तित्व में रहा हुआ पदार्थ है। ऐसे अनन्त पदार्थ, अनन्त रजकण, असंख्य कालाणु, इस प्रकार अपने सामान्य और विशेष अस्तित्व में नियत से रहे हुए हैं। बर्तन में घी रहता है, ऐसे नहीं। परन्तु जैसे सफेदी में दूध रहता है, मिठास में शक्कर रहती है, ऐसे हैं। यहाँ अग्नि का दृष्टान्त देंगे। समझ में आया ?

अस्तित्व से अन्यमय नहीं है;.... क्या कहा ? ऐसा अस्तित्व अर्थात् होनेपने में, निश्चय से होने पर भी (जिस प्रकार बर्तन में रहनेवाला घी बर्तन से अन्यमय है...)

बर्तन से घी पृथक् चीज़ है; (उसी प्रकार).... बर्तन से घी अन्य चीज़ है, ऐसे अस्तित्व नामक गुण से आत्मा.... अस्तित्व नाम का बर्तन—गुण, उसमें आत्मा रहा हुआ है, ऐसा नहीं। ऐसा अनन्यमय नहीं है। अनन्यमय है। क्योंकि वे सदैव अपने से निष्पन्न (अर्थात् अपने से सत्) होने के कारण.... प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक पॉइन्ट परमाणु तीनों काल। देखो, सदा। तीनों काल अपने से निष्पन्न (अर्थात् अपने से सत्) होने के कारण.... अपने से अस्तित्व के कारण, वह अस्तित्व और द्रव्य दोनों अनन्यमय है। अनन्यमय अर्थात् अन्य-अन्य नहीं। अनन्यमय का दृष्टा अब कोष्ठक में देते हैं।

(जिस प्रकार अग्नि उष्णता से अनन्यमय है उसी प्रकार।).... अग्नि उष्णता से, उष्णता में अग्नि रही है, (कहीं) उष्णता अलग और अग्नि उसमें रही है, ऐसा है? बर्तन में घी रहा है, वैसे उष्णता में अग्नि रही है, ऐसा है? वह उष्णता और अग्नि दोनों अनन्यमय अभेद है। एक ही वस्तु है। और घी तथा बर्तन तो (अलग-अलग है)।

इसी प्रकार अनन्त आत्मायें और अनन्त परमाणु अपने अस्तित्ववाले गुण से अनन्यमय अर्थात् भिन्न भिन्न नहीं है। यह अग्नि जैसे उष्णता में है, वैसे ही आत्मा और परमाणु अपने अस्तित्व सत्ता नाम के सामान्य-विशेष गुण में रहे हुए ही हैं। ओहोहो! समझ में आया?

‘अस्तित्व से अनन्यमय’ होने पर भी.... अब जरा.... प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु अपने अस्तित्व के गुण से अनन्यमय अर्थात् अन्यरूप नहीं होने पर भी, एकमेक होने पर भी, उनका अस्तित्व नाम का गुण, नियतपना नयप्रयोग से है। लो अब आयी सूक्ष्म बात। समझ में आया? नय प्रयोग से है। क्या कहते हैं परन्तु यह? यह बात तो कभी (सुनी नहीं)। नय प्रयोग से है। दो नय के योग से उसकी समझ करनी है।

प्रत्येक आत्मा और रजकण यह परमाणु स्वयं में अस्तित्व में एकमेक होने पर भी उसका अस्तित्व नियतपना अर्थात् अस्तित्व में रहने में निश्चयपना रहा हुआ नयप्रयोग से है। इस ज्ञान के दो प्रकार के योग से उसमें रहा है। शंकरभाई! ‘नयप्रयोग से’ कभी सुना भी नहीं होगा वहाँ। छह काय के जीव की दया पालो, सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो। क्या परन्तु सामायिक कहाँ होती थी? सामायिक करनेवाला

कितना है ? उसकी पर्याय क्या है ? उस वस्तु में क्या होता है ? तू ऐसा करके ऐसे बैठा, वह यह किसने किया ? कुछ खबर नहीं होती और हो गया हमारे धर्म । समझ में आया ?

मुमुक्षु : दोनों का ज्ञान हो तो क्या बाधा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् क्या दोनों का अर्थात् ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बैठे ? ज्ञान होने में कौन इनकार करता है ? यह तो कहे, मैं ऐसे बैठा । हाथ की क्रिया ऐसे (की) । क्या कहा ? मैंने हाथ ऐसे किया ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल झूठी बात है । यह हाथ ऐसे किया, यह उसका विशेष, सामान्य परमाणु का विशेषरूप से इस प्रमाण रहना, वह उसके अस्तित्व के कारण हुआ है । आत्मा की इच्छा और ज्ञान के कारण हुआ ही नहीं ।

मुमुक्षु : ऐसा इसमें कहाँ आया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा आया है या नहीं इसमें ?

इन रजकणों का सामान्यपना अर्थात् ऐसा का ऐसा रहना और विशेषपना अर्थात् अवस्था का होना । यह ऐसे होता है, यह होठ हिलता है, वह भी प्रत्येक रजकण की विशेष अवस्था में रहकर, यह अवस्था होती है । आत्मा के कारण नहीं ।

मुमुक्षु : यह सत् किसका ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सत् परमाणु का है । आत्मा का नहीं । दो का ज्ञान करना, परन्तु दो का होता है मुझसे, ऐसा मानना ?

मुमुक्षु : व्यवहार से होता है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या धूल होता है व्यवहार से ? सेठी ! दोनों का ज्ञान होता है । भाषा कैसी की ? दो का ज्ञान करना हो तो ? अब ज्ञान करने में कौन इनकार करता है ?

मुमुक्षु : उसमें तो चतुर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चतुर है न बोलने में। देवानुप्रिया!

वह कहे, मैंने ऐसा किया। मूढ़ है? यह तत्त्व है या नहीं जगत के? यह तत्त्व है, वह परमाणु है या नहीं? और परमाणु शाश्वत् रहनेवाले हैं या नहीं? और शाश्वत् रहकर, ध्रुवपना रहकर, उसमें उत्पाद-व्यय का विशेषण है या नहीं, उस समय? यह क्या कहा यहाँ? सदा। सदा अपने अस्तित्व से वे रहे हैं। यह तूने क्या किया ऐसा?....

मुमुक्षु : जीव हो तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी जीव हो तो होता नहीं। हाथ चलते नहीं। देखो न, यह पैर। अमृतलालभाई का पैर देखो, देखा इस ओर का ऐसा ठीक से चलता नहीं। कहो, बराबर होगा या नहीं? बहुत है न ऐसे। अभी देखो न पैर टूट गया, उस भाई का-प्राणभाई का। एक और टूटा था तो फिर से टूटा। अब कितने महीने रहना पड़े और कितना.... महा जगत में.... यह मोहनभाई का दृष्टान्त। होशियार व्यक्ति है लो। तीन दिन तक असाध्य हो गये थे। तीन दिन न? लो! उसमें चले ऐसा नहीं। अकस्मात् हुआ तो तीन दिन असाध्य, हों! वह तो आयुष्य था, वह और (बच गये)। पैर का नुकसान हुआ। ऐसे-ऐसे चलता है। वह जड़ की दशा है। करे कौन? यह ध्यान नहीं रहा इसलिए। धूल में ध्यान? ध्यान तुझमें रहे। पर में क्या है? शरीर का विशेषण का परिणामन, उसके परमाणु का उत्पाद-व्ययपना, वह उसके कारण से है। तेरे कारण से मानना, यह बड़ी भ्रमणा और बड़ा पाप है। असत्य को सत्य मानना, इसका नाम पाप है। कहो, समझ में आया इसमें?

अब यहाँ कहते हैं कि प्रत्येक आत्मा और रजकण में सामान्य अर्थात् ध्रुव और विशेष अर्थात् उत्पाद-व्यय की पर्याय उसके कारण से उसमें होती है। ऐसा जो अस्तित्व, अब अस्तित्व के साथ मिलाना है। वह 'अस्तित्व में नियतपना'.... उसमें— अस्तित्व में रहा हुआ पदार्थ नयप्रयोग से है। भगवान ने दो नय कहे हैं— देखो! देखो, पाठ में अन्दर है, हों! 'द्वौ हि नयौ भगवता प्रणीतौ' भगवान सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ एक समय में अमाप और माप सबका ज्ञान करनेवाले। समझ में आया?

भगवान सर्वज्ञ प्रभु जिनके ज्ञान की एक उत्पाद की ज्ञान की दशा में अमाप और माप.... काल, क्षेत्र का अमापपना, गुण का अमापपना, द्रव्य अनन्त, पर्यायें अनन्त। उन सबका ज्ञान में एक समय में जाननेवाले ऐसे भगवान त्रिलोकनाथ ने दो नय भगवान ने कहे हैं। कहो, समझ में आया ?

द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। भाषा सब घर में आवे नहीं, सुनने जाये वहाँ मिले नहीं।

मुमुक्षु : नय क्या और नयप्रयोग (क्या) ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नय प्रयोग से है। और प्रयोग। एक वस्तु में नय अर्थात् ज्ञान के दो पहलुओं से उसे देखना है। इसका नाम प्रयोग। नय पहलू। ज्ञान के दो भेद से उस-उस द्रव्य को देखना है। ऐसा कहते हैं।

भगवान ने दो नय कहे हैं— हो! अमृतचन्द्राचार्य के पाठ में है। भगवान सर्वज्ञ प्रभु सौ इन्द्रों के पूज्य व्यवहार से, पुण्य से। और अन्तर में अनन्त गुण के पुण्य की पर्याय जिसे पूर्ण प्रगट हुई, ऐसे त्रिलोकनाथ परमात्मा सौ इन्द्रों के मध्य में समवसरण में ऐसा फरमाते थे। कहो, समझ में आया ? **भगवान ने दो नय कहे हैं—** आहाहा! रतिभाई! कहीं सुनी न हो यह बात। और जहाँ-तहाँ झाँके तो कुछ मिले, ऐसा नहीं है।

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने देखी हुई चीज़, उसका-वस्तु का स्वरूप, कहते हैं कि दो नय से जानना चाहिए। **द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक।** द्रव्यार्थिक की व्याख्या क्या है ? देखो! ऊपर से लें तो। द्रव्य-अर्थी। सामान्य द्रव्यपना जिसका प्रयोजन है ज्ञान का। उस ज्ञान में वस्तु का ध्रुवपना ख्याल में आवे, उस ज्ञान को द्रव्यार्थिक कहा जाता है। और पर्यायार्थिक (अर्थात्) जिस ज्ञान में उसका भेद ख्याल में आवे, पर्याय ख्याल में आवे, भेद ख्याल में आवे, उसे पर्यायार्थिक कहते हैं। क्या कहा ?

फिर से। दो नय भगवान ने प्रत्येक वस्तु को देखने के लिये कहे हैं। उसमें द्रव्यार्थिक अर्थात् अर्थ अर्थात् प्रयोजन (जिसका) द्रव्य। जिस ज्ञान का प्रयोजन उस वस्तु के अभेद पहलू को देखने का हो, उस ज्ञान को द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। जो ज्ञान उस वस्तु के भेद पहलू को पर्याय को या भेद को, यहाँ तो भेद अस्तित्वगुण लेना है न,

भेद को देखनेवाला हो, उस ज्ञान को पर्याय अर्थी—जिसका प्रयोजन पर्याय अर्थात् भेद देखने का है, उस ज्ञान को पर्यायार्थिकनय कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्यायार्थिकवाले को....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या है ? अभी कहते हैं, कहते हैं। सुनो न! तुम कहते हो वह समझ में आता है कि दोनों नय से समान समझना है। यह समझने के दो अर्थ। जानने के लिये बात है। देवानुप्रिया!

मुमुक्षु : आश्रय लेने के लिये...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। किसके आश्रय से धर्म होता है, यह अभी बात नहीं है। समझ में आया ? होता है। कहा न। दो नय भगवान ने कहे हैं न। उसमें दोनों नयों से बराबर जानना न, ऐसा खून चढ़ जाये, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

वहाँ कथन एक नय के आधीन नहीं होता.... यह पढ़कर उसने कहा। **वहाँ कथन एक नय के आधीन नहीं होता....** कथन। वस्तु को समझाने के लिये उसके दोनों पहलू हैं वस्तु में। एक अंश है, एक वस्तु है—द्रव्य है। अथवा एक अभेद है, एक उसके गुणभेद हैं। ऐसे दो पहलू से जानने के लिये कथन एक नय के आधीन नहीं परन्तु दो नय के आधीन कथन और उसका ज्ञान करने के लिये दो नय है। पश्चात् शरण किसकी ले, यह अभी प्रश्न नहीं। समझ में आया ? कि भाई ! जिसे धर्म करना हो, उसे दो नय के लक्ष्य से धर्म हो, ऐसा नहीं है। दो नय से उस वस्तु का ज्ञान होता है। पश्चात् द्रव्यार्थिक अर्थात् जिसमें से नयी धर्म की पर्याय जिसे प्रगट करनी है, उसे त्रिकाल द्रव्य का आश्रय लेने से नयी धर्म की पर्याय होती है, यह बात दो नय के ज्ञान में गौणरूप से कहने में आती है। समझ में आया ? सवा सेर रक्त चढ़े, ऐसा नहीं। उतर जाये ऐसा है।

मुमुक्षु : भ्रमणा टूट जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : भ्रमणा टूट जाये कि इस पर्याय से, पर्याय से धर्म होता है और पर्याय से यह होता है और अमुक से यह होता है। समझ में आया ?

कहते हैं, **कथन एक नय के आधीन नहीं होता किन्तु दोनों नयों के आधीन**

होता है। क्या ? कथन। इस चीज़ के गुण-गुणी के भेद को या अभेद को जानने के लिये दो नयों से कथन चलता है। धर्म कैसे हो और किसका आश्रय लेना, यह अभी विषय नहीं है। समझ में आया ? यहाँ तो उसका अस्तित्व, उसमें रहा हुआ पदार्थ अभेद है या भेद है, इतना यहाँ कथन करना है। ओहोहो ! द्रव्य-गुण क्या ? पर्याय क्या ? द्रव्य क्या ? सामान्य क्या ? विशेष क्या ? खबर नहीं होती कुछ और धर्म हो जाये। प्रतिदिन सवेरे उठकर दो घड़ी बैठे, ऐसे सामायिक हो गयी। हो गया धर्म, लो ! अब पूरे दिन फिर तेईस घण्टे धन्धा। एक घण्टे करे, उसमें धो डाले पाप। धूल में भी नहीं, सुन न ! वहाँ भी उस समय मिथ्यात्व सेवन है। मिथ्यात्व का सेवन है कि यह क्रिया मैंने की। कदाचित् शुभराग हो तो वह मुझे धर्म हुआ, (ऐसा माना)। तो मिथ्यात्व का-पाप का सेवन किया उस काल में भी। समझ में आया ?

राग क्या है ? स्वभाव क्या है ? विशेष क्या है ? सामान्य क्या है ? उसका ज्ञान किये बिना सामान्य की ओर के लक्ष्य में आये बिना उसकी विशेष दशा धर्मरूप कभी नहीं होती। कहो, समझ में आया ? द्रव्य है न आत्मा ? यह दो नय से बात। तो अब पर्याय से लो तो पर्याय अनादि से द्रव्य पर विकार... विकार... विकार... विकार... विकार... विकार... हुई आती है। कहो, समझ में आया ? द्रव्य तो ध्रुव ऐसा का ऐसा है। वस्तु ध्रुव। पर्याय में अनादि से... आदि कहाँ है ? उसे है आदि ? कि निगोद में पहले था या ऐसा कुछ ? अनादि से विकार.... विकार.... विकार.... फिर मिथ्याश्रद्धा सहित का राग-द्वेष विकार ऐसा का ऐसा, ऐसा का ऐसा हुआ ही करता है। अनादि से मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष, मिथ्याश्रद्धा और राग-द्वेष। बस, यह इसकी पर्याय में विशेषरूप से हुआ है। सामान्यरूप से ध्रुव ऐसा का ऐसा रहा है।

ध्रुव द्रव्य ध्रुव ऐसा का ऐसा रहा होने पर भी, उसकी पर्याय में कितने ही अस्तित्व (आदि सामान्य) गुण की निर्मल पर्याय अभी है। विकार.... विकार.... विकार.... निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक गया, जैन साधु होकर मिथ्यादृष्टि। तो उसकी पर्याय में मिथ्या भ्रमणा (थी) कि इतना मैं हूँ, अंश जितना हूँ, पर मैं हूँ, पर के कारण मुझमें होता है। ऐसी मिथ्यादृष्टिपने की पर्याय अनन्त काल पर्याय ऊपर... ऊपर... ऊपर...

द्रव्य ऊपर हो रही है। उसे उस प्रकार से पहले विशेष को विशेषरूप से जानना। अब विशेष में विकारपना है, उस विकार को जिसे टालना हो तो विशेष की अवस्था पलट जाती है। और जो धर्म की पर्याय प्रगट करनी है, वह साधन तो अन्दर वस्तु है। त्रिकाल ज्ञायक आनन्दकन्द। उस आनन्दकन्द का लक्ष्य करे, इससे विकारी पर्याय की रुचि टलकर निर्विकारी द्रव्य की रुचि हो, तब उसे पहला सम्यग्दर्शन धर्म होता है। भाई! बात भी बहुत लम्बी इसमें। अभी तो यह हरितकाय नहीं खाना और यह नहीं खाना। हो गया धर्म, जाओ। सवेरे सामायिक की और आठ दिन में प्रतिक्रमण किया। आठ दिन क्या, यह पन्द्रह दिन में, या बारह महीने में एक। पर्यूषण का संवत्सरी प्रतिक्रमण करे बारह महीने में। धूल में भी, सुन न। उसमें धर्म कैसा ?

मुमुक्षु : भजिया खाना भादवे में....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। भजिया भादवे में... वे परबिया करे पर्व में। संवत्सरिया करे वर्ष में। कहाँ कुछ खबर है।

कहते हैं, भगवान ने दो नय से कथन किया है। अर्थात्? यहाँ दूसरी बात है। सत्ता का गुण... यह कहेंगे, देखो! **किन्तु दोनों नयों के आधीन होता है।** एक वस्तु के गुण-गुणी के भेद का और अभेद का कथन दो नय के आधीन है। यह जरा सूक्ष्म बात है, हों! देवानुप्रिया! उस पर्याय की बात, उस पर्याय का अर्थ यहाँ भेद है। **इसलिए वे पर्यायार्थिक कथन से....** कौन वे अर्थात्? वे अर्थात् कौन? एकदम बोलते हो, ऐसे सामने तो बोलो। वे अर्थात् जो द्रव्य है, वह अस्तित्व में रहा हुआ है, ऐसा जो कहा वे। समझ में आया? आत्मा और परमाणु जो अस्तित्व में रहे हुए हैं, ऐसा एक न्याय से अनन्यमय कहा और अस्तित्व में रहा हुआ, ऐसा जो कहा, उसमें दो नय चलते हैं।

वे पर्यायार्थिक कथन से जो अपने से कथंचित् भिन्न भी है.... लो! क्या कहा? यह सत्ता नाम का गुण, यह सामान्य द्रव्य से गुणी की अपेक्षा से गुण भिन्न भी है। भेददृष्टि से। भेददृष्टि अर्थात् पर्यायदृष्टि से। पर्यायदृष्टि अर्थात् अवस्थादृष्टि से।

मुमुक्षु : नहीं समझ में आया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से कहते हैं अभी।

वे पर्यायार्थिक कथन.... इसलिए यहाँ पर्याय का कथन लिया है। वस्तु एकरूप सत्ता में होने पर भी उसके भेद के ज्ञान के कथन से जरा देखें और कहें तो अपने से कथंचित् भिन्न भी है। द्रव्य, वह अनन्त गुण का एक पिण्ड है और गुण है, वह एक है। एक है। ऐसे गुणी और गुण के भेदपने की दृष्टि से देखें तो कथंचित् द्रव्य से अस्तित्वगुण भिन्न है। गुणी और गुण एकरूप द्रव्यार्थिकनय से जैसे हैं, वैसे पर्यायार्थिकनय से गुणी और गुण एक नहीं हैं। समझ में आया? आहाहा! गुण है, वह एक है और द्रव्य है, वह अनन्त गुण (रूप) है। वह अनन्त गुण एक गुणरूप हो जाये... समझ में आया? यह तो कभी बने नहीं। ऐसे भेद के लक्ष्य से अस्तित्व नाम का गुण और आत्मा अर्थात् द्रव्य कोई भी परमाणु आदि, द्रव्य, गुणी की अपेक्षा से गुण का एक का लक्ष्य भिन्न करे तो गुणी की अपेक्षा से गुण कथंचित् भेद भी है। पर्यायदृष्टि से, भेददृष्टि से, विशेष आशय से। बहुत सूक्ष्म इसमें। फावाभाई! ध्यान रखे तो पकड़ में आये ऐसा है या नहीं? पकड़ में आये ऐसा है इसमें? मोहनभाई!

पर्यायार्थिक कथन से अर्थात् उसे द्रव्य-गुणी के भेद से देखें, भेद से देखे तो अपने से कथंचित् अर्थात् द्रव्य से वह सत्ता नाम का अस्तित्व भेददृष्टि से भिन्न भी है। किसी प्रकार से भिन्न है अर्थात् भेददृष्टि से, हों! सर्वथा भेद नहीं। शक्कर में मिठास है, वह शक्कर मिठासरूप ही सर्वथा है?

मुमुक्षु : तब तो दूसरे गुण ही न हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो दूसरे गुण ही न हो। ऐसे द्रव्य अकेले अस्तित्वगुणरूप है? तब तो दूसरे अनन्त गुणों का नाश हो जाये। इस अपेक्षा से एक गुणरूप पूरा गुणी नहीं है, ऐसे भेद से देखें तो सत् गुण और सत् द्रव्य दो भिन्नरूप से पर्याय से जानने में, कहने में आते हैं। इसमें घर में पढ़ते हो या नहीं? रतिभाई! यह कहीं समझ में आये ऐसा नहीं, हों! न समझ में आये। एक तो वाँचन के लिये निवृत्त नहीं होते हों। और उसमें यह पढ़े तो क्या होगा इसमें? होगा कुछ। अभ्यास नहीं होता, अभ्यास नहीं होता इस प्रकार का। परम सत्य वस्तु का स्वरूप क्या है? परम परमात्मा ऐसा आत्मा या परम स्वरूप ईश्वर शक्तिवान, इसी तरह परमाणु, उनका स्वरूप क्या है? किस प्रकार व्यवहार से और

निश्चय से भेद से और अभेद से, ऐसे जाने बिना ही एक गुणमय ही पूरा द्रव्य हो जायेगा तब तो। अभेद से एकान्त अभेद लो तो एक गुणमय पूरा द्रव्य हो जायेगा। ऐसा है नहीं।

ऐसे अस्तित्व में व्यवस्थित (निश्चित स्थित) हैं.... क्या कहते हैं ? कथंचित् सत् गुण में द्रव्य भेददृष्टि से भिन्न भी है, ऐसे अस्तित्वगुण में द्रव्य रहा हुआ है। ऐसा व्यवहारनय से-पर्यायनय से गुण में गुणी रहा हुआ है, ऐसा भेद से कहा जाता है। आहाहा! जैन वीतराग.... यह सब समझ नहीं होती न; इससे सब विवाद उठे। वह कहे कि ऐसा होता है, वह कहे ऐसा होता है। परन्तु वस्तु धर्म करनेवाला कितना है ? धर्म की अवस्था कहाँ होती होगी ? किसके कारण होती होगी ?

दो नय का कथन सवा सेर खून बड़े ऐसा है। ऐसा कि देखो, वह एक ही नय तुम स्थापित करते हो न निश्चय। भगवान कहते हैं कि निश्चय के आश्रय से धर्म होता है। 'भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो' भगवान की वाणी कहती है कि एक द्रव्यस्वरूप भूतार्थ आनन्दकन्द का आश्रय ले तो धर्म हो। पर्यायनय का आश्रय नहीं। यहाँ तो पर्याय सत् और सत्तावान कथंचित् भेद है, इतना ज्ञान कराते हैं। परन्तु पर्याय जिसे प्रगट करनी है, उसे तो द्रव्य का आश्रय लिये बिना धर्म की पर्याय प्रगट होगी नहीं। उसे दो नय के आश्रय से नहीं होगी। ऐई! देवानुप्रिया!

मुमुक्षु : कथन दो नय के आश्रय से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कथन, वह तो जानने की बात है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं द्रव्य से। द्रव्य से सत्तागुण कथंचित् भेद है।

और द्रव्यार्थिक कथन से.... और अभेददृष्टि से स्वयंमेव सत्... वह स्वयं सत् है। और सत् में रहा हुआ, वह तो भेद है। द्रव्यार्थिकनय से देखें तो प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु अपने से (-विद्यमान) होने के कारण अस्तित्व से अनन्यमय हैं। अस्तित्व से एकमेक है। कहो, समझ में आया ? उसमें कथंचित् भिन्न भी है, ऐसा कहा। भिन्न 'भी' है और इसमें अस्तित्व से अनन्यमय है। पूरी वस्तु—आत्मा, परमाणु जो है, वह अनन्यमय उसके अस्तित्वगुण से एकरूप है, एकरूप घड़ी हुई है। कहो, समझ में आया ?

अब जरा कायपना बताते हैं। सामान्य-विशेष अस्तित्व, उसका विशेष और सामान्यपने का भेद पाड़कर अभेद से कथन कहा। भगवान ने छह द्रव्य देखे, उनकी बात का ज्ञान कराते हैं।

मुमुक्षु : इसमें चोंच डूबती नहीं तो क्या करें ?

पूज्य गुरुदेवश्री : चोंच नहीं डूबे, ऐसा होगा ? किसलिए नहीं डूबती ? लोक में क्यों होशियार होता है सबमें ? जहाँ-तहाँ चतुर कैसे होता है ? फलाणा और ढीकणां न। ऐसी यहाँ रुचि हो और समझ में न आवे, ऐसा नहीं हो सकता। यहाँ की रुचि नहीं है।

मुमुक्षु : याद ही नहीं रहता।

पूज्य गुरुदेवश्री : याद नहीं रहता, ऐसा होगा ? इतना याद न रहे कि यह वस्तु क्या है और यह क्या है ? अस्तित्व क्या, आत्मा क्या ? इतना याद नहीं रहता ? कहो, समझ में आया ? कहा था न कल उसमें ? हम बात करते हैं, अभी कहा और तू याद नहीं रखता ? लायक नहीं, जा।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ना करता है। ठोठ ठोठिया।

मुमुक्षु :इस ठोठ को समझाने के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, यह तो विशेषपने की बात हो, इस अपेक्षा से। परन्तु यह तो अध्यात्म का प्रवाह चलता हो वहाँ.... यह क्या कहा अभी ? ...भूल गये। ऐ..! गाली दे तो तुझे याद रहती है। मीठालालजी! गाली देते हैं या नहीं ? तो याद कितना रहता है ? बहुत रहता है। जिन्दगीभर २५-५० वर्ष याद रहता है। यह गुण की बात तुझे याद रहती है ? गाली की बात याद रहती है और गुण की बात याद नहीं रहती तो उसकी रुचि नहीं है। सेठी ! ...समझ में आया ? तेरा लक्ष्य यहाँ है या नहीं ? कहाँ है तेरा लक्ष्य ? और तू क्या सुनता है ? क्या सुनने बैठा है ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ।

ऐसे प्रत्येक आत्मा और परमाणु का अस्तित्वपना सिद्ध किया। 'है' ऐसा सिद्ध किया है। प्रत्येक वस्तु है। यह 'है' में दो प्रकार सिद्ध किये। पर्यायार्थिक से कथंचित् हैपना भिन्न है अस्तित्व और द्रव्यार्थिक से अभिन्न है। उसका अस्तित्व सिद्ध किया।

अब अस्तिकाय। अब कायपना सिद्ध करते हैं। प्रत्येक पदार्थ को काया होती है। काय अर्थात्? बहुत अंश का समूह, उसे काय कहते हैं। जैसे यह शरीर काय कहलाता है या नहीं? क्योंकि यह बहुत परमाणुओं का समूह है, इसलिए इसे काय कहा जाता है। इसी प्रकार आत्मा को अस्तिकाय कहा जाता है। आत्मा अस्ति है, यह तो यहाँ सिद्ध किया। अब इसके प्रदेश असंख्य क्षेत्र से हैं, इसलिए उसे काय भी कहा जाता है। यह ऊपर-ऊपर से ऐसा पकड़ में नहीं आता। रतिभाई! चोंच भी नहीं डूबती। ६२-६२। ६३ हुए। कितने हुए?

मुमुक्षु : ६५।

पूज्य गुरुदेवश्री : ६५, लो! ध्यान दे तब न परन्तु। वहाँ उसमें अभी रचा-पचा... रचा-पचा.... कहो, समझ में आया? अस्ति सिद्ध की। अब, काय सिद्ध करते हैं।

काय का अर्थ एक पदार्थ कितने अंशवाला है। अंश अर्थात् प्रदेश। यह कल कहा था। एक पॉइन्ट है न पॉइन्ट—यह परमाणु। टुकड़ा अन्तिम... अन्तिम... अन्तिम। जितने क्षेत्र में रुके उतने अंश को प्रदेश कहते हैं। तो आत्मा, ऐसे परमाणु असंख्य (प्रदेश) रोके, ऐसे असंख्य प्रदेशवाला चौड़ा है। यह असंख्य प्रदेश, उसे काय कहते हैं। काय अर्थात् समूह। अस्तित्वपना एक; उसमें प्रदेशपना असंख्य; उसमें गुणपने अनन्त। समझ में आया?

आत्मा। ऐसी यहाँ तो प्रत्येक की बात है, हों! एक परमाणु में काय नहीं। कालाणु अस्ति है। असंख्य कालाणु अस्ति है। उसे काय नहीं है। दो इकट्टे नहीं होते। बाकी यह पाँच जो द्रव्य हैं परमाणु आदि उपचार से इकट्टे होते हैं। उपचार से उसे काय कहा जाता है। और आत्मा तो स्वयं असंख्य प्रदेशी है। देखो! सिर से पूरे शरीर में व्यापक भिन्न है न? तो यह अंश है, वह यहाँ नहीं, यह है वह यहाँ नहीं न। वह अंश अंश अलग-अलग है, तथापि पूरा पिण्ड है। टुकड़े नहीं होते। जैसे स्वर्ण की सांकल

हो। सांकल कहते हैं न तुम्हारे? उस सांकल के जो मकोड़ा हों मकोड़ा बारीक-बारीक। क्या कहते हैं? मकोड़ा कहते हैं न? कड़ी। वह कड़ी तो अन्दर भरी हुई है। यहाँ कड़ी-कड़ी भिन्न है एक-एक अंश। परन्तु ऐसा सम्बन्ध है, एक को दूसरे के साथ सम्बन्ध है। ऐसा एक परमाणु जितनी जगह में रहे, उसे प्रदेश (कहते हैं)। दूसरा प्रदेश, दूसरा (प्रदेश) ऐसे असंख्य प्रदेश सम्बन्धवाले अनादि-अनन्त ऐसे के ऐसे हैं, उन असंख्य प्रदेश के समूह को काय कहा (जाता है)। अस्तिकाय। सामान्य-विशेषरूप से है और जीव को असंख्य प्रदेशरूप से काय है। दूसरे को अभी कहेंगे आकाश और वह सब। समझ में आया? आहा! घर की बात और गहनों की बात देखे तो सब खोज करे, लो। कितने गहने चढ़ावा आये। लड़की को चढ़ाव आते हैं न गहने? कितने आये? कहे, पाँच हजार के। कितनी चैन, कितने कड़े, कितने कपड़े? सब देखे। धूलधाणी और वा पाणी।

मुमुक्षु : रूप किस जाति का....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, रूप किस जाति का? किस गाँव में बनाया हुआ? वह सब यह देखता है। मुम्बई की कला ऊँची है, हों! अमुक आकार आया। धूल में राख है, सुन न अब। वह तो परमाणु है और परमाणु चीज़ विशेष और सामान्य की सत्ता में रहे हुए। उसमें तेरे घर में कहाँ आये थे और तुझे कहाँ आये थे? समझ में आया? प्रसन्न हो जाता है या नहीं उसमें? लड़की का सम्बन्ध किया हो और वह अच्छा आसामी हो न पचास हजार का गहना बनाकर लावे तो भी पाँच लाख की पूँजीवाला और पचास हजार का है। तो कहे, ओहोहो! बापू! पहुँचता व्यक्ति है। ऐसा कहते हैं या नहीं? गुलाबचन्दभाई! यह पहुँचता व्यक्ति और इकलौता लड़का, इसलिए ऐसा करे न! ऐसा करके (बातें करते हैं)। क्या है परन्तु पहुँचता? पहुँचता तू तुझमें है, सुन न अब। बाहर की चीज़ यहाँ नजदीक आयी, वहाँ तुझे कहाँ से आ गयी? देखने के लिये सब घर के दसों व्यक्ति इकट्ठे हों। दसों व्यक्ति इकट्ठे हों। एक-एक। दो वर्ष का लड़का हो तो (वह भी बैठे)। मिठास है न ममता की। सगे-सम्बन्धियों को बुलावे। आओ चलो देखो, यह अपने लड़की का आया है। क्या कहलाता है वह? समूरतुं? समूरतुं आया है। ऐसा

कहकर समधि अच्छा खोजा है। देखो न कैसा समधि है? पचास हजार का तो लेकर आया है। अभी तो विवाह के समय क्या करेगा? यह तुझे देते हैं, वह घर ले जाने के लिये है। यह मानता है कि इसमें यहाँ इसे कुछ रहने का नहीं है। इतना इसे विश्वास, इसे स्वार्थ का भान है कि उसे देंगे परन्तु घर में आनेवाला है।

इसी प्रकार मेरे घर में क्या है यहाँ? और उसके घर में क्या है? दूसरे आत्मा के घर में और मुझमें क्या है? मुझमें मेरापना और उसका उसमें। मेरे और उसे कुछ लेना-देना नहीं है। कोई लेना देना नहीं होगा? अमृतलालभाई! ऐसे पोपटभाई जैसे अच्छे लड़के के साथ भी कुछ नहीं? क्यों जेचन्दभाई! सबके-सबके भाव सबके पास और सबका तत्त्व अलग-अलग है।

अब कहते हैं कि उनका कायपना बताते हैं। किसका? यह पाँच कहे उनका। जीव, पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति और आकाश। पाँच पहले नाम आये थे न! उनका अब कायपना बताते हैं। काय अर्थात् प्रदेशों का समूह। जो उसके अंश पड़ते हैं, उसे प्रदेश (कहते हैं)। उसके समूह कितने हैं, उसे बताते हैं। यह जरा सूक्ष्म है, परन्तु ध्यान दे तो पकड़ में आता है। कहीं न समझ में आये, ऐसी कोई बात जगत में नहीं होती। केवलज्ञान का कन्द आत्मा, वह न समझे, ऐसी कोई बात नहीं हो सकती।

उनके कायपना भी है.... भी क्यों लिया? कि अस्तित्व तो है। अस्ति उपरान्त उसमें कायपना है। काल नाम के पदार्थ हैं असंख्य, उनमें अस्तिपना है। पूरे लोक में आकाश में एक-एक कालाणु है। वह अनन्त गुण का पिण्ड है। वह अस्तित्व है परन्तु उसे कायपना नहीं। क्योंकि जैसे मणिरत्न का ढेर हो, लाख का ढेर। वह एक मणि कोई दूसरे रूप नहीं होती, इसी प्रकार यह असंख्य प्रदेश में एक-एक कालाणु है, वे असंख्य कालाणु मणिरत्न के ढेर की भाँति भिन्न-भिन्न है। उसे—काल को कायपना नहीं होता। काल एक एक वस्तु है, हों! वस्तु की बात है, भाई! दिन, रात्रि, पहर की यह बात नहीं। असंख्य अणु हैं आकाश में। भगवान ने देखे हुए अनादि-अनन्त द्रव्य हैं। उनमें कायपना नहीं परन्तु इन पाँच को तो कायपना भी है। अस्तित्व भी है और कायपना भी है। अस्तित्व भी है और समूहपना भी है। **क्योंकि वे अणुमहान हैं।** एक अणुमहान के

अर्थ बड़े लम्बे करेंगे अब। अन्तिम शब्द है न। 'अणुमहंता' यहाँ तक आ गया। अब 'अणुमहंता' एक शब्द है।

यहाँ अणु अर्थात् प्रदेश.... अणुमहान शब्द है न मूल पाठ में? अणु अर्थात् प्रदेशों में महान। पाँचों द्रव्य प्रदेशों में महान। अणुमहान। यह मूल पाठ शब्द है। अणु अर्थात् प्रदेशों में महान। प्रदेशों में बहुत।

मुमुक्षु : यह पाँच....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पाँचों ही.... काल के अतिरिक्त।

यहाँ अणु अर्थात् प्रदेश-मूर्त और अमूर्त निर्विभाग (छोटे से छोटे) अंश;.... समझ में आया? यहाँ तो भगवान तीर्थकरदेव ने केवलज्ञानियों ने जो तीन काल—तीन लोक देखे, उसमें यह छह द्रव्य देखे। भगवान के केवलज्ञान में छह वस्तुयें देखने में आयी। तीर्थकर को ज्ञान होने पर (ज्ञात हुआ)। उसमें पाँच द्रव्य की बात चलती है। कालाणु जो है, वह अरूपी भिन्न-भिन्न तत्त्व जगत में हैं आकाश में। ऐसा भगवान के केवलज्ञान में ज्ञात हुआ। यह अस्ति है, परन्तु उसमें समूह—प्रदेश नहीं है।

अब यह आत्मा, इस देह में रहा हुआ आत्मा और यह परमाणु मिट्टी—यह रजकण जो इस शरीर की मिट्टी, वे कैसे हैं? कि हैं सही, परन्तु बहुत समूहवाले हैं परमाणु। और आत्मा जो देह में भिन्न है, इससे भिन्न, यह तो मिट्टी है। वह आत्मा जो है, वह अस्ति है। परन्तु अस्ति उपरान्त उसमें असंख्य प्रदेश हैं। भगवान जाने असंख्य प्रदेश क्या होंगे? समझ में आया?

आत्मा इतना चौड़ा है। यहाँ से लेकर यहाँ तक अरूपी उसके असंख्य भाग हैं। एक परमाणु जितनी जगह रोके, उसे प्रदेश कहते हैं। जैसे सोने की सांकल कही न? सोने की सांकली। सोना भरा हुआ है सब सांकली में। उसकी कड़ियाँ हैं, वह एक-एक कड़ी है। ऐसे आत्मा, पूरे को आत्मा कहते हैं और एक-एक अंश को प्रदेश कहते हैं और प्रत्येक प्रदेश में भरे हुए अनन्त आनन्दादि गुण भरे हुए हैं, उसे सोना कहते हैं। समझ में आया? जगत के पदार्थ देख-देखकर मर गया परन्तु तू कौन, इसकी इसे खबर नहीं। घर के आँगने की खबर न हो और पर के घर मापने गया। सेठी!

वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा भगवान ने जो छह (पदार्थ) देखे, उसमें, कहते हैं (कि) एक काल के अतिरिक्त पाँच पदार्थ हैं तो सही, परन्तु उनमें बहुत प्रदेशवाले वे पदार्थ हैं। उसमें उनका अस्तित्व रहा हुआ है। समझ में आया ? प्रदेश-मूर्त और अमूर्त निर्विभाग.... यह परमाणु है, वह मूर्त है। यह मिट्टी है न यह ? यह दिखता है न, वह रंग तो मूर्त है। यह रंग, गन्ध, रस, स्पर्शवाले यह परमाणु हैं और आत्मा धर्मास्ति, अधर्मास्ति और आकाश, वह अमूर्त है, अरूपी है। समझ में आया ? वह मूर्त-अमूर्त निर्विभाग अंश.... अमूर्त में निर्विभाग—भाग नहीं पड़े, ऐसे अंश हैं, और मूर्त में भाग न पड़े, ऐसे अंश हैं। देखो! यह अँगुली है, वह एक वस्तु नहीं। बहुत रजकण इकट्ठे होकर यह हुआ है। परमाणु। जिसे भगवान परमाणु कहते हैं। सूक्ष्म रजकण। वे असंख्य इकट्ठे होकर अँगुली हुई है। यह कहीं आत्मा नहीं, यह तो मिट्टी है, पुद्गल है, अजीव है, धूल है। एक धूल का सूक्ष्म में सूक्ष्म अंश, उसे यहाँ प्रदेश कहते हैं। और उसका समूह है, उसे काय कहते हैं। ओहोहो! वीतराग के कहे हुए द्रव्य, गुण और पर्याय का ज्ञान गया न, (वहाँ) धर्म में विवाद उठे। धर्म कैसे हो और कहाँ से हो, इसकी खबर नहीं होती।

यहाँ वीतराग सर्वज्ञदेव परमात्मा सीमन्धर भगवान महाविदेहक्षेत्र में अभी विराजते हैं, तीर्थकररूप से अरिहन्तरूप से। उनके पास यह कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। संवत् ४९। पहली शताब्दी। वहाँ जाकर सुनकर, आकर यह शास्त्र रचे हैं। भगवान ऐसा फरमाते हैं।भाई! इसकी दरकार.... जिसे आत्मा की पड़ी हो कि मेरा क्या होगा? क्या होगा? मैं कौन हूँ और कहाँ हूँ? कैसा हूँ और कितना हूँ? तो कहते हैं कि तू एक है। 'है' उपरान्त तुझमें असंख्य प्रदेश हैं। रतिभाई! कौन जाने असंख्य प्रदेश क्या होंगे? यह खबर नहीं पड़ती? कहा नहीं?

सोने की सांकल (चैन) हो, पाँच सौ कड़ी की। वह कड़ी ऐसे स्पर्शित होती है, ऐसे... ऐसे। उसमें ऐसे नहीं। यह असंख्य प्रदेश है, वे ऐसे-ऐसे हैं। सम्बन्धवाले। वे असंख्य प्रदेश एक प्रदेश में अनन्त गुण हैं। ऐसे असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण आत्मा में हैं। वह असंख्य प्रदेश अस्तित्व एक है। ऐसे-ऐसे गुण उसमें अनन्त हैं और प्रदेश असंख्य हैं। समझ में आया ?

मूर्त और अमूर्त निर्विभाग (छोटे से छोटे) अंश; 'उनके द्वारा (-बहु प्रदेशों द्वारा) महान हो' वह अणु महान;.... इतनी व्याख्या की। अणु अर्थात् प्रदेश से बड़ा, उसे अणुमहान कहते हैं। पश्चात् मूर्त हो या अमूर्त हो। छोटे में छोटे अंश जिसके अधिक हों, मूर्त के या अमूर्त के, उसे यहाँ अणुमहान कहा जाता है।

अर्थात् प्रदेशप्रचयात्मक.... भाषा घर में मिले नहीं। दो भाई बैठें तो भी मिले नहीं। शान्तिभाई बैठते तो ऐसे आती होगी प्रदेशप्रचयात्मक? वहाँ तो (होली) सुलगती है। लाओ कितने पैसे हुए इस वर्ष? अपने दो लाख थे, इस वर्ष पचास हजार पैदा किये। खर्च कितना गया, पन्द्रह हजार का, पैंतीस हजार बढ़े। डालो बढ़ने में। अंक गिनने की बातें दोनों भाई इकट्ठे होकर विचार करे। ऐई! देवानुप्रिया! परन्तु मैं यह कौन हूँ? भगवान क्या कहते हैं यह? कहाँ हूँ? कितने में हूँ? कहाँ हूँ? इस घर में हूँ। घर में तू नहीं, ऐसा कहते हैं। तेरे घर में घर नहीं यह और उस घर में तू नहीं। आहाहा! तेरे घर में तो असंख्य प्रदेशों का समूह, उसमें अनन्त गुण, उसमें तू है। बाहर में नहीं और बाहर तुझमें नहीं। यह चीज़ यह धूल, यह शरीर, वाणी, मन और धूल पैसा, यह पाँच-पचास लाख के अंक गिने हों, वे तुझमें नहीं हैं। आहाहा! कहो, जेचन्दभाई! क्या करना अब? अधिक जिसके पास, उसे सुखी मानना? थोड़े हों, उसे दुःखी मानना? क्या करना इसमें?

मुमुक्षु : भगवान को खबर।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो, भगवान को खबर। ऐसा कहे, पाँच भाई हों। अब एक भाई के पास पचास लाख और अलग किये हों तो दो-दो लाख बाँटें हों अब उसमें एक के पास पचास लाख और एक के पास दो लाख और एक के पास दस लाख। अब उसमें सुखी-दुःखी किसे कहना? कि भगवान जाने। ऐसा कहते हैं। ऐई! मोहनभाई! ऐसा कि यहाँ तो प्रत्यक्ष इसे लगे कि मोहनभाई हैं और तीन लड़के हैं और मैं एक हूँ और दो हैं। इकट्ठे थे तब चैन था। अब यह जरा चैन चला गया, ऐसा लगता है, ऐसा यह कहते हैं। ऐसा कहते हैं। धूल में भी नहीं, ऐसा कहते हैं। जेचन्दभाई! यह पचास लाख कूका इकट्ठे किये हों, वह सुखी नहीं। यह कूका कहा न यहाँ तो। यह तो उसके

अस्तित्व में है। पैसा कैसे के अस्तित्व में है। वह कहीं आत्मा में आ गये हैं ? और आत्मा (अपना) अस्तित्व छोड़कर आत्मा पर में गया है ? किसे कहना अब इसके वाला ? कैसेवाला, लड़केवाला, स्त्रीवाला, मकानवाला। बहुत वाला लगे हैं। परन्तु इसे बहुत वाला लगे। सुन तो सही। तू तो अकेला है, वह तुझमें है नहीं और उसमें तू नहीं। ओहो ! धीरुभाई ! बराबर बात है ? परन्तु यह बड़े-बड़े मशीनवाले हों, पाँच-पाँच लाख पैदा करते हों, लो। क्या करना ? लो !

मुमुक्षु : सब परवाले हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परवाले हैं। कोई सवरे गोवा की बात करता था। उस किसी का राज का कुछ। कांग्रेसवाले रास आये नहीं, उसमें कुछ कहा। कांग्रेसवाले को क्या ? कहलाता है ? नहीं रास आये और वहाँ वह है न अपने प्रेमचन्दभाई के मामा के लड़के वहाँ है न। शान्तिलाल ! एक महीने में पाँच लाख पैदा करता है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है पाँच लाख। धूल में भी चैन नहीं। होली सुलगती है पूरे दिन। गोवा में है न अपने यह प्रेमचन्दभाई नहीं ? राणपुरवाले प्रेमचन्द मगन सेठ। उसके मामा का लड़का महीने में पाँच लाख, बारह महीने में साठ लाख। अभी है। चैन का आंकड़ा नहीं। होली सुलगती है पूरे दिन। लड़का कहे, मोटर ऐसे लाओ, यह चक्कर यह लाओ। चक्कर घुमाओ। चक्कर घूमते हैं तेरे, सुन न अब। आत्मा क्या है, इसकी खबर बिना, बाहर की होलियों में सुखी मानना और बाहर के कम अंक में दुःखी मानना, यह तेरी कल्पना है। मूढ़ जीव की यह कल्पना है। जेचन्दभाई ! भगवान नहीं जानते। स्वयं जानता है, ऐसा कहते हैं। स्वयं जाने, ऐसा भगवान वहाँ जानते हैं। ऐई ! मोहनभाई ! क्या होगा यह ? ऐई ! मोहनभाई ! यह कहते हैं, भगवान जाने। लो !

मुमुक्षु : अपने में रहा हो, उसकी अपने को खबर नहीं हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर तो ऐसे पड़े। दो भाई एक साथ रहनेवाले और जहाँ अलग हुए, वहाँ अंक गिनने लगे। यह अंक मेरे पास। अब यहाँ बढ़ने लगे, यहाँ बढ़े नहीं। घटे भले नहीं परन्तु बढ़े भी नहीं। ऐसी कल्पना की भ्रमणा है। उस भ्रमणा में

भूला। भगवान भ्रमणा से भूला और चार गति में भटकता है। छोड़ भ्रमणा, कहते हैं। तू अकेला है। किसी के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

प्रदेशप्रचयात्मक.... है। इसकी व्याख्या जरा सूक्ष्म है। प्रत्येक प्रदेश बहुत हैं-समूहवाले। प्रदेशप्रचय अर्थात् असंख्य प्रदेश हैं। आकाश में अनन्त हैं। प्रत्येक का अस्तित्व अपने प्रदेश में भिन्न-भिन्न है, प्रत्येक का। और प्रदेशवाले हैं, इसलिए उसे काय कहा जाता है। ऐसा यदि प्रत्येक को भिन्नरूप से पहिचाने तो उसके अपने आत्मा की स्वतन्त्रता का उसे भान हो और स्वतन्त्रता का भान होने पर द्रव्य त्रिकाल स्वतन्त्र, उसका आश्रय करने की दृष्टि हो।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण अमावस्या, रविवार, १५-१२-१९६३, गाथा-४-५, प्रवचन-१०

यह पंचास्तिकाय की चौथी गाथा चलती है। जरा सूक्ष्म अधिकार है। कायत्व का स्वरूप है न, इसलिए रूखा लगे ऐसा है जरा। परन्तु वास्तविक वीतरागभाव से कहा हुआ है और वीतरागभाव समझाने के लिये यह बात है। पंचास्तिकाय को बतलाते हैं। हेतु तो वीतरागभाव बतलाना है। जगत के जैसे द्रव्य और उसका अस्तिभाव और कायभाव। अस्ति अर्थात् है और काय अर्थात् प्रदेश का समूह, ऐसा यथार्थपना ज्ञान में आवे तो उसे आत्मा के असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण रहे हैं, वह भी कायपना है और अस्ति है। ऐसे अपने आत्मा में दृष्टि जाने से शुद्धता की प्रतीति और भान हो, उस ज्ञान में पंचास्तिकाय आदि जो है, उसका भी उसमें ज्ञान आ जाता है। इसलिए यहाँ जरा कायपना सिद्ध करने के लिये एक शब्द पड़ा है, उसकी यह बड़ी व्याख्या है। अणुमहान। अणुमहान एक शब्द है। उसकी यह सब टीका लम्बी चलती है। देखो पहले से। बारहवाँ पृष्ठ है न?

उन्हें.... अर्थात् धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, पुद्गल और जीव, ये पाँच लिये हैं। पाँच को कायपना भी है। पहली लाईन है, सेठ! कायपना। कायपना 'भी' है। अर्थात् क्या? कि पाँच पदार्थ अस्तिरूप से, सत् रूप से है। तदुपरान्त उसमें कायपना भी है। कायपना है, लो! वजुभाई! यह क्या होगा? जीव को काया है, पुद्गल को काया है, धर्मास्ति को काय है। अधर्मास्ति को, आकाश को काय है। काय अर्थात् क्या? कि बहुत प्रदेशों का समूह, उसे काय कहते हैं। समझ में आया? उसमें इसे काय लेंगे। उसमें कहकर ऐसा कहेंगे कि यह शरीर के रजकण हैं, उनमें का एक रजकण है, वह तो व्यक्ति अपेक्षा से तो कायपना उसमें नहीं है। व्यक्ति अपेक्षा से अर्थात्? एक रजकण है, वह व्यक्ति अपेक्षा से तो एक है। उसमें शक्ति भी बहुत रजकणों के पिण्डरूप होने की उसमें शक्ति है। इससे परमाणु को भी शक्ति अपेक्षा से कायवाला बहुत रजकणों के समूहवाला एक को भी अनेक प्रदेशवाला शक्ति अपेक्षा से कहा जाता है। अर्थात्?

जितने दो परमाणु से लेकर अनन्त परमाणु इकट्ठे होते हैं, उन परमाणु में ऐसी शक्ति है कि वे संयोगपने को प्राप्त हों। दूसरा उसके कायपने को प्राप्त करावे, ऐसा नहीं

है। क्या कहा इसमें? सेठी! आत्मा, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, ये चार तो स्वतः काय है। स्वतः अर्थात् उनके बहु प्रदेश स्वतः स्वयं से अनादि-अनन्त हैं। सेठ! यह सूक्ष्म बात है। और परमाणु के व्यक्ति-अकेले अपेक्षा से उसमें अनेक प्रदेशपना कायपना उसमें नहीं आता। परन्तु उसमें शक्तिरूप से सामर्थ्य एक रजकण का है या बहुत कर्मरूप से, शरीररूप से, वाणीरूप से यह सब जो दिखता है, एक रजकण में शक्ति, अनन्त रजकण को दो से अनन्तरूप से संयोगरूप से प्रदेशरूप से होने की शक्ति है। इससे उस शक्ति के कारण उसे अनेक प्रदेशी कहा जाता है। इसका अर्थ कि जितने प्रदेशरूप बहुत समूहरूप स्कन्ध दिखता है, वह परमाणु की शक्ति के कारण अनेक प्रदेशपने वह दिखता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : स्कन्ध को कायपना नहीं, परमाणु को कायपना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परमाणु को कायपना इस अपेक्षा से। बहुत प्रदेश के संयोगरूप से होने की उसमें शक्ति है इसलिए। उसका ऐसा सिद्धान्त हुआ कि जितने पुद्गल हैं, उन्हें दो से अनन्त परमाणु जो दिखते हैं, वह परमाणु की शक्ति संयोगरूप होने के कारण से दिखते हैं। दूसरा कोई आत्मा करे, इसलिए यह दिखता है, उनका कायपना, ऐसा नहीं है।

कर्म में अनन्त रजकणों का कायपना दिखता है, वह उसकी शक्ति परमाणु के उसके कारण संयोग से दिखता है। आत्मा के कारण नहीं। उसमें यह आया। सेठी! यह कपड़े-बपड़े का संयोगपना दिखता है, वह बहुत संयोगरूप से, उस परमाणु की शक्ति की अपेक्षा से यह हुआ है अनेक प्रदेशपना। दूसरे जीव ने उसका अनेक प्रदेशीपना संयोगरूप से कायरूप से किया है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : बुनकर ने नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : बुनकर ने नहीं। रतिभाई! समझ में आया? इसी प्रकार यह लड्डू, दाल, भात, सब्जी इत्यादि के रजकण स्कन्धरूप से अनेक प्रदेशरूप, कायरूप, समूहरूप जो दिखते हैं, वह परमाणु की शक्ति अनेक प्रदेशपने में रहने की, होने की है। उसके कारण से यह अनेक दिखते हैं। जीव के कारण से नहीं। ओहोहो! कहो, सेठ!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : महान । हाँ । उसके कारण से महानपना अनेक प्रदेशी है । दूसरे जीव ने इकट्ठे किये, इसलिए अनेक प्रदेशीपना, उसमें कायपना आया, ऐसा नहीं है । मोहनभाई ! समझ में आया ? क्या समझ में आया ? ऐसा कि सेठिया को कुछ पूछा जाये ?

ऐसा कहते हैं, यह आत्मा के अतिरिक्त जितने शरीर, वाणी, कर्म यह दल सब दिखता है, पैसा, नोट, सोना, रूपा / चाँदी, पत्थर यह सब; यह सब परमाणुओं का कायपना, समूहपना दिखता है । वह परमाणु को इस प्रकार से संयोगरूप होने की शक्ति की अपेक्षा से होता है । इसलिए एक परमाणु को भी कायपना, अनेक प्रदेश में होने की योग्यता के कारण उस एक परमाणु को भी कायपना कहा जाता है । समझ में आया ? यह तो सर्वज्ञ वीतराग का मार्ग है । उन्होंने देखे हुए तत्त्व, यह कहते हैं, सब परमाणुओं का समूह और आत्मा के असंख्य प्रदेश का समूह, दो में अन्तर है । आत्मा असंख्य प्रदेशी है, वह तो स्वतःसिद्ध कायपना उसमें अनादि-अनन्त है । बल्लभदासभाई !

आत्मा असंख्य प्रदेशी चौड़ा है । एक प्रदेशी नहीं । असंख्य प्रदेशी है । असंख्य प्रदेशी कौन जाने कहाँ सुना है । समझ में आया ? यह असंख्य प्रदेश हैं । एक पाइन्ट परमाणु जितनी जगह को रोके, उसे प्रदेश कहा जाता है । ऐसे असंख्य परमाणु के गज से मापने पर एक परमाणु के गज से मापने से आत्मा असंख्य परमाणु के गज जितना चौड़ा है । आहाहा ! यह क्या होगा ? समझ में आया ? ऐसी आत्मा के असंख्य प्रदेश चौड़ाई, उसमें अनन्त गुण रहे हुए हैं, ऐसी जिसे आत्मा की खबर नहीं, किसी दूसरे को आत्मा कहे तो इस प्रकार मान ले कि ऐसा आत्मा होगा, ऐसा होगा, उसे सर्वज्ञ कथित आत्मा की खबर नहीं होती । यह आत्मा की बात करते हैं, वे भी आत्मा की बात करते हैं । अरे ! सुन न अब । दूसरे में भी आत्मा की बातें आती है अब । जयन्तीभाई ! नहीं । इस प्रकार से नहीं आती, वहाँ तक आत्मा की बात अन्य में या दूसरे में नहीं आती । समझ में आया ? क्योंकि एक आत्मा असंख्य प्रदेशी चौड़ा है । ऐसा सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त कहीं नहीं हो सकता । कहो, समझ में आया ?

यहाँ सब लेंगे, देखो! उनके कायपना भी है.... किसे? एक काल के अतिरिक्त पाँच द्रव्यों को। धर्मास्ति... पहले पाँच नाम आ गये हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, जीव और पुद्गल। यह पाँच हैं, 'है', तदुपरान्त कायपना है। कभी पढ़ा नहीं हो, रतिभाई! फिर वह समयसार सरल पड़े और यह जरा महँगा पड़े। समयसार में क्या वह बात आवे न (कि) राग बिना का है और यह है और यह है। परन्तु यह वस्तु समझे बिना यह वास्तविक क्या है, यह समझ में नहीं आता। बिना भान के कहे कि आत्मा ऐसा है। परन्तु आत्मा असंख्य प्रदेशी है। प्रदेश प्रदेश में अनन्त गुण हैं। और उस प्रदेश का समूह, उसे जीवास्तिकाय कहा जाता है। जीव है और उसकी काय अर्थात् असंख्य प्रदेश हैं। उसे यह शरीरकाय जीव को नहीं है। रतिभाई! यह शरीरकाय जीव को नहीं है। यह शरीरकाय परमाणु को है। अनेकरूप से होने की परमाणु में शक्ति है, इसलिए उसमें अनेकपना परमाणु का कायपना है। आत्मा का यह कायपना नहीं। शरीर का कायपना आत्मा का नहीं। इस शरीर का कायपना परमाणु से बना हुआ है, इसलिए परमाणु को भी अनेक शक्तिवाला गिनकर कायरूप से गिनने में आया है। समझ में आया? वजुभाई! वे कहे, सर्वव्यापक आत्मा है और एक आत्मा है। हो गया, जाओ। बापू! ऐसा नहीं है।

एक आत्मा भी जिसे पहिचानना हो, उसे अनन्त गुण का धाम असंख्य प्रदेश का क्षेत्र वह है। उसका क्षेत्र कितना चौड़ा? असंख्य प्रदेश है। ऐसे असंख्य प्रदेश में एकरूप जीव को अस्ति है और कायपना अर्थात् प्रदेश के समूहपना है। देखो, यहाँ आया। 'क्योंकि वे अणुमहान हैं।' क्योंकि वे पाँच वस्तुएँ अणुमहान हैं। यहाँ अणु अर्थात् प्रदेश- अब अणुमहान के अर्थ करते हैं, दो के। अणु अर्थात् प्रदेश मूर्त और अमूर्त निर्विभाग अंश;.... आहाहा! रूपी में और अरूपी में। रूपी एक यह पुद्गल है। अरूपी धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल और जीव है। वह अरूपी होने पर भी उसका निर्विभाग—भाग न हो, ऐसा छोटे में छोटा अंश, उसे प्रदेश कहते हैं। समझ में आया? आत्मा अरूपी होने पर भी उसका एक अंश जो परमाणु जितनी जगह को रोके, वह निर्विभाग, उस प्रदेश के भाग नहीं हो सकते। छह काय, छह काय द्रव्य की बात है। यह छह द्रव्य का ज्ञान होता है। उसकी भी खबर नहीं होती। नहीं? समझ में आया?

इस मकान का भी चार लिखते हैं.... क्या कहलाता है तुम्हारे ? चतुर्सीमा । यह मकान मेरा है । मफतलाल का नहीं कोई । और यह चारों ओर जगह में रहा हुआ बीच में है । इसका क्षेत्र वहाँ है । वहाँ लिखना पड़े न ? सेठ ! सीमा लिखते हैं या नहीं चार दिशा ? देनेवाला अमुक, लेनेवाला अमुक, यह चीज़ इस ओर इस जगह और इतने चारों ओर की जगह में पूर्व में अमुक रहता है, पश्चिम में अमुक यह रहे, इस दिशा में यह रहे । उसमें है यह मकान । निश्चित करते हैं या नहीं ? उसी प्रकार यह आत्मा का मकान असंख्य प्रदेशी चौड़ा है । चारों ओर भले परमाणु और दूसरे रहे परन्तु उसमें अन्दर प्रवेश नहीं हुए हैं । समझ में आया ? असंख्य प्रदेशी वस्तु, उसे यहाँ काय कहते हैं । उसकी काय यह है । और यह शरीर पुद्गल के परमाणु की यह काय है । आत्मा की यह नहीं और इसकी आत्मा नहीं । समझ में आया ? यह मूर्त के परमाणुओं का एक निर्विभाग रजकण, उसे प्रदेश कहते हैं । अमूर्त में आत्मा, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश चार का निर्विभाग अंश, जिसका भाग न पड़े, ऐसा एक अंश, उसे भगवान प्रदेश कहते हैं ।

मुमुक्षु : गज छोटा पड़ा है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : गज बड़ा है । छोटा कहाँ हुआ ? यह असंख्य मापे तो माप हो, तो गज कम नहीं हो । पर्वत समाप्त हो परन्तु गज समाप्त न हो । ऐसे... ऐसे... ऐसे... माप करे बड़ा गज, वह समाप्त हो परन्तु यह समाप्त इसका माप ? किया ही करे नहीं चाहे जितना । गज समाप्त नहीं होता । उस गज का माप समाप्त हो जाये, गज समाप्त नहीं होता । समझ में आया ? बराबर है ?भाई ! क्या कहा जाता है तुम्हारे यह वार... वार... का माप ? फूलपट्टी लो । यह फूलपट्टी जितना होगा लगभग । देखो न ! ऐसे से मापो तो समाप्त हो जाये यह । वह समाप्त परन्तु यह समाप्त नहीं । अब यह माप नहीं दे, ऐसा नहीं । समाप्त में आया ? इसी प्रकार जगत के पदार्थ ज्ञान के माप में आ जायें, यह चीज़ माप में आ जाये, परन्तु ज्ञान करनेवाले का माप कभी पूरा हो सकता नहीं । इतना अमाप ज्ञान है ।

ज्ञान के गज द्वारा जगत के पदार्थों का क्षेत्र, काल, द्रव्य और भाव, उसका माप ज्ञान में आवे । परन्तु वह सब कितना, वह यहाँ आ गया । परन्तु ज्ञान का माप समाप्त नहीं

होता। इससे अनन्तगुणा हो, अनन्तगुणा काल, अनन्तगुणा क्षेत्र, अनन्तगुणा भाव तो ज्ञान की पर्याय के गज से सब मप जाये, ऐसी सामर्थ्य है। समझ में आया? आहाहा! लो, क्या हुआ अब? गज छोटा या क्या हुआ?

मुमुक्षु : परमाणु का गज बहुत बड़ा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे भी जाननेवाला ज्ञान कितना बड़ा हो पड़ा! कि ऐसे अनन्त रजकण एक-एक से मापते हुए आकाश अनन्त प्रदेशी। उसका माप रजकण से आ जाये, ऐसे एक-एक करते-करते। ज्ञान से करना है न! वहाँ कहाँ मापने जाना है। यह ज्ञान की पर्याय अनन्त रजकण से इतने-इतने प्रदेश आकाश के अमाप.... अमाप.... अमाप.... अमाप.... उसके ज्ञान के गज से सबका ज्ञान आ गया। परन्तु यह ज्ञान अब समाप्त नहीं होता। अभी इतना हुआ, अधिक होता तो मापता या नहीं? माप अर्थात् प्रमाण होता या नहीं? प्र-माण—माप में आता या नहीं? इससे अनन्तगुणा... अनन्तगुणा... अनन्तगुणा होवे तो ज्ञान के माप में (आ जाये), इतना ज्ञान का सामर्थ्य है। आहा! समझ में आया?

इस ज्ञान की एक समय की दशा का माप अनन्त-अनन्त है। यह अनन्त माप रहता है कहाँ? कि असंख्य प्रदेश में व्यापकर। उसके कायपने में व्यापकर यह माप रहता है। कहो, समझ में आया? कल आया था न? भाई, नहीं? वह समकित्ती का। समकित्ती सा-अवयव आकार होंगे समकित में? आत्मा एक समय में असंख्य प्रदेशी और अनन्त गुण। उसका एक ज्ञानगुण की एक पर्याय अमाप। उस अमाप का माप स्वयं वापस अपना ज्ञेय करके माप ले ले। पर का माप करके ज्ञान हो जाये और ज्ञान की पर्याय अपने को ज्ञेय बनाकर ज्ञान माप कर ले उसका। समझ में आया? उस ज्ञान की पर्याय में जो सम्यग्दर्शन पर्याय, सम्यग्दर्शन पर्याय या जो पूरे द्रव्य का अनन्त गुण का पिण्ड असंख्य प्रदेशी, उसे जिसने पकड़ा है। सम्यग्दर्शन की पर्याय से पूरे पूर्णानन्द अनन्त गुण के धाम को पकड़ा है। शिष्य ने कहा, प्रभु! उस सम्यग्दर्शन को साकार और सा-अवयव आपने कैसे कहा? सुन!

भगवान आत्मा साकार के असंख्य प्रदेशी आकारवाला है। और वह अवयव है

न ? और उसके अनन्त-अनन्त उसमें गुण रहे हैं । ऐसा वह सा-अवयव और साकार है । अनन्त गुणवाला आत्मा और साकार अर्थात् आकार । है न असंख्य प्रदेश का आकार ? उसने—सम्यग्दर्शन ने पूरे तत्त्व को पकड़ा है । सेठी ! इसलिए सम्यग्दर्शन को सा-अवयव और साकार कहते हैं । अरे... अरे... भाषा यह कुछ.... दास ! समझ में आया ? शशीभाई !

भगवान आत्मा असंख्य प्रदेश के अनन्त गुण और उसका एक-एक गुण भी अवयव कहलाये और प्रदेश भी अवयव कहलाये । क्या कहा ? आत्मा के असंख्य प्रदेश को... यहाँ कहेंगे, प्रदेश भी अवयव कहेंगे । समझ में आया ? यह बाद में कहेंगे । पाँचवीं गाथा में कहेंगे । फिर पाँचवीं में लेंगे । निरवयव होने पर भी सावयव है । यह सब कहेंगे । परमाणु को सावयव कहेंगे । समझ में आया ? यह तो अन्तर की बातें हैं । चैतन्य का क्षेत्र चौड़ा और उसमें अनन्त गुण । तो एक-एक गुण उसका अवयव कहलाता है और आत्मा अवयवी कहलाता है । असंख्य प्रदेश, एक-एक प्रदेश उसका—क्षेत्र का अवयव कहलाता है और पूरा आत्मा अवयवी कहलाता है । ऐसा क्षेत्र से अवयवी और अवयव और गुण से अवयवी और अवयव । ...भाई ! कभी सुना नहीं होगा यह । कितने वर्ष हुए ? ४५ ? ऐई ! देवानुप्रिया !

मुमुक्षु : बराबर है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या बराबर है ? तुमने भी सुना नहीं होगा इतने वर्ष में ।

भगवान आत्मा.... आचार्यों की सन्त की वास्तविक तत्त्व की कहने की पद्धति और उसके माहात्म्य को बतलाने की पद्धति । सम्यग्दर्शन का माहात्म्य कितना ? है एक समय की पर्याय न ? ऐसे अनन्त गुण का धाम असंख्य प्रदेशी काय प्रभु, उसे जो अनन्त अवयव गुण से और प्रदेश से असंख्य अवयव, उसे जिसने सम्यक् श्रद्धा द्वारा... 'पडिगहण' आया था न ? भाई ! 'पडिगहण' शब्द संस्कृत । परिग्रहीत । पकड़ा है आत्मा को । अरे... गजब भाई ! सम्यग्दर्शन की पर्याय में आत्मा अखण्ड अनन्त गुण का पिण्ड, ऐसे अनन्त अवयवी, अनन्त अवयव का अवयवी; असंख्य प्रदेशी एकस्वरूप, उसके असंख्य अवयव प्रदेश के, सबको सम्यक् में ऐसा पकड़कर प्रतीति की है । शशीभाई !

इसलिए शिष्य को कहते हैं कि भाई! यह सम्यग्दर्शन की पर्याय भी एक होने पर भी इसे हम अवयववाला और इसे आकारवाला कहते हैं। क्योंकि उसने पकड़ी हुई चीज़ अवयववाली और आकारवाली है। शशीभाई!

यह बात सर्वज्ञ परमात्मा के अतिरिक्त, त्रिलोकनाथ ने जो देखा, उसके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं तीन काल में नहीं हो सकती। यह बतानेवाले के लिये यह बात है। ऐसे तो आत्मा-आत्मा बहुत सब करे। 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व (चिह्नो नहीं)....' ऐसी सब बातें तो बहुत करते हैं। यह अपेक्षा से बात है। वस्तुस्थिति जो है.... समझ में आया? ऐसा आत्मा असंख्य प्रदेश, अवयवी स्वयं, उसके असंख्य प्रदेश अवयव। जैसे शरीर, वह अवयवी। यह हाथ, पैर, अँगुली उसके अवयव। यह तो दृष्टान्त है, हों! यह दृष्टान्त दिया है शास्त्र में इस प्रकार। जैसे आत्मा एक समय में अनन्त गुण का पिण्ड पूरी चीज़ असंख्य प्रदेशी पूरी चीज़, उस पूरी को अवयवी और अनन्त गुण के एकरूप को अवयवी कहते हैं। क्षेत्र और भाव से अवयवी कहते हैं, तथापि उसके भेद की अपेक्षा से अनन्त गुण और असंख्य प्रदेश की अपेक्षा से उसे अवयव कहते हैं। ऐई! रतिभाई! ऐसा कि दो-चार दिन सुनें, उसमें कहीं पता खाये ऐसा नहीं, हों! लो, हो गया जाओ, आत्मा ऐसा.... आत्मा ऐसा। दूसरे भी ऐसा कहते हैं और अमुक भी ऐसा कहते हैं। अरे! भाई! बापू! यह आत्मा क्या चीज़ है? ओहोहो!

जिसके ज्ञान के एक समय में तीन काल-तीन लोक खूटी गये। खूटी गये अर्थात् माप में आ गये, तथापि उस ज्ञान का माप पूर्ण नहीं हुआ। ऐसी-ऐसी एक श्रद्धा की पर्याय की ताकत। इतना है या नहीं? श्रद्धा इतनी पर्यायवाला इतना का, ऐसी अनन्त पर्याय का द्रव्य और इतने गुण का एक द्रव्य, उसे प्रतीति ने स्वीकार किया, उसे प्रतीति की कितनी ताकत आयी? उसके वीर्य में कितनी ताकत आयी? उसकी शान्ति के एक अंश में अनन्त गुण की शान्ति। समझ में आया? ऐसा जो आत्मा, उसे कहते हैं कि हम अवयवी और अवयव कहते हैं। तो सम्यग्दर्शन की पर्याय को भी हम अवयवी और साकार कहते हैं। सेठ!

मुमुक्षु : निराकार....

पूज्य गुरुदेवश्री : निराकार अर्थात् क्या ? यह अवयव और साकार अर्थात् क्या ? असंख्य प्रदेश का उसे आकार है या नहीं ? कहो। ऐसा आकार पर्याय में पकड़ा तो पर्याय में आया है या नहीं ? पर्याय का आकार है या नहीं आत्मा के प्रदेश प्रमाण ? आकार है या नहीं उसका ? क्या ?

मुमुक्षु : आकार ।

पूज्य गुरुदेवश्री : कितना ? देह नहीं। असंख्य प्रदेश प्रमाण। ऐसा नहीं। देह प्रमाण कहाँ से आया वापस ? आकार है उसे। तो आकार शरीर प्रमाण है न ? शरीर के कारण है न ? आहाहा ! समझ में आया ? यह जाना नहीं। क्या कहा ? यह तो नयी बात है न, एकदम नयी।

भगवान आत्मा अणुमहान कहा। देखो ! उसके द्वारा महान, वह अणुमहान। अर्थात् प्रदेशप्रचयात्मक... प्रदेश-प्रचय-आत्मक। प्रदेशों का समूहस्वरूप, ऐसा लेना। परमाणु एक से लेकर अनन्त, उस परमाणु को शक्ति अपेक्षा से प्रदेशप्रचय, प्रदेश के समूहरूपी स्वरूप कहते हैं। और आत्मा तो प्रदेशप्रचय-समूह है, असंख्य प्रदेश समूह है। समझ में आया ? ऐसे धर्मास्ति, अधर्मास्ति.... आकाश तो आकाश अनन्त प्रदेशी.... धर्मास्ति, अधर्मास्ति असंख्य (प्रदेशी) है। समझ में आया ? आहाहा ! होवे वह अणुमहान है। इस प्रकार उन्हें (उपरोक्त पाँच द्रव्यों को) कायत्व सिद्ध हुआ। पाँच द्रव्य को कायपना सिद्ध हुआ। कौन से पाँच ? काल के अतिरिक्त। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और एक आकाश। इन पाँच को बहुप्रदेशों का समूहपना है, ऐसा यहाँ सिद्ध हुआ। अरे ! ज्ञानी ने जाना। सन्तों ने यह बात कहने के लिये प्रसिद्धि में रखी तो कोई हेतु होगा या नहीं ? कि जैसा यह आत्मा और जैसे धर्मास्ति आदि पदार्थ हैं, उस प्रकार के क्षेत्र और गुण की महत्ता से ख्याल में न आवे, वहाँ तक उसे स्वद्रव्य और परद्रव्य की प्रतीति का भेदज्ञान यथार्थ नहीं होता। समझ में आया ?

अब जरा (ऊपर जो अणुमहान की व्युत्पत्ति की...) समझ में आया ? इस प्रकार उन्हें (उपरोक्त पाँच द्रव्यों को) कायत्व सिद्ध हुआ। (ऊपर जो अणुमहान की व्युत्पत्ति की, उसमें अणुओं के अर्थात् प्रदेशों के लिए बहुवचन का उपयोग किया

है... अणुमहान शब्द प्रयोग किया है न? और संस्कृत भाषा के नियमानुसार बहुवचन में द्विवचन का समावेश नहीं.... बहुवचन आया। बहु अर्थात् वहाँ से तीन परमाणु से लेकर अनन्त। तो जहाँ अणुमहान में संस्कृत भाषा के नियमानुसार बहुवचन.... आया, उसमें आत्मा असंख्य प्रदेशी समाहित हो गया। धर्मास्ति, अधर्मास्ति असंख्य प्रदेश बहुवचन में आ गया और आकाश अनन्त प्रदेश, वह बहुवचन में आ गया। और परमाणु में तीन से अनन्त बहुवचन में आ गया। परन्तु दो परमाणु एक ओर रह गये कायपना।समझ में आया ?

अणुमहान बहुवचनरूप से जो भगवान शास्त्रकार ने कहा, उसमें इतने द्रव्य तो आ गये। एक आत्मा असंख्य प्रदेशी अर्थात् बहुत, इसलिए बहुवचन में आ गये। अणुमहान प्रदेश से बड़ा आत्मा। धर्मास्ति अणुमहान। क्योंकि तीन से अधिक को महान कहने में, अणुमहान बहुवचन में कहने में आता है। तो धर्मास्ति के असंख्य प्रदेश को भी दो से अधिक प्रदेश हैं, उसे भी अणुमहान में वह आ गया। अधर्मास्ति भी दो से अधिक प्रदेशवाला है, असंख्य, इसलिए वह भी अणुमहान में आ गया। और आकाश अनन्त प्रदेशी है, इसलिए भी वह दो से अधिक में आ गया है। परमाणुओं में भी दो से अधिक, तीन-चार से अनन्त। जितने तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह—ऐसे बढ़ते-बढ़ते अनन्त (हों), वे भी अणुमहान में बहुवचन में कायरूप से आ गये। समझ में आया इसमें? परन्तु दो परमाणु अनन्त पड़े हैं, उन्हें अणुमहान बहुवचन में वे नहीं आये। तो उन्हें—दो परमाणु को कायपना किस प्रकार कहना? उसके लिये जरा बात ली है। समझ में आया? यह तो न्याय के कायदे हैं। सर्वज्ञ के वस्तु की स्थिति का स्वरूप यथार्थरूप से न्याय, लॉजिक, युक्ति से सिद्ध करते हैं। समझ में आया ?

संस्कृत भाषा के नियमानुसार बहुवचन में द्विवचन का समावेश नहीं होता इसलिए अब व्युत्पत्ति में किंचित् भाषा का परिवर्तन करके द्वि-अणुक स्कन्धों को भी अणुमहान बतलाकर उनका कायत्व सिद्ध किया जाता है। अर्थात् क्या? कि अणुमहान शब्द में बहुवचन आया। परन्तु द्वि नहीं आया। इसलिए उसमें दो परमाणुवाले अनन्त स्कन्ध पड़े हैं, उन्हें कायपना अणुमहान में नहीं आया। बहुवचनरूप से बात उसमें नहीं

आयी। तो अब जरा भाषा बदलकर द्विवचन करके अणुमहान करके दो परमाणु को काया में समाहित कर देते हैं। भारी और सूक्ष्म आज आयी। समझ में आया ?

‘दो अणुओं (-दो प्रदेशों) द्वारा महान हो’ वह अणुमहान—ऐसी व्युत्पत्ति से द्वि-अणुक पुद्गल-स्कन्धों को भी (अणुमहानपना होने से) कायत्व है। कहो, अब द्विवचन डालकर दो परमाणुवाले आदि अनन्त दो परमाणुवाले पड़े हैं। उन्हें भी द्विवचन डालकर कायत्वपना उसमें सिद्ध हुआ है। सिद्ध होता है। झूठी बात जैसा लगे ऐसा है। सेठी ! यह ना नहीं करते। यह किसी दिन ऐसा नहीं कहते। कहो, समझ में आया ?

आत्मा असंख्य प्रदेशी, धर्मास्ति असंख्य प्रदेशी, अधर्मास्ति असंख्य प्रदेशी, आकाश अनन्त प्रदेशी और परमाणु भी अनन्त प्रदेशी हैं। उसमें कोई दो से तीन, चार, पाँच ऐसे अनन्त प्रदेशवाले कायत्व हैं। अब जब अणुमहान कहा संस्कृत भाषा में, वहाँ तो बहुवचन आया। उसमें वह द्विवचन नहीं आया। इसलिए बहुवचन में इतने समाहित हुए कि आत्मा समाहित हुआ असंख्यप्रदेशवाला, धर्मास्ति समाहित, अधर्मास्ति समाहित हुआ, आकाश समाहित हुआ और तीन से लेकर अनन्त परमाणु का कायपना उसके कारण होता है, ऐसा बहुवचन में वहाँ समाहित हो गया। परन्तु एक बहुवचन में रह गये वे अनन्त दो परमाणुवाले अनन्त स्कन्ध। वे किसमें समाहित करना ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे कायपना लागू करना पड़ेगा न।

जरा भाषा का अन्तर करके ‘दो अणुओं (-दो प्रदेशों) द्वारा महान हो’ वह अणुमहान—ऐसी व्युत्पत्ति से द्वि-अणुक पुद्गल-स्कन्धों को भी (अणुमहानपना होने से) कायत्व है। हो गया।

मुमुक्षु : एक परमाणु रह गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, एक परमाणु रह गया। एक परमाणु व्यक्ति अपेक्षा से एक है। परन्तु शक्ति अपेक्षा से उसमें कायत्व लागू करना है। क्योंकि एक परमाणु बहुत परमाणु के प्रदेश के संयोग सम्बन्ध में आता है। समझ में आया ? यह जैन में जन्मे तो भी जैन में क्या छह द्रव्य है, उसकी इसे खबर नहीं। ओहोहो !

कहते हैं कि यह कायपना अर्थात् बहुत प्रदेशों का प्रचय अर्थात् समूह का स्वरूप, उसे काय कहते हैं। तो कायपना तो अणुमहान में धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और जीव में तो आ गया—अणुमहान में। पुद्गल में भी तीन से लेकर अनन्त में बहुवचन की अपेक्षा से कायपना आया। अब दो परमाणु और एक परमाणु रहे। उन्हें भी काय में रखना है। तब कहे, बहुवचन को द्विवचनरूप से कहें तो दो परमाणु भी अणुमहान में (आ गये)। अणु दो प्रदेशी महान, ऐसा करके उसमें आ गया। अब एक परमाणु को भी कायपना कहना है। समझ में आया ?

किस प्रकार है, वह बतलाकर परमाणुओं को भी कायत्व सिद्ध किया जाता है। व्यक्ति और शक्तिरूप से 'अणु तथा महान' होने से.... देखो, अब यह। अब परमाणु के लिये। व्यक्ति और शक्तिरूप से 'अणु तथा महान'.... अणु, वह व्यक्ति और शक्ति की अपेक्षा से महान। ऐसे दो बोल लेना। (अर्थात् परमाणु व्यक्तिरूप से एकप्रदेशी तथा शक्तिरूप से अनेकप्रदेशी होने के कारण) परमाणुओं को भी, उनके एकप्रदेशात्मकपना होने पर भी, (अणुमहानपना सिद्ध होने से) कायत्व (समूहपना) सिद्ध होता है। जरा ज्ञान के न्याय का विषय लोगों को (सूक्ष्म पड़ता है)। अध्यात्म का विषय सूक्ष्म पड़े और यह भी अध्यात्मद्रव्य की बात क्या है, वह भी इसे सूक्ष्म पड़ती है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, शक्ति अपेक्षा से। व्यक्ति अपेक्षा से तो एक ही है। परन्तु शक्ति बहुत परमाणु में संयोगरूप से यह हुआ है न, देखो न यह पुद्गल यह हुआ, यह हुआ। यह सब। यह परमाणु में शक्ति की दशा.... तुम्हारी शक्ति की अपेक्षा से उसमें हुआ, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। जीव ने पुण्य परमाणु किये, यह नहीं। पुण्य के परमाणु जो हुए, वे भी उन परमाणु की शक्ति की अपेक्षा से सातावेदनीय परमाणु के स्कन्ध हुआ है। तुम्हारे कारण से नहीं। तुमने राग किया साता का, इसलिए नहीं। ऐसा

यहाँ तो कहते हैं। सब सिद्ध हो जाता है। कर्म के रजकण एक-एक थे, वे इकट्ठे हुए और कर्मरूप हुआ, ऐसे बहुत रजकणों का कायपना अर्थात् समूहपना शक्ति के कारण उसमें जो व्यक्ति थी, उसमें शक्ति थी, इसलिए ऐसे हुए हैं। तेरे राग-द्वेष के कारण से साता के रजकणों का कायपना इकट्ठा हुआ है, ऐसा नहीं है। ऐई! देवानुप्रिया! सब बात उड़ जाती है।

मुमुक्षु : अपेक्षा से सब.....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपेक्षा से सब कथन।

मुमुक्षु : सच्चे को सच्चेरूप से माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपेक्षा किसकी हो? खोटे को खोटेरूप से और सच्चे को सच्चेरूप से। ऐसी अपेक्षा हो या खोटे को सच्चे रूप की अपेक्षा? समझ में आया? चाहे जैसे गप्प चले। स्याद्वाद है न। स्याद्वाद है तो ऐसा चलता होगा? सिद्ध में भी नीचे उतरकर संसारी हो किसी अपेक्षा से? कालाणु की बात अभी कहेंगे। देखो, सुनो यहाँ। तुम्हारी अपेक्षा की बात डण्डा मार के आती है। सुनो।

परमाणुओं को भी, उनके एकप्रदेशात्मकपना होने पर भी,... प्रदेश-आत्मक अर्थात् क्या? एक प्रदेशस्वरूप। होने पर भी, (अणुमहानपना सिद्ध होने से) कायत्व सिद्ध होता है। अब पाँचों को कायपना सिद्ध किया। पाँच कौन? धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, जीव और पुद्गल। अब रहा एक काल। अब काल में अनेकान्त लगाते हैं। अपेक्षा से लगा दो, देखा काल में। काल है, वह काल क्या है? यह लोक है न असंख्य प्रदेशी आकाश। अनन्त प्रदेशी आकाश तो है परन्तु यह लोक असंख्य प्रदेश में है आकाश में। बाकी अनन्त प्रदेश बाहर है। एक-एक प्रदेश में कालाणु अरूपी रहा है, एक अणु। जिसमें अनन्त गुण हैं। ऐसे असंख्य कालाणु चौदह ब्रह्माण्ड में एक-एक प्रदेश में एक-एक ऐसे असंख्य प्रदेश में असंख्य रहे हैं। उस काल के लिये कायपना कैसे है?

कालाणुओं को व्यक्ति-अपेक्षा से तथा शक्ति-अपेक्षा से प्रदेशप्रचयात्मक.... प्रदेश का समूहस्वरूप महानपने का अभाव होने से,.... लो! शक्ति और व्यक्ति दोनों

प्रकार से काल को कायपना नहीं है। किस अपेक्षा से कायपना लगाओ ? कहो, लगाओ दूसरी अपेक्षा।

मुमुक्षु : काल की अपेक्षा से....

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्व अपेक्षा से नहीं। हो रहा तब। उसमें यह अपेक्षा से है, ऐसा नहीं रहा। है न, होशियार है न।

एक कालाणु नाम का पदार्थ है, चौदह ब्रह्माण्ड में एक-एक आकाश के प्रदेश में। ऐसे-ऐसे असंख्य ऐसे मणिरत्न जैसे पड़े हों लाख मणि, वे भिन्न-भिन्न रत्न है। वैसे असंख्य आकाश प्रदेश में एक-एक में कालाणु भिन्न-भिन्न है। वस्तु है, अरूपी है, अमूर्त है, अनन्त गुण का पिण्ड है। अनन्त गुण की एक समय में कालाणु में भी अनन्त पर्यायें होती हैं। समझ में आया ? वह कालाणु है, वह कायत्व अर्थात् उसके प्रदेशों का समूह है या नहीं ? किसी अपेक्षा से है या नहीं ?

मुमुक्षु : सर्व अपेक्षा से नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ठीक कहा तुमने, हों ! जवाब तो ठीक है। निश्चय से भी नहीं और व्यवहार से भी नहीं, ऐसा कहा। सर्व अपेक्षा से नहीं।

कालाणुओं को व्यक्ति-अपेक्षा से.... व्यक्ति अर्थात् अकेली चीज़ तथा शक्ति-अपेक्षा से.... संयोग होने की योग्यता। इन दो अपेक्षा से प्रदेशप्रचयात्मक महानपने का अभाव होने से, यद्यपि.... महानपने का उसमें—कालाणु में अभाव है। क्योंकि एक ही चीज़ है कालाणु अरूपी। दूसरे के साथ मिलता नहीं। परमाणु एक है, तथापि दूसरे के साथ मिलने की योग्यता की शक्ति की अपेक्षा से कायपना कहा। कालाणु में तो शक्ति अपेक्षा से या व्यक्ति अपेक्षा से किसी प्रकार से कायपना नहीं है। समझ में आया ? वहाँ एकान्त हो जाता है न ? कालाणु सर्वथा शक्ति अपेक्षा से भी एक और व्यक्ति अपेक्षा से वहाँ कायपना नहीं तो वह शक्ति, यही अनेकान्त है। समझ में आया ? इस प्रकार है और दूसरे प्रकार से नहीं।

यद्यपि वे अस्तित्व में नियत हैं.... यद्यपि असंख्य कालाणु पदार्थ हैं, वे अस्तित्व में-होनेपने में है—अस्तित्व है। समूहपना नहीं। भगवान सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा के घर

में जो जानने के छह द्रव्य आये, उन छह द्रव्य में एक और संख्या समूहपने के प्रदेश से कौन हैं, इसकी यह व्याख्या चलती है। समझ में आया? तथापि, उनके अकायत्व है — ऐसी इसी से (-इस कथन से ही) सिद्ध हुआ। क्या कहा? कालद्रव्य का अस्तित्वपना होने पर भी उसका कायत्व अर्थात् दो प्रदेश के शक्ति की अपेक्षा से भी समूहपना होना ऐसी उसकी योग्यता नहीं है; इसलिए उसे अकायत्व कहा जाता है।

इसीलिए, यद्यपि वे सत् (विद्यमान) कालाणु हैं... वस्तु असंख्य है। अनन्त गुण का एक कालाणु, ऐसे अनन्त गुण के धारक (असंख्य) कालाणु, असंख्य कालाणु अनन्त गुण के धारक हैं। तथापि, उन्हें अस्तिकाय के प्रकारण में नहीं लिया है। 'है' उसे समूह अर्थात् काय के प्रकरण में उसे नहीं लिया। अकेली अस्ति का जहाँ वर्णन हो तो उसे काल में डालते हैं। परन्तु यहाँ अस्तिकाय का वर्णन है। इसलिए 'है' और समूह प्रदेश का। उसमें काल नहीं आता। इसलिए इस अधिकार में उसकी बात नहीं ली। समझ में आया? ऐसी कौन सी धर्मकथा यह वह किस जाति की? बापू! यह भेदज्ञान की बात है। समझ में आया? जिसका समूहपना, उसका समूहपना। जिसमें समूहपना नहीं, उसका समूहपना नहीं। और जिसकी भिन्नता है, वह सर्वथा भिन्नता है, ऐसा बात का ज्ञान कराने को छह द्रव्य का वर्णन किया गया है। समझ में आया? तत्त्व का अभ्यास घट गया, इसलिए रह गया खोखा क्रियकाण्ड का। यह करे तो ऐसा हो और यह करे तो ऐसा हो। दया पाले तो धर्म हो और पूजा करे तो कल्याण हो। लो! आहाहा!

वस्तु क्या है? भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा जिन्होंने यह देखा, ऐसा है और ऐसा कहा, वह क्या है परन्तु यह? कि छह द्रव्यों में 'है' पना तो छहों को लागू पड़ता है, परन्तु कायपना पाँच को लागू पड़ता है, किन्तु काल को लागू नहीं पड़ता। देखो! यह दो भाग पड़ गये। पाँच काय और एक अकाय अर्थात् छह में दो भाग पड़ गये। एक ओर जीव और एक ओर पाँच अजीव में दो भाग पड़ गये। एक ओर अरूपी पाँच तथा एक ओर रूपी एक, ऐसे दो भाग पड़ गये। एक ओर क्षेत्र में लोक और अलोक, ऐसे क्षेत्र के भाग पड़ गये। ऐसे दो-दो भाग प्रत्येक जीव के अन्दर में है। ऐसे आत्मा में भी एक अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय, पर्याय के भी दो भाग पड़ गये।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : (काल) रूक्ष है, उसे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं। परमाणु में स्पर्श है, इसलिए उस स्पर्श की योग्यता से बहुत परमाणु के संयोगरूप होने की उसमें शक्ति है। कालाणु में वह है नहीं। वह तो अरूपी, अमूर्त, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श उसमें नहीं है। वह एक, वह एक ही है। एक, वह दो कभी होते नहीं। समझ में आया ?

भावार्थ :—पाँच अस्तिकायों के नाम.... दिये थे न ? विशेष संज्ञा और काय और लोकालोक का विभाग ऐसे तीन बोल आये थे। तीन आये थे न ? लोकालोक का भाग तो उसमें गया। अणुमहान। नाम, काय और अणुमहान, ये तीन बोल हुए। समझ में आया ? विशेष संज्ञा, सामान्य अस्तित्व और कायत्व, ऐसा। कायत्व अर्थात् अणुमहान। वह पाँच अस्तिकायों के नाम-जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश हैं। यह नाम उनके अर्थानुसार हैं। इनके पाँच नाम इनके द्रव्य प्रमाण है। द्रव्य प्रमाण है इतना।

यह पाँचों द्रव्य पर्यायार्थिकनय से अपने से कथंचित् भिन्न ऐसे अस्तित्व में विद्यमान हैं.... भगवान ने दो नय कहते थे, वह बात ली है। एक आत्मा अपने अस्तित्व के गुण में रहा है, वह पर्यायार्थिकनय से कथंचित् अस्तित्व भिन्न और आत्मा भिन्न। पर्यायार्थिक भेद नय से अस्तित्व में रहा हुआ आत्मा भेदनय से अस्तित्व भिन्न कथंचित्, कथंचित् द्रव्य भिन्न। यह पर्यायार्थिकनय से अपने से कथंचित् भिन्न ऐसे अस्तित्व में विद्यमान हैं और द्रव्यार्थिकनय से अस्तित्व से अनन्य हैं। वस्तुरूप से देखो तो सत् और सत्तावान पदार्थ एक ही है। अभेददृष्टि से एक है। भेददृष्टि से अस्तित्व गुण और रहा हुआ आत्मा दोनों भिन्न कथंचित् कहने में आते हैं। प्रदेश से भिन्न नहीं परन्तु गुणसंज्ञा से आत्मा का द्रव्य नाम, उसका गुण नाम—ऐसा नाम संज्ञा आदि भेद देखने में आता है। यह पर्यायनय से भेद है, द्रव्यार्थिकनय से भेद है नहीं। यह सब कहाँ समझने जाये ? यह समझे बिना का विवेक आवे नहीं। विवेक न आवे। अनन्त दूसरे कहनेवाले हों या जैन में भी समझे बिना कहनेवाले हों, उसके साथ मिलान इस प्रकार का ज्ञान हुए बिना उसका मेल नहीं, दुमेल है। उसका ज्ञान यथार्थ नहीं है। समझ में आया ?

पुनश्च, यह पाँचों द्रव्य कायत्ववाले हैं क्योंकि वे अणुमहान हैं। वे अणुमहान

किस प्रकार हैं, सो बतलाते हैं :— आ गया है यह अपने। 'अणुमहान्तः' की व्युत्पत्ति तीन प्रकार से है—अणुमहान की व्युत्पत्ति तीन प्रकार से है। 'अणुभिः महान्तः अणुमहान्तः' अर्थात् जो बहुप्रदेशों द्वारा (-दो से अधिक प्रदेशों द्वारा).... दो से अधिक हों। बड़े हों, वे अणुमहान हैं। इस व्युत्पत्ति के अनुसार जीव, धर्म और अधर्म असंख्यप्रदेशीय होने से अणुमहान हैं;.... प्रदेश से बड़े हैं। आकाश अनन्त प्रदेशी होने से अणुमहान है; और त्रि-अणुक स्कन्ध से लेकर अनन्ताणुक स्कन्ध तक के सर्व स्कन्ध बहुप्रदेशी होने से अणुमहान हैं। अब रह गये दो।

'अणुभ्याम् महान्तः अणुमहान्तः' लो, उसमें। 'अणुभिः' था न? 'अणुभ्याम् महान्तः अणुमहान्तः' जो दो प्रदेशों द्वारा बड़े हों, वे अणुमहान हैं। इस व्युत्पत्ति के अनुसार द्वि-अणुक स्कन्ध अणुमहान हैं। दो परमाणु के अनन्त स्कन्धों को भी कायत्व अणुमहानरूप से कहने में आता है। अब तीसरा। 'अणवश्च महान्तश्च अणुमहान्तः' अर्थात् जो अणुरूप (—एकप्रदेशी) भी हों और महान (—अनेकप्रदेशी) भी हों, वे अणुमहान हैं। एक परमाणु अकेला हो तो अनेक प्रदेशी नहीं, परन्तु इकट्ठा हो तो अनेक प्रदेशी (होता है, इसलिए) एक को शक्ति की अपेक्षा से भी कहने में आता है।

इस व्युत्पत्ति के अनुसार परमाणु अणुमहान हैं; क्योंकि व्यक्ति-अपेक्षा से वे एक प्रदेशी हैं और शक्ति-अपेक्षा से अनेकप्रदेशी भी (उपचार से) है। अनेक प्रदेशी परमाणु को कहना है न। उपचार से कहने में आता है शक्तिरूप से। इस प्रकार उपरोक्त पाँचों द्रव्य अणुमहान होने से कायत्ववाले हैं—ऐसा सिद्ध हुआ। कालाणु को अस्तित्व है किन्तु किसी प्रकार भी.... निश्चय से, व्यवहार से, अमुक से, किसी अपेक्षा से, इसलिए वह काय नहीं है। इसलिए वह द्रव्य है, किन्तु अस्तिकाय नहीं है। वस्तु है, परन्तु समूह नहीं। कहो, समझ में आया? इस रविवार को यह आया। शशीभाई! बात तो बहुत अलौकिक बात है!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कालाणु को मानते नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : एक भी नहीं। पाँच अस्तिकाय और पर्याय.... एक जगह कहा है, परन्तु वह शास्त्र प्रमाण नहीं किया है। योग.... में हेमचन्द्राचार्य ने कालाणु गिने हैं। वह तो उसके कारण गिने हैं।

यह तो वस्तु है, वस्तु है कालाणु। असंख्य कालाणु, एक-एक अणु में अनन्त गुण। जैसे एक जीव में गुण, उतने ही गुण कालाणु में है। गुण भले अलग। इसमें (जीव में) ज्ञान, आनन्द, उसमें ज्ञान आनन्द का नकार, परन्तु संख्या से जितने आत्मा में संख्या से अनन्त गुण, उतने एक कालाणु में है। उतने एक परमाणु में है। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त गुण। अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व आदि अनन्त गुण। पररूप से नास्तित्व, ऐसे अनन्त गुण। एकपना टिकाया है अनन्त के मध्य में वह अस्तिरूप से अनन्त गुण हैं और पररूप न होना, ऐसे अनन्त गुण हैं। उस एक अणु को दूसरे परमाणुरूप न होना, पहलेरूप न होना, अनन्तरूप न होना, अनन्त आत्मारूप न होना, ऐसी एक में अनन्त की सामर्थ्य न हो तो अनन्त के मध्य में स्वतन्त्र रह नहीं रह सकता। समझ में आया? भाई! तत्त्वदृष्टि से वस्तु जरा सूक्ष्म है। लोगों को अभ्यास नहीं न, इसलिए यह जरा उन्हें ऐसा लगे (कि) रूखी बात (परन्तु) वीतरागपने की है। आहाहा!

मुमुक्षु : न्याल....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसी वस्तु है। न्याल का का रास्ता है। न्यालकरण। स्वामीनारायण कहते थे। काठी लोगों को सबको माँस बन्द करावे.... ऐसा कहते। नागरदास कहते। स्वामीनारायण काठी लोग गाँव में जहाँ जाये वहाँ न्यालकरण आये... न्यालकरण आये, ऐसा बोले। न्याल के करानेवाले। क्योंकि सब बहुत काल से माँस खाते थे और ऐसा करते। यह ब्रह्मचारी बहुत जबरदस्त, स्वामीनारायण थे वे। बहुत पुण्यशाली ब्रह्मचारी है। उस जाति का ब्रह्मचर्य पालने का और पुण्यशाली जबरदस्त थे। फिर इतना अन्दर से.... दूसरे को तो ऐसा हो जाये कि ओहोहो! भगवान आये। न्यालकरण, ऐसा बोलते। नागरभाई कहते थे। नागरभाई के भाई स्वामीनारायण थे न। वह न्यालकरण है। समझ में आया? अब पाँचवीं गाथा।

जेसिं अत्थि सहाओ गुणेहिं सह पज्जएहिं विवेहहिं ।
ते होंति अत्थिकाया णिप्पणं जेहिं तेलोक्कं ॥५ ॥

आहाहा! तीन लोक निपजे हैं, ऐसे तीन लोक हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!
अस्ति की सिद्धि!

अनन्यपन धारण करें जो विविध गुण पर्याय से।
उन अस्तिकायों से अरे त्रैलोक यह निष्पन्न है।।५।।

त्रिलोक का रचनेवाला दूसरा कोई नहीं है परन्तु तीन लोक की रचना ही इन द्रव्यों द्वारा अनादि से हुई है। आहाहा! परन्तु जिसके स्वभाव छह प्रकार के स्वभाव हैं। यह आत्मा अर्थात् ज्ञान शुद्ध स्वभाव ज्ञानसूर्य। उस ज्ञानसूर्य को करे कौन? आदि-अन्त रहित ज्ञान सत्त्व अकेला ज्ञान रसकन्द असंख्य प्रदेशी ज्ञानरसकन्द, ज्ञानसत्त्व। उस ज्ञानसत्त्व को दूसरा करे कौन? और उसकी आदि क्या? उसका अन्त क्या? और उस शक्ति में अनन्त शक्तियों का अमाप भण्डार भरा है। सेठी! आहाहा! कहा था न एक बार, नहीं? जीव की संख्या से पुद्गल की संख्या अनन्तगुणी है। जितने जीव हैं, उनकी अपेक्षा पुद्गल अनन्तगुणे हैं। उन पुद्गल से भी तीन काल के समय की.... एक द्रव्य की पर्याय गिनो या तीन काल के समय गिनो, (वे) अनन्तगुणे हैं। उन तीन काल के समय की अथवा एक द्रव्य की एक गुण की अनन्त पर्याय, वह पुद्गल से अनन्तगुणी है। उसकी अपेक्षा अनन्तगुणे लोक और अलोक आकाश पूरा, वह उसके प्रदेश तीन काल के समय से अनन्तगुणे हैं और वे प्रदेश अनन्तगुण से एक द्रव्य में गुण अनन्तगुणे हैं। आहाहा!

यह जीव है न संख्या से अनन्त? अस्तिकाय अनन्त। निगोद में अनन्त आदि वे सब अनन्त। उस संख्या से, देखो न! यह एक जगह के अनन्त परमाणु हैं यह। ऐसे-ऐसे अनन्त। इसलिए जीव की संख्या अनन्त, उससे परमाणु की—पुद्गल की संख्या अनन्तगुणी। और इसकी अपेक्षा अनन्तगुण के तीन काल के समय।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तीन काल के समय कहो या एक द्रव्य के गुण की तीन

काल की पर्याय। उसके अपेक्षा अलोकाकाश के प्रदेश अमाप.... अमाप.... अमाप.... भगवान कहते हैं कि तीन काल के समय से, एक सेकेण्ड में असंख्य समय जाते हैं ऐसे अनादि-अनन्त समय, उसकी अपेक्षा अलोक के प्रदेश अनन्तगुणे। अमाप.... अमाप.... अमाप.... अमाप.... कहीं आकाश का माप नहीं। है कहीं क्षेत्र का माप? जमुभाई ने थोड़ा लिखा है इस बार, बहुत अच्छा लिखा है। समझ में आया? यह आकाश के प्रदेश की अमाप संख्या से एक द्रव्य के अनन्त गुण हैं। एक द्रव्य के गुण अनन्तगुणे हैं। भगवान जाने क्या होगा यह?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और अलग बात है। मलिन हो तो वे अनन्तगुणें हैं अनन्त गुण। यह उसमें आ जाता है। नहीं हुआ किसने कहा उसमें? ऐसा कहाँ से आया उसमें? जो गुण की पर्याय निर्मल आदि है और मलिन आदि परन्तु वह सब गुण की संख्या अनन्तगुणी है। ऐसा है। यह मिलान नहीं खाया, हों! देवानुप्रिया! यह प्रश्न आया अध्धर से।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो अभी संख्या की बात है। निर्मल-मलिन की बात नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय की ज्ञान की पर्याय में पूरी (वस्तु) अनन्त गुण जानने की ताकत है। यह अनन्तगुणा की अपेक्षा एक केवलज्ञान की एक पर्याय के अविभाग प्रतिच्छेद अनन्तगुणे हैं। आहाहा! आहाहा! ऐसे ज्ञानगुण का धारक तू आत्मा महन्त महात्मा बड़ा है। परन्तु उसकी इसे अपनी महत्ता की खबर नहीं। यह महत्ता किसी को दे, परन्तु स्वयं को नहीं देता। विशेष कहेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ५

जेसिं अत्थि सहाओ गुणेहिं सह पज्जएहिं विविहेहिं।
ते होंति अत्थिकाया णिप्पणं जेहिं तेल्लोक्कं॥५॥

अनन्यपन धारण करें जो विविध गुण पर्याय से।

उन अस्तिकायों से अरे त्रैलोक यह निष्पन्न है॥५॥

अन्वयार्थ :- [येषाम्] जिन्हें [विविधैः] विविध [गुणैः] गुणों और [पर्ययैः] *पर्यायों के (—प्रवाहक्रम के तथा विस्तारक्रम के अंशों के) [सह] साथ [स्वभावः] अपनत्व [अस्ति] है [ते] वे [अस्तिकायाः भवन्ति] अस्तिकाय है [यैः] कि जिनसे [त्रैलोक्यम्] तीन लोक [निष्पन्नम्] निष्पन्न है।

टीका :- यहाँ, पाँच अस्तिकायों को अस्तित्व किस प्रकार है और कायत्व किस प्रकार है, वह कहा है।

वास्तव में अस्तिकायों को विविध गुणों और पर्यायों के साथ स्वपना—अपनापन—अनन्यपना है। वस्तु के ^१व्यतिरेकी विशेष, वे पर्यायें हैं और ^२अन्वयी विशेषों, वे गुण हैं। इसलिए एक पर्याय से प्रलय को प्राप्त होनेवाली, अन्य पर्याय से उत्पन्न होनेवाली और अन्वयी गुण से ध्रुव रहनेवाली एक ही वस्तु को ^३व्यय—उत्पाद—ध्रौव्यलक्षण अस्तित्व घटित होता ही है। और यदि गुणों तथा पर्यायों के साथ (वस्तु को) सर्वथा अन्यत्व हो तब तो अन्य कोई विनाश को प्राप्त होगा, अन्य कोई प्रादुर्भाव को (उत्पाद को) प्राप्त

* पर्यायें = (प्रवाहक्रम के तथा विस्तारक्रम के) निर्विभाग अंश। (प्रवाहक्रम के अंश तो प्रत्येक द्रव्य के होते हैं, किन्तु विस्तारक्रम के अंश अस्तिकाय के ही होते हैं।)

१. व्यतिरेक=भेद; एक का दूसरेरूप नहीं होना; 'यह वह नहीं है' ऐसे ज्ञान के निमित्तभूत भिन्नरूपता। (एक पर्याय दूसरी पर्यायरूप न होने से पर्यायों में परस्पर व्यतिरेक है; इसलिए पर्यायें द्रव्य के व्यतिरेकी (व्यतिरेकवाले) विशेष हैं।)

२. अन्वय=एकरूपता; सदृश्यता; 'यह वही है' ऐसे ज्ञान के कारणभूत एकरूपता। (गुणों में सदैव सदृश्यता रहती होने से उनमें सदैव अन्वय है, इसलिए गुण द्रव्य के अन्वयी विशेष (अन्वयवाले भेद) हैं।)

३. अस्तित्व का लक्षण अथवा स्वरूप व्यय—उत्पाद—ध्रौव्य है।

होगा और अन्य कोई ध्रुव रहेगा—इस प्रकार सब ^१विप्लव प्राप्त हो जायेगा। इसलिए (पाँच अस्तिकायों को) अस्तित्व किस प्रकार है तत्सम्बन्धी यह (उपर्युक्त) कथन सत्य—योग्य—न्याययुक्त हैं।

अब, (उन्हें) कायत्व किस प्रकार है, उसका उपदेश किया जाता है :- जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, और आकाश यह पदार्थ ^२अवयवी हैं। प्रदेश नाम के उनके जो अवयव हैं, वे भी परस्पर व्यतिरेकवाले होने से ^३पर्यायें कहलाती हैं। उनके साथ उन (पाँच) पदार्थों को अनन्यपना होने से कायत्वसिद्धि घटित होती है। परमाणु (व्यक्ति—अपेक्षा से) ^४निरवयव होने पर भी उनको सावयवपने की शक्ति का सद्भाव होने से कायत्वसिद्धि ^५निरपवाद है। वहाँ ऐसी आशंका करना योग्य नहीं है कि पुद्गल के अतिरिक्त अन्य पदार्थ अमूर्तपने के कारण ^६अविभाज्य होने से उनके सावयवपने की कल्पना न्याय विरुद्ध (अनुचित) है। आकाश अविभाज्य होने पर भी उसमें 'यह घटाकाश है, यह अघटाकाश (पटाकाश) है' ऐसी विभागकल्पना दृष्टिगोचर होती ही है। यदि वहाँ (कथंचित्) विभाग की कल्पना न की जाये तो जो घटाकाश है, वही (सर्वथा) अघटाकाश हो जायेगा; और वह तो इष्ट (मान्य) नहीं है। इसलिए कालाणुओं के अतिरिक्त अन्य सर्व में कायत्व नाम का सावयवपना निश्चित करना चाहिए।

उनकी जो तीन लोकरूप निष्पन्नता (-रचना) कही, वह भी उनका अस्तिकायपना (अस्तिकपना तथा कायपना) सिद्ध करने के साधनरूप से कही है। वह इस प्रकार है :-

(१) ऊर्ध्व—अधो—मध्य तीन लोक के उत्पाद—व्यय—ध्रौव्यवाले भाव कि जो तीन लोक के विशेषस्वरूप हैं वे भवते हुए (परिणमत होते हुए) अपने मूलपदार्थों का

१. विप्लव=अन्धाधुन्धी; उथलपुथल; गड़बड़ी; विरोध।
२. अवयवी=अवयववाला; अंशवाला; अंशी; जिनके अवयव (अर्थात्) एक से अधिक प्रदेश हों ऐसे।
३. पर्याय का लक्षण परस्पर व्यतिरेक है। वह लक्षण प्रदेशों में भी व्याप्त है, क्योंकि एक प्रदेश दूसरे प्रदेशरूप न होने से प्रदेशों में परस्पर व्यतिरेक हैं; इसलिए प्रदेश भी पर्याय कहलाती है।
४. निरवयव=अवयवरहित; अंशरहित; निरंश; एक से अधिक प्रदेशरहित।
५. निरपवाद=अपवाद रहित। (पाँच अस्तिकायों को कायपना होने में एक भी अपवाद नहीं है, क्योंकि (उपचार से) परमाणु को भी शक्ति—अपेक्षा से अवयव—प्रदेश हैं।)
६. अविभाज्य=जिनके विभाग न किये जा सकें ऐसे।

गुणपर्याययुक्त अस्तित्व सिद्ध करते हैं। (तीन लोक के भाव सदैव कथंचित् सदृश रहते हैं और कथंचित् बदलते रहते हैं, वे ऐसा सिद्ध करते हैं कि तीन लोक के मूल पदार्थ कथंचित् सदृश रहते हैं और कथंचित् परिवर्तित होते रहते हैं अर्थात् उन मूल पदार्थों का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला अथवा गुणपर्यायवाला अस्तित्व है।)

(२) पुनश्च, धर्म, अधर्म और आकाश यह प्रत्येक पदार्थ ऊर्ध्व-अधो-मध्य ऐसे लोक के (तीन) विभागरूप से परिणमित होने से उनके कायत्व नाम का सावयवपना है, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। प्रत्येक जीव के भी ऊर्ध्व-अधो-मध्य ऐसे तीन लोक के (तीन) विभागरूप से परिणमित लोकपूरण अवस्थारूप व्यक्ति की शक्ति का सदैव सद्भाव होने से जीवों को भी कायत्व नाम का सावयवपना है, ऐसा अनुमान किया ही जा सकता है। पुद्गल भी ऊर्ध्व अधो-मध्य ऐसे लोक के (तीन) विभागरूप परिणत महास्कन्धपने की प्राप्ति की व्यक्तिवाले अथवा शक्तिवाले होने से उन्हें भी वैसी (कायत्व नाम की) सावयवपने की सिद्धि है ही॥५॥

पौष शुक्ल २, मंगलवार, १७-१२-१९६३, गाथा-५, प्रवचन-११

पंचास्तिकाय, गाथा -५

जेसिं अत्थि सहाओ गुणेहिं सह पज्जएहिं विविहेहिं।

ते होंति अत्थिकाया णिप्पणं जेहिं तेल्लोक्कं॥५॥

१. यदि लोक के ऊर्ध्व, अधः और मध्य ऐसे तीन भाग हैं तो फिर 'यह ऊर्ध्वलोक का आकाशभाग है, यह अधोलोक का आकाशभाग है और यह मध्यलोक का आकाशभाग है' -इस प्रकार आकाश के भी विभाग किये जा सकते हैं और इसलिए यह सावयव अर्थात् कायत्ववाला है, ऐसा सिद्ध होता है। इसी प्रकार धर्म और अधर्म भी सावयव अर्थात् कायत्ववाले हैं।
२. लोकपूरण=लोकव्यापी (केवलसमुद्घात के समय जीव की त्रिलोकव्यापी दशा होती है। उस समय 'यह ऊर्ध्वलोक का जीवभाग है, यह अधोलोक का जीवभाग है और यह मध्यलोक का जीवभाग है' ऐसे विभाग किये जा सकते हैं। ऐसी त्रिलोकव्यापी दशा (अवस्था) की शक्ति तो जीवों में सदैव है, इसलिए जीव सदैव सावयव अर्थात् कायत्ववाले हैं ऐसा सिद्ध होता है।)

अनन्यपन धारण करें जो विविध गुण पर्याय से।
उन अस्तिकायों से अरे त्रैलोक यह निष्पन्न है ॥५॥

इसकी टीका :- यहाँ, पाँच अस्तिकायों को अस्तित्व किस प्रकार है और कायत्व किस प्रकार है, वह चौथी गाथा में कहा है। यह पहले आ गया। अब यहाँ इस गाथा का स्वरूप कहा है। वास्तव में अस्तिकायों को जीव अनन्त, पुद्गल अनन्त और आकाश, धर्मास्ति, अधर्मास्ति (एक-एक, इस प्रकार) पाँच। उन्हें विविध गुण, विविध गुण-अनेक प्रकार के गुण। जिन्हें जो हो वैसे। एक में भी विविध गुण, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व इत्यादि। **विविध गुण...** अस्तिकायों को भिन्न-भिन्न प्रकार के गुण **और पर्यायें...** यह प्रत्येक अस्तिकाय को-जीव को, पुद्गल को, जीव भी अपने विविध गुणों से सहित है और अपने पर्यायों के साथ विविध पर्यायें। उसमें भी ऐसा लेते हैं। अनेक प्रकार की पर्यायें हैं या नहीं?

उनके साथ स्वपना-अपनापन-अनन्यपना है। प्रत्येक अस्तिकाय को जीव, पुद्गल आदि को अपने गुणों और अपनी पर्याय के साथ स्वपना-अपनापना अर्थात् कि अनन्यपना है। प्रत्येक वस्तु अपने गुण-पर्याय से अन्य नहीं। गुण-पर्याय से अनन्य है। क्या कहा, समझ में आया? प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश। कालाणु में भी ऐसा है परन्तु यहाँ अस्तिकाय में वह नहीं लिया है।

वे अपने गुण, जैसे आत्मा के ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त गुण और उनकी अनन्त पर्यायें, उनके साथ आत्मा को अनन्यपना है। अर्थात् अपनापना है, इसलिए स्वपना है। उनसे उसका अनन्यपना नहीं है। समझ में आया? सहस्वभावो, आत्मभावो और अनन्यत्वम् ऊपर दूसरी लाईन है। समझ में आया?

वस्तु के व्यतिरेक विशेष, वे पर्यायें हैं। अब इसका स्पष्टीकरण करते हैं। वस्तु अर्थात् प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु का व्यतिरेक अर्थात् एक का दूसरेरूप न होना। प्रत्येक द्रव्य में एक प्रदेश का दूसरे प्रदेशरूप न होना, और एक पर्याय का भी दूसरे पर्यायरूप न होना। **ये व्यतिरेकी विशेष वे पर्यायें हैं....** यह विशेष, वह पर्यायें हैं। द्रव्य में सामान्य गुण हैं, वह द्रव्य की अपेक्षा से एक न्याय से विशेष है। यह व्यतिरेक

विशेष, वे पर्यायें हैं। कहो, समझ में आया? हैं? व्यतिरेक अर्थात् एक-दूसरे का न होनापना। आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं, उसमें एक प्रदेश का दूसरे प्रदेशरूप नहीं होनापना। उसका व्यतिरेक अन्यपना भिन्नपना कहा जाता है।

उसी प्रकार आत्मा की जितनी अनन्त पर्याय हैं, उसकी एक पर्याय दूसरी पर्यायरूप न होना, उसका नाम पृथक्पना, व्यतिरेकपना, अनन्यपना प्रत्येक पर्याय का कहा जाता है। ओहो! यह तो अकेले सिद्धान्त हैं न? समझ में आया? यह वस्तु, पहली पर्याय से बात ली, देखो! आत्मा, परमाणु उसका व्यतिरेक विशेष, भिन्न-भिन्नता की पृथक्ता की विशेषता, वह उसकी पर्यायें हैं। कहो, रतिभाई! ऐसे शब्द याद भी रहे कुछ? यह मणियारे के बादाम और पिस्ता, उसमें कहाँ कुछ हाथ आवे? कहते हैं, प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक रजकण चार दूसरे भले रहे। उनके व्यतिरेक विशेष, अन्य-अन्य, भिन्न-भिन्न विशेष, उन्हें पर्यायें कहा जाता है।

उस पर्याय के दो प्रकार—प्रदेश को भी पर्याय कहा जाता है और ऊर्ध्वकाल की उस समय में ज्ञान, दर्शन आदि की पर्याय, उसे भी पर्याय कहा जाता है। परमाणु स्वतन्त्ररूप से प्रत्येक का अस्तित्व पर से भिन्न और अपने गुण पर्याय से अभिन्न। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु अपने गुण अन्वयी विशेष, यह बाद में कहेंगे। व्यतिरेक विशेष। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु व्यतिरेक-भिन्न-भिन्न विशेष, ऐसी पर्यायसहित जो द्रव्य हो। पर्याय बिना का द्रव्य हो नहीं सकता। कहो, समझ में आया? क्या है? यह लेंगे, लेंगे। आगे आयेगा। बाद में आयेगा, फिर स्पष्टीकरण आयेगा। यहाँ तो सामान्य बात है।

और अन्वयी विशेष, वे गुण हैं। देखो, अन्वय=एकरूपता; सदृश्यता; 'यह वही है' ऐसे ज्ञान के कारणभूत एकरूपता। (गुणों में सदैव सदृश्यता रहती होने से उनमें सदैव अन्वय है, इसलिए गुण द्रव्य के अन्वयी विशेष हैं। अन्वय=सदृशरूप से रहनेवाले विशेष। उसे अन्वयवाले भेद कहते हैं। वस्तु तो समझाना है शास्त्र भाषा से। एक आत्मा और एक-एक रजकण जितने द्रव्य हैं, उसमें उनके व्यतिरेक भिन्न-भिन्न अवस्था। विशेष अवस्थासहित द्रव्य है। और अन्वय विशिष्ट गुणसहित द्रव्य, पर सहित नहीं। पर

की पर्यायसहित नहीं परन्तु अपनी पर्याय और गुणसहित है। पर की पर्याय और गुणसहित नहीं। समझ में आया इसमें ?

जब तक आत्मा या रजकण ऋद्धि अपना व्यतिरेक विशेष भिन्न-भिन्न अवस्थाओं से सहित है। उसकी अवस्था को दूसरा कौन करे ? और उसकी अवस्था से दूसरे का अस्तित्व कैसे हो ? और अपने अन्वय विशेष से जब सहित है तो उस शक्ति को दूसरा कौन दे ? वे शक्तियाँ अपने पास अन्वय विशेषरूप शक्ति द्रव्य में कायम रहनेवाली है। उस शक्ति को दूसरा कौन दे ? और पर्याय दूसरे से कैसे हो ? कहो, समझ में आया इसमें ? इसलिए एक पर्याय से प्रलय को प्राप्त होनेवाली,.... प्रत्येक वस्तु अस्तिकाय ली है न इसलिए। एक अवस्था से प्रलय पाती हुई, नाश पाती हुई। अन्य पर्याय से उत्पन्न होनेवाली.... आत्मा और परमाणु (आदि) और अन्वयी गुण से ध्रुव रहनेवाली.... अन्वय अर्थात् सदृशरूप रहनेवाली शक्तियों से कायम शक्ति। सदृशरूप से शक्ति से ध्रुव रहती हुई, कायम टिकती रहती शक्ति एक ही वस्तु को व्यय-उत्पाद-ध्रौव्यलक्षण अस्तित्व घटित होता ही है।

एक ही आत्मा को, एक ही परमाणु को, एक ही पदार्थ को व्यय, देखो! अस्तित्व का लक्षण अथवा स्वरूप व्यय-उत्पाद-ध्रुव है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव सत् है न ? उत्पाद-व्यय-ध्रुव सत् है और सत् है, वह द्रव्य का लक्षण है। व्यय अर्थात् पूर्व की अवस्था का नाश, नयी अवस्था का उत्पाद, ध्रुवरूप से टिका रहना, यह लक्षण अस्तित्व में घटित होते ही हैं। प्रत्येक में अपना इस प्रकार से अस्तित्व घटित होता है। कहो, समझ में आया इसमें ? किसी के गुण-पर्याय के कारण किसी का द्रव्य नहीं है। अपने गुण-पर्याय के कारण अपना द्रव्य है। देवानुप्रिया ! तब क्या है ? उसके साथ क्या है अपवाद ? कुछ है या नहीं ? इसमें कुछ भूल गया है इसमें ? हाँ। ऐसा है। कहो, समझ में आया इसमें ?

भगवान तीर्थंकर परमात्मा ने जितने अनन्त जगत के पदार्थ देखे, उनमें एक-एक पदार्थ अपनी अन्वय अर्थात् कायम रहनेवाली शक्तियोंसहित है। और व्यतिरेक अर्थात् भिन्न-भिन्न अवस्थासहित वह अपनापन रखता है। पर के कारण से यह नहीं और इसके कारण से पर नहीं। आहाहा !

वीतरागमार्ग की एक-एक गाथा जगत के भिन्न पदार्थ का भेद करानेवाली है। भेदज्ञान, भेदज्ञान। एक रजकण की पर्याय उससे है, उसकी पर्याय पर से नहीं। एक आत्मा की पर्याय स्वयं से है, वह पर्याय पर से नहीं। पढ़ते नहीं, विचारते नहीं और यह ऐसे हो गया। समझ में आया ? और यदि गुणों तथा पर्यायों के साथ (वस्तु को) सर्वथा अन्यत्व हो.... देखो, प्रत्येक चीज़ का आत्मा एक-एक को और एक-एक रजकण को उसकी शक्तियों से और उसकी अवस्था और हालत से उसके साथ यदि सर्वथा अन्यपना है, सर्वथा नहीं, कथंचित् कहा जाता है। गुण-पर्याय के नाम, द्रव्य का नाम, इसकी अपेक्षा से कथंचित् कहा जाता है। सर्वथा अन्यत्व हो तब तो अन्य कोई विनाश को प्राप्त होगा,.... किसी की दशा कहीं विनाश पावे। अन्य कोई प्रादुर्भाव को (उत्पाद को) प्राप्त होगा और अन्य कोई ध्रुव रहेगा -इस प्रकार सब विप्लव प्राप्त हो जायेगा। अन्धाधुन्धी, उथल-पुथल घोटालों का विरोध। कहाँ आया है, भाई! अपने दूसरे प्रवचनसार १०१ गाथा। १०१ में आया है न ? कि द्रव्य ही यदि उत्पाद पावे, द्रव्य ही व्यय पावे और द्रव्य ही ध्रुव रहे तो घोटाला, विप्लव पावे। वहाँ ऐसा लिया है। १०१ गाथा प्रवचनसार। समझ में आया ? क्या कहा ?

वहाँ भगवान कुन्दकन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य ने ऐसा कहा। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु वह स्वयं उत्पाद-व्यय-ध्रुव उसके अंश के हैं, अंश के। अंशरूप से उपजे, अंशरूप से विलय और अंशरूप से ध्रुव। वस्तु स्वयं उपजे, वस्तु स्वयं नाश पावे और वस्तु स्वयं ध्रुव रहे तो अन्धाधुन्धी घोटाला हो जाये। वस्तु स्वयं अपनेरूप से रह नहीं सके। समझ में आया ? यह प्रवचनसार की १०१ गाथा में कहा।

यहाँ ऐसा कहा कि सर्वथा उसके गुण-पर्यायें अन्य हों। सर्वथा क्यों लिया ? कथंचित् नाम भेद से भेद है। द्रव्य एक है, गुण अनन्त हैं, पर्याय अनन्त है। संख्या भेद से भेद है, परन्तु उनमें प्रदेशभेद से भेद नहीं है। प्रदेशभेद अर्थात् ? एक आत्मा के असंख्य प्रदेश में वे सब गुण और पर्यायें एकरूप हैं। प्रदेश भिन्न, पर्याय के प्रदेश भिन्न और गुण के भिन्न और आत्मा के भिन्न, ऐसा नहीं है। परन्तु नामभेद, संख्याभेद से भेद है। समझ में आया ?

कहते हैं कि उस प्रत्येक वस्तु को अपने गुणों तथा पर्यायों के साथ (वस्तु

को) सर्वथा अन्यत्व हो तब तो अन्य कोई विनाश को प्राप्त होगा,.... अन्य विनाश पावे। उसमें ऐसा कहा। भाई! द्रव्य विनाश पावे। वह तो अन्य विशेष पावे और अन्य दशा उत्पन्न हो। और अन्य कोई ध्रुव रहेगा.... तीनों द्रव्य हो गये। इस प्रकार सब विप्लव पावे। घोटाला हो। इसलिए (पाँच अस्तिकायों को) अस्तित्व किस प्रकार है, तत्सम्बन्धी यह (उपर्युक्त) कथन सत्ययोग्य-न्याययुक्त हैं। अस्तित्व किस प्रकार से है। गुण-पर्यायसहित अस्तित्व है, ऐसा।

प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु का अस्तित्व, गुण और पर्याय से है। कुछ समझ में आता है? गुण और पर्याय। यह तो शास्त्र के शब्द बहुत बार सुने हों, समझे न हों। एक-एक वस्तु आत्मा, परमाणु एक-एक है न? प्रत्येक भिन्न-भिन्न, उसमें जो अनन्त गुण हैं, उन अनन्त गुणसहित ही वह होती है। वे अनन्त गुण और पर्याय जो है, वह उसका अस्तित्व है। उससे उसका अस्तित्व है। पर के कारण से अपना अस्तित्व नहीं। अपने कारण से गुण-पर्याय से अस्तित्व है। पर के कारण से नहीं। कहो, समझ में आया?

आत्मा का ध्रुवपना-टिकना, वह स्वयं के कारण से है। पोताने अर्थात् अपने। अपनी पर्याय का टिकना अपने कारण से है और पर्याय का होना, वह अपने कारण से है। पर के कारण से नहीं। ऐसे गुण-पर्याय के अस्तित्व किस प्रकार से है? कि इस प्रकार से उसका अस्तित्व है। अपनी शक्ति और अवस्था से उसका अस्तित्व है। वह द्रव्य का अपनी शक्ति और अवस्था से उसका अस्तित्व है। तत्सम्बन्धी यह (उपर्युक्त) कथन सत्य योग्य-न्याययुक्त हैं। 'साधवस्तित्वसंभवयवगर कथनम्' इतने शब्द प्रयोग किये हैं। झगड़ा चले, ऐसी बात है। उपादान। प्रत्येक द्रव्य का अपना अस्तित्वपना कैसे है? होनापना कैसे है? मौजूदगी कैसे है? आत्मा की मौजूदगी कैसे है? परमाणु की मौजूदगी कैसे है? कि उसके गुण-पर्याय के अस्तित्व से उसकी मौजूदगी है। कहो, समझ में आया?

इस रोटी के कारण से यह शरीर टिकता है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं... भाई! वह तो लिखते हैं न? उसे बैठा हो, वह भी भगवान आत्मा है न? उल्टा पड़ा, वह

भगवान है। उसकी अशुद्धता की भी बलिहारी है। कल लेख आया। देवानुप्रिया! इच्छा, आत्मा की होती है कि मुझे खाना है... देखो न, कितना उपवास का काम शरीर से आत्मा में कर देता है। और शरीर का काम आत्मा करता है। शरीर को प्रसन्न रखे। भूख लगी हो तो खिलावे, पिलावे, नहलावे, धुलावे, स्वच्छ रखे। हाँ, ऊपर वस्त्र करावे। उसे सर्दी न लगे। अरे! जैनदर्शन। जैन नहीं, वस्तुस्थिति। जैन कोई सम्प्रदाय नहीं, वह तो वस्तु की स्थिति है। वस्तु ही ऐसी है। कोई भी वस्तु ऐसा कहो कि है, तो है, तो ध्रुव अनादि से स्वयं से है। है तो उसकी अपनी अवस्था भी वर्तमान स्वयं से अनादि से है। वस्तु ही ऐसी हो, उसमें द्रव्य अर्थात् तो परमेश्वर ने देखा, वैसा कहा। कहीं परमेश्वर ने बनाया और फिर कहा, ऐसा नहीं है। शरीर को कहा, ऐसा है? जाना कि ऐसा है। वस्तु अनादि से केवली जानते आये, अनादि से कहते आये, अनादि से वस्तु अपने गुण-पर्याय से अस्तित्व धरती आती है।

मुमुक्षु : शास्त्र में तो ऐसा आवे न, इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह किसे? जड़ को या आत्मा को?

मुमुक्षु : आत्मा को ही न,...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वह तो उघाड़ के भाग को अपने आत्मा का कहा है। जड़ के भाग को जड़ का कहा है। इसे आत्मा का कहा नहीं। वह तो असद्भूतव्यवहारनय से उपचार से कथन है। आत्मा का नहीं। उस इन्द्रिय के एक-एक परमाणु अपने गुण-पर्याय से अस्तित्व रखता है, वैसे आत्मा अपने गुण-पर्याय से अस्तित्व अर्थात् मौजूदगी रखता है। पर के कारण से नहीं।

मुमुक्षु : दूसरे भव में...

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे भव में अर्थात् भी क्या? यह बोलने में-जानने में तीन थे, उनका जानने में लेकर लगाओ। कहो, समझ में आया इसमें?

बोलने में आवे कि इस जीव को असद्भूतव्यवहारनय से दस प्राण हैं, पाँच इन्द्रियाँ हैं, मन, वचन, बल और आयु जीव को है। परन्तु वह तो असद्भूतव्यवहारनय का कथन है। अर्थात् की उसमें नहीं परन्तु साथ में निमित्तरूप से है, ऐसा करके उसके

हैं, ऐसा कहा गया है। व्यवहारनय अर्थात् उसके नहीं, असद्भूत अर्थात् कि उसके नहीं। तब कहा क्यों? कि निमित्तपना साथ में है, उसका ज्ञान कराया है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : साथ में है, यह भी सीखना चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या सिखलावे? सीखने का था, वह तो अनादि से सीखा नहीं। मेरे यह प्राण है और इन्द्रियाँ मेरी हैं, यह तो सीखकर बैठा है। उसे क्या सीखना तुझे? वे तेरे नहीं हैं, ऐसा इसे सीखना है। चन्दुभाई! यह तो जड़ है। वह तो अनादि का है। अरे! यह तो वहाँ तक कहा कि एक समय के अंश को, ज्ञान का अंश है वह स्वयं माने, वह तो अनादि की बुद्धि है। पर की तो बात तो एक ओर रखो परन्तु अंश में स्वयं माने, वह तो अनादि का है।

त्रिकाल चैतन्य ध्रुव का एकपना बतलाना है, वह भली बात है। क्या कहा? पर से बन्ध है और सम्बन्ध है, यह कथा तो अनन्त बार सुनी है। हाँ, यह समयसार में नहीं कहा? श्रुत, परिचित, अनुभूत सर्व को काम भोग बन्ध की कथा। वह तो सुनी हुई है, परिचय में आयी है, अनुभव में आयी है, उसे क्या करना है हमारे, ऐसा कहते हैं। पर से भिन्न एकत्व की कथा कभी सुनी है? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? श्रुत परिचित अनुभूत सर्व को काम भोग बन्धन कथा, पर से एकत्व विभक्त कभी सुना नहीं। समझ में आया? यह भी सुना नहीं। अब इसे क्या सुनाना चाहिए। पर से भिन्न एकत्व की उपलब्धि केवल सुलभ ना। ऐसा है। समझ में आया?

श्रुत परिचित अनुभूत सर्व को काम भोग बन्धन की कथा। इच्छा और इच्छा का करना और बन्ध का होना, बन्ध की बात, वह बात तो अनादि से सुनी है। परिचय में आयी है। वह बन्ध पराश्रय से मान्यता करके आ गयी है। परन्तु पर से भिन्न एकत्व की बात, पर से अकेला भिन्न, पर से अकेला भिन्न और पर से एकदम भिन्न 'णवरि एयत्तसुवलंभो' पर से विभक्त, यह बात उसने सुनी नहीं। कहो, समझ में आया? यह ज्ञान तो अनादि का करना आता है, उसे क्या सुनाना था? आहाहा!

भगवान आत्मा अनादि से सुनता आता है, वही बात है। वहाँ तो ऐसा कहते हैं

एकेन्द्रिय को भी वह है न, सुन न भाई! एकेन्द्रिय के जीव को उस बात का वेदन वर्तता है। ऊपरवाला है न, वह है और वह वेदन उसे भी वर्तता है। नग्न जैन दिगम्बर साधु होकर उसे पर के एकत्वपने का वेदन वर्तता है। वर्तता है, वह कर रहा है, करता है, समझता है, मानता है, पहिचानता है और उसमें स्थिर है। यह बात तो अनादि की है। हमें उसे क्या करना? चन्दुभाई! ठीक, परन्तु तुम लागत पड़ोसी हो। कहो, समझ में आया इसमें?

भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा कहते हैं, बापू! यह पर के सम्बन्धवाला और रागवाला, भोक्ता और कर्ता, यह बात तो तूने अनन्त बार की है, अब मुझे वह नहीं की ऐसा कुछ बतलाना है। नहीं की, ऐसा कुछ बतलाना है। वह यह है। कहो, समझ में आया इसमें? अरे! ऐसी वस्तु जहाँ स्वतन्त्र है, उसे कहाँ भान है? पर के कारण यहाँ और यहाँ के कारण पर, यह वस्तु स्वभाव में तीन काल में नहीं है।

प्रत्येक वस्तु अपने गुण-पर्याय के स्वभाव के अस्तित्व से है और दूसरे उसके पदार्थ दूसरे उनके गुण-पर्याय के अस्तित्व से है। ऐसा भेदज्ञान कराने के लिये बात की है। सत्य है और न्याययुक्त है, कहा? क्या कहा? वह कहना न्याययुक्त सच्चा नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु अपने गुण, शक्ति, अन्वय, व्यतिरेक, अन्वय विशेष। द्रव्य सामान्य हुआ तो गुण अन्वय सदृश रहनेवाले विशेष भाग और व्यतिरेक पर्याय भिन्न-भिन्न होती अवस्थायें, उनसहित उसका अस्तित्व है। ऐसा इसने अनन्त काल में निर्णय नहीं किया। निर्णय करे तो पर से लक्ष्य छूटकर अपने द्रव्य पर लक्ष्य जाये। कहो, समझ में आया?

अब, (उन्हें) कायत्व किस प्रकार है, उसका उपदेश किया जाता है :- जीव, पुद्गल,.... यह सब परमाणु धर्म, अधर्म, और आकाश यह पदार्थ अवयवी हैं। अब कायपना सिद्ध करते हैं, कायपना। वह तो ऐसा सिद्ध किया, उसके गुण और पर्याय से उसका अस्तित्व है, ऐसा सिद्ध किया। अब कहते हैं, यह जो पाँच पदार्थ है, उसका अवयवी है, ये पाँच अवयवी है। जीव अवयवी है। जीव को अवयव है, इसलिए अवयवी है। गजब बात, भाई! नीचे है, देखो! अवयववाला, वह अवयवी; सावयव,

वह अवयवी; अंशवाला, वह अवयवी; अंशी, वह अवयवी। जिसे अवयव (एक से अधिक प्रदेश) हों, ऐसा वह अवयवी। यह सब अवयवी की बात है। ले! यह अवयवी अर्थात् अवयववाला आत्मा। अवयववाला इसलिए आत्मा अवयवी। सावयव आत्मा, इसलिए अवयवी, अंशवाला आत्मा, इसलिए अवयवी, अंशी, इसलिए अवयवी। जिसके अवयव—एक से अधिक अंश हो, इसलिए आत्मा अवयवी। कहो, समझ में आया ?

यह और शरीर अवयवी और अँगुली और यह अवयव। यह तो सुना है कहे। ऐई! स्थूल बात है। वे तो भिन्न-भिन्न परमाणु हैं, उन्हें इकट्ठा होकर स्कन्ध गिना, इसलिए अवयवी और उसके परमाणु, वे अवयव। समझ में आया ? लोगों को इस मूल बात-मूल की बात का वाँचन नहीं, श्रवण नहीं। और अकेले प्रवृत्ति के क्रियाकाण्ड में लग गये। मूल बात का सम्यक्ज्ञान का जो वचन चाहिए, जिसका स्थूल माप अमाप ज्ञान का, वह ज्ञान का अपना अस्तित्व स्वीकार करना और पर से भिन्न जिसकी कीमत अपार, ऐसे ज्ञान की कीमत की नहीं। कीमत उसकी हो गयी, यह वाणी छोड़ी और यह त्याग किया और स्त्री छोड़ी, और पुत्र छोड़े और वस्त्र छोड़े और यह हुआ, इसकी कीमत हो गयी। जिसकी कोई कीमत नहीं, उसकी कीमत हो गयी। समझ में आया ?

यह छोड़ कौन सकता है ? वे तो छूटे पड़े ही हैं। जरा राग मन्द किया हो कोई, कि यह नहीं। तो उस मन्द राग से वस्तु अभिप्राय में मेरा अस्तित्व भिन्न है, उसे छोड़-ग्रहण नहीं कर सकता, ऐसा जहाँ अभिप्राय पड़ा है कि छोड़-ग्रहण कर सकता हूँ, उस अभिप्राय में अनन्त कषाय पड़ी है। यह राग मन्द हुआ, वह कहाँ तुड़ाया है वहाँ ? समझ में आया ?

कोई परिणाम में राग जरा मन्द किया हो कि यह वस्तु यह नहीं, यह नहीं, ऐसा करके। परन्तु अभिप्राय तो ऐसा है कि यह मैंने छोड़ा है, परन्तु पर का अस्तित्व ग्रहण कब किया है कि उसे छोड़ा ? अर्थात् पर को ग्रहण-त्याग का जो अभिप्राय, वही अनन्त कषाय है। कषाय मन्द कहाँ पड़ी है ? और वही बड़ा अशुभभाव है। शुभभाव होता है, शुभभाव होता है। ऐ देवानुप्रिया! तुम्हारा वापस याद आया। नडियाद से जाये तो शुभभाव तो हो, छोड़ूँ तो हो, अमुक हो। कहो, समझ में आया इसमें ?

तो याद आवे तो ज्ञान का तो काम है या नहीं ? कहते हैं कि शुभभाव जरा कुछ हुआ हो परन्तु मान्यता में ऐसा है-कषाय के अभिप्राय में कि यह मैंने छोड़ा, इसलिए त्यागी हुआ। यह छूटा, इसलिए त्यागी हुआ, इस मान्यता में तीव्र कषाय का अभिप्राय है। क्योंकि उसका अस्तित्व तुझसे छोड़ा नहीं जाता और तुझसे लिया नहीं जाता, तथापि उसके अस्तित्व को न देखकर, देखो! आज अष्टमी थी तो यह नहीं खाया। देखो, रोटियाँ छोड़ दीं। दाल-पानी छोड़ दिया। कहते हैं कि मिथ्यात्वरूपी तीव्र अनन्त कषाय का पोषण हुआ। कि जो अस्तित्व उसके कारण से दूर होता था, और उसके कारण यहाँ आता था, उसे मैंने राग को मन्द किया, इसलिए मैंने उसे दूर किया और उसे मैंने लिया नहीं, ऐसा जो एक संयोगी द्रव्य का स्वामीपना अर्थात् तीन काल के जड़ और परपदार्थ के स्वामीपने का अभिप्रायरूपी कषाय, उसका तो वहाँ पोषण हुआ। ऐ विशालजी! यह बात ऐसी है। आहाहा!

वह किस कारण से? कि जिसका अस्तित्व भिन्न है, उसके अस्तित्व में तू अधिकारी हो कि इसको मैंने छोड़ा और इसको मैंने रखा और इतना त्याग किया और इतना ग्रहण किया, वह तो परद्रव्य का स्वामीपना तीन काल में हो नहीं सकता, उसका स्वामीपना तूने माना। अब तुझे किस काँटे से राग मन्द तोलना है वहाँ? अभिप्राय में तो इतना कषाय का, ग्रहण-त्याग का महा तीव्र कषाय पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? ऐ, रतिभाई! हैं? चलता ही है न? उसमें वापस तुम सब घुस जाते हो। समझे बिना की खबर नहीं मिलती। वह यहाँ पूछा जाये या नहीं? ऐई! खबर नहीं होती। चीज क्या है? मैं कहाँ हूँ कितने में? वे दूसरे कहाँ हैं कितने में? जितने में वे हैं, वहाँ मैं नहीं, जितने में मैं हूँ, वहाँ वे नहीं। इसलिए मुझे पर का लेने-छोड़ने का स्वामीपना मुझमें है ही नहीं।

मैं तो मेरे गुण-पर्याय से सहित मौजूदगीवाला उसमें ही मेरा अस्तित्व और स्वामीपना है। पर मैं स्वामीपना नहीं। तथापि उसे एक अनन्त के स्वामीपने वर्ते, उसे अनन्त कषायरूपी मिथ्यात्वभाव का पोषण वर्तता है। मनहरभाई! गजब बातें परन्तु यह। ऐसे कठिन पहाड़े! इसका माप करना आवे नहीं। इसे राग मन्द करना है। हमको

शुभभाव हुआ है। समझ में आया ? वह यहाँ कहते हैं। लो! वे पाँच पदार्थ अपने में अवयवी हैं। अब उसे पर्याय और प्रदेश दो को अवयव ठहराकर अवयवी कहना है। कहो, समझ में आया ?

प्रदेश नाम के उनके जो अवयव हैं, किसके ? इस जीव के असंख्य प्रदेश। स्कन्ध के दो से अनन्त प्रदेश पुद्गल के, हों ! धर्मास्ति के असंख्य प्रदेश द्रव्य, अधर्मास्ति के असंख्य, आकाश के अनन्त। **जो अवयव हैं, वे भी परस्पर व्यतिरेकवाले होने से....** देखो, यहाँ उसे पर्याय कहा न ? अब तुम्हारा प्रश्न आया, सेठी ! **वे भी परस्पर व्यतिरेकवाले होने से पर्यायें कहलाती हैं।** लो ! पर्याय का लक्षण परस्पर व्यतिरेक है। देखो, दो है। यह लक्षण प्रदेशों में भी व्याप्त होता है। क्योंकि एक प्रदेश दूसरे प्रदेशरूप नहीं होने से प्रदेशों में परस्पर व्यतिरेक अर्थात् भिन्नता है, इसलिए प्रदेश भी पर्यायें कहलाते हैं।

गुण को अवयव कहा जाता है। पर्याय को अवयव कहा जाता है। परन्तु गुण अन्वय विशेष है और पर्याय व्यतिरेक भिन्न-भिन्न विशेष है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? **वे भी परस्पर व्यतिरेकवाले होने से....** आत्मा के असंख्य प्रदेश, धर्मास्ति के असंख्य प्रदेश, और आकाश के अनन्त, वह एक प्रदेश दूसरेरूप नहीं और दूसरा तीसरे रूप नहीं। समझ में आया ? वे भिन्न-भिन्न प्रदेश एक-दूसरे से भिन्न-भिन्न है, इसलिए उस प्रदेश को भी पर्याय कहा जाता है। इस आकाश को अनन्त प्रदेश या अनन्त द्रव्य-पर्याय है। धर्मास्ति को असंख्य प्रदेश या असंख्य द्रव्य-पर्याय है। जीव को असंख्य प्रदेश या असंख्य द्रव्य-पर्याय है। समझ में आया ?

कहो, अब यहाँ के सुननेवाले को जरा नया लगे तो उन नयों को सुनाना हो तो कैसा लगे ? देखो न ! पाँच के वे पदार्थ पाँचों अवयवी हैं। अर्थात् बहुत अंशवाले हैं। बहुत अवयववाले पाँच हैं। इसलिए प्रदेश नामक उनके जो अवयव, वे भी परस्पर भिन्न-भिन्न व्यतिरेक अर्थात् भिन्न, पृथक्। एक में दूसरा नहीं, दूसरे में तीसरा नहीं। **होने से पर्यायें कहलाती हैं।** जिनके साथ पाँच पदार्थों को अनन्यपना होने से कायत्वसिद्धि घटित होती है। देखो ! यहाँ असंख्य प्रदेश के साथ या अनन्त प्रदेश के साथ उसे अनन्यपना है, अन्यपना नहीं। आकाश को अनन्त प्रदेश के साथ अनन्यपना है, अन्यपना

नहीं। अनन्यपना है, अपनापना है, इसलिए अनन्त प्रदेशरूप से उसे कायत्व कहा जाता है। इसी प्रकार जीव के असंख्य प्रदेश हैं, वे प्रदेश अनन्यपना स्वयं से स्वयं में एकपना है, इसलिए उसे कायत्वसिद्धि घटित होती है। यदि भिन्न-भिन्न प्रदेश हों, तब तो कायत्वसिद्धि नहीं होती। एक जीव के असंख्य प्रदेश आत्मा से भिन्न-भिन्न हो तो उस आत्मा को अवयवीपना-कायत्वपना सिद्ध न हो। परन्तु उस असंख्यप्रदेशी आत्मा को अवयवी सहितपना है। उसे कायत्व सहितपना है। असंख्यपना सहितपना है। इसलिए उसे कायपना कहा जाता है। कहो, यह कभी अकेले वाँचते हो या नहीं?

पाँच पदार्थों को अनन्यपना होने से.... देखो! क्या कहते हैं? उनके साथ.... किसके? उन प्रदेशों के साथ। उन प्रदेशों के साथ अनन्यपना होने से उनके साथ कायत्वसिद्धि घटित होती है। उस-उस द्रव्य को कायपना-समूहपना घटित होता है। ओहो! अकेला न्याय का और सत्य की सिद्धि का विषय है। **परमाणु (व्यक्ति-अपेक्षा से) निरवयव होने पर भी....** एक रजकण व्यक्ति अर्थात् पृथक्पन की अपेक्षा से निरवयव, उसे अवयव है नहीं। अवयव बिना का, अंश बिना का, निरव—एक अधिक प्रदेश बिना का एक परमाणु। होने पर भी उनको सावयवपने की शक्ति का सद्भाव होने से.... उस एक परमाणु को भी सावयवपने की शक्ति है। दोपने, तीनपने, चार परमाणुपने, स्कन्ध होने की शक्ति है। उस स्कन्ध में होता है, तो भी अपनी शक्ति के कारण से होता है। समझ में आया?

भले यहाँ स्थूलरूप से होकर यह स्कन्ध हुआ है। उसमें भी परमाणु स्वयं स्थूलरूप से हुआ है। परमाणु सूक्ष्मरूप से रहा है, ऐसा नहीं। उसमें परमाणु अपने कारण से स्थूलरूप से हुआ है, वह स्थूलपने की शक्ति उसमें थी, व्यक्तिरूप से नहीं थी। शक्ति थी। यहाँ स्थूलरूप से होकर दो, तीन, चार होकर कायपना कहा जाता है। अनन्त के साथ वे अनन्त परमाणु हैं। अनन्त परमाणु स्थूलरूप से परिणमित हुए हैं। उसमें सूक्ष्मरूप से नहीं रहा है। जो अकेला परमाणु रहे, ऐसा उसमें नहीं रहा। वह इसमें नहीं। बारीक-सूक्ष्म हों वे। यह क्या है? इसमें कहाँ है? वह तो स्थूल है। सूक्ष्म तो जो नजर में न चढ़े कि यह सूक्ष्म है, वैसे यह परमाणु सूक्ष्मरूप है और सब स्कन्ध

भी सूक्ष्मरूप है। यह पूरा स्कन्ध स्थूलरूप हो गया है। स्थूल अर्थात् एक नहीं। एक-एक परमाणु में कोमल और भारीपन की पर्याय उसमें परिणमित परमाणु है। ऐसे अनन्त परमाणु का पूरा स्कन्ध अवयवी, उसे एक परमाणु को अवयव गिनने से सबको अवयवी कहा जाता है। इसलिए परमाणु को शक्ति अपेक्षा से अवयव कहा जाता है। गजब भाई यह ज्ञान! कहो, समझ में आया?

परमाणु (व्यक्ति-अपेक्षा से) निरवयव होने पर भी उनको सावयवपने की शक्ति का सद्भाव होने से कायत्वसिद्धि.... परमाणु को निरपवाद है। क्या कहा? उसे अपवाद बिना की कायत्वसिद्धि है। देखा? परमाणु अकेला है न? निरपवाद्रूप से उसकी स्कन्ध होने की शक्ति है। निरपवाद, हों! नीचे।

निरपवाद=अपवादादरहित। (पाँच अस्तिकायों को कायपना होने में एक भी अपवाद नहीं है, क्योंकि (उपचार से) परमाणु को भी शक्ति-अपेक्षा से अवयव-प्रदेश है)। ऐसा कहते हैं, देखो! उसे कायपना नहीं कहा जा सकता, ऐसा नहीं है। उपचार से भी पाँच अस्तिकाय में जैसे दूसरे में है अणु, वैसे पुद्गलस्कन्ध में परमाणु की अपेक्षा से, परमाणु शक्ति की अपेक्षा से परमाणु को भी अवयवी कहा जाता है।

वाँचन हो और समझण हो, उसे यह जरा दो-दो घण्टे, घण्टे-घण्टे स्वाध्याय करना चाहिए। कोई इकट्ठे होकर वाँचन करना चाहिए। ऐसा है। कोई विशेष बुद्धिवाले हों, उनके निकट वाँचना चाहिए। इसका स्वाध्याय प्रतिदिन करना चाहिए। बहियाँ प्रतिदिन जाँचता है या नहीं? हैं? प्रतिदिन बहियाँ जाँचता है। कितना आया, कितना गया, कितना... अब यह बहियाँ (शास्त्र) खोजता है कभी? कहो, मोहनभाई! जो देखने का है, उसे देखता नहीं और नहीं देखने का मुफ्त का, वहाँ हैरान होता है। यह कहीं रखने से नहीं रहते और टालने से नहीं टलते। उसमें मुफ्त का विकल्प करे, उसका ऐसा हुआ और उसका ऐसा हुआ। यह देख न! आहाहा!

एक-एक आत्मा में धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश में जैसे कायपना सिद्ध किया, वैसे पाँच अस्तिकाय में भी परमाणु में भी अपवादादरहित हम कायपना सिद्ध करते हैं। नहीं कि उसमें अपवाद आता है कि परमाणु में, ऐसा कहते हैं। वहाँ ऐसी आशंका

करना योग्य नहीं है.... अब कहते हैं। क्या कहते हैं? देखो, अब अरूपी में उतारा। वहाँ ऐसी आशंका करना योग्य नहीं है कि पुद्गल के अतिरिक्त अन्य पदार्थ.... अमूर्तपने के कारण पुद्गल के अतिरिक्त पदार्थ चार हैं न? चार गिनना है न पाँच में? अमूर्तपना चार है। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और जीव। उस अमूर्तपने के कारण अविभाज्य होने से.... भाई! उसमें भाग नहीं हो सकते। अरूपी के भाग चार। रूपी को तो यह भाग करो तुम, यह बहुत स्कन्ध यह... यह... यह... यह। अरूपी चीज़ आकाश, अरूपी चीज़ आत्मा उसके और भाग? आहाहा! समझ में आया?

इन जैन परमेश्वर के अतिरिक्त यह बात तीन काल-तीन लोक में हो नहीं सकती। वे (तो ऐसा कहे) आत्मा सर्व व्यापक है। अनन्त गुण का महा, महा, महन्त, महन्त महान, लो! असंख्य हैं प्रदेश कितने में हैं, किस प्रकार से शक्ति है, उसके अंश पड़ते हैं या नहीं? अंश पड़ते हैं या नहीं? उसकी अज्ञानी को (खबर नहीं)। वीतराग सर्वज्ञ मार्ग के अतिरिक्त यह बात कहीं नहीं हो सकती। कहो, समझ में आया? अरूपी में भाग। एक तो वस्तु अमूर्त। अमूर्त अर्थात् वर्ण, गन्ध, स्पर्शरहित और अविभाज्य। जिसका विभाग नहीं किया जा सकता। होने से उनके सावयवपने की कल्पना न्याय विरुद्ध (अनुचित) है। आशंका है, हों! शंका नहीं। शिष्य की आशंका है। प्रभु! परन्तु यह तुम क्या कहते हो? आपकी बात खोटी है, ऐसा हमें नहीं लगता। परन्तु हमें समझ में नहीं आती। यह रजकणों के पिण्ड के तो भाग पड़ते हैं, मूर्त के। परन्तु यह अरूपी के भाग तुम किस प्रकार कहते हो? यह तुम क्या कहते हो? उनके सावयवपने की कल्पना न्याय विरुद्ध (अनुचित) है। बहुत वार्ता हुई बहुत वर्ष से यह आकाश के प्रदेश तो कहनेमात्र, प्रदेश-ब्रदेश कुछ है नहीं। अरे भाई! प्रदेश पृथक् नहीं पड़ता परन्तु प्रदेश नहीं? यह खोटी बात है।

ऐसी शिष्य की आशंका है। क्या होगी आशंका? कि यह पुद्गल जो है मिट्टी-मूर्त, उसके तो भाग पड़ते हैं, तो दिखते हैं। इसलिए उसके अवयव कहो तो वह मुझे दिखते हैं। परन्तु अरूपी वस्तु वह कहीं टुकड़े अलग पड़े? उसके भाग तुम किस प्रकार मानते हो? भिन्न पड़े नहीं और उसके भाग किस प्रकार मानते हो? यह हमको समझ में नहीं आता, कहते हैं। तथापि आचार्य कहते हैं, ऐसी आशंका भी करना योग्य

नहीं है। ऐसी आशंका करना उचित नहीं है। पुद्गल के अतिरिक्त पदार्थ अमूर्तपने के कारण अविभाज्य होने से उनके सावयवपने की कल्पना न्यायविरुद्ध (अनुचित) है। ऐसा यदि तू कहे तो वह खोटी बात है। क्यों? सुन!

आकाश अविभाज्य होने पर भी.... यह आकाश है न सर्वव्यापक। यह दिखता है, वह नहीं, हों! यहाँ तो सर्वत्र अरूपी है। आकाश अविभाग्य, कोई भाग नहीं पड़ते। उसका टुकड़ा पृथक् नहीं पड़ता। कि यह प्रदेश यहाँ गया और यह प्रदेश यहाँ रह गया, आकाश द्रव्य यहाँ रह गया और अंश गया, यहाँ ऐसा कुछ नहीं है। आकाश सर्वव्यापक अनन्त प्रदेश अविभाग्य जिसके भाग नहीं होते। देखो, न्याय इसमें, घटाकाश है। लो! यह लकड़ी है न? देखो न, यह लकड़ी, लकड़ी में जितना आकाश रोका गया है, ऐसा कहा जाता है न कि इस लकड़ी प्रमाण का आकाश है। वैसे घट जितने में रहे, उतना घटाकाश। और यह अघटाकाश। अर्थात् कि यह पट हो तो पटाकाश, घटाकाश नहीं। जितने में घटे आकाश हो तो उतने में पट नहीं रहता। पट जितने में रोका हो उतने में घट ने नहीं रोका। दोनों भिन्न-भिन्न हैं। समझ में आया?

‘यह घटाकाश है, यह अघटाकाश (पटाकाश) है’.... ऐसी विभागकल्पना देखने में आती है ही। यह कपड़ा यहाँ है, यह घट यहाँ है। ऐसा नहीं कहा जाता घट बढ़ता है और कपड़ा भी बढ़ता है, ऐसा नहीं। आकाश... आकाश। यह तो पूरा न्याय का विषय है। ओहोहो! प्रवचनसार में अँगुली का दृष्टान्त दिया है न? दो मुनि बैठे हैं तो एक मुनि जहाँ बैठे हैं, वहाँ दूसरे मुनि हैं? यह एक मुनि का भाग है, वह दूसरे मुनि का भाग है आकाश का? भिन्न-भिन्न आकाश है। इस प्रकार एक-एक घटाकाश, एक पटाकाश अर्थात् लकड़ी आकाश का इतने का भाग भिन्न-भिन्न प्रदेश भिन्न नहीं होने पर भी पदार्थ भिन्न-भिन्न के आकाश को जो रोकता है, उतने भाग भिन्न समझे जा सकते हैं।

ऐसी अविभागकल्पना दृष्टिगोचर होती ही है। ऐसी विभाग की कल्पना देखने में आती ही है। लो! देखो! यह दो-दो कहते हैं न। भिन्न-भिन्न है या नहीं? सेठी! आकाश तो ऐसे सर्वव्यापक है परन्तु तुमने जो आकाश का भाग रचा, इन भाई ने रचा है? उसे रचा, वह तुमने रचा है? भिन्न-भिन्न है। भिन्न-भिन्न भाग भिन्न-भिन्न भाग यह

भाग इसने रचा, यह भाग इसने रचा और यह भाग इतने में रहा है। भाग भिन्न-भिन्न दिखते हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : मकान में भी लिखाते हैं ' आकाश-पाताल... '

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखाते हैं न? ममता के लिये। हाँ, लिखाते हैं। ऊपर किसी से मंजिल न हो। नीचे किसी से भोंयरा न हो। ऐ, सेठ! ये सेठ तो बहुत बड़ा है। लिखाते हैं न मकान को? कि पूर्व में यह, पश्चिम में यह, अमुक में यह। ऊपर-नीचे मेरी हद है। ऊपर जाने में मेरा यह मकान है, वहाँ कोई मंजिल-माला नहीं है। माघ-मेडी समझे? कोई दस माला बनाकर ऐसे ऊपर से हाल-चाल का रखे या नहीं, यह मेरी जगह है। मंजिल रखते हैं। नीचे मकान बनाया हो तो वह दो मंजिल करावे। फिर वह कोई दस मंजिल करे और दस दो ओर। ऊपर ऐसे दूर से मार्ग करे। नहीं, इस आकाश में हमारा भाग है। जेठालालजी! ऐसा होता है या नहीं? नीचे। भोंयरा दूर मकान है वहाँ से हमारे भोंयरा कर डालेंगे। नहीं, हमारे नीचे भोंयरा नहीं होगा। कहते हैं न? भोंयरा, भोंयरा। हमारी जमीन के नीचे भोंयरा नहीं। नीचे हमारी हद है। ओहोहो!

मुमुक्षु : हद कायम हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हैं? हद कायम हो जाती है। उसकी हद दूसरी। दूसरे की हद दूसरी। आकाश के भाग पड़ गये या नहीं? आकाश के भाग हैं न।

मुमुक्षु : पदार्थ है, वहाँ ही भाग पड़ेंगे, पदार्थ नहीं वहाँ भाग नहीं पड़ेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भाग तो सबमें है। यहाँ तो प्रदेश में सिद्ध करना है। अरूप में भी पदार्थ नहीं परन्तु भाग तो है।

यहाँ तो समझाने के लिये कि जिस भाग में यह रुका है, यह रुका, उस भाग में हाथ नहीं। हाथ है तो नहीं। इसलिए आकाश में अविभाग एकरूप होने पर भी भाग दिखते हैं। अर्थात् उसके अंश भिन्न दिखते हैं। इतनी बात सिद्ध की। वे अंश तो अरूप में भी हैं। दृष्टान्त से सिद्ध करके भिन्न-भिन्न अवयवों को सिद्ध करते हैं। समझ में आया ?

यह सिद्ध करना है। बस इतनी बात है। यह देखने में आता ही है, ऐसा कहा न? यह घटाकाश है, यह अघटाकाश है। यह घटाकाश नहीं, ऐसा ले न? पश्चात् सब दूसरा। ऐसी अविभागकल्पना दृष्टिगोचर होती ही है। यदि वहाँ (कथंचित्) विभाग की कल्पना न की जाये.... कथंचित् विभाग, हों! ऐसे सलंगरूप से नहीं। तथापि प्रदेशरूप से कथंचित् विभाग न माने जायें तो जो घटाकाश है, वही सर्वथा अघटाकाश होगा। जिस जगह घड़ा रखा है, उसी जगह पट रहे, ऐसा हो जाये। ऐसा है नहीं। दोनों आकाश भिन्न-भिन्न हैं। हाँ, कथंचित् अर्थात् अवयव होने पर भी इस प्रकार से भाग पड़ते हैं। वस्तु सलंग होने पर भी प्रदेश के भाग का यह भाग पड़ता है। सर्वथा भिन्न नहीं। कहो, समझ में आया? जो घटाकाश है, वह सर्वथा अघटाकाश हो। और यह तो इष्ट (मान्य) नहीं है। इसलिए कालाणुओं के अतिरिक्त.... एक कालाणु के अतिरिक्त। कालाणु एक-एक भिन्न-भिन्न। अन्य सर्व में कायत्व नाम का सावयवपना निश्चित करना चाहिए। देखो! हाँ, अवसयम ऐसा है न? 'कायत्वारव्यं सावयवत्वमवसेयम्' सिद्ध करना। कहो, समझ में आया या नहीं?

ओहोहो! वस्तु कितनी बड़ी चौड़ी कितनी, तथापि उसके भाग के अंश रजकण जितनी जगह में रहे, उतने में प्रदेश, ऐसे असंख्य प्रदेशी जीव, असंख्य प्रदेशी धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, अनन्त प्रदेशी है। पुद्गल दो से लेकर अनन्त प्रदेश का स्कन्ध है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न अपने कारण से अवयवी और अवयव स्वयं के कारण से है। कहो, समझ में आया इसमें?

उसके अवयव पर के कारण से नहीं हैं। देखो! आचार्य कहते हैं कि निर्णय करना। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, निर्णय कर। ओहोहो! वह यह निर्णय करने बैठें या हमारे संसार के स्त्री, पुत्र लगे हैं, उन्हें पोषण करने में रुकें? हैं! जयन्तीभाई! परन्तु वहाँ तो समय अमुक होता है, वहाँ कहाँ कर सकता है मुफ्त का। यह तो बराबर जैसा है, वैसा निर्णय कर सके, ऐसा सत् है। अपने उसका कर सकने के लिये ऐसा करूँ, और वैसा करूँ और अमुक करूँ। धूल भी नहीं करता। व्यर्थ का आत्मा कचरा उठाता है। कल्पना में, हों! कल्पना में। मोहनभाई! उकरडा समझते हो? क्या? ताजा कचरा। कचरा होता है न कचरा? कचरे के ढेर। सिर मारे न? बैल होते हैं न बैल? बैल बहुत

ही जोरदार। उसमें सिर डालते हैं। यहाँ सिर डाल तो धूल और राणा और गोबर सिर पर पड़े। बड़े व्यक्ति बनकर व्यर्थ का कचरा उठाता है। झवेरचन्दभाई! कहो, समझ में आया इसमें?

इसलिए प्रत्येक को पाँच अस्तिकाय को कायप्रमाण यह सावयवपना निर्णय करना। जैसा है, उसके ज्ञान में इस बात को लेना। अब तीन लोक सम्पन्न शब्द कहा है न चौथा? 'णिप्पणं जेहिं तेल्लोककं!' इन तीन पद के अर्थ हो गये।

जेसि अत्थि सहाओ गुणेहिं सह, पज्जणहिं विविहेहिं! ते होति अत्थिकाय।

उसे अस्तिकाय कहते हैं। अब 'णिप्पणं जेहिं तेल्लोककं!' यह तीन लोक अनादि से ऐसे के ऐसे रहे हुए हैं। वह इस पंचास्तिकाय से रचित-बने हुए हैं। किसी ने उन्हें बनाया नहीं। किसी ईश्वर (ने) बनाया हुआ नहीं। यह पंचास्तिकाय तीन लोक में ऐसे के ऐसे रहे हुए हैं। उसके भाग पाड़कर कायपना सिद्ध करेंगे।

उनकी जो तीन लोकरूप निष्पन्नता (-रचना) कही। रचाना अर्थात्? नया नहीं, ऐसा का ऐसा है, ऐसा। वह भी उनके अस्तिकायपना (-अस्तित्वपना और कायपना) सिद्ध करने के साधनरूप से कहा है। देखो! समझ में आया? तीन लोक के भाग पाड़कर कहा, वह भी उनका अस्तित्व का कायत्व सिद्ध करने के साधनरूप से कहा है। तीन भाग करेंगे, लो!

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ३, बुधवार, १८-१२-१९६३, गाथा-५-६, प्रवचन-१२

पंचास्तिकाय की गाथा चलती है। उसमें अस्तिकाय अर्थात् अस्तपना और कायपना सिद्ध करते हैं। पाँच पदार्थ में काल तो अस्ति है परन्तु उसमें कायपना अर्थात् बहुप्रदेशपना नहीं है। अब यहाँ यह बात पहले तो कायत्व सिद्ध कर गये हैं। प्रत्येक आत्मा या धर्मास्ति आदि के प्रत्येक प्रदेश भिन्न-भिन्न है। व्यतिरेक अर्थात् भिन्न-भिन्न है। इससे भी उसका कायपना, वह असंख्य प्रदेश आदि, अनन्त प्रदेशसहितरूप से होने से जीव को और आकाश को दोनों को कायपना सिद्ध होता है।

यहाँ दूसरे प्रकार से सिद्ध करते हैं। उनकी जो तीन लोकरूप निष्पन्नता (-रचना).... पाँच पदार्थ तीन लोक में व्याप्त हैं। वह भी उनका अस्तिकायपना.... अर्थात् अस्तपना और कायपना सिद्ध करने के साधनरूप से कही है। जरा सूक्ष्म बात है न यह तो? अवयवरूप से तो सिद्ध कर गये। क्षेत्र के भागरूप से कायपने की सिद्धि करते हैं। सेठी! क्या कहा, परन्तु इसे इसमें याद रहता है? पाँच पदार्थ है या नहीं? काल के अतिरिक्त पाँच पदार्थ। अस्तिकाय। उनका कायपना प्रत्येक पदार्थ में एक प्रदेश का दूसरे प्रदेश में पृथक्पना है। एक का दूसरा, दूसरे में ऐसा अनेक का ऐसे पृथक्पनेवाले असंख्य प्रदेश या अनन्त प्रदेश, उससे उसका कायपना अर्थात् बहुप्रदेशों के समूह में सहितपना उस-उस द्रव्य को लागू पड़ता है। यह तो दूसरे प्रकार से आये। लोक के तीन भाग करके कायपना सिद्ध करते हैं। समझ में आया इसमें?

ऊर्ध्व-अधो-मध्य तीन लोक के.... ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक, इन तीन लोक के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाले भाव.... नयी अवस्था उपजे, पुरानी व्यय हो और ध्रुवरूप से जाति बनी रहे, ऐसे भाव कि जो तीन लोक के विशेषस्वरूप हैं,.... तीन लोक के विशेषस्वरूप है। तीन लोक सामान्य और यह उत्पाद-व्यय-ध्रुववाले भाव कि जो तीन लोक के विशेषस्वरूप है। वे भवते हुए.... पाँच पदार्थ—आत्मा, पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, यह (परिणमत होते हुए) अपने मूलपदार्थों का गुणपर्याययुक्त अस्तित्व सिद्ध करते हैं। यह परिणमते हुए जीव, धर्म, अधर्म,

आकाश और पुद्गल परिणमते हुए उनके मूल पदार्थों का गुण और पर्याययुक्त उत्पाद-व्यय-ध्रुव कहा न? अर्थात् गुण-पर्यायसहितपने का अस्तित्व सिद्ध करते हैं। 'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्'।

तीन लोक के भाव सदैव कथंचित् सदृश रहते हैं.... यह द्रव्य, गुण तीन लोक के जो यह पदार्थ हैं, वे किसी प्रकार से ध्रुवपने से सदृश रहते हैं और कथंचित्.... उत्पाद -व्ययरूप से बदलते रहते हैं, वे ऐसा सिद्ध करते हैं कि तीन लोक के मूल पदार्थ कथंचित् सदृश रहते हैं और कथंचित् परिवर्तित होते रहते हैं अर्थात् उन मूल पदार्थों का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला अथवा गुणपर्यायवाला अस्तित्व है। सूक्ष्म बात है, यह भी वस्तु को न्याय से सिद्ध करते हैं न? समझ में आया?

तीन लोक में रहे हुए पाँच प्रकार के द्रव्य अस्तिकायरूप से एक काल को द्रव्यपना कहा है छठी गाथा में। उसमें विशेषरूप से प्रत्येक भाव उत्पाद, व्यय और ध्रुवपने रहा हुआ है। प्रत्येक वस्तु जातिरूप से सदृश रहकर ध्रुवपने, वह ध्रुव। और पलटाया करे, वह उत्पाद-व्यय। यह उत्पाद-व्यय और ध्रुव अथवा गुण और पर्याय, इस प्रकार से सभी द्रव्यों का अस्तित्व इस प्रकार सिद्ध होता है। ऐ रतिभाई! यह सब दिन गये ऐसे के ऐसे, हों! समझे बिना, ऐसा समझ में आये, ऐसा नहीं है। पढ़ना नहीं, कुछ करना नहीं, स्वाध्याय नहीं और धर्म करना है। मैं कौन हूँ, कितने में हूँ, कैसे गुण हैं, उनकी पर्यायें क्या हैं? उसका ज्ञान किये बिना वास्तविक दृष्टि और रुचि कहाँ करना, इसकी उसे खबर नहीं पड़ती। कहो, फावाभाई! यह पढ़ना और विचारना पड़ेगा या नहीं? घर में पढ़ते हो? घर में नहीं।

मुमुक्षु : किस प्रकार से पढ़ना समझ में नहीं आये तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहो, समझ में नहीं आये तो किस प्रकार पढ़ना? तुम्हारे कराते हैं। बहियाँ कैसे घर में फिराते हो? वैसे पढ़ना चाहिए, यह क्या कहते हैं, देखो! पहले प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व है, यह सिद्ध कर गये। समझ में आया?

किस प्रकार? पहले उत्पाद-व्यय और ध्रुव लक्षण से और गुण-पर्याय से उसका अस्तित्व कैसे? कि प्रत्येक पदार्थ अपने गुण-पर्याय से अनन्य है। अनन्य

अर्थात् भिन्न नहीं। प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु उसके गुण पर्याय से अनन्य अर्थात् एकमेक है। इसलिए यहाँ गुण-पर्याय अस्तिरूप से है, उस प्रकार से द्रव्य भी अस्तिरूप से सिद्ध हुआ है। और दूसरे प्रकार से कायपना सिद्ध किया। पहले, कि प्रत्येक आत्मा और धर्मास्ति आदि को, एक प्रदेश से दूसरे प्रदेशरूप नहीं, ऐसा अन्य के भिन्नपने के व्यतिरेक द्वारा यह बहुप्रदेशवाला प्रत्येक द्रव्य है, ऐसा उसका कायपना सिद्ध करते हैं।

अब यहाँ दूसरे प्रकार से कहते हैं। समझ में आया? ऊर्ध्व-अधो और मध्य, तीन लोक में रहे हुए पदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रुववाले भाव हैं; इसलिए उसे अस्तित्पना है। उत्पाद-व्यय, वह पर्याय है; ध्रुव, वह गुण है। इस प्रकार उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्, इस प्रकार उसे सिद्ध किया है। अस्ति (सिद्ध की)। अब काय सिद्ध करेंगे। **पुनश्च, धर्म, अधर्म और आकाश....** यह तीन पदार्थ लिये हैं, हों! धर्म अर्थात् यह करना, वह धर्म नहीं। चौदह राजू लोक में एक धर्मास्ति नाम का एक पदार्थ है। एक अधर्मास्ति नाम का पदार्थ है। अरूपी और आकाश। **यह प्रत्येक पदार्थ ऊर्ध्व-अधो-मध्य ऐसे लोक के (तीन) विभागरूप से परिणमित होने से....** प्रत्येक पदार्थ के लोक की अपेक्षा से तीन भाग पड़ते हैं। उन प्रदेश की अपेक्षा से कायत्व सिद्ध किया था। यहाँ लोक के भाग की अपेक्षा से कायत्व सिद्ध करते हैं। समझ में आया इसमें? क्या इसमें समझाते हैं? लो! यह कहा, फिर समझे क्या? इसे समझ में आये? मूल बात कही न।

पहले प्रत्येक जीव को उसके प्रदेश की भिन्नता द्वारा कायत्व अर्थात् प्रदेशों का समूहपना सिद्ध किया है। अब यहाँ लोक के तीन भाग करके उसका कायत्व सिद्ध करते हैं। क्योंकि उसके भाग पड़े, ऐसे बहुत भागवाला, वह आत्मा, बहुत भागवाला वह धर्मास्ति, ऐसा कहकर उसका कायत्व क्षेत्र लोक की अपेक्षा से उसका कायत्व सिद्ध करते हैं। अभ्यास नहीं होता। नहीं किया, नहीं। एक बार नहीं किया। बीड़ी, तम्बाकू में किया। मोहनभाई! आहाहा!

पहले में उत्पाद-व्यय-ध्रुव से अस्तित्व है, ऐसा सिद्ध किया था। यहाँ भी भवते-परिणमते होते मूल पदार्थ सामान्यरूप से वस्तु है, ऐसा लोक, उसका प्रत्येक का उत्पाद-व्यय-ध्रुव का समूह होता है, ऐसा करके अस्तित्व सिद्ध किया है। उसके प्रदेश

की भिन्नता द्वारा प्रत्येक वस्तु का काय अर्थात् बहुप्रदेशवाला है, ऐसा सिद्ध किया। अब लोक के तीन भाग करके भी प्रदेश को सिद्ध करते हैं। समझ में आया? यह ऊर्ध्व-अधो-मध्य ऐसे लोक के (तीन) विभागरूप से परिणमित होने से.... देखो! उसमें उत्पाद-व्यय के भवते-परिणत होने से। यहाँ तीन भागरूप से परिणमित होने से उनके कायत्व नाम का सावयवपना है, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। सावयवपना है। नीचे नोट देखो, लोक का ऊर्ध्वभाग, अधोभाग और मध्यभाग, ऐसे तीन भाग हैं तो फिर यह ऊर्ध्वलोक का आकाश भाग, भाग पड़ा न? ऊर्ध्वलोक का आकाश भाग, देवानुप्रिया! भावनगर गये लगते हैं? यह अधोलोक का आकाश भाग और यह मध्य (लोक) का आकाश भाग, ऐसे तीन भाग पड़ सकते हैं। तीन भाग पड़े, इसलिए बहुत भागवाला, थोड़ा बहुत भागवाला कायत्व सिद्ध हो गया। समझ में आया?

इस प्रकार आकाश के भी विभाग किये जा सकते हैं। एक ऊर्ध्व आकाश, मध्य आकाश, अधो आकाश, ऐसे तीन भाग पड़ गये न? तीन भाग शून्यरूप से उसका एकपना तो अस्ति है। परन्तु तीन अवयवोंरूप से, तीन भागपने से भी आकाश का सावयवपना, कायपना सिद्ध होता है। समझ में आया? ऐई! क्या इसमें कुछ पूछा जाये जरा कि इसका क्या समझना? पूछना तो आवे नहीं तो क्या करना? इनकार करते हैं हमारे, रतिभाई कहते हैं पूछा जाये? कहो, संसार की तीन पेढ़ी पूछी जाये या नहीं? हाँ, तीन भाग किये।

एक आकाश है ऐसा। भगवान ने देखा हुआ अरूपी सर्वव्यापक लोक में। उसके लोक की अपेक्षा से तीन भाग पड़े। ऊर्ध्व आकाश, मध्य आकाश (अधो आकाश) अर्थात् आकाश एक होने पर भी उसके तीन भाग पड़कर भी उसका अवयवपना सिद्ध होता है। बराबर है न? क्योंकि ऊर्ध्व का आकाश, अधो में नहीं है। अधो का आकाश, मध्य में नहीं है - ऐसे भाग उसमें पड़ गये। उन तीन भाग से भी उसका अवयवपना, भागपना, कायत्वपना बहुत समूह होकर कायत्व सिद्ध होता है। तीन भाग होकर ऐसा नहीं परन्तु तीनों के समूहरूप से उसका कायत्व सिद्ध हुआ। समझ में आया? देखो, विभागरूप से परिणत होने से उसे सावयव अर्थात् कायत्ववाला है, ऐसा सिद्ध होता है।

इस शरीर को भी ऐसा होता है न? यह ऊँचा भाग, पैर नीचे का, यह मध्य, ऐसे तीन भाग पड़े हैं या नहीं? तो तीन भाग कहो या तीन अवयव कहो, तीन पहलू, ऐसा हुआ या नहीं? और तीनों का समूहरूप कायरूप अर्थात् यह शरीर काय हुई बहुत तीन के समूहरूप। समझ में आया? ओहोहो! मुनियों ने जंगल में रहकर वस्तु की अस्तित्वता और प्रदेश की समूहता जिस प्रकार है, उसे सिद्ध करने के कितने प्रकार वर्णन किये हैं। समझ में आया?

इसी प्रकार धर्म—धर्मास्ति यह ऊर्ध्व धर्मास्ति पूरे लोक में धर्मास्ति है न? यह ऊर्ध्व धर्मास्ति, यह मध्य धर्मास्ति और नीचे भी धर्मास्ति, उसके तीन भाग लोक की अपेक्षा से तीन पड़े, तीन हुए तो अवयव हुए। अवयव हुए तो भाग पड़े। तो तीनों अवयववाला जो सावयव है, तीनों अवयववाला है, ऐसा उसका-धर्मास्ति का कायपना भी सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार अधर्म—अधर्मास्ति चौदह ब्रह्माण्ड में भगवान केवली परमात्मा ने देखा, वह उसके तीन भाग कहे। ऊर्ध्व अधर्मास्ति, मध्य अधर्मास्ति (अधो अधर्मास्ति) ये तीन भाग पड़कर तीन अवयवरूप—तीन भागरूप सिद्ध हुए। और तीन अवयव एक समुदाय ऐसा उसका कायत्व सिद्ध हुआ। कहो, रतिभाई! इसमें समझ में आता है? इसमें घर्षण पड़े, ऐसा कुछ (नहीं), इसमें तो सीधी-सादी भाषा है। हैं? (!

मुमुक्षु : भाषा सादी है परन्तु...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह होशियार व्यक्ति कहलाये व्यापार में, इन्हें भी गूढ़ार्थ लगता है। इसकी दरकार नहीं की। क्यों, अनुभाई! दरकार की हो और न समझ में आये, ऐसा होगा? दरकार नहीं की।

यह लो, अब फिर जीव की बात करेंगे। आकाश के तीन भाग पड़े तो तीन अवयव हुए। तीन अवयव हुए तो तीन अवयववाला हुआ। तीन अवयववाला तो कायवाला हुआ। बहुत समुदायवाला हुआ। जैसे धर्मास्ति के तीन, वैसे अधर्मास्ति के तीन। कहो, समझ में आया? अब रहे पुद्गल और जीव दो। अब, प्रत्येक जीव के.... इसमें तीसरी लाईन। भी ऊर्ध्व-अधो-मध्य ऐसे तीन लोक के (तीन) विभागरूप से

परिणामित.... प्रत्येक जीव को भी, जीव को भी कहा न? वे तीन सच्चे ठहरे न। तीन उपरान्त चौथे की बात हैं।

इस जगत में भगवान ने छह द्रव्य देखे। तीर्थकरदेव केवलज्ञानी प्रभु वीतराग तीन काल, तीन लोक में भगवान ने छह द्रव्य देखे। उनमें एक काल है, उसे बहुत अवयव अर्थात् प्रदेश नहीं हैं। उसे अस्तपना है परन्तु बहुप्रदेश नहीं है; इसलिए उसे अस्ति कहा, काय नहीं। काय तो पाँच में हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, जीव और पुद्गल। उनमें कायपना किस प्रकार से है, यह इसमें सिद्ध किया। एक तो उसमें अस्तपना सिद्ध किया कि उसके उत्पाद-व्यय और ध्रुव दिखायेंगे और तीनों से अस्तपना है। उन तीन को अस्तिरूप से कहकर उसका अस्तित्व सिद्ध होता है। और कायरूप से उसके दो प्रकार लिये। एक प्रदेश को दूसरा प्रदेश नहीं है। एक-एक परमाणु के, इतने जीव के प्रदेश, इस प्रकार से व्यतिरेक प्रदेश से भी एक-एक प्रदेश में सहितपना है। इसलिए जीव को सावयवपना अथवा कायत्व सिद्ध होता है।

यहाँ तीन लोक के भाग करके कायत्व सिद्ध किया। अमृतचन्द्राचार्यदेव ने टीका भी कैसी की है, देखो न! जो यह तीन लोक कहे हैं, उसमें दो बात सिद्ध करते हैं। हम तो ऐसा कहते हैं। उसमें से दोनों सिद्ध होते हैं—अस्तपना और कायपना। कहो, समझ में आया इसमें?

सत्य वस्तु क्या है और उस सत्य में मेरा स्वरूप किस प्रकार है, और उस स्वरूप की फिर रुचि किस प्रकार करना? समझे बिना रुचि क्या करे? समझे बिना अन्दर रुचि या समझण नहीं होती। चुंदड़ी में कंकड़। हैं? वह तो कंकड़ है या रुपये, इसकी कुछ इसे खबर नहीं। इसी प्रकार आत्मा क्या चीज़ है, किस प्रकार कायत्व, किस प्रकार सावयवपना, किस प्रकार अस्तपना और दूसरे पदार्थों का किस प्रकार अस्तपना, होनापना किस प्रकार समूह अवयवपना - इसके बिना इसे सम्यग्ज्ञान होगा नहीं। छह द्रव्य का सम्यग्ज्ञान जिसे नहीं, यह उसे एक आत्मद्रव्य का यथार्थ ज्ञान होता नहीं। समझ में आया?

धर्मदास क्षुल्लक ने लिखा है। अनुभवप्रकाश। कहते हैं, प्रत्येक जीव को भी

प्रत्येक जीव निगोद से लेकर सब। ऊर्ध्व-अधो-मध्य ऐसे तीन लोक के (तीन) विभागरूप से परिणमित लोकपूरण अवस्थारूप व्यक्ति की शक्ति का सदैव सद्भाव होने से.... और देखो! प्रत्येक जीव के लोकपूरण अवस्थारूप व्यक्ति की शक्ति का सदैव सद्भाव होने से जीवों को भी कायत्व नाम का सावयवपना है, ऐसा अनुमान किया ही जा सकता है। क्या कहा?

नीचे नोट। प्रत्येक जीव निगोद का हो। एकेन्द्रिय का दूसरा स्थूल आदि हो या दो इन्द्रिय, मनुष्य आदि हो। वह लोकव्यापी केवलसमुद्घात के समय जब आत्मा को केवलज्ञान हो और जब समुद्घात करे, पूरे लोकप्रमाण व्यापता है। समुद्घात लोकप्रमाण प्रदेश का पसरना। हैं? क्या? शरीर गड़बड़ हुआ वह, अन्दर आवरण जरा आयुष्य प्रमाण वेदनीय न हो और वेदनीय विशेष हो तो हो जाता है। आयुष्य प्रमाण वेदनीय कर्म को असंख्य प्रदेश का चौड़ापन हो जाता है।

केवलसमुद्घात कायान्त वह लोकपूरण शक्तिरूप से सिद्ध करना है न! जीव को त्रिलोकव्यापी अवस्था होती है। भगवान जब केवलज्ञान पाते हैं, उसमें किसी को समुद्घात लोकप्रमाण होता है। पूरे लोकप्रमाण जितने आकाश के असंख्य प्रदेश हैं, उतने एक जीव के प्रदेश हैं। एक-एक प्रदेश में व्याप जाये आठ समय में, उसे समुद्घात है, उसमें अमुक समय लोकप्रमाण रहे। यह सहज बनता है। आयुष्य के प्रमाण में वेदनीय, नाम और गोत्र की स्थिति होने के लिये ऐसा प्रदेशों का वह स्वभाव है कि लोकपूरण हो अर्थात् आयुष्य के समान तीनों कर्म हो जायें। नहीं, यह दूसरी बात है। अभी उसकी बात नहीं। यहाँ तो कर नहीं सकता, ऐसी शक्ति है। कर तो नहीं सकता। केवलज्ञान पानेवाला नहीं और मोक्ष भी जाने का नहीं, ऐसे भी अनन्त जीव पड़े हैं।

उनमें असंख्य प्रदेश में चौड़ा होने की ताकत है।

मुमुक्षु :असंख्यात प्रदेश...

पूज्य गुरुदेवश्री : लोक के असंख्य प्रदेश। परन्तु यह लोक की बात है, वहाँ आकाश कहाँ से लाये? लोक की बात चलती है। आकाश तो बाहर होता है

अनन्त। असंख्य प्रदेश में पहले कहा न? यह लोक है, वह आकाश का असंख्य प्रदेश में है। अर्थात् एक-एक प्रदेश जो है, धर्मास्तिकाय के असंख्य प्रदेश, अधर्मास्तिकाय के, एक जीव के और लोकाकाश के, चारों के समान होते हैं। आहाहा!

यह तो वस्तु का स्वभाव वर्णन करते हैं। ऐसा वस्तु का स्वरूप है। किसी का अस्तित्व सबका है। किसी का कायत्वपना दो भाग है। जगत में प्रत्येक में दो-दो भाग पड़ जाते हैं, दो-दो। योग और जड़, लोक और अलोक, द्रव्य, क्षेत्र और काल, समझे न? क्षेत्र अनन्त, काल भी अनन्त क्षेत्र का काल, जीव और जड़, रूपी और अरूपी, मूर्त और अमूर्त इत्यादि। ऐसा कायत्व का अकायत्व। समझ में आया?

ऐसा ही वस्तु का अनादि का स्वभाव किसी ने किया नहीं, किसी से बना नहीं, वस्तुस्थिति है। ऐसी भगवान को केवलज्ञान में बतलायी है। अब इतने विकल्प से यह लिखा गया, उसे समझनेवाले को समझने की दरकार नहीं। दूसरे मुझे समझा दे। तो यह समझाने के लिये लिखा है या नहीं? तो इसे प्रयास तो दूसरा समझे, वह कहे, मुझे समझ में नहीं आता। यह व्यर्थ गया न? वह समझेगा दूसरा इस प्रकार से। सेठी!

लोकव्यापी केवलसमुद्घात के समय जीव को त्रिलोकव्यापी अवस्था होती है। अवस्था हो! लोकप्रमाण होती है। उस समय यह ऊर्ध्वलोक का जीवभाग पहले तो प्रदेश से सिद्ध कर गये हैं। अब यह लोक के भाग से भी अलोकपना सिद्ध करते हैं। यह ऊर्ध्वलोक का जीवभाग, यह अधोलोक का जीवभाग पूरे लोकप्रमाण जीव जब होवे न? और यह मध्यलोक का जीवभाग। ऐसे विभाग किये जा सकते हैं। ऐसी त्रिलोकव्यापी अवस्था की शक्ति तो, त्रिलोकव्यापी अवस्था की शक्ति तो जीवों में सदा है। वह कभी त्रस नहीं हो, उसमें भी शक्ति तो है। हैं? उसका स्वरूप ही ऐसा है। इसे भाग पाड़कर समझाना है न? एक जीव हो सकता है तो दूसरे में ऐसी शक्ति नहीं? व्यक्तरूप से भले न हो, परन्तु शक्ति तो है। समझ में आया? यह मध्यलोक का जीव भाग, ऐसा विभाग किया जा सकता है।

ऐसी त्रिलोकव्यापी अवस्था की शक्ति तो जीवों में सदा है। निगोद के अनन्त जीव में एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, (चौइन्द्रिय), पंचेन्द्रिय सबमें है। इसलिए जीव

सदा सावयववाले तीन भाग की अपेक्षा से, लोकव्यापी होने की शक्ति की अपेक्षा से तीन भाग पड़े थे। ऊर्ध्वलोक में रहे हुए जीव का भाग, मध्य में रहा हुआ ऐसा पूरे लोक प्रमाण हो तब। तीन भाग पड़ गये। इस प्रकार भी जीव को अवयववाला, अंशवाला और बहुत अंशवाला होने से कायत्ववाला, ऐसा सिद्ध होता है। बराबर है ?

अब आया पुद्गल। उस पुद्गल में कायपना सिद्ध करना है। पुद्गल है न, पुद्गल ? दो परमाणु से (लेकर) अनन्त परमाणु होने की एक परमाणु में ताकत है। तो उसका कायपना है, यह सिद्ध होता है। पुद्गल भी ऊर्ध्व उन प्रदेशरूप है, यह सिद्ध किया था। एक प्रदेश में दूसरा नहीं, एक परमाणु में दूसरा नहीं, इस प्रकार सावयवपना करके कायत्व सिद्ध किया था। लोक के भाग रूप से कायत्व सिद्ध करते हैं। **पुद्गलों भी ऊर्ध्व अधो-मध्य ऐसे लोक के (तीन) विभागरूप परिणत महास्कन्धपने की प्राप्ति की व्यक्तिवाले....** ले ! प्रत्येक परमाणु महास्कन्ध में व्यापकर रहने की शक्तिवाला है। वह तो महास्कन्ध है पूरे चौदह ब्रह्माण्ड प्रमाण। चौदह राजु लोक प्रमाण पुद्गल का एक महास्कन्ध भिन्न है। उस महास्कन्ध के तीन भाग पड़ते हैं। यह ऊर्ध्व का महास्कन्ध, यह मध्य का महास्कन्ध, यह अधो का महास्कन्ध। पूरे चौदह ब्रह्माण्ड प्रमाण महास्कन्ध का बड़ा पिण्ड है। उसमें **विभागरूप परिणत महास्कन्धपने की प्राप्ति की व्यक्तिवाले अथवा शक्तिवाले....** कोई व्यक्ति महास्कन्ध में अभी है, परन्तु परमाणु है। और कोई न हो तो शक्तिवाला होने से महास्कन्ध होने की शक्तिवाला होने से उसमें केवलज्ञान समुद्घात है, उसकी शक्तिवाला होने से यहाँ महास्कन्ध प्राप्ति का व्यक्तिवाला है, वह तो अभी स्कन्ध में व्याप्त है। महास्कन्ध लोक प्रमाण। **शक्तिवाले होने से उन्हें भी वैसी (कायत्व नाम की) सावयवपने की सिद्धि है ही। ओहोहो!**

न्याय से कितना सिद्ध किया है, कहो। हैं ? अभी पूरे लोकप्रमाण है अन्दर ! सदा ! अनादि-अनन्त होता है। तीन काल में महास्कन्ध होता है। दूसरा, हो ? दूसरे परमाणु भिन्न-भिन्न होते हैं। एक महास्कन्ध होता है। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त। क्या असंख्य प्रदेश में जीव अनन्त है नहीं ?

मुमुक्षु : असंख्यात प्रदेश में अनन्त परमाणु...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु एक जीव असंख्य प्रदेशी लोक प्रमाणवत्। ऐसे-ऐसे अनन्त जीव लोक में है। एक जीव के असंख्य प्रदेश हैं, उतने लोक के आकाश के प्रदेश हैं। उसमें एक आकाश के प्रदेश में अनन्त जीवों का एक जीव का असंख्यवाँ भाग, ऐसे अनन्त जीव के असंख्य अनन्त एक प्रदेश में प्रदेश रहे हैं। एक प्रदेश में एक गुण का असंख्यवाँ भाग, ऐसे अनन्त जीव के अनन्त प्रदेश रहे हैं, ऐसा कहा न? समझ में आया?

यह तो तत्त्व का विषय है। इसे भगवान ने देखा, ऐसा जाना तो उसे माने न? जाने बिना क्या इसे माने वह? समझ में आया? एक जीव के प्रदेश इतने असंख्य हैं कि पूरे लोक प्रमाण हो जायें इतने हैं। ऐसा एक जीव यहाँ ले, वह भाग यहाँ... यहाँ है न खाली भाग है यहाँ। वहाँ ऐसे अनन्त जीव हैं। अनन्त जीव एक अंगुल के असंख्य भाग यहाँ अनन्त। उसके आकाश के एक प्रदेश में एक जीव के जो असंख्य (प्रदेश) हैं, उसका असंख्यवाँ भाग एक प्रदेश में है। पूरा जीव एक प्रदेश में नहीं रह सकता। एक जीव का असंख्यवाँ भाग एक प्रदेश में है। दूसरे जीव का असंख्य, तीसरे जीव का असंख्य-ऐसे अनन्त जीव के असंख्य ऐसे अनन्त प्रदेश आकाश के एक प्रदेश है। पूरा लोक इस प्रकार व्यापकर रहा हुआ है।

वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है। अपने आप क्या? अनुमान में श्रुतज्ञान में भी आ सकता है। एक जीव है न, एक जीव, उस जीव के प्रदेश भिन्न-भिन्न हैं या नहीं? यह यहाँ नहीं, यह यहाँ नहीं, ऐसे भिन्न-भिन्न हैं न? इस अपेक्षा से असंख्य प्रदेश हैं। तो वे कितने संख्या में? लोक के आकाश प्रदेश जितने हैं, उतनी संख्या में हैं। केवलसमुद्घात हो तो एक प्रदेश में एक जीव के प्रदेश दूसरे में दूसरे, ऐसा करके असंख्य व्यापते हैं। कम-ज्यादा नहीं।

ऐसे अनन्त जीव यहाँ अँगुल के असंख्य भाग में यहाँ पड़े हैं। पूरे लोक में प्रत्येक जगह। अनन्त जीव। उसमें एक आकाश के प्रदेश में एक जीव असंख्य प्रदेशी पूरा नहीं रहा। एक जीव का असंख्यवाँ भाग रहता। ऐसे दूसरे जीव का असंख्यवाँ भाग, तीसरे जीव का असंख्यवाँ भाग, अनन्त के असंख्यवें भाग, ऐसे अनन्त असंख्यात एक प्रदेश का असंख्यातवें भागवाले अनन्त संग्रह है।

अब इसकी गिनती में कुछ इसकी तो वहाँ ७४-७३ में बात करते थे, हमारे उन मूलचन्द्र को नहीं बैठती थी। ७४ के वर्ष। यह तो दो और दो चार जैसी बात है। ७४-७४ (संवत् १९७४)। कितने वर्ष हुए? ४३। तब यह बात करते थे। आकाश के एक प्रदेश के अन्दर एक जीव का असंख्यवाँ भाग है। ऐसे अनन्त का असंख्य है। ऐसा कहाँ से निकाला? ऐसा कहाँ से निकाला? अरे! कहाँ से निकाले अब? एक यूरोपियन लावे और उसे न्याय से कहे तो समझ सकता है। परन्तु अब इसमें क्या है? हाँ, उसकी योग्यता से अनन्त है। एक-एक निगोद के एक जीव के एक प्रदेश आकाश में असंख्यवाँ भाग है। ऐसे अनन्त के असंख्य भाग है। हैं? तीनों काल। अब उसमें क्या, यह तो साधारण बात है। समझ में आया?

गुरुदेव की याद न आवे और गुरुदेव को बैठे थे, तब गुरु को खबर नहीं हो न? गुरुदेव हैं या नहीं? कहाँ है? यह तब बैठे थे वे। तब यह बात हुई थी। उन्हें तो खबर भी नहीं होगी। यह बात हुई थी। प्राणजीवन मास्टर थे बड़े। राजकोट से वे मास्टर बहुत गिनती में थे और वे मुझे पूछते थे। एक जीव में ऐसा होता है, वैसा होता है। तब वे पूछते थे। हम जवाब देते थे, वह उन्होंने सुना। यह सब भगवतीसूत्र में है। यहाँ कहते हैं कि स्वयं पढ़ा हुआ नहीं और स्वयं को खबर नहीं। कहाँ से निकाला यह? परन्तु यह देखे तो सही कुछ पढ़ा हुआ हो तो एक जीव के असंख्य प्रदेश लोक प्रमाण है। तो एक जीव उसका उतने में रहा। उसके एक प्रदेश में कितने आवें, ऐसा तब कहा था, हों! तो पूरे लोकप्रमाण रहे तो एक-एक प्रदेश जीव का हो। आधे भाग में रहे तो एक आकाश प्रदेश (में) दो-दो आवे। समझ में आया या नहीं? क्या कहा?

पूरे लोकप्रमाण एक जीव रहे तो एक आकाश प्रदेश में एक जीव का प्रदेश। आधे भाग में जीव रहे तो दो हुए। एक प्रदेश में दो-दो आ गये। चौथे भाग में रहे तो एक प्रदेश में चार-चार आ गये। दसवें भाग में रहे तो एक प्रदेश में दस आ गये। संख्यातवें भाग रहे तो संख्यात भाग। यह अभी असंख्यातवें भाग में है। असंख्यात प्रदेश में एक जीव है। लोक के असंख्यवें भाग में है, इसलिए एक-एक प्रदेश और उसका असंख्यवाँ भाग आ गया है।

यह तो तब ७४ में कहा था। एक प्रदेश में एक पूरा जीव नहीं रहा। एक जीव का असंख्यवाँ भाग। असंख्य प्रदेश में व्यापे बिना जीव नहीं रह सकता। इतनी उसकी चौड़ाई और महत्ता है। एक प्रदेश में एक जीव नहीं रहता परन्तु एक जीव का असंख्यवाँ भाग, ऐसे असंख्य प्रदेश में एक जीव रहता है। यह छोटे में छोटा आत्मा में। और एक का असंख्यवाँ भाग, ऐसे अनन्त का असंख्यवाँ भाग एक प्रदेश में अनन्त रहे। हैं? यह तो ठीक, दवा के तो रजकण हैं एक प्रदेशी। कहो, समझ में आया? ...यह बात सिद्ध करनी है। उस दवा की बात इसे लागे नहीं पड़ती। यह तो कितने गुण हैं। वह तो गुण बतलाने हों तब। एक आकाश प्रदेश में एक जीव है, वह कभी नहीं रह सकता। तथापि उसके प्रदेश लोक के आकाश प्रदेश जितने हैं। चन्दुभाई! परन्तु यहाँ अंगुल के असंख्यवें भाग में पूरा आत्मा लो न, वह लोक के असंख्य भाग में अभी है। क्या? लोक असंख्य योजन में है। वह असंख्यवाँ भाग यहाँ है यह एक। तो उसमें आकाश के एक प्रदेश में अपने जीव के प्रदेश कितने आये? असंख्य, असंख्य आये। असंख्य का असंख्यवाँ भाग। ओहोहो! यह तो व्यापारी की गिनती की चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? हैं!

कोई दूसरा नहीं। ७३, ७२, ७१ में यह सब सबको कहा था। ७१ में भगवतीसूत्र लिया, तब यह सब दृष्टान्त देते थे। तब उन्हें ऐसा लगा कि यह कुछ नया सीखना? भाई सीखा न हो परन्तु यह है या नहीं, इसमें देखो न?

मुमुक्षु : सीखने की क्या आवश्यकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सीखना था, कहो, समझ में आया? ७४, क्या इसमें? ७६ वर्ष हुए। आहाहा! यह तो तब कहा था, कहा यह लोक का भाग है। पूरे प्रमाण एक जीव रहे। कहा, आधे भाग में कितना रहे? परन्तु यह तो साधारण बात है। पूरे में एक-एक प्रदेश है तो आधे भाग में दो-दो। चौथाई में चार-चार। अपने असंख्यवें भाग में असंख्य, इसलिए एक प्रदेश में असंख्य। परन्तु अब इसमें क्या है? कहो, समझ में आया इसमें? चन्दुभाई! इसने क्या कभी विचार भी नहीं किया। बढ़वाण नगर दिया। जाओ। परन्तु तुझे कहाँ सच्चा हो। तेरे ज्ञान में यह बात भावभासन हुए बिना तुझे सच्चा नहीं होगा। समझ में आया?

हाँ, यहाँ तो असंख्य प्रदेश के तीन भाग किये। यहाँ अभी। एक ऊर्ध्वभाग-मध्यभाग-अधोभाग। तीन भाग हो गये न? इसलिए तीन भागवाला एक जीव हो गया। तीन अवयववाला तीन भागवाला हो तो तीन भाग का समय वह सावयवी हो गया। इस प्रकार यहाँ सिद्ध किया अभी लोक का, अमृतचन्द्राचार्य। ओहो! दिगम्बर मुनियों ने सत् को सिद्ध करने के लिये हृदय प्रवाहित किया है। ऐसी बात कहीं अन्यत्र है नहीं। समझ में आया? पुद्गल का महास्कन्ध है चौदह ब्रह्माण्ड में एक पूरा। उसके अन्दर की अपेक्षा से उसके तीन भाग पड़ गये। ऊर्ध्व का महास्कन्ध-मध्य का उन परमाणु में अभी भी है और पृथक् हो तो उसकी महास्कन्ध में मिलने की शक्ति है। सत् की अपेक्षा से महास्कन्ध के समुदाय के तीन भाग पड़ जाते हैं। भाग पड़े, इसलिए वह भी अवयववाला और कायवाला सिद्ध हुआ।

गाथा - ६

ते चेव अत्थिकाया तेक्कालियभावपरिणदा णिच्चा।

गच्छंति दवियभावं परियट्टणलिंगसंजुत्ता॥६॥

त्रिकालभावी परिणमित होते हुए भी नित्य जो।

वे पंच अस्तिकाय वर्तनलिंग सह षट् द्रव्य हैं॥६॥

अन्वयार्थ :- [त्रैकालिकभावपरिणताः] जो तीन काल के भावोंरूप परिणमित होते हैं तथा [नित्याः] नित्य हैं [ते च एव अस्तिकायाः] ऐसे वे ही अस्तिकाय, [परिवर्तनलिंगसंयुक्ताः] परिवर्तनलिंग [काल] सहित, [द्रव्यभावं गच्छन्ति] द्रव्यत्व को प्राप्त होते हैं (अर्थात् वे छहों द्रव्य हैं।)

टीका :- यहाँ पाँच अस्तिकायों को तथा काल को द्रव्यपना कहा है।

द्रव्य वास्तव में सहभावी गुणों को तथा क्रमभावी पर्यायों को 'अनन्यरूप से आधारभूत है। इसलिए जो वर्त चुके हैं, वर्त रहे हैं और भविष्य में वर्तेंगे, उन भावों-पर्यायोंरूप परिणमित होने के कारण (पाँच) अस्तिकाय और 'परिवर्तनलिंग काल (वे छहों) द्रव्य हैं। भूत, वर्तमान और भावी भावस्वरूप परिणमित होने से वे कहीं अनित्य नहीं है, क्योंकि भूत, वर्तमान और भावी भावरूप अवस्थाओं में भी प्रतिनियत (-अपने-अपने निश्चित) स्वरूप को नहीं छोड़ते, इसलिए वे नित्य ही है।

यहाँ काल पुद्गलादि के परिवर्तन का हेतु होने से तथा पुद्गलादि के परिवर्तन द्वारा उसकी पर्याय गम्य (ज्ञात) होती हैं, इसलिए उसका अस्तिकायों में समावेश करने के हेतु उसे 'परिवर्तनलिंग' कहा है। [पुद्गलादि अस्तिकायों का वर्णन करते हुए उनके

१. अनन्यरूप=अभिन्नरूप (जिस प्रकार अग्नि आधार है और उष्णता आधेय है तथापि वे अभिन्न हैं, उसी प्रकार द्रव्य आधार है और गुण-पर्याय आधेय हैं, तथापि वे अभिन्न हैं।)
२. परिवर्तनलिंग=पुद्गलादि का परिवर्तन जिसका लिंग है; वह पुद्गलादि के परिणमन द्वारा जो ज्ञान होता है वह। (लिंग=चिह्न; सूचक; गमक; गम्य करानेवाला; बतलानेवाला; पहिचान करानेवाला।)
१. (१) यदि पुद्गलादि का परिवर्तन होता है तो उसका कोई निमित्त होना चाहिए-इस प्रकार

परिवर्तन (परिणमन) का वर्णन करना चाहिए। और उनके परिवर्तन का वर्णन करते हुए उन परिवर्तन में निमित्तभूत पदार्थ का (काल का) अथवा उस परिवर्तन द्वारा जिनकी पर्यायें व्यक्त होती हैं, उस पदार्थ का (काल का) वर्णन करना अनुचित नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार पंचास्तिकाय के वर्णन में काल के वर्णन का समावेश करना अनुचित नहीं है, ऐसा दर्शाने के हेतु इस गाथासूत्र में काल के लिये 'परिवर्तनलिंग' शब्द का उपयोग किया है।] ॥६॥

गाथा - ६ पर प्रवचन

अब छठी गाथा। दरकार कहाँ की? माणेक और मोती में। छठी गाथा। बहुत सरस। ओहोहो! एक न्याय से एक न्याय और लॉजिक से सिद्ध करने की ताकत-मुनि जंगल में आत्मध्यान में मस्त, उन्हें यह वस्तु को सिद्ध करने का ज्ञान का विकास सर्वज्ञ ने जो सिद्ध किया, वह न्याय और अनुमान से सिद्ध होता है। जो यह है, यह है। कहो, मोहनभाई! इसमें कहाँ तुमने अभी तक दरकार की है? यह समझने की कहाँ की है? अब छठी गाथा। ओहोहो! अब काल डाला।

ते चेव अत्थिकाया तेक्कालियभावपरिणदा णिच्चा।

गच्छंति दवियभावं परियट्टणलिंगसंजुत्ता ॥६॥

त्रिकालभावी परिणमित होते हुए भी नित्य जो।

वे पंच अस्तिकाय वर्तनलिंग सह षट् द्रव्य हैं ॥६॥

लो! त्रिकालभाव से परिणमता है, त्रिकालभाव से परिणमता है। यहाँ पूरा सिद्धान्त रखा है। यहाँ पाँच अस्तिकायों को और काल को द्रव्यपना कहा है। अब बढ़ाया। उसमें पाँच अस्तिकाय सिद्ध किये थे। यहाँ काल नाम का पदार्थ असंख्य

परिवर्तनरूपी चिह्न द्वारा काल का अनुमान होता है (जिस प्रकार धुआँरूपी चिह्न द्वारा अग्नि का अनुमान होता है, उसी प्रकार), इसलिए काल 'परिवर्तनलिंग' है। (२) और पुद्गलादि के परिवर्तन द्वारा काल की पर्यायें (-'कर्म समय', 'अधिक समय' ऐसी काल की अवस्थाएँ) गम्य होती हैं, इसलिए भी काल 'परिवर्तनलिंग' है।

कालाणु है। यह चौदह (राजू प्रमाण) लोक में जितने आकाश के प्रदेश हैं, एक-एक प्रदेश में एक-एक कालाणु, अनन्त गुण का पिण्ड है। एक-एक कालाणु अनन्त गुण का, अनन्त पर्याय का पिण्ड, ऐसा कालाणु अरूपी है। ऐसे असंख्य कालाणु हैं। उनका द्रव्यपना है, वस्तु है, कायपना नहीं। दो कालाणु इकट्ठे नहीं होते। वे परमाणु इकट्ठे हों, उनमें स्पर्श नाम का गुण है, उन्हें काय, इसे ऐसा है नहीं। अर्थात् इसे कायपना नहीं परन्तु अस्तिपना है। अर्थात् छहों द्रव्य अस्तिरूप से है। कायपना काल के अतिरिक्त पाँच को होता है। कहो, समझ में आया इसमें ?

द्रव्य-गुण-पर्याय अनन्त गुण। जितने सिद्ध के गुण, उतने एक कालाणु में संख्या की अपेक्षा से गुण। संख्या की अपेक्षा से, हों ? जाति की अपेक्षा से भिन्न। अब आया देखो, द्रव्य... अर्थात् छहों द्रव्य। वास्तव में सहभावी गुणों को.... लो ! सहभावी गुण— साथ में रहनेवाले गुण। प्रत्येक परमाणु, प्रत्येक कालाणु, आकाश, प्रत्येक जीव वास्तव में सहभावी गुणों को, साथ में रहनेवाले गुणों को, लो ! इसमें द्रव्य के साथ रहनेवाले गुणों को या सहभावी गुणों को ? परन्तु द्रव्य के साथ रहना या गुण के साथ रहना ? ऐसा प्रश्न है। सहभावी गुण। साथ में रहे हुए गुण। गुण अनन्त एक साथ रहे हुए हैं। और क्रमभावी पर्यायों को द्रव्य वास्तव में सहभावी गुणों.... सहभावी गुण अर्थात् एक साथ रहे हुए गुण, ऐसा। गुण एक साथ रहे हुए हैं। द्रव्य के साथ रहे हुए, ऐसा यहाँ नहीं। गुण एक साथ रहे हुए हैं। गुण हैं। द्रव्य वास्तव में सहभावी गुण अर्थात् अनन्त गुण एक साथ रहे हुए हैं। तथा क्रमभावी पर्यायों.... पर्यायें एक के बाद एक भाव है। समझ में आया ?

अनन्यरूप से आधारभूत.... एक यह दो सिद्धान्त पूरा। एक तो लिया कि वास्तव में द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसमें साथ में रहे हुए, साथ में अनन्त गुण, अनन्त गुण साथ में रहे हुए और पर्यायें क्रम क्रम से रही हुई। क्रम-क्रम से होती है। चेतन में अनन्त गुणी एक समय में पर्याय होती है ? सब पर्यायें एक साथ होती हैं ? सभी पर्यायें एक साथ होती हैं ? पहले समय में यह, दूसरे समय में यह, तीसरे समय में यह - ऐसे होती है। अनन्त गुणों की अनन्त पर्यायें हैं, वह दूसरी बात है। एक गुण की सभी पर्यायें एक साथ

होती हैं ? क्रमवार होती है। गुण अक्रम एकसाथ रहते हैं। समझ में आया ? यह तो पंचाध्यायी में लिया नहीं ? द्रव्य के साथ गुण कहोगे तो पर्याय साथ में है। यह लक्षण उसका नहीं होगा। ऐसा सिद्ध किया है। पंचाध्यायी में लॉजिक से-न्याय से सिद्ध किया है। एक द्रव्य है, उस द्रव्य के साथ गुण रहते हैं, ऐसा अर्थ नहीं करना। तब तो पर्याय भी द्रव्य के साथ रहती है। उसके भी लक्षण पर्याय में भी जायेंगे, तब सहभावी लक्षण का अर्थ (यह कि) गुण एक साथ रहते हैं। गुण एक साथ रहते हैं, ऐसे गुण एक साथ रहते हैं, ऐसा। समुदाय, ऐसा नहीं। यह तो एक ही शब्द में बड़ा अन्तर गुण का समुदाय, ऐसा अभी नहीं। बराबर।

यहाँ तो गुण एक साथ में, इसलिए सहभावी। द्रव्य के साथ गुण रहते हैं, इसलिए सहभावी, ऐसा नहीं। गुण सब एक साथ रहते हैं, ऐसा। और पर्याय क्रमसर ऐसे होती है। द्रव्य वास्तव में सहभावी गुणों को तथा क्रमभावी पर्यायों को अनन्यरूप से आधारभूत हैं;.... ऐसा यहाँ तो कहा है। सहभावी गुणों को द्रव्य आधार और क्रमवर्ती पर्याय को भी द्रव्य आधार। क्या कहा ? एक आत्मा है न ? तो आत्मा के एक साथ अनन्त गुण हैं। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व अनन्त सहभावी गुणों का आधार द्रव्य और उसकी अनन्त क्रमसर पर्याय। प्रत्येक क्षण में होती है भिन्न... भिन्न... भिन्न... भिन्न वह सब क्रमवर्ती पर्याय का आधार द्रव्य। उसका आधार दूसरा द्रव्य नहीं।

यह घी बर्तन में नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। घी के परमाणु के एक-एक परमाणु उसके अनन्त गुण साथ में रहते हैं। गुण साथ में रहते हैं और पर्याय क्रमवर्ती होती है, उस गुण का-पर्याय का आधार वह परमाणु है। वह परमाणु दूसरे के गुण-पर्याय का आधार नहीं है।

मुमुक्षु : परमाणु को आधार सही ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परमाणु को आधार कोई नहीं। परमाणु को आधार क्या आवे ? कहो, समझ में आया ? यह तो वीतराग की बात है जैन की... न्याय का विषय है। न्याय का विषय है। समझ में आया इसमें ?

भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव वीतराग परमेश्वर, जिन्होंने ज्ञान में छह द्रव्य

देखे। उन छह द्रव्यों में प्रत्येक द्रव्य-अनन्त जीव देखे, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश - छह (द्रव्य) भगवान ने देखे। वे छह (द्रव्य) देखने में प्रत्येक वस्तु उसके अनन्त गुण एक साथ होते हैं। पर्याय एक साथ नहीं होती। देखो न विशिष्टता! ऐसा कैसे? परन्तु पर्याय एक साथ नहीं होती। ऐसी कैसे हुई? निमित्त आया इसलिए? नहीं। पर्याय के क्रमवर्ती। क्रमवर्ती कहो, क्रमबद्ध कहो, क्रमसर कहो, सब एक ही है, हों! संस्कृत, व्याकरणवाले को भले दूसरा लगता हो। कहो, समझ में आया इसमें?

क्रम से इकट्ठा होना। यह छह धर्म साथ में रहना। गुणों का साथ में रहना। द्रव्य के गुणों का गुण का साथ में रहना और पर्याय का क्रमसर होना। इन दोनों का आधार वह परमाणु अथवा द्रव्य है। इसी प्रकार जीव अपने अनन्त गुण साथ में गुण रहते हैं, गुण साथ में रहते हैं। एक गुण पहले दूसरा गुण बाद में, ऐसा नहीं है। इसी प्रकार एक पर्याय समय की पहली और दूसरे समय की बाद में, ऐसे क्रमवर्ती। परन्तु तीन काल की पर्यायें एक समय में हो, ऐसा नहीं हो सकता। जैसे गुण एक साथ तीन काल के हैं, अनन्त हैं। वैसे पर्यायें एक साथ नहीं हो सकती। एक के बाद एक, एक के बाद एक, एक के बाद एक। ऐसे सहभूत गुण और क्रमबद्ध पर्याय-क्रम से होनेवाली भावी है न? क्रमभावी - होनेवाली पर्यायों का अनन्यपना, अनन्यपना अभिन्नरूप से। गाथा देखो! अभिन्नरूप से आधारभूत है। समझ में आया?

मुम्बई में ऐसा रखे तो उनको ऐसा लगे कि यह क्या रखा? यह क्या कहते हैं? परन्तु यहाँ तो भाई बहुत वर्ष हुए, चलता है। यहाँ यह २९ वर्ष हुए, चलता है। नये लोगों को तो यह बात पकड़ाना और समझाना चाहिए या नहीं? वहाँ नहीं रखी जाये न? आठ-आठ हजार, दस-दस हजार लोग हों उसमें—उन्हें लगती बात होती है। क्या कहा?

वास्तव में एक आत्मा के साथ रहे हुए गुण अनन्त और क्रमभावी पर्यायें अनन्त, इन दोनों का अनन्तपना द्रव्य को है। द्रव्य वह-वह अनन्यभूत आधार है। वह अनन्यभूत, अन्य उसका आधार नहीं। **अभिन्नपने आधार।** लो! अभिन्नपने आधार। जैसे अग्नि आधार है, उष्णता अभिन्न है। अग्नि आधार है और उष्ण आधेय, तथापि वे अभिन्न हैं।

परन्तु अग्नि भिन्न और उष्णता भिन्न, ऐसा नहीं है। इसी प्रकार द्रव्य आधार है और गुण-पर्यायें आधेय, तथापि वे अभिन्न हैं। आहाहा!

यह एक-एक गाथा कोई एक ही पढ़े न समझकर तो इसका फैसला। यह तो चक्कर... चक्कर। इसका आधार यह है, इसका आधार यह है। वह तो सब व्यवहार की बातें हैं। नहीं मिले अभी यह बातें। कहो, समझ में आया? अरे! परन्तु वस्तु को सम्बन्ध क्या है? निमित्त-निमित्त सम्बन्ध का अर्थ किसी को और तेरे आधार-आधेय (सम्बन्ध) है, ऐसा नहीं है। एक रजकण भी जहाँ रहा है पर यहाँ। कहते हैं कि उसमें गुण-पर्याय को परमाणु आधार है। उसका गुण-पर्याय का दूसरा परमाणु आधार नहीं है। तब भी परमाणु को दूसरा आधार? परन्तु परमाणु अर्थात् क्या? कि गुण-पर्याय का पिण्ड, वह परमाणु। ऐसा कि गुण-पर्याय का आधार परमाणु परन्तु परमाणु का आधार दूसरा। परन्तु वह वस्तु ही गुण-पर्याय का आधार है, वह वस्तु ही आधेय है। आधार और आधेय वहीं का वहीं है। समझ में आया?

यह पृथक्-पृथक् भेदज्ञान की बात है। भेदो भेदा किसी को कुछ सम्बन्ध है नहीं। मनुष्य जवान हो तब कमाने का काम। बालपन हो तब खेलने का काम। वृद्ध हो तब समझ में आये नहीं, समझ में आये नहीं। लड़कों को खुला करने का काम। ऐ झवेरचन्दभाई! आया है न तुम्हारा छोटा? लड़का आया है या नहीं? तुम्हारा है वह। वह तुम्हारा आता है न? आता है न? परन्तु यह क्या कहते हैं? बालपन में रोने का काम। जवान हो, तब स्त्री। 'बालपन खेल में खोया, जवानी स्त्री में मोह्या, वृद्धपन देखके रोया।' आता है न हमारे सज्जाय में तो। यह सज्जाय में है। अर्धमृतक कलेवर जीण हो जाये। कहो, समझ में आया इसमें? उसे समझने का काल कब आवे? रतिभाई! लड़का काम करके आवे अभी, वहाँ सिर मारना। यहाँ जड़ भी सावाई के बापू नहीं, देखो न? इतना तो छोड़कर बैठे होंगे या नहीं? कोई-कोई तो अच्छी रीति से रहते हैं तो सन्तोष है, उसे और... ऐसा कहते हैं। परन्तु यहाँ बैठे हैं न? वहाँ गये नहीं। लड़का चाहे जो करे, जा न भाई! तेरे साथ क्या हमारे कुछ नहीं। समय-अवसर आवे फिर लड़की समझाने का प्रयत्न भी करो। यह तो ढसरडा किया ही करना। ढसरडा सिर पर लिया ही करना। ढसरडा समझते हो न? गाडा-गाडा होता है न? ऊँचा करे, वहाँ

सिर डाले। परन्तु अब वह खेंचे तब डाल, वह अलग बात है। डोरी खींचे उसे भी ऊँचा करे वहाँ। ऐसा कुछ काम आया। झवेरचन्दभाई! हमें पूछे बिना करना नहीं। मुफ्त का परन्तु अब तो मरने की तैयारियाँ, जाने की तैयारियाँ। जितने वर्ष हुए उतने वर्ष, इसे कितने ५०-५०, ६० वर्ष हुए, इतने ५०-६० निकालने हैं? हैं? आहाहा!

एक सिद्धान्त—इस एक लाईन में। आहाहा! एक रजकण और एक आत्मा, एक कालाणु और एक धर्मास्ति-अधर्मास्ति, आकाश। वे अपने सहभावी गुणों और क्रमभावी पर्यायों को अभिन्नरूप से आधारभूत हैं। अभिन्नरूप से आधारभूत हैं। तब कहते हैं कि अभिन्नरूप से आधार परन्तु भिन्नरूप से दूसरा आधार है न? वह तो व्यवहारमात्र कथन है। निमित्त कौन, उसका ज्ञान कराने के लिये बात है। कहो, समझ में आया इसमें? **इसलिए जो वर्त चुके हैं, वर्त रहे हैं और भविष्य में वर्तेंगे उन भावों-पर्यायोंरूप....** देखो! वर्त चुके। प्रत्येक द्रव्य की पर्याय वर्त चुकी। पर्याय-अवस्था। और वर्तती वर्तमान पर्याय। प्रत्येक परमाणु, प्रत्येक जीव को। **और भविष्य में वर्तेंगे उन भावों-पर्यायोंरूप परिणामित होने के....** उस स्वरूप से स्वयं परिणमता है। वर्तमान पर्याय परिणामी, भूत में गयी, उसरूप परिणमा और भविष्य में भी परिणमेगा। स्वयं अपनी पर्यायरूप परिणमता है। उसे दूसरा कोई परिणमानेवाला नहीं है। कहो, समझ में आया?

वे वर्त चुके हैं, वर्त रहे हैं.... वर्तमान, भविष्य में वर्तेंगे.... ऐसे भावों.... अर्थात् पर्यायों के स्वरूप से परिणामित होने के कारण (पाँच) अस्तिकाय और परिवर्तनलिंग काल.... लो! अब छठवें में काल डाला। यह द्रव्य है। सब द्रव्य है। परिणमते पाँच हैं, वे भी और परिवर्तन लिंग से काल। नीचे स्पष्टीकरण किया है, देखो! पुद्गलादि परिवर्तन जिसका लिंग है वह। पुद्गलादि परिणमन द्वारा जो ज्ञात होता है वह। परिणमन द्वारा ज्ञात होता है न? वह एक समय का काल। उसे निमित्तरूप से दूसरा काल है। लिंग=चिह्न, सूचक, गमक, गम्य करानेवाला, बतलानेवाला, पहिचान करानेवाला। लो! यह पुद्गलादि का परिवर्तन निमित्त है। परिणमन का लिंग जो यह परिणमता है, उसमें बतलानेवाला दूसरा काल निमित्त है। उसके द्वारा काल की सिद्धि होती है। कहो, समझ में आया?

भूत, वर्तमान और भावी भावों स्वरूप परिणामित होने से वे कहीं अनित्य नहीं हैं,... सभी पदार्थ भूतरूप से परिणमे भूतकाल में। वर्तमान में परिणमे और भविष्य में परिणमेंगे। इसलिए कोई अनित्य नहीं है। क्योंकि भूत, वर्तमान और भावी भावरूप अवस्थाओं में भी.... भूतकाल की अवस्था, वर्तमान की अवस्था और आगामी काल की अवस्था प्रतिनियत (—अपने-अपने निश्चित) स्वरूप को नहीं छोड़ते इसलिए वे नित्य ही हैं। दोनों बात इसी और इसी में की है।

अनन्त काल से पर्यायें परिणमी, वर्तमान परिणमती है, भविष्य में परिणमेगी। ऐसे परिणमने से अनित्य होने पर भी, वह प्रत्येक पदार्थ प्रतिनियत निश्चय स्वरूप को छोड़ता नहीं। परमाणु, परमाणु को छोड़ता नहीं। आत्मा आत्मा को छोड़ता नहीं। हाँ... वे नित्य ही हैं। इतनी बात परिणमन की काल के सम्बन्ध में की।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ३, गुरुवार, १९-१२-१९६३, गाथा-६-७-८, प्रवचन-१३

पंचास्तिकाय की छठी गाथा चलती है। उसका दूसरा पैरेग्राफ है। ऊपर ऐसा कहा कि इस जगत में एक पाँच अस्तिकाय हैं और एक परिवर्तनलिंगकाल ऐसा करके छह द्रव्य हैं। भगवान ने देखे हुए, केवलज्ञानी ने छह द्रव्य देखे। उनमें पाँच अस्तिकाय और एक परिवर्तनलिंगकाल, ऐसे छह द्रव्य हैं। वे सब भूत, भावी और वर्तमान भाव अर्थात् पर्यायरूप परिणमते होने पर भी कोई अनियत नहीं है, क्योंकि उसमें प्रतिनियत अपने-अपने स्वरूप को छोड़े बिना वे परिणमते हैं।

प्रत्येक वस्तु क्षण-क्षण में परिणमती है, वह अपना अस्तित्व छोड़कर नहीं परिणमती। कहो, समझ में आया? यहाँ तक आ गया है। यहाँ काल... अब काल की व्याख्या करते हैं। जगत में काल नाम का पदार्थ है। अणु असंख्य हैं, वे द्रव्य हैं। अस्तिकाय नहीं। समझ में आया? वह काल पुद्गलादि के परिवर्तन का हेतु होने से... पुद्गल और यह जीव दो। वह जरा धर्मास्ति का था उसे। तथा पुद्गलादिक के परिवर्तन द्वारा उसकी पर्यायें गम्य (ज्ञात) होती हैं.... यह पुद्गल है न? और जीव। उनके बदलने के कारण उसका परिवर्तन द्वारा उसकी पर्यायें गम्य.... अर्थात् काल की पर्यायें गम्य होती हैं। उसका अस्तिकायों में समावेश करने के लिये उसे परिवर्तनलिंग कहा है। परिवर्तनलिंग का नीचे आ गया है। दूसरा, देखो! दूसरा पैरेग्राफ, दूसरा नोट। नीचे है।

जो पुद्गलादि का परिवर्तन होता है तो उसका कोई निमित्त होना चाहिए—इस प्रकार परिवर्तनरूपी चिह्न द्वारा काल का अनुमान होता है। (जिस प्रकार धुँआरूपी चिह्न द्वारा अग्नि का अनुमान होता है, उसी प्रकार) इसीलिए काल 'परिवर्तनलिंग' है। एक बात। काल परिवर्तनलिंग है, एक बात। और पुद्गलादि के परिवर्तन द्वारा काल की पर्यायें (कम समय, अधिक समय, ऐसी काल की अवस्थायें) गम्य होती हैं। परिणमन द्वारा जीव और पुद्गल के बदलने द्वारा एक तो निश्चित होती है कि काल निमित्तरूप से दूसरी चीज़ है। और पुद्गल की पर्याय का एक समय, दो समय आदि का माप,

उससे भी काल की पर्यायें थोड़ा समय, बहुत समय, ऐसी अवस्थायें गम्य होती हैं। इसलिए भी काल परिवर्तनलिंग है। जरा सूक्ष्म बात पड़ती है।

यह पुद्गल के परिवर्तन की अपेक्षा से भी काल बदलता है। तो वह परनिमित्त होना चाहिए, एक बात। और यहाँ पर्याय में कम समय, अधिक समय, ऐसा जो लागू पड़ता है, उसके कारण भी द्रव्य की पर्याय काल की साबित होती है। कहो, रतिभाई! क्या इसमें कुछ समझ में आया इसमें? समझे बिना। कैसे समझे बिना कुछ समझ में आये? अन्दर कहा नहीं, देखो न? कि पुद्गलादि का परिवर्तन होता है। जीव और परमाणु पलटते हैं। बराबर है? उसका कोई निमित्त होना चाहिए। बदलने में निमित्त होना चाहिए। बदलने का मूल कारण तो स्वयं। परन्तु वह दूसरी चीज़ निमित्त होनी चाहिए। इस प्रकार परिवर्तनरूपी चिह्न द्वारा काल का अनुमान होता है। कि काल एक निमित्तरूप परिणमन में दूसरी चीज़ है। जैसे धुआँरूपी चिह्न द्वारा अग्नि का अनुमान होता है उसी प्रकार। यह धुआँ है तो नीचे अग्नि होना चाहिए। परिणमता है तो उसे परिणमन में निमित्त दूसरी चीज़ होना चाहिए। इसीलिए काल परिवर्तनलिंग है। यह एक बात सिद्ध की।

दूसरे प्रकार से, पुद्गलादि के परिवर्तन द्वारा काल की पर्यायें (कम समय, अधिक समय ऐसी काल की अवस्थायें) माप, वह भी गम्य होता है। इसलिए भी काल परिवर्तनलिंग है। ऐसा करके इस जगत में भगवान ने जो छह द्रव्य देखे, उनमें पाँच अस्तिकाय सिद्ध किये और एक अस्ति है परन्तु उसे काय नहीं। बहुत प्रदेशों को समूह नहीं, ऐसा यहाँ सिद्ध किया। कहो, समझ में आया? पुद्गलादि अस्तिकायों का वर्णन करते हुए उनका (परिवर्तन-परिणमन) वर्णन करना चाहिए। उनका परिवर्तन (परिणमन) वर्णन करना चाहिए। किसका? पुद्गलादि का। कोष्ठक में है न? और उनका परिवर्तन वर्णन करते हुए उस परिवर्तन में निमित्तभूत पदार्थ को (काल को) अथवा उस परिवर्तन द्वारा, एक बात। काल को, इतनी एक बात। अथवा परिवर्तन द्वारा जिसकी पर्यायें व्यक्त होती हैं, उस पदार्थ को (काल को) वर्णन करना अस्थान में नहीं गिना जायेगा। इस प्रकार पंचास्तिकाय के वर्णन में काल के वर्णन का समावेश करना

अनुचित नहीं है, ऐसा दर्शाने के लिये इस गाथासूत्र में काल के लिये परिवर्तनलिंग शब्द प्रयोग किया है। कहो, समझ में आया ?

देखो ! काल नाम का पदार्थ है असंख्य। एक जैन की आमनाय मानता नहीं। पाँच अस्तिकाय मानता है, परन्तु उनकी पर्याय से काल माने परन्तु काल दूसरी चीज़ है, ऐसा वे नहीं मानते। इसलिए यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य महाराज परिवर्तनलिंग। परिणमन के द्वारा निमित्त दूसरी चीज़ है, ऐसा और परिणमन का थोड़ा-बहुत काल पर्याय का, इस माप से भी काल का माप, काल की पर्यायों की सिद्धि होती है। छह द्रव्य कहे। अब सातवीं गाथा।

गाथा - ७

अण्णोण्णं पविसंता देंता ओगासमण्णमण्णस्स ।
 मेलंता वि य णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति ॥७॥

परस्पर मिलते रहें अरु परस्पर अवकाश दें।
 जल-दूध वत् मिलते हुए छोड़ें न स्व-स्व भाव को ॥७॥

अन्वयार्थ :- [अन्योन्यं प्रविशन्ति] वे एक-दूसरे में प्रवेश करते हैं, [अन्योन्यस्य] अन्योन्य [अवकाशम् ददन्ति] अवकाश देते हैं, [मिलन्ति] परस्पर [क्षीर-नीरवत्] मिल जाते हैं। [अपि च] तथापि [नित्यं] सदा [स्वकं स्वभावं] अपने-अपने स्वभाव को [न विजहन्ति] नहीं छोड़ते।

टीका :- यहाँ छह द्रव्यों को परस्पर अत्यन्त *संकर होने पर भी वे प्रतिनियत (-अपने-अपने निश्चित) स्वरूप से च्युत नहीं होते, ऐसा कहा है। इसीलिए (-अपने-अपने स्वभाव से च्युत नहीं होते इसलिए), परिणामवाले होने पर भी वे नित्य हैं-ऐसा पहले (छठवीं गाथा में) कहा था; और इसीलिए वे एकत्व को प्राप्त नहीं होते; और यद्यपि जीव तथा कर्म को व्यवहारनय के कथन से एकत्व (कहा जाता) है, तथापि वे (जीव तथा कर्म) एक-दूसरे के स्वरूप को ग्रहण नहीं करते ॥७॥

गाथा - ७ पर प्रवचन

अण्णोण्णं पविसंता देंता ओगासमण्णमण्णस्स ।
 मेलंता वि य णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति ॥७॥

परस्पर मिलते रहें अरु परस्पर अवकाश दें।
 जल-दूध वत् मिलते हुए छोड़ें न स्व-स्व भाव को ॥७॥

देखो, यह छह द्रव्य। छह द्रव्य स्वतन्त्र कैसे हैं, उनकी सिद्धि करते हैं।
 कुन्दकुन्दाचार्य महाराज मूल गाथा द्वारा और अमृतचन्द्राचार्य महाराज, दोनों दिगम्बर

* संकर=मिलन; मिलाप (अन्योन्य-अवगाहरूप) मिश्रतपना।

सन्त थे। दोनों दिगम्बर मुनि। उन्होंने टीका द्वारा इस बात को सिद्ध किया है।

टीका :- यहाँ छह द्रव्यों को.... अर्थात् छह द्रव्य कहे न? छह द्रव्य के नाम आये या नहीं?

मुमुक्षु : जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय...

पूज्य गुरुदेवश्री : आकाश और काल। मुश्किल से पूरा हुआ। कहो, समझ में आया? कितनों को तो लड़के याद न रहे। नाम हो उनके। तुम्हारे तो अकेला है। एक ही है। तुम्हारे कहाँ था। फावाभाई को पूछो, लो! फावाभाई को पूछा भाणिया का नाम क्या है? तो कहे, मुझे भाणिया का नाम नहीं आता। वह सदा यहाँ रहता था। स्त्रियाँ थी, वह खबर नहीं थी गुंदाला में। काठियाणी नहीं? हं। तुम्हारे घर में स्त्रियाँ कितनी हैं? रानी? तो कहे, मुझे खबर नहीं। कामदार को पूछो। ऐसे भी होते हैं। मकनभाई नाम पहिचानते हैं। मैं भी पहिचानता हूँ। यहाँ उतरते, ऐसे निकलते थे। सोने की तलवार (लेकर) निकले। जय महाराज! हैं? मूठ सोने की और निकले। नरम व्यक्ति बेचारा। ऐसा कुछ कोई भान नहीं होता। मीठा खाये। अफीम पीवे। ऐई! दस हजार की आमदनी होगी, इतनी भी उसे तो बहुत न उस समय तो। दस हजार की भी नहीं होगी। परन्तु पाँच हजार की उसे तो उस समय गाँव में... ऐई! लहर करे! खबर नहीं कितनी स्त्रियाँ? घर में तीन, चार स्त्रियाँ थीं, महिलायें। बहुत मुझे खबर नहीं।

इसी प्रकार इस जगत में तू जहाँ है, वहाँ कितने द्रव्य हैं? ऐसा कहते हैं, कहते हैं, छह है (द्रव्य) इस जगत में वस्तुयें। उन छहों में पाँच अस्तिकायरूप से है। है और प्रदेशों का समूह है। तथा एक काल है, उसमें प्रदेशों का समूह नहीं। **यहाँ छह द्रव्यों को परस्पर अत्यन्त संकर....** देखो! एक जगह रहे हैं। जहाँ आत्मा है, वहाँ परमाणु है। वहाँ धर्मास्ति है, वहाँ अधर्मास्ति है, वहाँ आकाश है और वहाँ काल है। कहो, समझ में आया? देखो, यहाँ यह आत्मा है या नहीं? अरूपी, ज्ञानघन भिन्न। वहाँ शरीर के रजकण और कर्म के रजकण और तैजस के रजकण वहाँ ही अन्दर है। इसके अतिरिक्त दूसरे भी वहाँ हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ एक क्षेत्र में अनन्तगुणे रजकण अन्दर दूसरे पड़े हैं। एक धर्मास्तिकाय के असंख्य प्रदेश का समूह भी उतने में है। अधर्मास्तिकाय के

असंख्य प्रदेश हैं। आकाश के असंख्य हैं। और कालाणु असंख्य इतने में द्रव्य हैं। आत्मा जितने में है, उसमें कालाणु असंख्य द्रव्य हैं। इतनी सब उसमें कहाँ इतनी सब यह सब खबर नहीं थी? घर में हीरा, माणिक के भाव, अमुक भाव उसकी इसे सब खबर नहीं थी? क्या कहा?

यह आत्मा यहाँ है या नहीं आत्मा? वह तो अनन्त गुण का पिण्ड अपना स्वरूप अत्यन्त भिन्न रखकर अस्तित्वरूप से पड़ा है। वह आत्मा है, वहाँ शरीर है एक जगह में, क्षेत्र में, हों? वस्तु से भिन्न, एक क्षेत्र में यह शरीर है। यह अनन्त रजकणों का पिण्ड औदारिक, अनन्त रजकणों का पिण्ड कार्मण, अनन्त रजकण का पिण्ड, तैजस वह यहीं का यहीं है। और इतने में धर्मास्तिकाय का असंख्यवाँ भाग पूरा धर्मास्ति प्रगट, उसका असंख्यवाँ भाग असंख्य प्रदेश इतने में यहाँ है। तथापि वह भिन्न-भिन्न है। इतने में अधर्मास्तिकाय, वह भी आत्मा से अत्यन्त भिन्न। इस प्रदेश से धर्मास्तिकाय के प्रदेश भिन्न, धर्मास्ति से अधर्मास्ति के प्रदेश भिन्न। आकाश असंख्य प्रदेश यहाँ है। आकाश भी असंख्य प्रदेश जितने धर्मास्ति के, उतने अधर्मास्ति के उतने ही आकाश के यहाँ हैं। और असंख्य कालाणु इतने हैं। जितने आकाश, धर्मास्ति, अधर्मास्ति के प्रदेश हैं, उतने असंख्य कालाणु द्रव्य वहाँ अन्दर इतने में असंख्य कालाणु हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

जैन में जन्मे और जैन क्या कहते हैं, इसकी खबर भी नहीं होती। दुनिया की बड़ी बाहर की, अमुक की, हैं! ऐ मोहनभाई! रतिभाई कहते हैं कि कभी निकाली नहीं परन्तु तुमने दरकार कहाँ की है? ऐसा ले न? कहो, समझ में आया इसमें? कहो, यह कहा फिर से रात्रि में कोई कह सकेगा? मोहनभाई! नहीं हो सकेगा। लो! यह तो मुझे...

इन छह द्रव्यों को, यह छह कहा या नहीं? यहाँ, यहाँ, हों! प्रत्येक जगह। यहाँ अँगुल का असंख्यवाँ भाग लो, यहाँ सब जगह। तो अँगुल के असंख्य भाग में वहाँ अनन्त तो जीव हैं। उससे अनन्तगुणे वहाँ परमाणु हैं। इतने अँगुल के असंख्यवें भाग में धर्मास्तिकाय का असंख्यवाँ भाग ऐसे असंख्य प्रदेश हैं। अधर्मास्तिकाय का असंख्यवाँ भाग ऐसे असंख्य प्रदेश हैं। आकाश लोक के असंख्य प्रदेश, उसका असंख्यवाँ भाग, उसके असंख्य प्रदेश हैं। इतने में असंख्य कालाणु द्रव्य हैं। इतने यहाँ इतने भाग में इस

प्रमाण पूरे लोक प्रमाण है। पहले यह आत्मा का कहा। पश्चात् यह आत्मा का कहा। कहो, समझ में आता है या नहीं, ऐ देवानुप्रिया ? तथापि एक-दूसरे भिन्न हैं, ऐसा सिद्ध करना है। हाँ, कोई किसी को स्पर्श नहीं करते। कोई द्रव्य किसी द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। अड़ता नहीं, समझते हो ? छूते नहीं हैं।

स्वयं अपने स्वरूप में—आत्मा, आत्मा के स्वरूप में है। परमाणु, परमाणु के स्वरूप में है। धर्मास्ति, धर्मास्ति के स्वरूप में है। अधर्मास्ति अधर्मास्ति अर्थात् ? धर्म-अधर्म ऐसे दो पदार्थ भगवान केवली तीर्थकरदेव ने देखे हैं। अरूपी हैं। परन्तु आगे बढ़े तो उसे न्याय से सिद्ध हो न ? और आकाश नाम का सर्वव्यापक उसमें लोक का आकाश भाग, उसका असंख्यवाँ भाग यहाँ अन्दर है। इस प्रमाण पूरे लोक में असंख्य कालाणु हैं। कहो, समझ में आया ?

इस प्रकार अग्नि सुलगती हो न अग्नि ? ज्वाला अग्नि। वहाँ भी छहों द्रव्य हैं। तब तो यह बात निकाली है। जहाँ अग्नि का भड़का है न, अरे दियासलाई लो न, यह बीड़ी पीवे उसमें। इतने भड़का में वहाँ छह द्रव्य है। उस भड़का में अनन्त परमाणु रजकण दिखते हैं, असंख्य जीव एकेन्द्रिय अग्नि के असंख्य जीव। इसके अतिरिक्त वहाँ रहे हुए एकेन्द्रिय के निगोद के अनन्त। वहाँ इतने में रहे हुए असंख्य कालाणु। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश के असंख्यवें भाग के प्रदेश। उस दियासलाई के भड़का में इतना है। तथापि कोई किसी को अवरोधक नहीं है, छूते नहीं हैं, विघ्न नहीं करते, एक दूसरे में प्रवेश नहीं करते, स्वतन्त्र रहे हुए हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : तिजोरी को ताला लगाया हो वहाँ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तिजोरी को ताला लगाया हो, वहाँ भी अन्दर छह द्रव्य हैं। उस ताला में और अन्दर में ताला का भाग है न ताला, उसका डालने का नकुचा हो, उतने भाग में छह द्रव्य हैं। उसमें अनन्त तो सूक्ष्म निगोद जीव है। इतना ताला का बिचला भाग होता है न, क्या कहलाता है वह ? चाबी डालने का नकुचा। उतने में अनन्त तो सूक्ष्म निगोद जीव अन्दर है। अनन्त जीव, परमाणु सूक्ष्म हैं। और वे दिखायी दें, वे भी अनन्त स्थूल पदार्थ है। असंख्य (प्रदेशी) धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश,

(तथा) असंख्य कालाणु द्रव्य हैं। समझ में आया ? भरे हैं। देखो, छह द्रव्यों को परस्पर अत्यन्त संकर होने पर भी.... मिलन-मिलाप होने पर भी। अन्योन्य अवगाहरूप से क्षेत्र में मिश्रितपना होने पर भी वे प्रतिनियत (-अपने-अपने निश्चित्) स्वरूप से च्युत नहीं होते.... वे अपने स्वरूप से च्युत होकर कोई पररूप नहीं होते। प्रत्येक स्थान में अनन्त पड़े होने पर भी प्रत्येक अपने स्वरूप में है। पररूप नहीं होते। कहो, समझ में आया ?

देखो, इसमें कर्म की भी विशिष्टता लेंगे, ऐसा भगवान ने कहा है। तो कहा है, इसलिए उसका अर्थ (कि) ऐसा है। ऐसा वस्तु का स्वरूप है। इसीलिए (-अपने-अपने स्वभाव से च्युत नहीं होते इसीलिए), परिणामवाले होने पर भी.... आत्मा क्षण-क्षण में बदलता है, परमाणु क्षण-क्षण में बदलता है, कालाणु क्षण-क्षण में बदलता है, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश के असंख्य प्रदेश भी यहाँ बदलते हैं। ऐसे बदलने पर भी वे नित्य हैं — ऐसा पहले (छठवीं गाथा में) कहा था;.... ऊपर कहा था। समझ में आया ?

वे परिणामते होने पर भी अनित्य नहीं हैं। ऐसा प्रतिनियत अपने स्वरूप को छोड़ते नहीं, इसलिए नित्य भी हैं। ओहोहो ! जैन में जन्मे हुए को यह सब नया सीखना पड़े। ऐकड़ा सीखे दूसरे (परन्तु) यह सीखने की दरकार (की नहीं)। जेटुभाई ! मशीन की प्रत्येक बातें आती है। कैसे मशीन घूमती है, अटकती है और ऐसा होता है और ऐसा होता है। तेल डालूँ, यह करूँ और यह करूँ। यह चाबी यहाँ डालना, चाबी का या अमुक। इस जगत में क्या है ? तू है वहाँ दूसरे, तथापि दूसरे और तू दोनों एक हुए नहीं। एक यहाँ रहे होने पर भी हुए नहीं। रहे, तथापि हुए नहीं। एक जगह छह रहे, तथापि एक हुए नहीं। आहाहा ! कहो, समझ में आया इसमें ? चन्दुभाई ! यह तो समझ में आये ऐसा है। यह तो न्याय बहुत सादी भाषा से है। बहुत ऐसा सूक्ष्म नहीं आता।

और इसीलिए वे एकत्व को प्राप्त नहीं होते;.... देखो ! यहाँ निगोद के अनन्त आत्मा हैं। तथापि यह आत्मा उस दूसरे आत्मारूप नहीं होता। और एक आत्मा रजकणरूप भी हुआ नहीं, कर्मरूप आत्मा हुआ नहीं। आत्मा, आत्मारूप अन्दर है। कर्म के रजकणरूप हुआ नहीं। कर्म के रजकण आत्मारूप हुए नहीं। एक रजकण दूसरे रजकणरूप

हुआ नहीं। अधर्मास्ति का प्रदेश आकाश के प्रदेशरूप हुआ नहीं। आकाश का प्रदेश अधर्मास्तिरूप हुआ नहीं। और उसमें अधर्मास्ति का प्रदेश आकाश और धर्मास्तिरूप हुआ नहीं अथवा परमाणु या जीवरूप हुआ नहीं। आहाहा! चौदह ब्रह्माण्ड की यह नगरी है। समझ में आया? उसमें प्रत्येक वस्तु एक जगह रहने पर भी, अपना-अपना जो स्वरूप है, नित्यानित्य टिककर परिणमना। परिणमने पर भी टिके रहना। उस अपने स्वरूप से कोई तीन काल-तीन लोक में अपने स्वरूप को कोई छोड़ता नहीं। कहो, बराबर होगा? यह कर्मरूप है, ऐसा हुआ नहीं आत्मा, ऐसा कहते हैं। क्या? और कर्म उसे नुकसान करते हैं? कर्म जीवरूप हुआ नहीं। यह आता है, देखो अभी आयेगा। नीचे पढ़ लिया है या नहीं? नहीं पढ़ लिया। कहो, समझ में आया? आहाहा!

यह तत्त्व का मूल ज्ञान घट गया न, इसलिए विवाद उठे कर्म के। और बहुत वाड़ा बँध गये। जहाँ ज्ञान कम हो, जहाँ पिता मर जाये, लक्ष्मी जाये, फिर लड़कों में विवाद हो। मोहनभाई! करोड़, दो करोड़ की पूँजी हो, पिता हो, तब तक दिक्कत (नहीं आती)। एक तो पूँजी जाये और फिर पिता मर जाये। ऐई... लड़कों में झगड़ा (शुरु हो जाये) विवाद कोर्ट में चढ़े। इसी प्रकार केवलज्ञान आदि ज्ञान या विशेष ज्ञान की दशा घट गयी, भगवान तीर्थकर पिता का विरह। समझ में आया?

इसलिए सत्य की समझ बिना, ऐई झगड़ा, वाड़ा। ऐसा होता है, वैसा होता है, ऐसा होता है। बराबर ज्ञान हो तो यथार्थ सम्प्रदाय में से दो, तीन, चार भाग पड़े नहीं। परन्तु वस्तु घट गयी। सुननेवाले ने भी समझने की दरकार की नहीं। कमाने और खाने-पीने की दरकार, स्त्रियाँ, लड़के सम्हालने की दरकार, दरकार, हों! कर कुछ सकता नहीं। क्या कहा? मलूकचन्दभाई! कर कुछ सकता नहीं। परन्तु चिन्ता, इसका ऐसा करूँ और इसे सम्हालूँ। हराम कुछ (कर सकता हो तो) सब सम्हाल हुआ ही है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं।

अनन्त द्रव्य एक इतने अंगुल के असंख्य भाग में रहे हैं। अनन्त परमाणु और अनन्त जीव। असंख्य आकाश प्रदेश, असंख्य धर्मास्ति प्रदेश, असंख्य अधर्मास्ति (प्रदेश), असंख्य काल द्रव्य इतने में असंख्य प्रदेश। धर्मास्ति पूरा द्रव्य इतने में नहीं

रहता। धर्मास्ति द्रव्य पूरे लोक प्रमाण है। अधर्मास्ति द्रव्य पूरे लोक प्रमाण है। और आकाश द्रव्य पूरे लोक और अलोक पूरे प्रमाण आकाशद्रव्य है। इतने में पूरा द्रव्य नहीं रहता। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश। परन्तु कालाणु असंख्य द्रव्य रहते हैं। और अनन्त परमाणु और अनन्त जीव इतने में रहे हैं। तथापि.... एक जगह रहे हैं, हों! इसमें लिखा है न इसमें। अपने-अपने नहीं होते। क्यों? नीचे कोष्ठक में है। अन्योन्यअवगाहरूप मिश्रितपना होने पर भी। अन्योन्यअवगाह, अन्योन्यअवगाह। नीचे (फुटनोट में) एक जगह रहे होने पर भी वे एकपना नहीं पाते। कहो, समझ में आया इसमें?

यह एक आत्मा, दूसरे आत्मारूप नहीं होता। दूसरा आत्मा एक आत्मारूप नहीं होता। आत्मा रजकणरूप नहीं होता। रजकण आत्मारूप नहीं होता। एक रजकण दूसरे रजकणरूप नहीं होता। एक कालाणु रजकणरूप नहीं होता। एक रजकण कालाणुरूप नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु :आश्वासन बराबर मिलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :ऐ मोहनभाई! एक घण्टे यहाँ आश्वासन के लिये तो इकट्ठे हो जाते हैं, ऐसा कहते हैं। इकट्ठे होंगे? किसी के साथ कोई नहीं मिलता। व्यर्थ का माँडकर बैठा है। यहाँ अन्दर रहे हुए, उसका नहीं होता तो अन्य स्त्री-पुत्र तो कहीं भिन्न रह गये, दूर रह गये वे तो। पैसा और उसका बँगला-मकान कहीं दूर रह गये। यहाँ रहे हुए दूसरे द्रव्य भी उसके होते नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : यह समझने के लिये निवृत्ति लेनी चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : निवृत्ति अन्दर में लेनी चाहिए। स्त्री-पुत्र छोड़कर बाबा होकर बैठे तो कहीं समझ में आये, ऐसा नहीं है यह। सेठ! ऐसा कि इसके लिये बाहर से वस्त्र घटाये और अमुक करे, इसलिए फिर समझ में आये। धूल।

मुमुक्षु : आश्रम में जाना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसे आश्रम में जाना पड़े। स्त्री बिना के हो गये हैं न, अब वहाँ रहना और वहाँ जाना। ऐसा यहाँ नहीं है। इसे अन्दर में निवृत्ति लेनी चाहिए।

मुमुक्षु : अन्दर में निवृत्त ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निवृत्त ही है निवृत्ति। निवृत्त ही है, यहाँ क्या कहा ? पररूप नहीं है, फिर और पर से निवृत्ति करना, इसका अर्थ क्या ? देवानुप्रिया !

यह आत्मा कभी अपने स्वरूप से छूटकर पररूप तो यहाँ हुआ नहीं। अनन्त काल से पर में मध्य में रहा है, वह मध्य रहा होने पर भी एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप तीन काल-तीन लोक में होते नहीं। सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ भी छह द्रव्य हैं। वहाँ भी छह द्रव्य हैं। सेठी ! सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ ? छह कैसे हैं ? छह द्रव्य है। सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ इतने में अनन्त सिद्ध हैं। इतने अर्थात् साढ़े तीन हाथ के। साढ़े तीन हाथ की छोटी में छोटी अवगाहना होती है। बड़ी सभा पाँच सौ धनुष की आत्मा की ऊँचाई होती है। एक-एक आत्मा जहाँ है, वहाँ अनन्त सिद्ध है। वहाँ अनन्त निगोद है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु के असंख्य जीव हैं। अनन्त रजकण हैं। धर्मास्ति का असंख्यवाँ भाग सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ है। अधर्मास्ति का असंख्यवाँ भाग, आकाश का असंख्यवाँ भाव, कालाणु असंख्य द्रव्य एक-एक सिद्ध विराजते हैं, वहाँ उनके अन्तर आकाश के प्रदेश पर असंख्य कालद्रव्य है।

तथापि सिद्ध उस कालरूप नहीं होते। परमाणु उन सिद्धरूप नहीं होते। एक सिद्ध उन दूसरे सिद्धरूप नहीं होते। कहो, बदल जाये या नहीं ? 'सिद्ध में ज्योति में ज्योति मिलाई' हैं ? बेचारे दुःखी हैं। आगे नहीं जा सकते। अरे भगवान ! सब, परतन्त्र एक अंश भी नहीं। पूर्णानन्द की प्राप्ति पररूप हुए नहीं, स्वरूप को छोड़ा नहीं। यहाँ भी स्वतन्त्र है, वहाँ तो पूर्ण स्वतन्त्र और आनन्द के अनुभव में हैं, सीधे। अपने अतीन्द्रिय आनन्द का पूर्ण अनुभव, उसका नाम मुक्ति। इस संसार में राग-द्वेष और अज्ञान का अनुभव, वह संसार। दूसरा कोई संसार नहीं। राग-द्वेष और अज्ञान का अनुभव, वह संसार। ज्ञान और वीतरागीदशा का पूर्ण आनन्द का अनुभव, उसका नाम मुक्ति। और आत्मा के स्वभाव के भानसहित अपूर्ण ज्ञान, अपूर्ण आनन्द, अपूर्ण वीतरागता, वह साधकभाव। पूर्ण विज्ञान, पूर्ण वीतराग, पूर्ण आनन्द, वह मुक्तिभाव और अकेला अज्ञानभाव, राग-द्वेष का अनुभव अकेला संसारभाव। वह भी स्वतन्त्र है। समझ में आया ?

एक भी बात का अभ्यास नहीं होता। और फिर समझाये धन्धा... धन्धा... धन्धा

पाप का। पूरे दिन चौबीस घण्टे पाप। पाप होगा या क्या होगा? पुण्य होगा? हैं? क्यों कनुभाई! इतना कमाकर देना, हैं? क्यों लड़कों को कुछ सिखलावें तो भाव अच्छे नहीं होंगे। धूल में भी नहीं, पाप है। चौबीस घण्टे इसका यह करना और इसका यह करना। भाव, हों! कर सकता नहीं, हराम!

कहते हैं कि आत्मा उसके पाप के या पुण्य के परिणाम के अस्तित्व में रहा है। कहते हैं, आनन्द के अस्तित्व में रहा है। ठेठ साधक की अवस्था में रहा है। वह पररूप नहीं होता और परवस्तु वह इसरूप नहीं होती। आहाहा!

मुमुक्षु : पुरुषार्थ तो करने का कहते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहा यह? यह पर से भिन्न है, इसलिए मुझे स्वभाव की दृष्टि करना, इसका नाम पुरुषार्थ। पुरुषार्थ क्या कूदना है कहीं?

मुमुक्षु : यह अलग प्रकार का पुरुषार्थ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वस्त्र छोड़ना और अमुक छोड़ना। यह पुरुषार्थ, मान्यता का उल्टा पुरुषार्थ है मान्यता का।

आत्मा पर से निराला है। पररूप हुआ नहीं। मात्र उसकी दशा में स्वरूप का अज्ञान और राग-द्वेष, उसे स्वरूप के ज्ञान और वीतरागभाव से टाले जा सकते हैं। यह उसका पुरुषार्थ। दूसरा कोई पुरुषार्थ है नहीं। कहो, समझ में आया? और इसीलिए वे इससे अर्थात् कि परिणामते होने पर भी नित्य रहते हैं। इसलिए वे एकपना नहीं पाते। और यद्यपि अब आया। इसका अधिक तो अज्ञानी को यह है न, इसलिए यह डाला है। हाँ, नहीं तो यहाँ हाँ, सामान्य बात थी परन्तु अमृतचन्द्राचार्य... ऐसा कि यह कर्म और आत्मा दोनों एक हो गये हैं? नहीं। इसलिए हो जगत की चीज़ जैनों को ऐसा कि हमारे तो कर्म बाधक है। उन्होंने ईश्वर कर्ता, आत्मा के अधिकार आदि का, जैन का कर्म कर्ता। ऐसा नहीं। **जीव तथा कर्म को व्यवहारनय के कथन से एकत्व (कहा जाता) है...** एकपना कहा जाता है न? है, ऐसा कहो न एकपना है कि व्यवहार ऐसा। दोनों एक जगह है न, इसलिए एक अपेक्षा से कहने में आता है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध के एकक्षेत्रावगाह के कारण उन्हें एकपना है।

तथापि वे (जीव तथा कर्म) एक-दूसरे के स्वरूप को ग्रहण नहीं करते। देखो ! यह जीव के परिणाम को कर्म नहीं पकड़ता और कर्म के उदय परिणाम को जीव नहीं पकड़ता। आहाहा ! कर्म जो जड़ है, उसका उदयभाव, उदयभाव अर्थात् कर्म की पर्याय, उसे जीव नहीं पकड़ता। कर्म जड़ है, आठ कर्म, उनका-मोह का उदय आवे तो ज्ञानावरणीय का उदय, दर्शनावरणीय का उदय, अन्तराय का उदय या आयुष्य का उदय, वेदनीय का, नाम का और गोत्र का (उदय)। यह ज्ञानावरणीय के उदय को जीव नहीं पकड़ता। तथा ज्ञानावरणीय के उदय ने जीव की पर्याय को पकड़ा नहीं। वैसे दर्शनावरणीय के उदय को जीव नहीं पकड़ता। क्योंकि वह उदय जड़ की पर्याय है। जड़ को आत्मा नहीं पकड़ता। तथा आत्मा की पर्याय को दर्शनावरणीय नहीं पकड़ता। वैसे मोहनीय का उदय अन्दर आया, वह जड़ के परमाणु की पर्याय है। उसे आत्मा नहीं पकड़ता और आत्मा के विकार की पर्याय को कर्म नहीं पकड़ता।

मुमुक्षु : पकड़ता नहीं तो उदय कहाँ रहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उदय किसमें रहा उसमें। उदय अर्थात् बाहर पड़ा था, वह परिणाम। विपाक होकर आया। दाने थे वे पाक होकर पके। कोठी में थे वे पके। उसमें पका, उसमें पर में कहाँ घुस गया मुँह में। इसी प्रकार सत्ता में रजकण जो थे, वे पके। पाक आया। कच्चा आम पका। पका, उसमें किसी के मुँह में कहाँ आ गया ?

मुमुक्षु : वह तो पैसा देकर देते....

पूज्य गुरुदेवश्री : दिये। पैसा कौन दे और ले, सब बातें हैं। कहो, समझ में आया इसमें ? आहाहा !

वहाँ भ्रमरूप वहाँ भ्रमणा है। जहाँ कल्पना, जल्पना, वहाँ भ्रमरूप वह तो भ्रमणा है। ऐसा कहते हैं। यह मेरा और तेरा और यह। यह शिथिल पड़ जाता है या नहीं रात्रि में अकेला हो वहाँ। यह कहते हैं, उसकी भ्रमणा की कल्पना है। ऐसा कहते हैं। परन्तु वह भ्रमणा किसी ने करायी नहीं। कर्म ने इसे पकड़ाई नहीं और कर्म को इसने पकड़ा नहीं। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : शरीर ने तो करायी न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कल्पना, जल्पना छूट गया। मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ। मुझे और पर को सम्बन्ध नहीं है। पर का मैं कर्ता-हर्ता नहीं। पर मुझे कर्ता-हर्ता हो नहीं सकता। ज्ञानस्वरूप चिदानन्द ऐसा (जानने से) कल्पना गयी, स्वरूप का भान हुआ। ज्ञाता-दृष्टा मैं, इसका नाम भान। कहो, समझ में आया ?

कहो, यह पुरुषार्थ है या नहीं अब ? कौन सा पुरुषार्थ तुम्हारे करना है ? यह थोड़ा ऐसा खाना, या तो ऐसा पीना, या तो यह लेना और ऐसे वस्त्र बदलना, वह सब पुरुषार्थ। और या जनेऊ पहनना। जनेऊ पहनी है या नहीं ? हैं ? है न ? लो ! तुमने नहीं कहा तो तुम्हारे मित्र ने कहा। वह तो यहाँ आया था न ? कहाँ इस प्रमाण मुनि को आहार दिया, भक्ति की, यह कराया। सोनगढ़ हमारे आश्रम की है। ऐसा आया था, हों ! बलिहारी, उसने नहीं लिखा था। परन्तु उसका अर्थ यह कि देखो, यह विशेषता। विशेषता।

मुमुक्षु : उसने भी यहाँ आकर हमारी बात स्वीकृत रखी।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वीकृत रखी। हमारे मुनि को स्वीकृत रखा। हमारे मुनि को आहार, पानी, भक्ति से दिया। नमस्कार करके दिया। कभी नमस्कार करनेवाले वे लोग नहीं। उन्होंने उसमें से भ्रष्ट होकर नमस्कार किया। वे भ्रष्ट होकर, ऐसा नहीं लिखे परन्तु उसका अर्थ ऐसा लिखता है कि वहाँ के ऐसा किया, उन्होंने अर्थात् कि नहीं थे करनेवाले, वह किया ऐसा। उसका क्या अर्थ हुआ ?

मुमुक्षु : वह तो होने का था वह हो गया साहेब अब।

पूज्य गुरुदेवश्री : होने का था वह.... वह तो होने का था, उसका जानने का ज्ञान कराते हैं न ? कहो, समझ में आया इसमें ?

देखो, मोहनीयकर्म का उदय, इस आत्मा ने पकड़ा नहीं। आत्मा की पर्याय राग-द्वेष की, उसे मोहकर्म पकड़ता नहीं। वैसे अन्तराय के उदय की पर्याय को जीव ने पकड़ा नहीं। जीव की पर्याय को दानान्तराय पकड़ रखे, ऐसा नहीं। वैसे वेदनीय का उदय आत्मा को सुख-दुःख के परिणाम को पकड़ावे, ऐसा नहीं। वह वेदनीय का उदय आत्मा को पकड़े, ऐसा नहीं। इसी प्रकार आयुष्य का उदय। आयुष्य के उदय को

आत्मा ने पकड़ा नहीं और आत्मा के परिणाम की रहने की योग्यता वहाँ है, उसे आयुष्य के उदय ने पकड़ा नहीं।

इसी प्रकार नाम(कर्म) का उदय, इस अरूपी में रूपी आया। आत्मा के अरूपीपने के परिणाम को उसने पकड़ा है, ऐसा नहीं है। तथा अरूपी परिणाम ने नामकर्म के परिणाम को पकड़ा है, ऐसा नहीं है। तथा गोत्रकर्म के उदय को आत्मा ने पकड़ा है, ऐसा नहीं। आत्मा के परिणाम को गोत्रकर्म ने पकड़ा है, ऐसा नहीं। आठों आ गये। हैं? अर्थात्? बोलने में आवे जीव, तब तो यह कहा? बोलने में आवे, उसमें क्या हो गया?

मुमुक्षु : कौन बोले?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहो। बोले भाषा जड़। उसमें आत्मा को क्या है। बोलने में आवे अर्थात् चूहे को मामा कहते हैं, नहीं कहते? शिथिल पड़ता होगा। यह तो स्वार्थ के कारण बोलते हैं। चूहा मामा अर्थात् भाईसाहेब! कपड़े कुतरना नहीं। हाँ, ऐसा। मेरा सामान-बामान कुतरना नहीं। देना चाहिए। ले कहाँ जायेगा तू? ऐसा करके स्वार्थिया बोलते हैं वे। चूहा मामा कहलाये। ऐसा कहते हैं न? मामा तो तू भरना चाहिए, उसके बदले समूह का कुछ ले जायेगा, कुतर जायेगा कुछ। दाणा-बाणा के वे हों तो कुतरकर उसके बिल में दाणा ले जाये। कहो, मोसाला पूरता होगा वह? इसी प्रकार बोला जाता है कि कर्म आत्मा के अर्थात् आत्मा के कर्म हो जाते होंगे?

मुमुक्षु : कोई देश में होते होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई देश में होते हों तो उसे खाना वहाँ। कहो, समझ में आया इसमें?

व्यवहारनय के कथन से एकत्व है.... अर्थात् निमित्त-निमित्त एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध के कारण से उसे खास सम्बन्ध के कारण से, लो न! एकत्व (कहा जाता) है। असद्भूतव्यवहारनय से, झूठी नय से कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। लो! तथापि वे (जीव तथा कर्म) एक-दूसरे के स्वरूप को ग्रहण नहीं करते। महासिद्धान्त है। मोक्षमार्गप्रकाशक में भी टोडरमलजी ने कहा है, एक जगह रहे हैं, इकट्ठे, परन्तु जिसका कोई कर्ता-हर्ता नहीं। कि आत्मा की पर्याय का कर्म कर्ता और कर्म की पर्याय

का आत्मा कर्ता। एक जगह भले रहे हों, इसलिए कर्ता-हर्ता नहीं है। कोई कर्म का आत्मा कर्ता और आत्मा के परिणाम का-विकार का कर्म कर्ता, ऐसा है नहीं कभी। तो भी कहे, नहीं.... नहीं.... नहीं। व्यवहार से कर्ता, व्यवहार कर्ता। व्यवहारनय है या नहीं? निश्चयनय और व्यवहारनय। अरे, सुन न...!

कहते हैं, एक खास आचार्य ने डाला, देखो! 'मेलंता वि य णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति' खास एक यह बात अलग की है। नहीं तो यहाँ यह छह द्रव्य एकसाथ होने पर भी अपने स्वरूप को छोड़ते नहीं, इतनी बात है। परन्तु अमृतचन्द्राचार्य... यह लकड़ी (विपरीतता) है न जगत और कर्म एक जगह रहे, भाई! दूसरे कर्म इसे बाधक नहीं परन्तु इसके तो बाधाक हैं न? कहते हैं कि इसके कर्म की पर्याय तुझे राग में पकड़ती नहीं और राग की पर्याय उसके उदय को पकड़ती नहीं। कहो, ऐसे 'जड़ और चैतन्य का दोनों प्रगट स्वभाव भिन्न'। प्रगट स्वभाव भिन्न। ऐसा जाने बिना इसे जड़ से पृथक् आत्मा की मान्यता सच्ची नहीं होती। समझ में आया? यह सात (गाथा) हुई, लो! अब बड़ी आठवीं आती है। बड़ी विवादी गाथा। यह एक द्रव्य में सब आवे, अभी एक व्यक्ति ऐसा कहेगा। क्योंकि सब इसमें सब द्रव्य के लिये यह है। एक द्रव्य के लिये पूरी बात है। ऐसा कहते हैं न? दो मत है न जगत में? सब छहों की इसमें बात है।

गाथा - ८

सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया।
 भंगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का॥८॥
 सत्ता जनम-लय-ध्रौव्यमय अर एक सप्रतिपक्ष है।
 सर्वार्थ थित सविश्वरूप-रु अनन्त पर्ययवंत है॥८॥

अन्वयार्थ :- [सत्ता] सत्ता [भंगोत्पादध्रौव्यात्मिका] उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक,
 [एका] एक, [सर्वपदार्था] सर्वपदार्थस्थित, [सविश्वरूपा] सविश्वरूप, [अनन्तपर्याया]
 अनन्त पर्यायमय और [सप्रतिपक्षा] सप्रतिपक्ष [भवति] है।

टीका :- यहाँ अस्तित्व का स्वरूप कहा है।

अस्तित्व अर्थात् सत्ता नामक सत् का भाव अर्थात् सत्त्व।

विद्यमानमात्र वस्तु न तो सर्वथा नित्यरूप होती है और न सर्वथा क्षणिकरूप होती है। सर्वथा नित्य वस्तु को वास्तव में क्रमभावी भावों का अभाव होने से विकार (-परिवर्तन, परिणाम) कहाँ से होगा? और सर्वथा क्षणिक वस्तु में वास्तव में प्रत्यभिज्ञान का अभाव होने से एकप्रवाहपना कहाँ से रहेगा? इसलिए प्रत्यभिज्ञान के हेतुभूत किसी स्वरूप से ध्रुव रहती हुई और किन्हीं दो क्रमवर्ती स्वरूपों से नष्ट होती हुई तथा उत्पन्न होती हुई-इस प्रकार परमार्थतः एक ही काल में तिगुनी (तीन अंशवाली) अवस्था को धारण करती हुई वस्तु सत् जानना। इसलिए 'सत्ता' भी 'उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक' (त्रिलक्षणा) जानना; क्योंकि भाव और भाववान का कथंचित् एक स्वरूप होता है।

और वह (सत्ता) 'एक' है, क्योंकि वह त्रिलक्षणवाले समस्त वस्तुविस्तार का सादृश्य सूचित करती है।

और वह (सत्ता) 'सर्वपदार्थस्थित' है; क्योंकि उसके कारण ही (-सत्ता के कारण

१. सत्त्व=सत्पना; अस्तित्वपना; विद्यमानपना; अस्तित्व का भाव; 'है' ऐसा भाव।
२. वस्तु सर्वथा क्षणिक हो तो 'जो पहले देखने में (-जानने में) आई थी वही यह वस्तु है' ऐसा ज्ञान नहीं हो सकता।
३. सत्ता भाव है और वस्तु भाववान है।

ही) सर्व पदार्थों में त्रिलक्षण की (-उत्पादव्ययध्रौव्य की), 'सत्' ऐसे कथन की तथा 'सत्' ऐसी प्रतीति की उपलब्धि होती है।

और वह (सत्ता) 'सविश्वरूप' है, क्योंकि वह विश्व के रूपोंसहित अर्थात् समस्त वस्तुविस्तार के त्रिलक्षणवाले स्वभावोंसहित वर्तती है।

और वह (सत्ता) 'अनन्तपर्यायमय' है। क्योंकि वह त्रिलक्षणवाली अनन्त द्रव्यपर्यायरूप व्यक्तियों से व्याप्त है। (इस प्रकार ^१ सामान्य-विशेषात्मक सत्ता का उसके सामान्य पक्ष की अपेक्षा से अर्थात् महासत्तारूप पक्ष की अपेक्षा से वर्णन हुआ।)

ऐसी होने पर भी वह वास्तव में ^२ निरंकुश नहीं है किन्तु ^३ सप्रतिपक्ष है। (१) सत्ता को असत्ता प्रतिपक्ष है; (२) त्रिलक्षणा को अत्रिलक्षणपना प्रतिपक्ष है; (३) एक को अनेकपना प्रतिपक्ष है; (३) सर्वपदार्थस्थित को एकपदार्थस्थितपना प्रतिपक्ष है; (५) सविश्वरूप को एकरूपपना प्रतिपक्ष है; (६) अनन्त पर्यायमय को एकपर्यायमयपना प्रतिपक्ष है।

(उपर्युक्त सप्रतिपक्षपना स्पष्ट समझाया जाता है:-)

सत्ता द्विविध है : महासत्ता और अवान्तरसत्ता। उनमें सर्व पदार्थसमूह में व्याप्त होनेवाली, सादृश्य अस्तित्व को सूचित करनेवाली महासत्ता (सामान्यसत्ता) तो कही जा चुकी है। दूसरी, प्रतिनिश्चित (-एक-एक निश्चित) वस्तु में रहनेवाली, स्वरूप-अस्तित्व को सूचित करनेवाली अवान्तरसत्ता (विशेषसत्ता) है।

(१) वहाँ महासत्ता अवान्तरसत्तारूप से असत्ता है और अवान्तरसत्ता महासत्तारूप से असत्ता है, इसलिए सत्ता को असत्ता है (अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होने से 'सत्ता' है, वही अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'असत्ता' भी है)।

१. यहाँ 'सामान्यात्मक' का अर्थ 'महा' समझना चाहिए और 'विशेषात्मक' का अर्थ 'अवान्तर' समझना चाहिए। सामान्य विशेष के दूसरे अर्थ यहाँ नहीं समझना।
२. निरंकुश=अंकुशरहित; विरुद्ध पक्षरहित; निःप्रतिपक्ष। (सामान्यविशेषात्मक सत्ता का ऊपर जो वर्णन किया है, वैसी होने पर भी सर्वथा वैसी नहीं है; कथंचित् (सामान्य-अपेक्षा से) वैसी है। और कथंचित् (विशेष-अपेक्षा से) विरुद्ध प्रकार की है।)
३. सप्रतिपक्ष=प्रतिपक्षसहित; विपक्षसहित; विरुद्ध पक्षसहित।

(२) जिस स्वरूप से उत्पाद है, उसका (-उस स्वरूप का) उस प्रकार से उत्पाद एक ही लक्षण है; जिस स्वरूप से व्यय है, उसका (-उस स्वरूप का) उस प्रकार से व्यय एक ही लक्षण है और जिस स्वरूप से ध्रौव्य है, उसका (-उस स्वरूप का) उस प्रकार से ध्रौव्य एक ही लक्षण है; इसलिए वस्तु के उत्पन्न होनेवाले, नष्ट होनेवाले और ध्रुव रहनेवाले स्वरूपों में से प्रत्येक को त्रिलक्षण का अभाव होने से त्रिलक्षणा (सत्ता) को अत्रिलक्षणपना है। (अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होने से 'त्रिलक्षणा' है, वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'अत्रिलक्षणा' भी है।)

(३) एक वस्तु की स्वरूपसत्ता अन्य वस्तु की स्वरूपसत्ता नहीं है, इसलिए एक (सत्ता) को अनेकपना है। (अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होने से 'एक' है, वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'अनेक' भी है।)

(४) प्रतिनिश्चित (व्यक्तिगत निश्चित) पदार्थ में स्थित सत्ताओं द्वारा ही पदार्थों का प्रतिनिश्चितपना (-भिन्न-भिन्न निश्चित व्यक्तित्व) होता है, इसलिए सर्वपदार्थस्थित (सत्ता) को एकपदार्थस्थितपना है। (अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होने से 'सर्वपदार्थस्थित' है, वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'एकपदार्थस्थित' भी है।)

(५) प्रतिनिश्चित एक-एक रूपवाली सत्ताओं द्वारा ही वस्तुओं का प्रतिनिश्चित एक एकरूप होता है, इसलिए सविश्वरूप (सत्ता) को एकरूपपना है (अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होने से 'सविश्वरूप' है, वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'एकरूप' भी है।)

(६) प्रत्येक पर्याय में स्थित (व्यक्तिगत भिन्न-भिन्न) सत्ताओं द्वारा ही प्रतिनिश्चित एक-एक पर्यायों का अनन्तपना होता है, इसलिए अनन्त पर्यायमय (सत्ता) को एकपर्यायमयपना है (अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होने से 'अनन्त-पर्यायमय' है, वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'एकपर्यायमय' भी है।)

इस प्रकार निरवद्य है (अर्थात् ऊपर कहा हुआ सर्व स्वरूप निर्दोष है, निर्बाध है, किञ्चित् विरोधवाला नहीं है) क्योंकि उसका (-सत्ता के स्वरूप का) कथन सामान्य और विशेष के प्ररूपण की ओर ढलते हुए दो नयों के आधीन है।

भावार्थ :- सामान्यविशेषत्मक सत्ता के दो पक्ष हैं :- एक पक्ष वह महासत्ता और दूसरा पक्ष वह अवान्तरसत्ता।

(१) महासत्ता अवान्तरसत्तारूप से असत्ता है और अवान्तरसत्ता महासत्तारूप से असत्ता है; इसलिए यदि महासत्ता को 'सत्ता' कहे तो अवान्तरसत्ता को 'असत्ता' कहा जायेगा।

(२) महासत्ता उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ऐसे तीन लक्षणवाली है, इसलिए वह 'त्रिलक्षणा' है। वस्तु के उत्पन्न होनेवाले स्वरूप का उत्पाद ही एक लक्षण है, नष्ट होनेवाले स्वरूप का व्यय ही एक लक्षण है और ध्रुव रहनेवाले स्वरूप का ध्रौव्य ही एक लक्षण है; इसलिए उन तीन स्वरूपों में से प्रत्येक की अवान्तरसत्ता एक ही लक्षणवाली होने से 'अत्रिलक्षणा' है।

(३) महासत्ता समस्त पदार्थसमूह में 'सत्, सत्, सत्' ऐसा समानपना दर्शाती है, इसलिए एक है। एक वस्तु की स्वरूपसत्ता अन्य किसी वस्तु की स्वरूपसत्ता नहीं है, इसलिए जितनी वस्तुएँ उतनी स्वरूपसत्ताएँ; इसलिए ऐसी स्वरूपसत्ताएँ अथवा अवान्तरसत्ताएँ 'अनेक' हैं।

(४) सर्व पदार्थ सत् है, इसलिए महासत्ता 'सर्व पदार्थों में स्थित' है। व्यक्तिगत पदार्थों में स्थित भिन्न-भिन्न व्यक्तिगत सत्ताओं द्वारा ही पदार्थों का भिन्न-भिन्न निश्चित व्यक्तित्व रह सकता है, इसलिए उस-उस पदार्थ की अवान्तरसत्ता उस-उस 'एक पदार्थ में ही स्थित' है।

(५) महासत्ता समस्त वस्तुसमूह के रूपों (स्वभावों) सहित है, इसलिए वह 'सविश्वरूप' (सर्वरूपवाली) है। वस्तु की सत्ता का (कथंचित्) एक रूप हो तभी उस वस्तु का निश्चित एक रूप (-निश्चित एक स्वभाव) रह सकता है, इसलिए प्रत्येक वस्तु की अवान्तरसत्ता निश्चित 'एक रूपवाली' ही है।

(६) महासत्ता सर्व पर्यायों में स्थित है, इसलिए वह 'अनन्तपर्यायमय' है। भिन्न-भिन्न पर्यायों में (कथंचित्) भिन्न-भिन्न सत्ताएँ हों, तभी प्रत्येक पर्याय भिन्न-भिन्न रहकर अनन्त पर्यायें सिद्ध होंगी, नहीं तो पर्यायों का अनन्तपना ही नहीं रहेगा-एकपना हो जायेगा; इसलिए प्रत्येक पर्याय की अवान्तरसत्ता उस-उस 'एक पर्यायमय' ही है।

इस प्रकार सामान्यविशेषात्मक सत्ता, महासत्तारूप तथा अवान्तरसत्तारूप होने से, (१) सत्ता भी है और असत्ता भी है, (२) त्रिलक्षणा भी है और अत्रिलक्षणा भी है, (३) एक भी है और अनेक भी है, (४) सर्वपदार्थस्थित भी है और एकपदार्थस्थित भी है। (५) सविश्वरूप भी है और एकरूप भी है, (६) अनन्तपर्यायमय भी है और एक पर्यायमय भी है।।८।।

गाथा - ८ पर प्रवचन

सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया।

भंगुप्पादधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का।।८।।

यह गाथा बहुत महा जोरदार है। कितनों को तो इस गाथा में से वेदान्त जैसा लगता है। मानो सब आत्मा एक है। देखो, 'सत्ता सो पयत्था' कहा। कितने को यह सब बात एक द्रव्य की है। यहाँ अभी तक भिन्न-भिन्न बातों की और फिर यहाँ सब एक है, ऐसा कहाँ से कहा? और ऐसा हो तर्क-वितर्क। अभी तक तो कहा सब भिन्न-भिन्न है। और आत्मा में सब होकर महासत्ता कहने में आती है संग्रहनय से, वह और यहाँ कैसे लिया, ऐसा किसी को तर्क होता है, परन्तु यह बात यहाँ ऐसी ही है। श्रीमद् ने अर्थ किया, परन्तु ऐसा है भाई! इसका अर्थ किया है न? पंचास्तिकाय में। अब अपने इसकी सत्ता, उसका यह सत्ता का अर्थ किया महासत्ता का है न?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वह नहीं, वह नहीं। यह तो आठवीं गाथा।

सत्तास्वरूप से सर्व पदार्थ एकत्ववाले हैं। यह तो बहुत चर्चा हो गयी न? हाँ, यह मुझे यहाँ कहना है। वह बात नहीं। सत्ता स्वरूप से भाई, हिम्मतभाई! यह तो (संवत्) १९९० के वर्ष में वनेचन्द सेठ के साथ बात हुई थी सम्प्रदाय में। उन्हें ऐसा कि यह सब क्या कहते हैं? मैंने कहा है यह है, अर्थात् क्या सब एक हो गये हैं? एक आधार है सबका? एक अधिष्ठान है? बिल्कुल नहीं। सत्ता स्वरूप से सर्व पदार्थ एकत्ववाले हैं। वह सत्ता अनन्त प्रकार के स्वभाववाली है। उत्पाद-व्यय-ध्रुववाली है

और सामान्य विशेष, बस! इतनी बात है न? परन्तु यहाँ तो इतने यह शब्द अपने लेना है। सत्तास्वरूप से सर्व पदार्थ एकत्ववाले हैं। सब पदार्थों को 'है' अपेक्षा से एक कहा है। 'है' अपेक्षा से। एक ऐसे हो नहीं गये। आत्मा है, परमाणु है, काल है, आकाश है। ऐसा 'है' न? 'है', इस अपेक्षा में कोई नहीं, ऐसा कहलाये? वह है, इस अपेक्षा से सब 'है' में समा जाते हैं। 'है' अर्थात् महासत्ता।

सत्ता जनम-लय-ध्रौव्यमय अर एक सप्रतिपक्ष है।

सर्वार्थ थित सविश्वरूप-रु अनन्त पर्ययवन्त है ॥८ ॥

टीका :- यहाँ अस्तित्व का स्वरूप कहा है। यहाँ छह द्रव्य में अस्तित्व का स्वरूप कहा है। अस्तित्व का स्वरूप कहा है। है न? पाठ ही है वहाँ। 'अत्रास्तित्वस्वरूपमुक्तम' अस्तित्व अर्थात् सत्ता नामक सत् का भाव। सत्ता नाम का सत्त्व कहना है न? सत्ता। सत्ता नाम का सत्त्व का अस्तित्व कहना है न? सत्ता। सत्ता को अस्तित्व कहा। कि सत्ता नामक सत् का भाव। उसे सत्त्व अर्थात् अस्तित्व कहा जाता है।

नीचे है। सत्त्व, सत्त्व=सत्पना, अस्तित्वपना, विद्यमानपना, अस्तित्व का भाव, 'है' ऐसा भाव। अब तो बहुत स्पष्ट कर दिया है। कहो, समझ में आया? ऐसी टीका कहाँ अक्षर-अक्षर में थी पंचास्तिकाय की, प्रवचनसार की, नियमसार की, समयसार की। दो में तो एकदम थी ही नहीं। दो तो एकदम संस्कृत की ही थी। गुजराती पहले-बहले दो हजार वर्ष में बाहर आया। कहो, समझ में आया? अस्तित्व अर्थात् सत्ता नामक सत् का भाव अर्थात् सत्त्व। अस्तित्व है न? सत्, सत्पना अर्थात् अस्तित्व।

विद्यमानमात्र वस्तु न तो सर्वथा नित्यरूप होती है.... क्या कहते हैं? अस्ति धारक सभी वस्तुएँ, विद्यमान, विद्यमानमात्र वस्तु न तो सर्वथा नित्यरूप होती है और न सर्वथा क्षणिकरूप होती है। जितने विद्यमान पदार्थ-चीजें हैं अनन्त आत्मायें, परमाणु, कालाणु। वे नहीं सर्वथा नित्यरूप होती या वे नहीं सर्वथा क्षणिक अर्थात् अनित्यरूप होती।

सर्वथा नित्यवस्तु को वास्तव में क्रमभावी भावों का अभाव होने से.... सर्वथा यदि आत्मा और परमाणु आदि नित्य ही हों और परिणमे नहीं, अनित्य न हों, क्षणिक अवस्था न हो तो क्रमभावी भाव, क्रम-क्रम से होती अवस्था। भाव अर्थात् अवस्था।

ऐसे परमाणु और आत्मा आदि छहों द्रव्य में सर्वथा नित्य वस्तु को वास्तव में क्रमभावी—क्रम-क्रम से होनेवाली भाव अर्थात् पर्यायों का अभाव होने से... देखो! पर्याय को भी भाव कहा जाता है। विकार (-परिवर्तन, परिणाम) कहाँ से होगा ? पलटा कहाँ से खाये ?

एक वस्तु कायम नित्य ही हो और उसमें क्रम-क्रम से होती उत्पाद-व्यय की अवस्था न हो तो उसमें पलटा कैसे होगा ? फेरफार कैसे होगा ? बदले कैसे ? दूसरा रूप कैसे दिखायी दे ? समझ में आया ? यह तो वीतराग का पदार्थ विज्ञान है। वीतरागदेव ने देखा हुआ पदार्थ का विज्ञान। यह लोग पदार्थ विज्ञान कहते हैं, वह अमुक अपेक्षा से माने, उसकी बात, परन्तु यह तो सर्वज्ञ से त्रिकाल वस्तु कैसी है, यह जाने तो..... माननेवाले निकले, ऐ तुझसे होता है यह बात उसे... समझ में आया ?

क्योंकि पर में हो तो पर परिणमे बिना का तत्त्व है ? विद्यमान चीज़ है तो परिणमे बिना की होगी ? क्रमभावी दशा बिना की होगी ? नयी-नयी अवस्था हुए बिना की चीज़ होगी ? ऐसी हो तो फेरफार और पलटा हो नहीं सकता। और फेरफार-पलटा तो दिखता है। कहो, समझ में आया ? धूल में से गेहूँ और गेहूँ में से आटा और आटा में से यह रक्त और रक्त में से यह थूँक और, श्लेष्म, कफ और विष्टा... अरे! भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ होती दिखती हैं। यदि पलटा न हो तो वे अवस्थाएँ, वह चीज़ विद्यमान तो है। है तो सही न ? है, तथापि यदि पलटा न हो तो उसके फेरफार कैसे दिखाई दे ? और फेरफार होते हैं, ऐसा पलटा पलटती चीज़ का स्वभाव है। कहो, समझ में आया ?

कहाँ से हो ? नित्य वस्तु को अकेली नित्य यदि सर्वथा वस्तु एकरूप है, टिकती, त्रिकाल एकरूप, ऐसा कहो तो वास्तव में क्रमभावी पर्यायों का अभाव होने से विकार अर्थात् फेरफार... देखो! विकार अर्थात् यहाँ राग-द्वेष का विकार, ऐसा नहीं लेना। वि-कार्य, विशेष कार्य। जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में ऐसा डाला है। पर्याय किसे कहते हैं ? आता है ? किसे कहते हैं ? गुणविकारापर्यायः, ऐसा वहाँ कहा है। गुण का विकार, वह पर्याय। आता है ? धन्नालालजी! आता है। ऐसा तो इसे ऐसा याद रहे, मस्तिष्क है। गुणविकारापर्याया, ऐसा है अन्दर। गुण का विकार, वह पर्याय। विकार अर्थात् विशेष कार्य। समझ में आया ? जैन सिद्धान्त प्रवेशिका में है। पढ़ा है ? अब कहाँ निवृत्त हों ?

यह तो लड़के पढ़ें। अब तो बड़े हो गये, पढ़ें न? ऐई! कहाँ गया आशीष? आता है या नहीं? क्या आता है उसमें?

आशीष : गुणों के विशेष कार्य को पर्याय कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : विशेष कार्य को पर्याय कहते हैं। देखो! यह कार्य की बात है यहाँ। वि-कार विशेष कार्य, पलटना, फेरफार होना। (-परिवर्तन, परिणाम) कहाँ से होगा ?

यदि प्रत्येक द्रव्य नित्य हो तो उसमें फेरफार और पलटा कहाँ से होगा ? प्रत्येक रजकण और प्रत्येक आत्मा में कायमपना रहकर, उसमें पलटा और फेरफार हुआ करता है। उसमें क्रमभावी पर्यायें होना, उसका स्वभाव है। कहो, चन्दुभाई! दूसरे किसी के कारण नहीं, उसका अपना स्वभाव है। शरीर की क्रमभावी पर्याय उसके कारण से, आत्मा की क्रमभावी पर्याय आत्मा के कारण से, कर्म की क्रमभावी पर्याय उसके कारण से, दाल, भात, रोटी में से पलटना हुआ, वह उसके कारण से। किसे के कारण से नहीं। कहो, समझ में आया इसमें ?

और सर्वथा क्षणिक वस्तु में.... एक बोल का निषेध किया। यदि सर्वथा नित्य हो तो उसमें फेरफार न हो और सर्वथा क्षणिक वस्तु हो अनित्य ही हो। बदलती ही हो परन्तु वस्तु टिकनेवाली न हो तो क्षणिक वस्तु में वास्तव में प्रत्यभिज्ञान का अभाव होने से.... नीचे है। वस्तु सर्वथा क्षणिक हो तो 'जो पहले देखने में (जानने में) आयी थी, वही यह वस्तु है, ऐसा ज्ञान नहीं हो सकता।' यह था, इसे मैंने पैसे दिये थे। इसके पास से लेता हूँ। ऐसा नित्यपना टिकता न हो तो यह था, वह यह है। यह वह पहले था, वह यह है, ऐसा नित्यपना न हो तो ऐसा नहीं बन सकता। समझ में आया ?

पैसा लेनेवाला दूसरा और देनेवाला दूसरा और हो गया। वह कहे लेनेवाला दूसरा था, तुमने मुझे क्या दिया? बौद्ध कहते हैं न क्षणिक। हैं? मुझे पैसे नहीं दिये, वह तो दूसरा आत्मा था। उसके पास माँगो। वह तो रहा नहीं क्षणिक। परन्तु आत्मा और परमाणु पलटने पर भी उनके कार्य विशेष से होने पर भी उनका कायमपना-टिकनापना यदि न हो तो प्रत्यभिज्ञान का अभाव होने से एकप्रवाहपना कहाँ से रहेगा? वह की वह जाति कहाँ रहे, ऐसा। एक प्रवाह। पानी की तरंगें उठने पर भी पानी, पानीरूप से

तो कायम रहता है। वैसे स्वर्ण में गहने भिन्न-भिन्न होने पर भी स्वर्णत्व तो कायम (रहता है)। आत्मा के परिणाम बदलने पर भी आत्मा तो कायम रहता है। एक प्रवाहरूप अनादि का चला आता है। अनादि का। अनादि... अनादि... अनादि। भिन्न... भिन्न... भिन्न... भिन्न — ऐसी पर्याय क्षण-क्षण में ऐसे प्रवाहरूप से अनादि ध्रुवरूप से अनादि का आत्मा है। समझ में आया ?

इसी प्रकार परमाणु। परमाणु में क्षण-क्षण में पर्याय न हो तो एक प्रवाहपना न हो तो कार्य नहीं होगा। और एक प्रवाहरूप न हो तो नित्य न हो तो प्रवाहरूप नहीं होगा। वह के वह परमाणु की यह पर्याय, इस परमाणु की यह। यह परमाणु पहले हरा और फिर हुआ पीला। यह परमाणु पहले हुआ खट्टा और फिर हुआ मीठा, मीठा आम। तो यह आम, ऐसा कहते हैं या नहीं ? कि आम खट्टा था, तब दूसरा था और मीठा हुआ तब दूसरा। यह आम, भाई! मीठा हो गया, हों! इसलिए आम मीठा हुआ वह स्वयं रहकर मीठा हुआ है। अवस्था भी बदली और आम आमरूप से भी रहा।

वस्तु को बहुत संक्षिप्त में समझाना। कुन्दकुन्दाचार्य के शास्त्र ऐसे! एक-एक गाथा में कितना अधिक, देखो न! इसमें कितना भरा है!! कि परमाणु आदि क्षण-क्षण में पलटते हैं उनके कारण से। और न पलटते हों तो फेरफार नहीं और फेरफार है तो उससे है। तुझसे तेरा और उससे उसका। किसी का फेरफार तू कर सके शरीर का और कर्म तेरा फेरफार कर सके और तू कर्म को फेरफार कर डाले, (ऐसा नहीं बनता)। संक्रमण कर डाले या नहीं फेरफार ? कैसे शास्त्र में नहीं आता ? कर्म की स्थिति घटाये। बोलने का। स्थिति बढ़ाये, रस बढ़ाये, रस घटाये। जीव विसंयोजना करे, कर्म का विसंयोजन अनन्तानुबन्धी का करे। लो! अपकर्षण करे, घटाये। उत्कर्षण करे। समझ में आया ? कितने करण। बहुत ऐसे करण आते हैं। उदीरणा, निध्धत और निकाचित करे न। जीव निकाचित और निध्धत कर्म को करे और तोड़े। उसमें क्या आया ? कि निध्धत को तोड़ने की क्रिया, वह जड़ की है, उसे आत्मा नहीं करता।

कर्म का विसंयोजन होना, फेरफार, वह फेरफार परमाणु का स्वभाव है। आत्मा से नहीं होता। कहो, यह विवाद कर्म का। जीव परिणाम करे तो बदले, वहाँ बदले। अरे! परन्तु वहाँ बदलने का स्वभाव उसका है। तूने परिणाम तुझमें किये और वहाँ

उसके परिणाम उसके कारण से हुए। तेरे परिणाम के कारण हुआ? कहो, सेठी! क्या है? यह बात थी परन्तु उसमें कर्ताकर्म घुस गया कि आत्मा कर्म के परमाणु का ऐसा करे, गोम्मटसार में, धवल में और ऐसा कथन आवे, हों! विसंयोजन करे, ऐसा करे, वैसा करे, उसमें आता है, देखो! धवल, जयधवल में सर्वत्र आता है। ऐसी प्रकृति को संक्रमित करे, पलटावे, पलटे, ऐसा हो। एक ठिकाने कर दे या सबके कारण से सब होता है। अन्तर कारण से होता है, बाह्य कारण से निरपेक्ष। जाओ। उड़ाओ सब। कहो, समझ में आया? कभी बाधक नहीं। कहीं अवरोधक नहीं कहीं।

यदि इसे स्वतन्त्रता की दृष्टि हो और स्वतन्त्रता की दृष्टि रखकर यदि वाँचन करे तो सब जैसा है, वैसा इसे दिखाई दे, ज्ञात हो, बैठे, रुचे, सुहावे। पहले तो सुनने को ही नहीं मिलता। नहीं? भाई! यह सुनने को मिले, वह वापस दूसरे में विपरीतता में फँस जाये तो इसका कहीं निपटारा नहीं होता, ऐसा यहाँ कहते हैं। **इसलिए प्रत्यभिज्ञान के हेतुभूत....** प्रत्यभिज्ञान अर्थात् नीचे (फुटनोट में) कहा न? यह पूर्व में देखने में आता था, वह यह। **किसी स्वरूप से ध्रुव रहती हुई....** कौन? प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु। अर्थात् वस्तु कहनी है न? वस्तु थी न? विद्यमान वस्तु शब्द पहला था न? प्रत्यभिज्ञान के कारणभूत—कारण उसी और उसी का, उसमें, हों! **ध्रुव रहती हुई और किन्हीं दो क्रमवर्ती स्वरूपों से नष्ट होती हुई....** यह देखो! दो क्रमवर्ती। उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय, उत्पाद का भी क्रम और व्यय का भी क्रम। इस समय का उत्पाद दूसरे समय में नाश। यह समय का समझ में आता है न? उत्पाद, दूसरे समय में व्यय, दूसरे समय का उत्पाद, तीसरे समय में व्यय। इसलिए व्यय का भी क्रम और उत्पाद का भी क्रम। **दो क्रमवर्ती स्वरूपों से....** अर्थात् क्या कहा? वर्तमान में जिस समय में उत्पाद होता है, उसका फिर दूसरा उत्पाद दूसरे समय में। इसलिए उत्पाद का क्रम हो गया। व्यय वर्तमान का जो व्यय हो, उससे दूसरे समय में दूसरे का व्यय हुआ। वर्तमान व्यय है, वह पूर्व का-बाद का व्यय हो उत्पन्न हो उसका। इसलिए व्यय भी क्रम और उत्पाद भी क्रम। आहाहा! समझ में आया इसमें?

जिस पर्याय का उत्पाद हुआ, उसका दूसरा समय में दूसरा उत्पाद उसका न, इसलिए उत्पाद क्रम हो गया। यह उत्पाद वह दूसरे समय में नहीं। उत्पाद का क्रम हो

गया न? प्रत्येक परमाणु और आत्मा में। इस समय में उत्पाद पर्याय हुई, और दूसरे समय में क्रम में दूसरा। उसमें इस समय जो व्यय हुआ, वह दूसरे समय में दूसरी पर्याय हुई। यह उत्पाद हुआ, उसका व्यय। व्यय का भी क्रम और उत्पाद का भी क्रम। आहाहा! समझ में आया? **प्रत्यभिज्ञान के हेतुभूत किसी स्वरूप से ध्रुव रहती हुई....** और टिकती, क्या टिकती? क्या टिकती? वस्तु। यहाँ ऊपर वस्तु कही है न? **विद्यमानमात्र वस्तु....** ऐसे वस्तु से उठाया है। द्रव्य से उठाये तो द्रव्य कहा जाता है। प्रत्येक वस्तु, वस्तु क्यों कहा कि उसमें बसे हुए गुण-पर्याय है। अपने-अपने गुण-पर्याय बसे हुए हैं, इसलिए उसे वस्तु कहा जाता है। प्रत्येक रजकण और प्रत्येक आत्मा, उसमें अपने गुण-पर्याय बसे हुए हैं, इसलिए वस्तु। यह वस्तु टिकने की अपेक्षा से ध्रुव है। क्रमवर्ती दो पर्याय की अपेक्षा से क्रमवर्ती है। दो क्रमवर्ती स्वरूप से नष्ट होती और उपजती है। नष्ट होती और उपजती दोनों क्रम है। समझ में आया?

पहले समय में जो व्यय हुआ, वह दूसरे समय में दूसरा, दूसरे का व्यय, यह क्रम। पहले समय में जो उत्पाद हुआ, दूसरे समय में दूसरा उत्पाद। उसका भी क्रम। आहाहा! किसके कारण से? स्वयं के कारण से। पर के कारण से नहीं। देखो न! **प्रत्यभिज्ञान के हेतुभूत किसी स्वरूप से ध्रुव रहती हुई और किन्हीं दो क्रमवर्ती स्वरूपों से नष्ट होती हुई....** यह वस्तु। दो क्रमवर्ती स्वरूपों से नष्ट होती वस्तु। और वह वस्तु क्रमवर्ती स्वरूपों से नष्ट होती और क्रमवर्ती से उपजती। क्रमवर्ती से उपजती और क्रमवर्ती से नष्ट होती। पर के कारण नहीं। **इस प्रकार परमार्थतः एक ही काल में त्रिगुनी (तीन अंशवाली) अवस्था को धारण करती हुई वस्तु सत् जानना।** त्रिगुनी हुई त्रिगुनी। त्रिगुनी दाल करते हैं या नहीं? तेवठी। तेवठी अर्थात् तीन। मूँग की दाल, चने की दाल और उड़द की दाल डालकर तीन करते हैं न? यह सब तेवठी है। तेवठी कहते हैं न उसे क्या कहते हैं? ऐ मोहनभाई! क्या क्या कहते हैं? तेवठी! यहाँ भाई ने त्रेवडी लिखा है। त्रेवडी, त्रेवडी। प्रत्येक वस्तु त्रेवडी है।

कायम रहनेवाली एक, वह ध्रुव, एक और उत्पाद क्रम तथा व्यय का क्रम, इसलिए दो यह। त्रेवडी हुई। एक समय में त्रेवडी वस्तु। प्रत्येक वस्तु एक समय में त्रेवडी वस्तु सत् जानना। लो! इसकी-सत् की व्याख्या की। सत् है न, उसकी व्याख्या की। विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ४, शुक्रवार, २०-१२-१९६३, गाथा-८, प्रवचन-१४

पंचास्तिकाय, षट्द्रव्य अधिकार। इसमें ८वीं गाथा। अस्तित्व का स्वरूप कहते हैं। प्रत्येक पदार्थ अस्तित्व अर्थात् होनेपनेरूप है। वह किस प्रकार है, इसका वर्णन है। समझ में आया? प्रत्येक वस्तु अस्तित्व है। 'है'। उस 'है' के प्रकारों का वर्णन करते हैं। यहाँ तक आ गया है। तिगुनी (तीन अंशवाली) अवस्था को धारण करती हुई वस्तु सत् जानना। २१ पृष्ठ है। डेढ़ लाईन हुई है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो फिर नहीं पूछा सेठी ने, कहाँ तक आया था। भूल गये हों न कहाँ कहना। लो, यहाँ फिर से यह।

यहाँ अस्तित्व का स्वरूप कहा है। अस्तित्व का। वस्तु जो है, भगवान ने जितनी वस्तुएँ देखीं, वे तो अस्तिरूप होवे न! न अस्तिरूप किस प्रकार देखे? अस्तित्व अर्थात् सत्ता नाम का सत् का सत्त्व भाव। समझ में आया? है उसका सत्, उसका अस्तित्व अर्थात् मौजूदगी। प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु स्वयं से अस्तित्व है। विद्यमानमात्र वस्तु, विद्यमानमात्र वस्तु। अस्ति धराती अनन्त वस्तु नहीं सर्वथा नित्यरूप होती अथवा नहीं सर्वथा क्षणिकरूप होती। सभी विद्यमान मौजूदगीवाली (वस्तुएँ)—आत्मा आदि पदार्थ सर्वथा नित्य नहीं या सर्वथा क्षणिकरूप नहीं।

सर्वथा नित्य वस्तु को वास्तव में क्रमभावी भावों का अभाव होने से विकार कहाँ से होगा? प्रत्येक वस्तु यदि अकेली सर्वथा नित्य ही हो तो पलटे बिना उत्पाद, व्यय और क्रम दशा हुए बिना, उसका विकार हुए बिना उन क्रमभावी भावों का अभाव होगा। क्रम-क्रम से अवस्था होती है भिन्न..... भिन्न..... भिन्न..... भिन्न..... वह यदि पलटती न हो तो उसका अभाव होगा। और सर्वथा क्षणिक वस्तु में.... यदि अत्यन्त प्रत्येक आत्मा और परमाणु क्षणिक अनित्य ऐसा माने तो प्रत्यभिज्ञान का अभाव होने से.... यह थी, वह पूर्व में यह थी वह यह। पूर्व में थी वह यह। ऐसे ज्ञान के कारणरूप एकप्रवाहपना कहाँ से रहेगा? एक प्रवाह वह का वह आत्मा..... आत्मा..... आत्मा.....

आत्मा..... आत्मा । परमाणु..... परमाणु..... परमाणु..... परमाणु..... रजकण वह का वह । ऐसे धर्मास्ति आदि अनन्त (पदार्थ) ।

इसलिए प्रत्यभिज्ञान के हेतुभूत किसी स्वरूप से ध्रुव रहती हुई.... प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणुरूपी वस्तु किसी..... अर्थात् टिकने की अपेक्षा से ध्रुव रहती हुई और किन्हीं दो क्रमवर्ती स्वरूपों से नष्ट होती हुई.... दो क्रमवर्ती स्वरूपों से नष्ट होती हुई तथा उत्पन्न होती हुई... जिस समय प्रत्येक पदार्थ उपजता है, उसके दूसरे समय दूसरे प्रकार से उपजता है । क्रम-उत्पाद.... क्रम-उत्पाद..... और उसी पदार्थ में क्रम-व्यय । पहले समय में जिसका व्यय है, उसका दूसरे समय में नहीं । दूसरा दूसरे समय में दूसरे का । अर्थात् व्यय भी क्रम हो गया । उत्पाद भी क्रम हो गया । समझ में आया ?

प्रत्येक वस्तु दो क्रमवर्ती स्वरूपों से नष्ट होती हुई तथा उत्पन्न होती हुई—इस प्रकार परमार्थतः एक ही काल में तिगुनी (तीन अंशवाली).... प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु (उसमें) ध्रुव एक अंश है और एक उत्पाद का क्रम अंश है, एक व्यय का क्रम अंश है । व्यय अर्थात् क्या ? सेठी !

मुमुक्षु : गयी पर्याय ।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाश । गयी पर्याय, ऐसा नहीं । व्यय अर्थात् क्या, ऐसा कहा । नाश, अभाव ।

जो पूर्व पर्याय थी, उसका वर्तमान में नाश—अभाव उसे व्यय कहा जाता है । और पूर्व में नहीं थी और नयी हुई, उसे उत्पाद कहा जाता है । दोनों क्रमवर्ती हैं । उत्पाद और व्यय दोनों क्रमवर्ती हैं । इसलिए (तीन अंशवाली) अवस्था को धारण करती हुई.... देखो ! ध्रुव भी अवस्था कही । इन तीन अवस्था को धारण करती हुई वस्तु सत् जानना । प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु इन तीन अवस्था को धरती, उसे सत् जानना । क्योंकि उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' है । दूसरे के कारण से नहीं । आत्मा में भी उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य वह स्वयं के कारण से, पर में भी उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य उसके कारण से । किसी के कारण से किसी में (नहीं) । ऐई ! देवानुप्रिया ! तब क्या रहा अब ?

इसीलिए 'सत्ता' भी.... अब तीन लक्षण मिलाते हैं सबके साथ में, हों ! एक-

एक के साथ मिलाते हैं। जब तीन लक्षणवाली इस प्रमाण हुई तो 'सत्ता' भी 'उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक' (त्रिलक्षणा) जानना;.... वस्तु जब इस प्रमाण तीन हुई। उत्पाद-व्यय और ध्रौव्यवाली वस्तु हुई तो उसकी सत्ता भी उत्पाद-व्यय और ध्रौव्यात्मक जानना। सत्ता में भी नयी अवस्था से उपजे, पुरानी अवस्था से व्यय हो, टिकने की अपेक्षा से ध्रुव रहे। यह सत्ता भी तीन लक्षणवाली जानना।

क्योंकि भाव और भाववान का.... भाव अर्थात् सत्-सत् गुण। और भाववान का अर्थात् सत्ता का धारक वस्तु भाववान। उसका कथंचित् एक स्वरूप होता है। कथंचित् एक स्वरूप। भाव और भाववान कहीं अलग नहीं होते। भाव सत्ता और भाव धरनेवाली वस्तु, दोनों एक ही होते हैं। और वह (सत्ता) 'एक' है,.... जरा अब। **क्योंकि वह त्रिलक्षणवाले समस्त वस्तुविस्तार का सादृश्य सूचित करती है।** सब अनन्त आत्मायें और अनन्त परमाणु हैं, ऐसे के ऐसे सत्—वह एक है। क्यों? कि वे तीन लक्षणवाले.... तीन लक्षण कहे न? उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य। उस समस्त वस्तुविस्तार का, सभी वस्तु के विस्तार का वह एकपने सादृश्य सूचित करता है। एक की व्याख्या की। छहों द्रव्य सादृश्य सूचित करते हैं। समस्त वस्तुविस्तार। कहो, समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : भाषा तो जरा कठिन पड़े न।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें कुछ कठिन पड़े, ऐसा नहीं है। सीधी सट् है।

सब सत्..... सत्..... सत्..... सत्..... अनन्त आत्मा है, अनन्त परमाणु है, उनके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हैं। असंख्य कालाणु हैं, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश है। महासत्ता सब है। यह ज्ञान में ऐसा होता है कि यह ऐसा कैसे है? ऐसा नहीं। ऐसा ही है सब। ऐसा ज्ञान करने से ज्ञान में ज्ञातापना आता है। कहो, समझ में आया? ऐसा कैसे? यह ज्ञान में अवकाश नहीं है। वस्तु में अवकाश नहीं है। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु सत् है। और वह भी तीन लक्षण के अंशवाली है, ऐसा ही है। इसलिए उसका उत्पाद ऐसा कैसे? उसका व्यय ऐसा कैसे? उसका ध्रौव्य ऐसा कैसे? यह द्रव्य में है नहीं। उसके अपने लक्षण से—उसके अपने स्वरूप से वह तो है। ऐसा अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अपने स्वरूप और लक्षण से है। प्रत्येक एक रजकण में भी

उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य उसके लक्षण से है। ऐसे सब पदार्थों का महासत्तारूप से है लेना है न।

क्योंकि वह त्रिलक्षणवाले समस्त वस्तुविस्तार का सादृश्य सूचित करती है। यह सादृश्य सूचित करता है किसे लागू पड़ा? एक को। सब एक है.... एक है.... एक है। किस अपेक्षा से? है.... है.... है.... है.... है.... सादृश्य अपेक्षा से एक है। वस्तुरूप से अलग, परन्तु सादृश्यरूप से है.... है, उसमें से कोई मिटाया नहीं जा सकता। समझ में आया? एक-एक समय में जब देखो तब सब है। जिस प्रकार उसके लक्षणों से है, उस प्रकार से है। उसमें ज्ञान का अवकाश, ऐसा नहीं कि यह मेरी अवस्था ऐसा उत्पाद कैसे? यह व्यय कैसे? इसका उत्पाद कैसे? मैं खड़ा हूँ, इसलिए उसका उत्पाद कैसे? उसका व्यय कैसे? यह तो तीन लक्षण की सत्ता का स्वरूप है। इसी प्रकार ज्ञान सबकी महासत्ता के स्वीकार में तीन लक्षणवाली सत्तावाला पूरा तत्त्व ऐसा का ऐसा पड़ा है। ऐसा ज्ञान जाने, उसे वीतरागता अन्दर ज्ञान में आवे। उसे ऐसा कैसे? यह राग और राग की एकता टूट जाती है। समझ में आया?

और वह (सत्ता) 'सर्वपदार्थस्थित' है;.... वह सर्व पदार्थस्थित है। वह एकपना तो समस्त वस्तुविस्तार का सादृश्य सूचित किया। अब सर्व पदार्थस्थित है। क्योंकि उसके कारण ही (—सत्ता के कारण ही) सर्व पदार्थों में त्रिलक्षण की (—उत्पाद व्यय-ध्रौव्य की),.... सत् ऐसे तीन बोल से। सर्व पदार्थ में त्रिलक्षण की और 'सत्' ऐसे कथन की तथा 'सत्' ऐसी प्रतीति की उपलब्धि होती है। शब्द, ज्ञान और पदार्थ। पहले आ गये थे इसमें। शब्द आगम, ज्ञान आगम और पदार्थ। क्या कहते हैं? सर्व पदार्थस्थित.... सत्ता। उसके ही कारण से सर्व पदार्थ में त्रिलक्षण है—तीन लक्षण है। एक बात।

'सत्' ऐसे कथन की.... कथन में आया न सत्। सब है, ऐसा कथन आया। तीन लक्षणवाली सत्ता है, वह पदार्थ आया। सत् ऐसा कथन आया—शब्द। तथा 'सत्' ऐसी प्रतीति.... अर्थात् ज्ञान आया। सब है, ऐसी प्रतीति आयी, ज्ञान हुआ। क्या कहा, समझ में आया इसमें? सब 'है' यह त्रिलक्षणवाले सर्व पदार्थ हैं, एक आया। पदार्थ हैं। सत् ऐसा कथन आया। सब 'है' ऐसा कथन। उसमें भी कहीं भेद नहीं। दूसरा, सत् ऐसी प्रतीति। सब 'है' ऐसा यहाँ ज्ञान आया। सब है, ऐसा ज्ञान हुआ। समझ में आया या नहीं

इसमें? सब 'है' ऐसा यहाँ ज्ञान हुआ। सब 'है' ऐसा पदार्थ। सब 'है' ऐसा है, ऐसा सत्, ऐसा कथन। कथन वाचक, वाच्य और ज्ञान। क्या कहा यह?

ओहो! मुनियों ने जंगल में वीतरागभाव में रहकर, जरा विकल्प अस्थिरता का आया और यह लेख शास्त्रों के शास्त्र रच गये। परमाणु के कारण, हों! उनके विकल्प के कारण नहीं। ऐसा कहते हैं न स्वयं देखो न! शास्त्र के उत्पाद-व्यय परमाणु में है तीन लक्षणवाले, तो 'है'। और है, वह सब। यह भी है, मैं हूँ, यह है, वह है, ऐसा तीन लक्षणवाली वस्तु सत् है। सत् कथन है शब्द। यह सत् है, उसका ज्ञान है, प्रतीति। ज्ञान में 'सब है' ऐसा आया। वस्तु सब है, ऐसा आया। और कथन में सत् है, उसमें वाणी आयी। समझ में आया? छह द्रव्य का इस प्रकार से ज्ञान हुए बिना उसका ज्ञान सच्चा नहीं होता। कहो, समझ में आया इसमें? देखो! यहाँ क्या कहा? प्रतीति।

छह द्रव्य भगवान ने जो अनन्त देखे, उनमें अनन्त गुण, उनकी अनन्त उत्पाद-व्यय की पर्यायें क्रमवर्ती, ध्रौव्य, ऐसी त्रेवडी वस्तु एक-एक। ऐसा सब। वह सबका है, ऐसा यहाँ ज्ञान होता है। है, वह वस्तु में रहे; है, ऐसा कथन में आवे। वाणी, ज्ञान, पदार्थ। जितने पदार्थ हैं, जिस लक्षण से हैं, जिस प्रकार से हैं, उनका हैपने यहाँ ज्ञान होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। वजुभाई! गजब, भाई! समझ में आया? यह सर्व पदार्थस्थित है की व्याख्या हुई। सर्व पदार्थस्थित है।

सर्व पदार्थों में त्रिलक्षण.... यह सर्व पदार्थस्थित एक। सत्.... यह सर्व पदार्थस्थित को कहनेवाले शब्द। सब है ऐसा सत्। और 'सत्' ऐसी प्रतीति की उपलब्धि होती है। सब है, तथापि छहों द्रव्य है, उत्पाद-व्यय-ध्रुव लक्षणवाले हैं। ऐसा सब एकरूप है, सविश्वरूप है, ऐसी प्रतीति होती है। कहो, समझ में आया इसमें? अब इसमें कर्म से विकार होता है और ऐसा नहीं आता इसमें? यह गोम्मटसार में तो निमित्तपने का ज्ञान कराया है। 'है'। बस! उसका यहाँ ज्ञान। 'है' यह वस्तु में। 'है' ऐसी वाणी।

मुमुक्षु : स्याद्वाद....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्याद्वाद में यह। स्याद्वाद क्या कहा?

मुमुक्षु : मुद्रित।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुद्रित। प्रत्येक में नित्यपना है और कथंचित् अनित्यपना है, इस प्रकार स्याद्वाद मुद्रित। परन्तु 'है', उसमें भंग दूसरा नहीं। 'है', उसमें कुछ 'है' और कुछ 'नहीं', ऐसा नहीं है। स्याद्वाद तो कह गये, यह तो पहले कह गये। यह तो पहली लाईन में कह गये। सर्वथा नित्य (नहीं) और सर्वथा अनित्य नहीं, वहाँ स्याद्वाद लिया। परन्तु यह भी है। इस प्रकार है, उसका स्याद्वाद। वाद अर्थात् सत् आया। है सब, ऐसा सत् शब्द। एक सत् शब्द में सब है। ऐसा वाचक शब्द आ गया।

मुमुक्षु : स्याद्वाद मुद्रित का क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हो गया न यह नित्य-अनित्य में। नित्य-अनित्य में स्याद्वाद, हों! पर की अपेक्षा की यहाँ बात नहीं है। पर पर में और स्व स्व में।

अनन्त कब है ? अनन्त कब है ? कि अनन्त अपने-अपने त्रिलक्षण द्वारा नित्य भी, अनित्य भी ऐसे एक समय में तीन लक्षण से ऐसे अनन्त तीन लक्षण द्वारा है। अर्थात् एक-दूसरे के कारण हो तो अनन्त सर्व पदार्थस्थिति की बात सिद्ध नहीं होती। कहो, समझ में आया इसमें ? निमित्त का है। कहा नहीं ? है, इसमें आ गया। तुम कहते हो उस प्रकार से नहीं आया। तुम पूछना चाहते हो दूसरी अपेक्षा से, ऐसा, हों! उससे होता है, इस प्रकार से नहीं आया। 'है' बस, इस प्रकार से आया। सबकी पर्याय उत्पादरूप प्रत्येक अनन्त की एक समय में है। पूर्व समय का व्यय है, ध्रुव है। सामने दूसरे भी उसके उत्पाद-व्यय-ध्रुवपने हैं। यह तो फिर निमित्त का ज्ञान अर्थात् इस काल में यह कौन (है, उसका ज्ञान कराते हैं)। परन्तु है तो सब उसमें यह है और यह नहीं और यह है और यह यहाँ हुआ नहीं, यह है और यहाँ हुआ नहीं, ऐसा है नहीं। यहाँ भी है, वहाँ भी है, सर्वत्र है, सब है। 'है' में कोई निकाल दिया जाये ऐसा नहीं है। ऐसा सब 'है' ऐसा ज्ञान होने पर उसे विकल्प नहीं रहता। इसके कारण यह। यह कैसे ऐसा ? पहली अवस्था ऐसे और दूसरी अवस्था ऐसे कैसे ? 'है'। समझ में आया ? ओहोहो ! आचार्यों की कथन की पद्धति कोई भी वस्तु वर्णन करती है, उसमें वीतरागता का ही वर्णन है। शास्त्र का सार क्या है ? शास्त्र का तात्पर्य तो वीतरागता है। तो यह कहकर कहना क्या है ? समझ में आया ? यह कहकर....

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है सब, उसका उसके कारण यह, उसके कारण यह, यह बात छोड़ दे। है सब, उसे समाहित कर दे। ज्ञान में है, ऐसा ज्ञान में समाहित कर दे। इसके कारण यह हुआ, यह नहीं होता तो यह नहीं होता। नहीं होता का प्रश्न कहाँ है? नहीं होता तो, यह प्रश्न ही नहीं है। है।

सब अनन्त आत्मायें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाले हैं। अनन्त परमाणु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाले हैं। असंख्य कालाणु, धर्मास्ति, अधर्मास्ति ऐसा सब है, उसका तात्पर्य वीतरागता है। समझ में आया? आहाहा! इसका भावार्थ है न! शब्दार्थ, उसका भावार्थ, आगमार्थ, मतार्थ और नयार्थ। ओहोहो! कथनशैली यह सन्तों की गजब शैली है! जहाँ डालो वहाँ एक निकले। जहाँ डालो वहाँ ज्ञातापना निकले। वीतरागभाव निकले। है उसमें प्रश्न क्या? ऐसा कैसे? मुझे समझालना नहीं आया, इसलिए ऐसा शरीर हुआ, यह रहा नहीं इसमें। ऐसा 'है'।

मुमुक्षु : शरीर का दास है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : दास, कैसा दास? कोई किसी का दास कौन? किसका स्वामी कौन? अनन्त रहे कैसे, दास हो तो?

अनन्त सर्व पदार्थ स्थित यहाँ कहना है न? सर्व पदार्थ कब रहे? कि अपने-अपने कारण से सब अनन्त पदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप से है, तब सर्व पदार्थ स्थित है। किसी के कारण से कोई स्थित है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : सब ऐसा का ऐसा। एक समय-समय में सब ऐसा और ऐसा। पूरा पिण्ड एक समय में है। बस, ज्ञाता है। ऐसा का ऐसा है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : तो यह क्या हुआ? और अज्ञानी को कुल्हाड़ा लेना पड़ता होगा? सब है। उसके कारण यह, ऐसी जो मान्यता थी, वह सब 'है' इस मान्यता में अज्ञानी की निवृत्ति हो गयी और ज्ञानी की उत्पत्ति हो गयी।

मुमुक्षु : पहले नहीं मानता था।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं मानता था। उसके कारण यह, निमित्त के कारण यह, अमुक के कारण यह। मैं आया इसलिए शरीर अच्छा (रहा), मैंने ध्यान रखा इसलिए शरीर ठीक रहा। अमुक का ऐसा ठीक रहा। लड़कों का ध्यान रखा, इसलिए लड़के सुधरे। नहीं तो बिगड़ जाते। 'है' सब उसमें बिगड़ना और सुधरने का प्रश्न ही कहाँ? समझ में आया? चन्दुभाई! यह तो अलेख के घर की बातें हैं। परम सत्य ही ऐसा है परन्तु दूसरे प्रकार से हो नहीं सकता तीन काल-तीन लोक में।

आचार्य ने प्रतीति ले ली, देखो! ऐसी प्रतीति की उपलब्धि होती है। देखो! ऐसे ज्ञान में भी ऐसा भासित होता है। सब अनन्त द्रव्य गुण-पर्यायवाले अर्थात् नित्यानित्य अर्थात् कि त्रिलक्षणवाले हैं... हैं... ऐसी ज्ञान में प्रतीति होती है। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। मोह, राग-द्वेष नहीं होता यहाँ। यह जरा अस्थिरता का राग-द्वेष होता है, उसे प्रतीति जानती है, ज्ञान जानता है कि इस काल में यह है, इस काल में यह है। उत्पाद-व्यय और ध्रुव के तीन लक्षणवाला यह सब है। राग जरा उत्पन्न हुआ है और ज्ञान किया। ज्ञान का उत्पाद और राग का उत्पाद। परन्तु ज्ञान ने सब है, ऐसा जाना है। राग भी है, ऐसा जाना है; मैं हूँ, ऐसा जाना है; द्रव्य ऐसा है-ऐसा जाना है। दूसरे का उत्पाद, ध्रुव ऐसा है - ऐसा सब जाना है। महासत्ता में से कौन बाकी रह जाये? सर्व पदार्थ स्थित में से कौन सी बात बाकी रह जाये? समझ में आया? ओहोहो! इसकी अर्थ कि ज्ञान ने जाना है, तब राग भी बाकी है उसे 'है' ऐसा जाना है। व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनरूप, यह शैली आ गयी अन्दर। समझ में आया? ओहोहो! व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान, यह आ गया यहाँ। ऐसे... ऐसे... ऐसे नहीं था और ऐसे करे तो हो, यह ऐसा करे तो हो, ऐसा कुछ नहीं है। 'है' एक समय में सब। यह वाणी में, भगवान की वाणी में आया। वस्तु में ऐसा है। ज्ञान में ऐसा प्रतीति में आया। ज्ञान में ऐसा आया कि सब है। राग के काल में राग और वह है, ऐसा निर्णय होने पर ज्ञान की पर्याय के काल में पर्याय हुई, वह भी है। सम्यक् पर्याय से भी है। राग बाकी भी है। परवस्तु

के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हैं। साधक साधकरूप से है। बाधक बाधकरूप से है। सिद्ध सिद्धरूप से है। उस है में क्या बाकी रह गया ? समझ में आया ? वीतराग की कथनपद्धति भी गजब !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नजदीक ही है। दूर कब था। व्यर्थ में चिल्लाहट मचाकर....

अनन्त महासमुद्र। लोकालोक भी आ गया या नहीं इसमें ? अलोक आ गया इसमें ? सर्व पदार्थस्थित में अलोक आ गया या नहीं ? अनन्त अमाप आकाश आ गया ज्ञान में ? ज्ञान ने जाना कि सब है। उसमें भी उत्पाद-व्यय-ध्रुव है, आत्मा में भी है। प्रत्येक में तीन लक्षणवाला है। है, ऐसा यहाँ जो ज्ञान.... साधकभाव ज्ञानरूप से जाना कि 'है'। विकल्प की एकता टूटे बिना सब है, ऐसा जानने का ज्ञान होता नहीं। गड़बड़ उत्पन्न किये बिना रहता नहीं। कहो, समझ में आया इसमें ?

अब दूसरा शब्द। यह तीन लक्षण तो प्रत्येक में डालेंगे। इसलिए पहले तीन लक्षण वर्णन किये। समझ में आया ? इसलिए पहले ही लिया न ? सत्ता तीन लक्षणवाली है। क्योंकि भाव और भाववान का एकरूप ऐसा कहा। फिर एक में तीन लक्षण डाले वापस। समस्त वस्तुविस्तार का सादृश्य सूचित करती है। तीन लक्षण तो सबमें। मूल सत् है इसलिए। और सर्व पदार्थस्थित में भी त्रिलक्षण डाला। समझ में आया ? उसके कारण ही (—सत्ता के कारण ही) सर्व पदार्थों में त्रिलक्षण की (—उत्पाद व्यय-ध्रौव्य की), 'सत्' ऐसे कथन की तथा 'सत्' ऐसी प्रतीति की उपलब्धि होती है।

अब सविश्वरूप। सविश्वरूप। अनेकरूप और वह (सत्ता) 'सविश्वरूप' है,.... सब। क्योंकि वह विश्व के रूपों सहित अर्थात् समस्त वस्तुविस्तार के त्रिलक्षणवाले.... देखो ! त्रिलक्षण तो प्रत्येक में है। क्योंकि सत् है न ? अस्तित्व का वर्णन है न ? नाम क्या था ऊपर ? 'अत्रास्तित्वस्वरूपमुक्तम्' अस्तित्व का स्वरूप कहा है। सत्ता, अस्तित्व का स्वरूप कहा है। अस्तित्व के तीन लक्षण सहित के स्वरूप का स्वरूप ही ऐसा है इसलिए प्रत्येक में साथ में डाला है। सब व्यवस्थित है। व्यर्थ का पागलपना करता है, ऐसा कहते हैं। मोहनभाई ! यह कहते थे। यह मोहनभाई से जरा अलग हुआ, इसलिए

जरा हो गया। अब क्या भिन्न वह भिन्न ही होगा न! क्या है परन्तु? दोनों की ऐसी एक रग थी न, रग टूटी इसलिए जरा पागलपना खड़ा किया मुफ्त का। यहाँ तो कहते हैं, भिन्न-भिन्न है। प्रत्येक आत्मा, तुम्हारा आत्मा और मोहनभाई का आत्मा एक है? है उसमें बराबर है। है उसमें बराबर है। परन्तु सब एक हो गये हैं? नहीं तो अनन्त रहे नहीं, सर्व पदार्थ स्थित रहे नहीं, वस्तु का विस्तार रहे नहीं। समझ में आया?

वह विश्व के रूपों सहित अर्थात् समस्त वस्तुविस्तार के त्रिलक्षणवाले स्वभावों सहित वर्तती है। इसलिए विश्वरूप कहा जाता है। सबमें वस्तुविस्तार में त्रिलक्षणवाला सहित वर्तता है सब। यहाँ विश्वरूप लेना है सब। और वह (सत्ता) 'अनन्त पर्यायमय' है,.... वहाँ सब वस्तु का आ गया उसमें ऊपर। इसमें अब एक द्रव्य की अनन्त पर्याय की बात चलती है। समझ में आया? ऊपर सर्व पदार्थस्थित और सविश्वरूप (कहा) उसमें सब पदार्थ ले लिये।

अब वह (सत्ता) 'अनन्त पर्यायमय' है,.... ऐसी भाषा तो 'वह सत्ता' रूप से है। परन्तु उसमें अनन्त पर्याय के सामने एक ही पर्याय लेनी है। क्योंकि वह त्रिलक्षणवाली अनन्त द्रव्यपर्यायरूप व्यक्तियों से व्याप्त है। भाषा किसी को अवरोधक नहीं। अनन्त द्रव्यपर्यायरूप है न शब्द? इसलिए जरा अवरोध करे ऐसा है। त्रिलक्षणवाली अनन्त द्रव्यपर्यायरूप व्यक्तियों से व्याप्त है। अर्थात् कि प्रत्येक वस्तु अनन्त पर्यायमय है। एक-एक वस्तु अनन्त पर्यायमय है। उसके सामने रखेंगे कि अनन्त पर्याय के सामने एक पर्याय लेंगे। एक द्रव्य की अनन्त पर्याय के सामने एक ही पर्याय लेंगे। कहो, समझ में आया इसमें? वहाँ वह डाले कि एक है न। परन्तु ऊपर दो आ गये हैं। सर्व वस्तु विश्वरूप, सर्व पदार्थस्थित है। कहो, समझ में आया?

(इस प्रकार सामान्य-विशेषात्मक सत्ता का उसके सामान्य पक्ष की अपेक्षा से अर्थात् महासत्तारूप पक्ष की अपेक्षा से वर्णन हुआ।) क्या कहा? नीचे है, देखो। यहाँ 'सामान्यात्मक' का अर्थ 'महा' समझना चाहिए और 'विशेषात्मक' का अर्थ 'अवान्तर' समझना चाहिए। सामान्य-विशेष के दूसरे अर्थ यहाँ नहीं समझना। अर्थात् क्या कहते हैं? यहाँ जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता का, उसके सामान्य पहलू की अपेक्षा

से अर्थात् द्रव्य में एक विशेष पर्याय उत्पाद-व्यय की और ध्रुव सामान्य। यह यहाँ नहीं लेना। प्रत्येक द्रव्य में सामान्यपने ध्रुव और विशेषपने उत्पाद-व्यय है, वह यहाँ नहीं लेना। यहाँ सामान्य अर्थात् सब एक होकर महासामान्य, ऐसा इसमें लेना। नहीं तो सामान्य-विशेष के दूसरे अर्थ दूसरे जगह होते हैं। एक द्रव्य का ध्रुवपना, वह सामान्य है, उत्पाद-व्यय विशेष है। यह यहाँ नहीं। यहाँ तो पूरा पदार्थ सामान्य और विशेषवाला है और ऐसे सब पदार्थ। उन्हें यहाँ सामान्य में कहने में आया है। समझ में आया ?

सामान्य-विशेषात्मक.... ऐसा कहा है न? सब होकर वस्तु इकट्ठी एक, हों! उसके सामान्य पक्ष की.... सामान्य अर्थात् कि महासत्ता है। सामान्य अर्थात् वह सदृश्य ध्रुव, वह पहलू नहीं लेना। सामान्य पक्ष की अपेक्षा से अर्थात् महासत्तारूप पक्ष की अपेक्षासे वर्णन हुआ। महासत्ता अर्थात् सब है। गजब बात, भाई! सब है। ऐसे पहलू की अपेक्षा से बात की। अब उसके अन्तर्भेद की अपेक्षा से बात करनी है। यह सामान्य-विशेष ऐसे नहीं लेना। दूसरा जहाँ द्रव्यार्थिकनय का विषय सामान्य अर्थात् ध्रुव अंश, विशेष पर्याय का अर्थ उत्पाद, वह यहाँ नहीं लेना। सामान्य अर्थात् सामान्य-विशेषवाला पदार्थ ऐसे सब पदार्थ को भेद पाड़े बिना सामान्यरूप से, महासत्तारूप से लक्ष्य में लेना। कहो, एक व्याख्या हुई।

अब 'सप्पडिवक्खा' इसकी व्याख्या करते हैं। 'सप्पडिवक्खा' यह तो सब लूखा ज्ञान है, नहीं? रतिभाई! ऐसा कुछ आवे तुम्हारी पाठशाला में? नहीं? तब हिम्मतभाई यहाँ सीखे और वहाँ वापस दूसरा सिखलाते होंगे? आहाहा! परमाणु, वह परमाणु है; आत्मा, वह आत्मा है। ऐसा जो सामान्य-विशेषपना उसका, सब द्रव्य का सामान्य-विशेष एक-एक का। ऐसे अनन्त द्रव्य का सामान्य-विशेष, उसे यहाँ सबको सामान्य में डाला है। समझ में आता है इसमें कुछ? क्या कहा इसमें? रतिभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको होकर सामान्य कहा है। यह सामान्यपना है, ऐसा यहाँ कहने में आता है।

ऐसी होने पर भी वह वास्तव में निरंकुश नहीं है.... अंकुशरहित नहीं है, विरुद्ध

पक्षरहित नहीं है। निप्रतिपक्ष बिना की नहीं है। प्रतिपक्ष है। 'सप्पडिवक्खा' है न शब्द ? ओहोहो ! आचार्य ने सत्य को समझाने के लिये बहुत ही संक्षिप्त बोल में गागर में सागर भर दिया है। क्या कहा ? पहले ऐसा कहा कि प्रत्येक पदार्थ में रही हुई महासत्ता सर्व पदार्थ, सविश्वरूप सब होकर त्रिलक्षणरूप से एक। अनन्त पर्याय.... भंग-उत्पाद-ध्रुव अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लक्षण। और एक। इतने बोल लिये थे। उसके सामने अब 'सप्पडिवक्खा' एक शब्द पड़ा है चौथी लाईन का। इसकी व्याख्या करते हैं।

ऐसी (महासत्ता) होने पर भी वह वास्तव में निरंकुश.... अर्थात् प्रतिपक्ष बिना की नहीं है। समझ में आया ? विरुद्ध पक्ष बिना की नहीं है। निःप्रतिपक्ष नहीं है, ऐसा। निःप्रतिपक्ष नहीं अर्थात् प्रतिपक्ष बिना की निःप्रतिपक्ष नहीं है। प्रतिपक्षवाली है। सामान्यविशेषात्मक सत्ता का ऊपर जो वर्णन किया है, वैसी होने पर भी सर्वथा वैसी नहीं है; कथंचित् (सामान्य-अपेक्षा से) वैसी है.... सामान्य अर्थात् 'है' अपेक्षा से महासत्ता। और कथंचित् (विशेष-अपेक्षा से) विरुद्ध प्रकार की है। महासत्ता, वह अवान्तरसत्ता विरुद्ध है और अवान्तरसत्ता यह महासत्ता से विरुद्ध है।

(१) सत्ता को असत्ता प्रतिपक्ष है;.... 'है' उसे असत्ता प्रतिपक्ष है। इसका अर्थ बाद में करेंगे, हों! (२) त्रिलक्षणा को अत्रिलक्षणपना प्रतिपक्ष है;.... एक-एक पदार्थ का तीन लक्ष्यपना उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य, उसमें एक-एक का लक्षण भिन्न-भिन्न है। इस प्रकार उसका अत्रिलक्षणपना प्रसिद्ध है। प्रतिपक्ष है। क्या कहा ? प्रत्येक में उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य का जो स्वरूप सामान्यरूप से तीन लक्षणवाला कहा, वह एक-एक तीन लक्षणवाला नहीं। एक-एक, वह एक लक्षणवाला है। इसलिए तीन लक्षण के सामने एक-एक लक्षण वह प्रतिपक्ष है। जो सत्ता तीनों होकर तीन लक्षणवाली कही थी, उसे एक-एक पक्ष से उत्पाद की अपेक्षा से उत्पाद लक्षण एक ही है। व्यय अपेक्षा से एक ही है। ध्रुव अपेक्षा से एक ही है। तीन के महासत्ता के लक्षण की अपेक्षा से एक-एक स्वरूप की अवान्तर सत्ता विरुद्ध और एक की अपेक्षा से तीन विरुद्ध है। समझ में आया ? ओहोहो ! पदार्थ का विज्ञान। समझ में आया ?

(३) एक को अनेकपना प्रतिपक्ष है;.... सब पदार्थ एक हैं, उनका अनेकपना

अन्तर्भेद से प्रतिपक्ष है। (४) सर्वपदार्थस्थित को एकपदार्थस्थितपना प्रतिपक्ष है;.... सर्वपदार्थस्थित में एक-एक भिन्न, यह उसका प्रतिपक्षपना है। और (५) सविश्वरूप को एकरूपपना प्रतिपक्ष है;.... अनेकरूप में सामने एक-एकरूपपना प्रतिपक्ष है। और (६) अनन्तपर्यायमय को.... देखो! यहाँ वह स्पष्टीकरण आया। उसमें ऐसा हो जाये ऐसा है जरा। अनन्त द्रव्यपर्याय में आ जाते हैं न छोटे बोल में? यहाँ अनन्तपर्यायमय को एकपर्यायमयपना प्रतिपक्ष है। समझ में आया? इसमें समझ में आता है या नहीं? अब सूक्ष्म ऐसा क्या परन्तु, भाई! हम तो धर्म सुनने आये हैं। हमें धर्म का कहो न कुछ। यह ऐसा है और यह ऐसा है, यह तुमने क्या लगायी है वह? यह धर्म कहा जाता है।

धर्म अर्थात् सत्य समझ, सत्य श्रद्धा और सत्य चारित्र। वह धर्म कैसे हो? कि सब पदार्थ अपनेरूप से, सर्वरूप से है और प्रतिपक्षरूप से एक-एकरूप से सब नहीं। सब है, वह सबरूप से है, परन्तु सब एक-एकरूप से नहीं। ऐसे भिन्न-भिन्न सत्ता। अर्थात् सब है, ऐसा ज्ञान करे तो सम्यग्ज्ञान होता है। और वह सब अन्तर्भेद से एक.... एक.... एक.... एक.... एक.... एक.... एक.... एक.... एक.... एकरूप है, वह महासत्तापने से विरुद्ध है। अर्थात् कि है उत्पाद उत्पादरूप से है, व्यय व्ययरूप से है, ध्रुव ध्रुवरूप से है। एक-एक अंश एक-एक अंशरूप से है, उसमें भी है, वह है ही वह। दूसरे के कारण से नहीं। उत्पाद व्यय के कारण से नहीं, व्यय उत्पाद के कारण से नहीं, उत्पाद-व्यय ध्रुव के कारण से नहीं, ध्रुव उत्पाद-व्यय के कारण से नहीं। तीनों है। समझ में आया? ऐसी वीतरागता है इसमें। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : है, वह ज्ञेय कहा। सब 'है' ऐसा ज्ञेय कहा। यह तो ऐसा न हो उससे ऐसा होता है, ऐसा न हो और इससे ऐसा होता है। जैसा है, वैसा ज्ञान किया नहीं। मिथ्या दृष्टि हुई। मिथ्यात्वपना। तो कहे, नहीं। इसके कारण ऐसा, इसके कारण ऐसा। परन्तु है। अन्तर्भेद एक-एक अंश भी है। आत्मा की एक पर्याय उत्पन्न होती है, उस रूप से है। उसका लक्षण स्वतन्त्र है। व्यय हो, वह व्ययरूप से है। ध्रुव, वह ध्रुवरूप से है। उस व्यय से उत्पाद नहीं, उत्पाद से व्यय नहीं, व्यय से ध्रुव नहीं, ध्रुव से उत्पाद

नहीं। तीन लक्षण भिन्न-भिन्न हैं। ऐसे एक-एक में एक-एक पदार्थ का एकपने का स्वतन्त्रपना जहाँ सिद्ध हो, उसे ऐसा कैसे है? यह प्रश्न नहीं रहता। उसमें भी सम्यग्ज्ञान की वीतरागता ही खड़ी होती है। समझ में आया?

सर्व शास्त्रों का तात्पर्य वीतरागता अर्थात् प्रत्येक पद में से उसका भाव निकलता होगा या नहीं? भावार्थ? प्रत्येक गाथा में भावार्थ नहीं आता? कहा है न? प्रत्येक गाथा में भावार्थ निकालना। समझ में आया? महा है, तो भी ज्ञान ने जाना है इतना। अन्तर्भेद का अंश ऐसा कैसे? यह ऐसा कैसे, यह उत्पादरूप ऐसा उसका लक्षण है। उसका व्यय कैसे? केवलज्ञान जैसी पर्याय का दूसरे समय में व्यय, दूसरे समय में केवलज्ञान नया। वह है। ऐसा है। समझ में आया? पदार्थविज्ञान है यह। एक एकरूप से है, अन्तर्भेदरूप से है, महासामान्य की अपेक्षा से प्रतिपक्ष है। और एक है, उसकी अपेक्षा से वह महासामान्य भी प्रतिपक्ष है। परन्तु वह प्रतिपक्ष है, वह सब है। समझ में आया? अर्थात् उसके ज्ञान में ऐसा नहीं आना चाहिए कि एक अंश ऐसा कैसे इसका? यह अंश व्यय क्यों? यह अंश उत्पाद क्यों? और यह अंश ध्रौव्य क्यों? अन्तर्भेद एक-एक लक्षण का एक-एक स्वरूप से वह अवान्तरपने है। महा की अपेक्षा से अवान्तर विरुद्ध है। अवान्तर की अपेक्षा से वह विरुद्ध है। परन्तु वस्तुस्वरूप से तो ऐसा ही है। कहो, देवानुप्रिया! ऐसा आता होगा वहाँ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। यह भी दूसरे प्रकार का कहकर.....

देखो न! यह क्या कहते हैं? एक-एक गाथा पुकार करती है। षट्द्रव्य पंचास्तिकाय। आहाहा! इसकी-आत्मा की ज्ञान की पर्याय ही इतनी है कि वह पंचास्ति और षट्द्रव्य जैसे अस्तिरूप से हैं, उन्हें जानने की ताकतवाली है। यदि इन छह द्रव्यों का निषेध करे तो उसकी पर्याय का ही उसमें निषेध किया है। और पर्याय के सामर्थ्य का निषेध किया तो गुण का निषेध किया और द्रव्य का भी निषेध किया। गजब बात भाई! पहेली कठिन भारी! समझ में आया इसमें?

किसी प्रकार वर्णन किया? महासत्ता भी है। महासत्ता भी अन्तर्भेद बिना महासत्ता

किस प्रकार हुई ? समझ में आया ? कि अन्तर्भेद भी है । है, वह है । अन्तर्भेद है, वह है । उत्पाद के स्वरूप से एक लक्षणवाला उत्पाद है । अनन्त द्रव्य का उत्पाद एक समय में हो तो उस उत्पाद के एक लक्षणवाला वह सत् है । पूर्व की अवस्था का व्यय हो, वह व्यय के उस लक्षणवाला वह व्यय है, अभाववाला । और ध्रुव के लक्षण से टिक रहा है । इस प्रकार सब है । अनादि-अनन्त इस प्रकार सत् का पिण्ड अन्तर्भेद और महासत्तारूप से है । चन्दुभाई ! वह छह काय की दया पालो और यह करो, इसके बिना कहीं.... धूल भी नहीं । सुन न । यह है । उस समय पर्याय शरीर आदि की बदलती तो वह है । टिकी रहे तो कहते हैं । उसमें तेरे कारण वहाँ है और उसके कारण यहाँ है, ऐसा कहाँ से आया ? मेरे दया के भाव आये, इसलिए बचा, ऐसा है कहीं उसमें ? दया का भाव है, ऐसा ज्ञान में जाना । वह वस्तु ऐसी वहाँ है, ऐसा ज्ञान ने जाना । उस भाव से वहाँ हुआ और यहाँ से यहाँ हुआ, यह लाया कहाँ से ? महासत्ता में ऐसा नहीं, अन्तर्भेद के लक्षण में भी यह है नहीं । समझ में आया ? गजब व्याख्या भाई ऐसी । ऐसी जैनधर्म की व्याख्या ! जैनधर्म में तो छह काय की दया पालना, सूर्यास्तपूर्व भोजन करना, रात्रि में नहीं खाना, सामायिक करना, प्रतिक्रमण करना, भगवान की पूजा, यात्रा करना । यह मलूकचन्द जा आये, थक गये यह । वर्षा में बराबर गये और उसमें वर्षा आयी । थक गये । कहो, समझ में आया इसमें ?

कहते हैं कि तू यह ज्ञान की पर्याय उत्पन्न कर न, वह भी उत्पादवाला उत्पाद है एक लक्षणवाला है । वह कहीं सामने शास्त्र है और भगवान है, इसलिए उत्पाद है—ऐसा नहीं है । महासत्ता में किस द्रव्य और किस गुण की पर्याय बाकी रह जाती होगी ? और अन्तर्भेद में भी कौन सी पर्याय और कौन सा ध्रुवपना बाकी रह जाता होगा ? समझ में आया ? ज्ञान की पर्याय स्वयं है, ऐसा जाने; उससमय राग है, ऐसा जाने; द्रव्य है—ऐसा जाने अर्थात् ध्रुवरूप से है—ऐसा जाने । सब उस काल में है रूप से जाने और अन्तर्भेदरूप से अन्तर्भेद का अंश भी उसरूप से है, ऐसा जाने । बहुत सूक्ष्म पड़े न लोगों को ।

मुमुक्षु : खाना खाली करे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। परन्तु खाना खाली करने के लिये तो यह बात चलती है। कहो, समझ में आया इसमें ?

भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने छह द्रव्य के गुण-पर्यायवाले द्रव्य देखे और उस लक्षण से सिद्ध किया। सत् है, वह सत् तीन लक्षणवाला होता है। समझ में आया ? जो है, उसके तीन लक्षण होते हैं—उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य। एक समय में तीन हों तो वह सत् कहलाता है। यहाँ अस्तित्व का वर्णन है। उपोद्घात बाँधा है न ? अमृतचन्द्राचार्य ने उपोद्घात यह बाँधा न! देखो न, कहा न ? 'अत्रास्तित्वस्वरूपमुक्तम्' बस। है—अस्तित्व, उसका भाव, उसका स्वरूप कहते हैं। उस अस्तित्व का यह सब विस्तार है। हो उसका विस्तार होगा न ? न हो उसका कैसे विस्तार होगा।

कहते हैं कि सब—अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु ऐसे हैं। सामान्यरूप से है, अन्तर्भेदरूप से उस महा (सत्ता की) अपेक्षा से अन्तर्भेद नहीं। असत्ता है। और अन्तर्भेद की अपेक्षा से महासत्ता, वह असत्ता है। अस्ति-नास्ति उसी और उसी में डाला। आहाहा! समझ में आया ? लो, यह स्याद्वाद डाला। सब है, वह 'है' अपेक्षा से एकरूप। और सब 'है', यह अन्तर्भेद की अपेक्षा से 'नहीं'। और अन्तर्भेद सब सामान्य की अपेक्षा से एक में पूरा नहीं होता और पूरे में एक पृथक् नहीं पड़ता। सब है वह भी सामान्य ज्ञान और अन्तर्भेद सब अंश हैं, हैं। किसी के कारण कोई, यह प्रश्न नहीं। शरीर शरीर के कारण अवस्था, आत्मा आत्मा के कारण अवस्था, कर्म कर्म के कारण अवस्था, पैसे का आना-जाना, इसके कारण वह अवस्था सब है। अन्तर्भेद हैं उसमें वीतरागता ज्ञान में आयी। यह अंश ऐसा कैसे ? कि है, उस समय अंश, अन्तर्भेद का अंश ऐसा ही है। ज्ञान ने जाना, वीतरागता आयी, इसका नाम ज्ञान और इसका नाम सम्यक्। ज्ञान प्रधान कथन है न इसमें ? समझ में आया ? छह बोल हो गये। अन्तिम बोल आ गया न ?

(६) अनन्तपर्यायमय को एकपर्यायमयपना प्रतिपक्ष है। एक द्रव्य में अनन्त पर्याय है। एक वस्तु में कितनी पर्याय ? एक परमाणु में अनन्त गुण और अनन्त पर्याय। एक आत्मा में अनन्त गुण और अनन्त एक समय में, एक समय में अनन्त पर्याय, हों!

अनन्त पर्याय सामान्य में जाती है, अभी महासत्ता में। उसकी एक पर्याय, वह अवान्तर भेद में जाती है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और उसमें गया। सब आ गया।

(उपरोक्त सप्रतिपक्षपना स्पष्ट समझाया जाता है:—) लो! उपर्युक्त कहा, वह सप्रतिपक्षपना सामान्य शब्द से वर्णन किया था। सामान्य वर्णन किया था न छह अंक ऊपर। यह छह शब्द वर्णन किये थे, ऊपर ये किये वे। छह। उसे विशेष स्पष्ट समझाने में (आता है)। कहा उन्हें स्पष्टरूप से, प्रगटरूप से, व्यक्त हो उस रीति से समझाया जाता है।

अब सत्ता द्विविध है.... अस्तित्व दो प्रकार से है। अस्तित्व जगत में छह द्रव्यों का भगवान ने देखा, केवलज्ञानी ने छह द्रव्य देखे, उनमें छह द्रव्य और पंचास्तिकाय। दोनों बातें ली हैं न ऊपर? यह है, उसके दो प्रकार हैं। है, उसके दो प्रकार हैं। एक महासत्ता.... अर्थात् सब है। एक अवान्तरसत्ता अर्थात् पेटा सत्ता। समझ में आया ?

उनमें, सर्व पदार्थसमूह में व्याप्त होनेवाली,.... समस्त पदार्थों में व्यापनेवाली है... है... सत्ता। सादृश्य-अस्तित्व को सूचित करनेवाली.... देखा! इसकी व्याख्या की। है... है... ऐसी अस्तित्व को सूचित करनेवाली महासत्ता (सामान्यसत्ता) तो कही जा चुकी है। यह पहले ऊपर कही गयी है। अब दूसरी प्रतिनिश्चित (-एक-एक निश्चित) वस्तु में रहनेवाली, स्वरूप-अस्तित्व को सूचित करनेवाली.... एक-एक द्रव्य भिन्न, एक-एक पर्याय भिन्न। उसके स्वरूप के अस्तित्व को सूचित करनेवाली अवान्तरसत्ता (विशेषसत्ता) है। विशेष का अर्थ यहाँ उत्पाद-व्यय अकेला, ऐसा नहीं। सब 'है' की अपेक्षा से एक द्रव्य भी विशेष, एक द्रव्य सब है, उसमें एक पर्याय भी विशेष। समझ में आया इसमें ?

स्वरूप-अस्तित्व को सूचित करनेवाली अवान्तरसत्ता (विशेषसत्ता) है। (१) वहाँ, महासत्ता.... अर्थात् सादृश्यरूप से सब है, सब पदार्थ हैं। सब पदार्थ में व्यापनेवाली। व्यापनेवाली अर्थात् है, ऐसा अस्तित्व। कोई एक सत्ता है और सबमें

व्यापती है, ऐसा नहीं है। वेदान्त कहता है कि एक सत्ता। ऐसा नहीं है। सर्व पदार्थ में है.... हैपना ऐसी है... हैपने की सदृश्यता। सदृश्यता ली है न? एकता कहाँ ली है? एकता कही परन्तु सदृश्यता की अपेक्षा से एकता। सब आत्मायें हैं, सब परमाणु हैं। वे 'है' में समाहित हो गये। वह महासत्ता अवान्तरसत्तारूप से असत्ता है.... उसके पेटाभेद की अपेक्षा से नहीं यह महासत्ता। पूरा वह कहीं अंशरूप नहीं। गजब बात, भाई! पूरा समूह लिया एक समय में अनन्त पदार्थ का। वह पूरा उस एकरूप नहीं। इस अपेक्षा से पूरा असत्तारूप कहा गया है। वह एकपने की अपेक्षा से पूरा असत्ता।

और अवान्तरसत्ता.... एकपने जो है, वह महापने नहीं। इसलिए अवान्तरसत्ता महासत्तारूप से असत्ता है,.... इस गाथा में पहले-पहले लगते हो यहाँ। सेठी! बीच में गुम हो जाये अर्थात् बीच में कुछ चल गया हो। गुम हो जाये अर्थात्? जयपुर और मुम्बई। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! अरे! मुनि दिगम्बर सन्त जंगल में बसे हुए, उन्हें यह एक विकल्प आया, अरे! जगत को मार्ग की प्रभावना के लिये.... यह मार्ग प्रभावना के लिये है, हों! अन्तिम शब्द है या नहीं? अन्तिम क्या है इसमें है या नहीं? यह प्रवचन में है। इसमें क्या है? यह 'मगगप्यभावणट्टं' है न? यह रहा देखो १७३। मार्ग की प्रभावना के लिये.... 'पवयणमत्तिप्यचोदिदेण मया' प्रवचन की भक्ति से प्रेरित ऐसे मैंने.... १७३ (में) कहते हैं। यह पंचास्तिकाय कहता हूँ (ऐसा) कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। मार्ग की प्रभावना के लिये। और मार्ग तो अन्दर परमवैराग्य है। देखो, भाई नीचे।

मार्ग अर्थात् परम वैराग्य करने के प्रति ढलती पारमेश्वरी परम आज्ञा.... ओहोहो! है १७३? नीचे है दो लाईन। मार्ग अर्थात् परम वैराग्य करने के प्रति ढलती पारमेश्वरी परम आज्ञा (अर्थात् परम वैराग्य करने की परमेश्वर की परम आज्ञा है); उसकी प्रभावना.... के लिये। देखो! उसकी प्रभावना की व्याख्या की है जरा। अर्थात् प्रख्यापन द्वारा अथवा प्रकृष्ट परिणति द्वारा.... इस कथन द्वारा और परिणति द्वारा। उसका समुद्योत करना; (परम वैराग्य करने की जिनभगवान की परम आज्ञा की प्रभावना....) ओहो! अर्थात्? तू तेरेरूप से है, अनन्त अनन्तरूप से है, उससे उदास हो। आहाहा! समझ में आया?

अनन्त-अनन्त पदार्थ हैं, ऐसा कहने में भी मार्ग की प्रभावना अर्थात् परम उदासीन पर से करना। अपने महा अस्तित्व के अन्दर सन्मुख होना और पर से पर है, उसकी उपेक्षा करना। मुझमें वह नहीं है। सब मुझमें नहीं। मुझमें मैं हूँ। मुझमें वह नहीं, ऐसा भगवान पर की उपेक्षा कराने को कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि यह मेरी व्याख्या है। आहाहा! वाह! समझ में आया? सन्धि वह सन्धि भी! पहले से लो तो ठेठ और ठेठ से लो तो पहली, सब एक सांकल। है, कहा न? और अन्तर्भेद है, ऐसा कहते हैं न? उसमें भी भिन्न-भिन्न सत्ता की एक-एक अपेक्षा से महा नहीं और महा वह एकपने नहीं। उसमें भी पर से वैराग्य करने और स्वसन्मुख ढलने के लिये यह बात है। आहाहा! समझ में आया?

महासत्ता अवान्तरसत्तारूप से असत्ता है.... अर्थात् क्या कहा? कि भगवान ने सब 'है' ऐसा कहा। है, महासत्तारूप से। इसका अन्तर्भेद महारूप से नहीं है। इसलिए महासत्ता अवान्तरसत्ता एक-एक से प्रतिपक्ष है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कितनी लाईन? देखो तो सही। एक के पश्चात। ऐसा कहते हैं, कौन सी लाईन का अर्थ चलता है? यह एकड़ा-एकड़ा। एकड़ा है वहाँ। वहाँ, महासत्ता अवान्तरसत्तारूप से असत्ता है.... ऐसा लिखा है, देखो। पहला बोल। छह बोल है न। यह पहला बोल है। छह बोल में पहला बोल यह चलता है। अरे!

अनन्त आत्मायें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहितवाले, अनन्त द्रव्य रजकण उत्पाद-व्यय-ध्रुव (सहितवाले)। वह सब होकर है एक समय में, उसे महासत्ता कहा जाता है, सदृश्यपने की अपेक्षा से। एकपने की अपेक्षा से नहीं। सब एक नहीं है, भिन्न है। और उसका एक-एक अन्तर्भेद आत्मा लो या एक-एक गुण या पर्याय लो तो उसका अवान्तरसत्ता अन्तर्भेद हो जाता है। और अन्तर्भेद होने पर महापना वह एकपने नहीं है। इसलिए महापना एकपने की अपेक्षा से असत्ता और अवान्तर, वह महा की अपेक्षा से असत्ता। समझ में आया इसमें? परन्तु यह तुमने प्रकाशित किया है न हिन्दी तुम्हारे घर से। पढ़ा है या नहीं? लो ठीक।

और अवान्तरसत्ता.... प्रत्येक आत्मा का एक-एक उत्पाद या अनन्त पदार्थ में का एक-एक द्रव्य वह महासत्तारूप से असत्ता है,.... एक-एक भाग वह महापने नहीं है। एक भाग महापने होगा ? तो महापना कहाँ (रहा) ? और महापना एक भाग में आ जाये ? एक ही भाग का महापना ? ऐसा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? इसलिए सत्ता को असत्ता है.... इसलिए सत्ता प्रतिपक्षवाली असत्ता भी है। (अर्थात् जो सामान्य-विशेषात्मक सत्ता....) देखा ! सब सामान्य-विशेष, हों ! ध्रुव और उत्पाद-व्ययवाला। (महासत्तारूप होने से 'सत्ता' है, वही अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'असत्ता' भी है।)... वही अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'असत्ता' भी है। देखो ! इसका नाम स्याद्वाद। ऐई ! देवानुप्रिया ! यह स्याद्वाद है। महासत्ता, वह महासत्तारूप से है और अवान्तरसत्तारूप से भी है, ऐसा स्याद्वाद नहीं होता। ऐसा नहीं, ऐसा स्याद्वाद होता। और अन्तर्भेद वे अन्तर्भेदरूप से है और अन्तर्भेद महासत्तारूप से है, ऐसा नहीं होता। वह फुदड़ीवाद होता है। ओहोहो !

'सत्ता' है, वही अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'असत्ता' भी है। अर्थात् एक बोल कहा। कौन सा एक बोल कहा ? अस्तित्व के दो प्रकार किये। महापने है, वह सब है। तो आत्मा ज्ञाता-दृष्टा रह गया। ऐसा कैसे ? ऐसी एकताबुद्धि का उसमें अभाव होता है। है सब। आत्मायें, अनन्त परमाणु उनके अपने अस्तित्व से सब है। अन्तर्भेद लो तो अन्तर्भेद भी उसके कारण से है। अन्तर्भेद महासत्ता की अपेक्षा से अभाव, असत्ता और महासत्ता की अपेक्षा से अन्तर्भेद असत्ता। इस प्रकार अस्ति-नास्तिपना महा और विशेष में एक-एक में आने पर उसके ज्ञान में जैसा स्वरूप है वैसा भासित हो, उसे सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन कहा जाता है। कहो, समझ में आया ? एक बोल कहा।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

पौष शुक्ल ५, शनिवार, २१-१२-१९६३, गाथा-८-९, प्रवचन-१५

पंचास्तिकाय की आठवीं गाथा चलती है। इस जगत में सत्, सत् अर्थात् वस्तु है, वह अस्तित्व अर्थात् अपने अस्तित्व के भाव से है। अनन्त पदार्थ भगवान ने देखे, उनका होनापना—अस्तित्वपना किस प्रकार है, यह बतलाते हैं। सीधी बात तो है। इस अस्तित्व के छह प्रकार से अस्तित्व का वर्णन करते हैं। सब द्रव्य अस्तित्वपने हैं, उसके दो प्रकार। एकड़ा देखो। २२ (पृष्ठ), छह बोल हैं, छह।

(१) वहाँ महासत्ता.... अर्थात् सब है, सब है, इस अपेक्षा से अवान्तरसत्तारूप से असत्ता है.... एक-एक अवान्तर अन्तर्भेद के अस्तित्व की अपेक्षा से महासत्ता असत्तारूप है। कौन सी लाईन चलती है? कल पूछते थे न कौन सी लाईन चलती है? क्योंकि इसमें एक सरीखे शब्द लगते हैं, ऐसा। कहने का आशय ऐसा है। इस जगत में अनन्त आत्माएँ, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश का अस्तित्व सदृश्य की अपेक्षा से महासत्ता एकरूप है। है.... है..... है सब। परन्तु उसके अन्तर्भेद की अपेक्षा से असत्ता है। पूरी सत्ता में कोई अन्तर्भेद का एक अंश कहीं महासत्ता कैसे हो सकता है? समझ में आया?

मुमुक्षु : महासत्ता और अवान्तरसत्ता नाम भी कभी सुना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : महा अर्थात् अस्तित्व। महापना अर्थात् सब अस्तित्वपना, सब अस्तित्वपना, उसका नाम महासत्ता। एक-एक अस्तित्वपना, उसके अन्तर्भेद में भाग है, वह अवान्तरसत्ता है। समझ में आया? महा अर्थात् मोटा अस्तित्व, महान पूरा जगत और लोकालोक। अस्तिरूप से सब है, उसकी अपेक्षा से महासत्ता कहने में आता है। महा-अस्तित्व, अवान्तरसत्ता (अर्थात्) अन्तर्भेद। अवान्तर अर्थात् अन्तर्भेद का अस्तित्व। वह सत्ता है अवान्तरसत्ता। परन्तु महा अस्तित्व को अन्तर्भेद की अपेक्षा से महाअस्तित्वपना असत्ता है। सेठी! एकरूप कहीं महासत्ता हो जाये? लाख रुपये कहीं पाईरूप हो जाये? लाख रुपये एक पाईरूप नहीं होते और एक पाई, वह लाख रुपयेरूप नहीं होती। कहो, समझ में आया? इसी प्रकार सब 'है', वह अन्तर्भेद के एक अंशरूप नहीं हो जाते।

इसलिए सब 'है' वह एक अंशपने की अपेक्षा से असत्ता है। उसमें भी धर्म में यह क्या काम होगा? मोहनभाई! सुना नहीं इतना सब पिचहत्तर वर्ष में। दरकार भी नहीं की। कहो, समझ में आया?

महा अस्तित्पने सब है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सब है, एक सदृश्य अपेक्षा से। समानपने की अपेक्षा से है.... है.... है। उसकी अपेक्षा से अवान्तरसत्तारूप से वह महासत्ता, वह असत्ता है। अन्तर्भेद के भाग की अपेक्षा से पूरी चीज़ का, पूरी चीज़ में अन्तर्भेद की अपेक्षा से उसमें अभाव है। और अवान्तरसत्ता, एक-एक द्रव्य, एक-एक गुण या एक-एक पर्याय अन्तर्भेद की अपेक्षा से महासत्तारूप वह अन्तर्भेद नहीं है। अन्तर्भेद महारूप से है? एक यदि महारूप से हो तो एक महारूप हो जाये। एक एकरूप है, इसलिए एक महासत्तारूप नहीं है। कहो, बराबर है?

इसलिए सत्ता को असत्ता है.... इसलिए अस्तित्व में वस्तुदृष्टि से अस्तित्व, वह दूसरे की अपेक्षा से असत्ता अर्थात् अहोनेरूप है। (अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता...) सामान्य-विशेष अर्थात्? द्रव्य और पर्याय। द्रव्य, वह सामान्य और पर्याय विशेष। वह सामान्य-विशेषरूप सत्ता महासत्तारूप होने से 'सत्ता' है, वही अवान्तर-सत्तारूप भी होने से 'असत्ता' भी है। अन्तर्भेद की अपेक्षा से असत्ता है। यह एक बोल हुआ। छह बोल में एक बोल।

अब दूसरा बोल। (२) जिस स्वरूप से उत्पाद है.... जैनदर्शन की बात वीतराग क्या कहते हैं, वह लोगों को सुनने को भी नहीं मिलता। बाहर के क्रियाकाण्ड में फंसकर तत्त्व क्या है, उसका ज्ञान नहीं होता और फिर इसे समझ में नहीं आता। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भाई एक व्यक्ति कहता था कि दोपहर में बात सूक्ष्म और उसमें फिर हिन्दी। इसलिए समझ में नहीं आता। यह लक्ष्य में ऐसी बात की। कि यह बाहर का यह करना, पूजा करना, भक्ति करना, दान और दया, व्रत। परन्तु वह क्या चीज़ है और उसमें क्या होता है और वह कितने अंश में है? पूरी है? अंश है? विकार

है या अविकार है ? और उसमें स्व है या पर है ? उसके भाग किये बिना, यह सब अज्ञानरूप से होता है, उसके फल में संसार भटकने का है। समझ में आया ?

इसलिए कहते हैं कि इस जगत में यह पूजा, भक्ति, दया की पर्याय, वह एक अंश है। वह भी है, गुण भी है, द्रव्य भी है। ऐसे सब द्रव्य हैं, गुण हैं और पर्याय है। ऐसे सब 'है' उसे महासत्ता कहते हैं। ऐसी दृष्टि होने पर भी सब है, ऐसा होने पर अनादि की एक अंशरूप राग या पर्याय या इतना जो मान्यता में था, वह सब है, उसकी मान्यता (को) द्रव्य-गुण की मान्यता नहीं थी, सब अस्तित्व की मान्यता नहीं थी, इसलिए। समझ में आया ? सेठी को क्या लगता है यह सब ? वह का वह या दूसरा ?

सब है, देखो ! सब है, तो सब है, उसमें अनन्त काल में सब है, ऐसा माना ही नहीं। क्योंकि इसने कुछ दया, दान, भक्ति के परिणाम किये, वह तो विकारी पर्याय हुई अथवा एक अंश हुआ। कितना आत्मा है ? समझ में आया ? सब है, ऐसे दूसरे के आत्मा को भी दया, दान के शुभभाव किये, उतना वह आत्मा है ? दूसरे का आत्मा भी उतना है ? समझ में आया ? और यह परमाणु आदि की पर्याय हुई ऐसे... ऐसे... हुई कि यह लेने का, वह पर्याय हुई, उतना वह द्रव्य है ? इसलिए सब है, ऐसी मान्यता करने से उसकी एक समय की पर्याय मात्र जो मान्यता है, अपनी या सामने द्रव्य की एक समय की अवस्थामात्र सत्ता को मानता है, वह सब है, इस मान्यता में अपना द्रव्य और गुण त्रिकाल है, वह भी मान्यता में आ जाता है। समझ में आया ? भारी कठिन पलाखुं।

सब है, ऐसा ज्ञान होने पर, वह ज्ञान की पर्याय सबको ज्ञेयरूप से मानती है, उसमें अपने द्रव्य-गुण का परिपूर्णपना भी उस ज्ञान की समझण में सब है, उसमें आ जाता है। और वह अपने द्रव्य और गुण है, ऐसा ज्ञान में आया; इसलिए उसे एक अंशरूप जो अनादि मानता था, वह सब है अर्थात् मेरा द्रव्य पूर्ण, गुण पूर्ण है, दूसरे के द्रव्य गुण पूर्ण हैं (और) एक समय की पर्याय, ऐसी सब मान्यता उसके ज्ञान में स्वभाव सन्मुख की सत्ता का स्वीकार होने पर, दूसरे सबके स्वभावसहित की पर्याय का भी, सब है, उसमें स्वीकार हो जाता है। वजुभाई ! यह सब एक-एक... शास्त्र है यह तो। एक-एक शब्द में अनन्त आगम भरे हैं। सन्तों की वाणी केवलज्ञान से निकली हुई। समझ में आया ?

इसलिए और सब है तथा अन्तर्भेद है फिर अब। अन्तर्भेद अर्थात् एक-एक समय की पर्याय है, एक-एक गुण है। ऐसे जहाँ अन्तर्भेद को भी सब है, द्रव्य है, गुण है, पर्याय है, अनन्त द्रव्य दूसरे हैं, उनके गुण हैं, अन्तर्भेद अंश-अंश अंश हैं। ऐसा भी निर्णय करने से एक-एक राग का, एक अंश उघाड़ का, एक अंश द्रव्य का। यह सब भिन्न-भिन्न अंश की प्रतीति में भी.... समझ में आया? उसका द्रव्य पर लक्ष्य जाने से एक अंश ही श्रद्धा में जो था, परन्तु बहुत अंश हैं, बहुत अंशोंरूप अवान्तरसत्ता है। आहाहा! समझ में आया? उसके एक-एक अंशरूप है, वह पूर्णरूप से नहीं। तो सब अंशों की प्रतीति होने पर एक अंशरूप ही है, इतनी प्रतीति न रहकर बहुत अंशों के अन्तर्भेद हैं, उसमें द्रव्य और गुण भी एक अंश हैं। ऐसे पर्याय की, गुण की और द्रव्य के प्रत्येक अवान्तर के भेद की श्रद्धा होने पर उसमें द्रव्य और गुण की श्रद्धा होने पर उसे सम्यग्ज्ञान होता है। वजुभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : भले अब यह कहते हैं, बातें करते हैं। यह कहते हैं, कौन लाईन वाँचन हो रही है, ऐसा कहते हैं। वह का वह वाँचन होता है, पहला, दूसरा कोई अलग पड़ता नहीं, ऐसा कहते थे। कहो, समझ में आया इसमें?

अब दूसरा बोल।

मुमुक्षु : बहुत मुद्दे का लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुद्दे का है, यह दूसरा बोल। सब मुद्दे के हैं यहाँ तो। मुद्दे की रकम की, अस्तित्व की ही बात है। अस्तित्वस्वरूप कहा न ऊपर? अस्तित्व की बात है। समझ में आया? पश्चात् अस्तित्व के प्रकार—महा (सत्ता) और पेटाभेद। ऐसे दो हो गये। महा की अपेक्षा से अन्तर्भेद का अभाव, अन्तर्भेद की अपेक्षा से महा का अभाव। एक में दूसरे की नास्ति, दूसरे में इसकी नास्ति। ऐसे एक का अस्ति का ज्ञान होने पर दूसरे की उसमें नास्ति है, ऐसा भी ज्ञान हो जाता है। समझ में आया? बहुत संक्षिप्त बात।

अब दूसरा बोल देखो! दो है न? छह बोल आयेंगे छह। छह तो पहले कहे जा

चुके हैं महासत्ता के तो। समझ में आया? अब उसके साथ मिलाते हैं एक-दूसरे को। (२) जिस स्वरूप से उत्पाद है, उसका (-उस स्वरूप का) उस प्रकार से उत्पाद एक ही लक्षण है;.... क्या कहते हैं? आत्मा में एक सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न हुई— उत्पाद। वह एक लक्षणवाला, वह उत्पाद है। उत्पाद लक्षणस्वरूप एक उत्पाद है। वह कहीं व्यय लक्षणवाला नहीं है, वह कहीं ध्रौव्य लक्षणवाला नहीं है। वस्तु पूरी है, वह उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य लक्षणवाली तीनों है। पूरा तत्त्व।

प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु एक समय में तीन लक्षणवाले हैं। वह तीन लक्षणवाली जो महासत्ता, तीन लक्षणवाली जो महासत्ता, तीन लक्षण में सब है, ऐसा आ जाता है। उसमें एक-एक लक्षणवाली अवान्तरसत्ता, उस स्वरूप से सत् है और महासत्तारूप से वह असत् है। अथवा त्रिलक्षणरूप से जो है, वह एक लक्षणरूप से नहीं। भाई! यह तो एकदम सर्वज्ञ की—सर्वज्ञ के कानून हैं यह। उन्होंने कानून किये नहीं। बतलाये हैं कि वस्तु के यह नियम हैं। समझ में आया? देखो, पण्डितजी! क्या कहना है हमारे पण्डितजी को कहकर? यह एक-एक उत्पाद उत्पादस्वरूप से है। कहो, उसमें और था। कहाँ था? प्रवचनसार, १०१ (गाथा)।

यहाँ जिस स्वरूप से उत्पाद है, उस भाव से उत्पाद है; प्रत्येक द्रव्य में एक समय का जिस भाव से उत्पाद है, वह वस्तु सब त्रिलक्षणस्वरूप है। तीन। नयी अवस्था से उपजना। पाठ में ही है न। इसका अर्थ करते हैं, देखो। 'भंगुप्पादधुवत्ता' ऐसी आठवें की दूसरी लाईन थी। भंग, उत्पाद और ध्रौव्य यह प्रत्येक को लागू पड़ी सत्ता में। आठवें का पहला पद। भंग, उत्पाद और ध्रुव। भंग अर्थात् व्यय, उत्पाद-उपजना और ध्रुव। वह प्रत्येक को लागू पड़ा है। सत्ता को, सर्व पदार्थ को, विश्वरूप को, अनन्त पर्याय को और एक को। इन सबमें यह तीन लागू किये हैं। समझ में आया?

भाई! हीरा लेने आया हो, इसलिए थोड़ी सी उसके पास कीमत हो या नहीं? कीमत बिना हीरा ले जाये? शाकभाजी लेने निकला हो आठ आने की, उसमें से हीरा लेता होगा? इसी प्रकार वीतराग का तत्त्व सर्वज्ञ परमात्मा ने कहे हुए तत्त्वों के भावों को समझने के लिये अमुक तो योग्यता और ज्ञान की कीमत देने का भाग तो उसे होना चाहिए। समझ में आया? ओहो! महा अमूल्य चीज। वीतरागता जिसे प्रगट करनी है।

महाअमूल्य चीज़। अनन्त आनन्द सादि-अनन्त रहे, ऐसा प्रगट करना है। उसकी विधि जो भगवान कहते हैं, उसके लिये कोई कीमत तो ज्ञान में, प्रतीति में पुरुषार्थ की देनी चाहिए। समझ में आया ?

ओहो! परमेश्वर की जहाँ सभा हो, वहाँ दो सौ इन्द्र उपस्थित। दुनिया के नायक जहाँ सभा में उपस्थित! आहाहा! नरेन्द्र, असुरेन्द्र, सुरेन्द्र, बाघ-तिर्यच के इन्द्र, सिंह आदि उसे बाघ-सिंह कहा जाता है। इसी प्रकार भगवान की सभा में, आहाहा! सौ-सौ इन्द्र और ऐसे तो लाखों, करोड़ों, देव और मनुष्य, उनकी-वीतराग की वाणी, (का) प्रपात निकले, उसके लिये समझनेवाले की भी अमुक प्रकार की योग्यता तो होती है और आये हों। फिर भले समझे नहीं, सम्यक् पावे नहीं, वह अलग बात है। परन्तु अमुक प्रकार की सुनने की योग्यता बिना वह धर्मसभा में आ सकता ही नहीं। समझ में आया ? तो उन भगवान ने जो समवसरण में धोधमार्ग से जो मार्ग कहा, वस्तु क्या है, उसका (कहा), वह यहाँ मुनि इन गाथाओं में और टीका में वर्णन कर रहे हैं। समझ में आया ?

भगवान के पास तो कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। साक्षात् सभा में इन्द्रों के मध्य में, मनुष्यों के इन्द्र चक्रवर्ती पास में थे और सुना है। समझ में आया ? वह बात संग्रह कर.... आता है न ? भाई ने बनाया है न ? ओमकार संग्रहो। संग्रह कर यहाँ लाये, धोख मार्ग जगत के समीप (प्रसिद्ध किया)। हीरे फेंके हीरे। मुट्टियाँ बाँधकर जैसे वह हीरा फेंके न। मारामारी हो पड़ापड़ी। सेठी!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री :देखा! तब तुम्हारे हीरा डालने थे न तुम्हारे चिरंजीवी को। कहा, भाई! रहने दो। यह गिरेंगे। ऊपर से डालेंगे तो कोई गरीब व्यक्ति मर जायेगा। लेने जायेगा वह ऐसे दो रुपये का और तीन रुपये की पुड़िया। वैसे दूसरे पड़ेंगे। यह नहीं होगा। ऊपरा ऊपरी, ऊपरा ऊपरी। गरीब ले। इसी प्रकार सत्य की समझण को अनादि का गरीब जीव लेने प्रयत्न करता है। जयन्तीभाई! हीरे गिरते हों और माणिक पड़ते हों। कोई डाल देता हो, हों! लो रे लो! आहाहा! उसे कौन गरीब प्राणी लेने का प्रयत्न और उत्साह न करे ?

इसी प्रकार भगवान त्रिलोकनाथ की वाणी कुन्दकुन्दाचार्य संग्रह कर लाये, और यहाँ रखी, उसकी टीका भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने की। गजब बातें की हैं। एक-एक श्लोक में वीतराग की रेलमछेल है। वीतराग ने ऐसा जाना, ऐसा है, ऐसा कहा, ऐसा तू मान। समझ में आया? इसे मस्तिष्क पर जरा ज्ञान को फैलाना पड़े। रोटी भी आटे को फैलाते हैं तब होती है या नहीं? या ऐसे का ऐसे आटा बाँधकर सीधे बेलते लगते होंगे? बडथोल जैसी कहलावे वह महिला। केणवणी समझते हो सेठी? यह लोग गये लगते हैं, नहीं? यह लोट—आटा होता है या नहीं? फिर गूँथे। तेल-बेल डालकर। क्या करे? यह कुछ अपने को कहाँ बहुत खबर है। फिर मौण डालकर ऐसे गूँथते हैं ठीक से? तब रोटी ठीक से बनती है, नहीं तो कस नहीं रहता। उसी प्रकार भगवान ने कहे हुए भाव, इसके ज्ञान में गूँथना चाहिए। समझ में आया? वह गूँथना बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्श्रद्धा नहीं होती। ऐसे का ऐसे धार ले, बात करे और समझे नहीं। कहो, मलूकचन्दभाई!

जिस स्वरूप से उत्पाद है.... क्या कहते हैं? ओहो! अनन्त पदार्थों में जिस स्वरूप से वर्तमान अवस्था उपजती है, उसका उस स्वरूप का भी उसका (-उस स्वरूप का) उस प्रकार से उत्पाद एक ही लक्षण है;.... अनन्त द्रव्य में, परमाणु में, आत्मा में, निगोद के या सिद्ध के। सब है न यहाँ तो? जिस समय में उत्पाद हुआ उस उस उत्पादस्वरूप से एक ही उसका लक्षण है। जिस स्वरूप से व्यय है.... जिस स्वरूप से व्यय अर्थात् आत्मा में राग का नाश या मिथ्यात्व का व्यय, परमाणु में पूर्व की अवस्था का व्यय, वह जो व्यय, वह व्ययस्वरूप ही है। वह एक स्वरूप है। उसके तीन स्वरूप नहीं हैं। पूरी वस्तु तीन स्वरूप, तीन लक्षण से, परन्तु एक-एक स्वरूप एक-एक लक्षण से है। एक-एक स्वरूप में तीन लक्षण समाते नहीं। समझ में आया? ओहो! उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्, सत् द्रव्यलक्षणं। देखो न! अब यह उसका ही आयेगा न बाद में? नौवें में यह कहेंगे। द्रव्य के लक्षण जितने सत्ता के कहे, इतने द्रव्य के कहे और दसवीं में फिर सब लेंगे पूरे। सत् लक्षण उत्पाद-व्यय-ध्रुव और गुण-पर्याय तीन लक्षण करके पूरी वस्तु ही सत् पर ही पूरा विस्तार किया है। समझ में आया?

जिस स्वरूप से.... जिस स्वरूप से अनन्त आत्माएँ और अनन्त परमाणु उनकी

जो पहली पर्याय का व्यय हो, अवस्था का व्यय-नाश (हो), उस स्वरूप से व्यय है, उसका उस प्रकार से व्यय एक ही लक्षण है। मिथ्यात्व का नाश, वह एक ही लक्षण है। समकित की उत्पत्ति, वह एक ही लक्षण है। या एक-एक के दो-दो लक्षण हैं? इसी प्रकार परमाणुओं में उसकी एक समय की कोमल पर्याय, उसका व्यय होकर अथवा हरी पर्याय का व्यय होकर पीली हुई। उस पीली का उत्पाद, वह उत्पादस्वरूप ही है। हरी का नाश वह नाशस्वरूप ही है। नाश, वह उत्पादस्वरूप नहीं; उत्पाद वह नाशस्वरूप नहीं। धर्मकथा ऐसी होती होगी? समझ में आया?

श्रीमद् ने कहा है एक जगह, भाई! तुम पूरे दिन छह काय और यह सुनो। एक बार जाकर कहो तो सही कि महाराज! आज कुछ समकित की महिमा करना। यह बातें तो बहुत सुनी अब। छह काय के ऐसे जीव और अमुक पूजा ऐसी और भक्ति ऐसी। आज कुछ समकित की व्यवस्था करना। आहाहा! ठीक! वह तो नहीं वे। गये। समझ में आया? श्रीमद् ने (कहा कि) ऐसी व्यवस्था करना। तो इसको कहाँ खबर है? उसे कहे तो सही कि यह तो लाओ। ऐसा। तू तो जाग। तुझे खबर नहीं सम्यग्दर्शन क्या कहलाता है और धर्म क्या कहलाता है? लगायी इसकी यह छह काय के जीव हैं, इनकी दया पाली और यह भक्ति की और यह भगवान है, उनकी पूजा की। वह तो सब बातें व्यवहार की हुई। राग मन्द हो तो पुण्य-बुण्य बाँधे। समझ में आया? परन्तु अन्दर अब सम्यग्दर्शन जो अनन्त काल में किया नहीं, जिसका भव का नाश हो, वह क्या चीज़ है, यह तो प्रबन्ध करना आज। खाने जाये तो ऐसा कहे कि यह प्रतिदिन तुम रोटी और वह बनाते हो। परन्तु आज तो कुछ दूसरा तो करना कुछ मिठाई या ढोकला या अच्छा कुछ ऐसा तो करो। आज तो करो कुछ? करते हैं या नहीं वहाँ? मेहमान आवे तो ऐसा कहे। घर के लोग हैं, आज अच्छा बनाओ भाई!

इसी प्रकार यहाँ साधु के पास जाकर पूछा कि परन्तु इसकी (प्रबन्ध तो करो)। परन्तु उसे अभी दूसरी कौन सी चीज़ है, उसकी खबर नहीं होती। सुन रखता है, वह सुनता जाता है और जिन्दगी पूरी होती है।

यहाँ भगवान कहते हैं कि भाई! अनन्त पदार्थों का तीन लक्षणपना सामान्य सत्ता

से वर्णन किया, महासत्तारूप से तीन लक्षणवाला वर्णन किया, उसका अन्तर्भेद एक-एक स्वरूप से उत्पाद वह उत्पादस्वरूप से है, व्यय वह व्ययस्वरूप से है, व्यय वह उत्पादस्वरूप से नहीं, उत्पाद वह व्ययस्वरूप से नहीं। पर्याय पर्याय का लक्षण भिन्न। स्वयं सत्। आहाहा! कहो, समझ में आया? और जिस स्वरूप से ध्रौव्य है.... ध्रौव्य, ऐसा है। देखा! कायम रहने के योग्य जो है अंश, परमाणु में या आत्मा में द्रव्यरूप से, ध्रुवरूप से रहने का, नित्यरूप से रहने का स्वभाव है। उसका (-उस स्वरूप का) उस प्रकार से ध्रौव्य एक ही लक्षण है,.... कहो, समझ में आया? इस ध्रौव्य को उत्पाद लक्षण पहुँचे नहीं उसे, ध्रौव्य में व्यय लक्षण पावे नहीं, व्यय ध्रुव को पावे नहीं, उत्पाद ध्रुव को पावे नहीं। उत्पाद, उत्पादरूप से रहे, व्यय व्ययरूप से रहे, ध्रुव ध्रुवरूप से रहे। ओहोहो! अस्तित्व का वर्णन। ऐसा ज्ञान तीन के अंशवाला एकरूप, उसके भी अन्तर्भेद का एक-एक स्वतन्त्र, उसका उसे ज्ञान होने पर प्रत्येक अंश स्वयंसिद्ध स्वतन्त्र है। व्यय व्ययरूप से स्वतन्त्र, उत्पाद उत्पादरूप से स्वतन्त्र, ध्रुव ध्रुवरूप से स्वतन्त्र। ओहो! एक सत् के उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्, ये तीन लक्षणवाला एक। उसे ही एक-एक लक्षण में भिन्न करने से तीन लक्षण में एक लक्षण का अभाव है। और एक लक्षण में तीन लक्षण का अभाव है। कहो, समझ में आया इसमें? फावाभाई! यह तो बहुत ध्यान रखे तो मुश्किल-मुश्किल से समझ में आये? मस्तिष्क तो बड़ा है अन्दर।

इसलिए वस्तु के उत्पन्न होनेवाले, नष्ट होनेवाले और ध्रुव रहनेवाले स्वरूपों में से प्रत्येक को त्रिलक्षण का अभाव होने से.... देखो! एक-एक को तीन लक्षण का अभाव होने से.... कौन से तीन लक्षण? उत्पाद को उत्पाद एक लक्षण, परन्तु व्यय और ध्रौव्य नहीं। व्यय को व्यय एक लक्षण उसे उत्पाद, ध्रुव नहीं। ध्रौव्य को उत्पाद-व्यय दो लक्षण नहीं, उसका ध्रुव लक्षण। इन तीन लक्षणों को प्रत्येक को तीन लक्षण का अभाव होने से त्रिलक्षणा (सत्ता) को अत्रिलक्षणपना है। अर्थात् कि उसे त्रिलक्षणपना सम्भवता नहीं है। तीन लक्षणवाले को तीन लक्षणपना सम्भवता नहीं है, अन्तर्भेद की अपेक्षा से।

जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता.... पूरी। महासत्तारूप होने से.... महासत्ता अर्थात् सब होना। 'त्रिलक्षणा' है.... तीन लक्षणवाली महासत्ता। तीन लक्षणवाली महासत्ता।

सब अस्तित्व में तीनों आ गये। वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से.... तीन लक्षणवाली भी एक-एक लक्षणवाली होने से 'अत्रिलक्षणा' भी है। अर्थात् तीन लक्षणवाली भी नहीं। तीन लक्षणवाली तीन लक्षणवाली नहीं। सब तीन लक्षणरूप से है, वही तीन लक्षणरूप से नहीं, एक-एक अंश की अपेक्षा से। गजब भाई न्याय! महान्याय है यह। समझ में आया? दो बोल हुए।

पहला बोल महासत्ता है, वह अवान्तर अन्तर्भेदरूप से नहीं। अन्तर्भेद है, वह महासत्तारूप से नहीं। वह की वह महासत्ता वह अन्तर्भेद की अपेक्षा से अभाव है और वह की वह अवान्तरसत्ता महासत्ता की अपेक्षा से उस अवान्तरसत्ता अभाव है। ऐसे महासत्ता के तीन लक्षण पूरी जगत के चीजों के उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीन लक्षणवाला महासत्तापना-अस्तित्वपना, वही अत्रिलक्षण है। एक-एक लक्षण की अपेक्षा से महासत्ता तीन लक्षणवाली, वही एक लक्षणवाली है। अर्थात् तीन लक्षण में एक लक्षण का अभाव है और एक लक्षण में तीन लक्षण का अभाव है। धीरुभाई! उसमें कहीं था? मन्दिर बना दो एक, लो। हो गया, चलो भाई! पैसेवाले हैं, पचास लाख (दो)। हो गया धर्म। धूल में भी धर्म नहीं अब तेरा। मन्दिर कहाँ तेरी चीज़ है? यहाँ तो कहते हैं, उसकी पर्याय उत्पन्न हुई मन्दिर की, उस उत्पाद के लक्षण से उत्पाद हुआ है। तेरे उत्पाद के कारण वहाँ उत्पाद हुआ है? और तेरे ध्रुव के कारण वहाँ उत्पाद हुआ है? और वे परमाणु ध्रुव हैं, इसलिए उत्पाद हुआ है? लो, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। जयन्तीभाई!

ध्रुव वस्तु है, इसलिए उत्पाद है? उत्पाद है, इसलिए ध्रुव है? यह अवस्थारूप से अंशपने जो मन्दिर की पर्याय का उत्पाद, वह उत्पाद के उस लक्षण से लक्षित है। पूरी चीज़ इन तीन लक्षण से लक्षित है। ओहोहो! कहो, समझ में आया इसमें? कितने बोल हुए छह में? दो हुए। मोहनभाई! कितने बोल हुए? दो हुए। यह कहे कि लाईन की खबर नहीं (चलती), कल ऐसा कहते थे। ऐसा कि वहाँ ध्यान रखने जाये, वहाँ नीचे की खबर नहीं पड़ती और नीचे ध्यान रखते हैं तो सुनाई नहीं देता। ऐसा कहते हैं लो। अरे! यह अब उसमें कहाँ वहाँ...? आहाहा!

(३) एक वस्तु की स्वरूपसत्ता अन्य वस्तु की स्वरूपसत्ता नहीं है.... अब

तीसरा बोल। एक वस्तु की स्वरूप.... अस्तित्व वह अन्य वस्तु के स्वरूप से नहीं है। इसलिए एक (सत्ता) को अनेकपना है.... एकपना कहा, सब होकर एक अपेक्षा से। परन्तु तो भी एक वस्तु की स्वरूपसत्ता, वह अन्य वस्तु की स्वरूपसत्ता नहीं है। एक परमाणु की स्वरूपसत्ता, वह दूसरे परमाणु की स्वरूपसत्ता से नहीं है। आत्मा की स्वरूपसत्ता, वह परमाणु की स्वरूपसत्ता से नहीं है। परमाणु की स्वरूपसत्ता, वह आत्मा की स्वरूपसत्ता से नहीं है। इसलिए जो एक है, ऐसा कहा था सबको.... समझ में आया? वही अनेकपना है.... वही अनेकपना है।

मुमुक्षु : एक कहा और....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक कहा। सब होकर एक है न? वही वापस एक की सत्तारूप दूसरी नहीं है, इस अपेक्षा से एक, वही अनेक है। कहो, समझ में आया?

(अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप से होने से 'एक' है.... देखा न! स्पष्टीकरण तो पण्डितजी ने बहुत सरस किया है। सब होकर। सामान्य-विशेष अर्थात् द्रव्य और उत्पाद-व्यय पर्याय। वह सत्ता सब होकर महासत्तारूप से होने से 'एक' है, वही यहाँ कही हुई.... अन्तर्भेदरूप एक स्वरूपसत्ता, वह दूसरी स्वरूपसत्ता से नहीं है। ऐसे अन्तर्भेद भी होने से वह एक है, वही अनेक भी है। एक है, वह अनेक भी है। और अनेक है, वह एक भी है। आहाहा! समझ में आया? उसमें भजन आता है कुछ? अन्यमति में आता है। 'झीणी चदरिया....' नहीं आता कुछ? आता है। 'झीणी चदरिया वीणो रे....' वीणो.... क्या कहलाता है? वणो, वणो। बारीक-बारीक बुनो। चदर के ताना-बाना डालते हैं या नहीं? बारीक.... बारीक.... बारीक.... बारीक.... वे ताना-बाना टूटे नहीं। ताना-बाना समान व्यवस्थित करे। नहीं तो वस्त्र हो नहीं। लो। ताना-बाना बारीक। बहुत बारीक होता है ऐसा। रेशम के ताना बारीक। कितनी धीरज चाहिए वहाँ?

इसी प्रकार यहाँ ताने ताना-बाना जगत एक कहा सब होकर, परन्तु एक-एक द्रव्य की सत्ता से सब एकरूप नहीं परन्तु सब होकर अनेकरूप भी है। जिसे एक कहते हैं, उसे ही इस अपेक्षा से अनेक कहते हैं। एक स्वरूपसत्ता, वह दूसरे स्वरूपपने नहीं

है, इसलिए एक को ही अनेकपना कहा जाता है। समझ में आया ? वे सब कहते हैं न, एक ही आत्मा है। सत्ता एक ही है। वह महासत्ता कही न? एक कही। अन्तर्भेद डालकर समझाया कि वह तो महासत्ता किस अपेक्षा से कही ? समझ तो सही। है, है की अपेक्षा से कही थी। तो अन्तर्भेद चले गये हैं ? एक किस अपेक्षा कहा ? है.... है.... है.... है.... स्वरूप.... स्वरूप.... स्वरूप.... परन्तु अन्तर्भेद में एक स्वरूपसत्ता वह दूसरेरूप नहीं। इस अपेक्षा से एक भी, अनेक भी है। कहो, समझ में आया ?

चौथी। (४) प्रतिनिश्चित (-व्यक्तिगत निश्चित) पदार्थ में स्थित सत्ताओं द्वारा ही पदार्थों का प्रतिनिश्चितपना (-भिन्न-भिन्न निश्चित व्यक्तित्व) होता है। अब यह सर्व पदार्थस्थित के सामने लिया। इसलिए सर्वपदार्थस्थित (सत्ता) को.... सब पदार्थ में स्थित को एकपदार्थस्थितपना है। वह उसे लागू पड़ता है। (अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता.... सामान्य-विशेषस्वरूप सत्ता। सामान्य-विशेष समझ में आया या नहीं ? बहुत बार अर्थ हो गया। द्रव्य और उत्पाद-व्यय पर्याय। द्रव्य, वह सामान्य और उत्पाद, वह विशेष। ऐसा सामान्य-विशेष सब ऐसी सत्ता जो महासत्तारूप होने से 'सर्वपदार्थस्थित'.... सर्व पदार्थ में रही हुई है। सर्व पदार्थ में महासत्ता रही हुई है।

(अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होने से 'सर्वपदार्थस्थित' है वही यहाँ कही हुई अवानतरसत्तारूप भी होने से 'एकपदार्थस्थित' भी है।) सर्व पदार्थस्थित, वही एक पदार्थस्थित है। क्योंकि प्रत्येक द्रव्य का निश्चितपना व्यक्तिगत पदार्थ में भिन्न-भिन्न है। कहो, समझ में आया इसमें ?

पाँचवाँ। सविश्वरूप। आड़ा-टेढ़ा लिखा है। आड़ा-टेढ़ा किया है। नहीं ? उसमें एक अन्तिम शब्द डाला था न ? इसमें पर्याय डाली है अन्त में, हों ! पाँचवाँ बोल एकरूप सविश्वरूप डाला है। छठा बोल अनन्त पर्याय और पाठ में 'एक' अन्तिम बोल था। पाठ में। कौन सा पाठ ? मूल पाठ। पाठ में अन्तिम 'एक' करके फिर डाला। पहला तो उत्पाद-व्यय-ध्रुव, एक, सर्व पदार्थस्थित, सर्व विश्वरूप अनन्त पर्याय ऐसा लिया था। इसी प्रकार अर्थ किया है। उसमें डाला है। टीका साथ में मिलाकर। टीका साथ में मिलाकर डाला है तुमने ? समझकर डाला है इन्होंने। ऐई ! देवानुप्रिया ! बराबर है। टीका

मिलानकर भाई शब्दार्थ किया है अन्वयार्थ में। टीका में ऐसा डाला है न, इसलिए अन्वयार्थ में उसी प्रमाण किया है।

अब पाँचवाँ बोल। (५) प्रतिनिश्चित एक-एक रूपवाली.... प्रतिनिश्चित। प्रति-स्वयं से निश्चित एक-एक रूपवाली सत्ताओं द्वारा ही वस्तुओं का प्रतिनिश्चित एक-एकरूप होता है.... भिन्न-भिन्न रूप से ही एक-एकरूप होती है। भिन्न-भिन्नरूप है न सब ? इसलिए सविश्वरूप (सत्ता) को.... समस्त सत्ता को सविश्वरूप (सत्ता) को एकरूपना भी है.... सविश्व समस्तपना। समस्तपने में एकरूपपना भी भिन्न-भिन्न पदार्थ के अस्तित्व के कारण एकरूप है। (अर्थात् जो सामान्य विशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होने से 'सविश्वरूप' है, वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'एकरूप' भी है।) पाँच हुए पाँच।

अब छठवाँ बोल। देखो। (६) प्रत्येक पर्याय में स्थित (व्यक्तिगत भिन्न-भिन्न) सत्ताओं द्वारा ही.... ऐसा शब्द लिया। इसलिए भाई ने (ऐसा लिया)। नहीं तो उसमें पाठ तो ऐसा आया—त्रिलक्षणवाली अनन्त द्रव्यपर्यायरूप व्यक्तियाँ। पहला शब्द आया था। अनन्त द्रव्यपर्याय। तथापि वापस टीका ऐसी आयी न, इसलिए उसका स्पष्टीकरण (ऐसा किया)। प्रत्येक पर्याय में स्थित.... अब इसमें अनन्त द्रव्य नहीं लेना। एक द्रव्य में अनन्त पर्याय में प्रत्येक पर्याय में स्थित (व्यक्तिगत भिन्न-भिन्न) सत्ताओं द्वारा.... एक-एक पर्याय की भिन्न-भिन्न सत्ता द्वारा। एक-एक पर्याय। एक परमाणु की अनन्त पर्याय, उसमें एक-एक पर्याय की प्रतिनिश्चित पर्याय द्वारा, आत्मा की अनन्त पर्याय में एक-एक पर्याय की एक समय की, हों!

प्रत्येक पर्याय में रही हुई व्यक्तिगत अर्थात् उस-उस पर्याय की व्यक्तिगत सत्ताओं द्वारा ही प्रतिनिश्चित एक-एक पर्यायों का अनन्तपना होता है,.... एक-एक हो तो अनन्त हो। अकेला अनन्त कहाँ से हुआ ? प्रत्येक उत्पाद, प्रत्येक व्यय, प्रत्येक उत्पाद एक-एक पर्याय अनन्त पर्यायों में एक-एक पर्याय का अस्तित्व एक-एक है। इससे अनन्त का उसमें अनन्त पर्याय आ जाती है। एक-एक पर्याय का अनन्तपना होता है। इसलिए अनन्त पर्यायमय (सत्ता) को.... एक द्रव्य की अनन्त पर्याय के अस्तित्व को

एकपर्यायमयपना है.... एक-एक प्रतिनिश्चित पर्याय भिन्न है, इसलिए अनन्त पर्यायवाला एक द्रव्य अनन्त पर्याय, उसकी एक-एक पर्यायवाला भी है। अन्तर्भेद एक-एक पर्याय का निश्चितपना भिन्न-भिन्न होने के कारण। समझ में आया ?

(अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होने से 'अनन्तपर्यायमय' है....) पाठ तो ऐसा लिया है कि '.....' उसमें ऐसा शब्द था छठवें में। समझ में आया ? क्या ? वह सत्ता। ऐसा था न ? छठवें में भी। पाँचवें में पाँच तक वह सत्ता और छठवें में वह सत्ता था। परन्तु इसमें भिन्न करना पड़ता है। एक द्रव्य की अनन्त पर्याय को भिन्न करके लेना।

मुमुक्षु : सब द्रव्य की पर्याय

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा इनकार करते हैं तुम्हारे भाई। ऐसा लगता है अर्थ में।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थ ऐसा लिया है। अमृतचन्द्राचार्य ने शैली ऐसी ली है। देखो न! क्या कहा ? प्रत्येक पर्याय में.... ऐसा कहा है। रही हुई।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ऐसा नहीं कहते हैं यह। इनकार करते हैं। मिलान नहीं खाता इसमें। देखो अनन्त पर्यायमय को एकपर्यायमयपना प्रतिपक्ष है। ऐसा कहा।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं कहते हैं। किसी जगह ऐसा लेना, ऐसा कहते हैं उसमें क्या ? बाधा क्या है तुमको ?

मुमुक्षु : यहाँ द्रव्य पर्याय लेना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा न! यह तो बात हो गयी पहले। सब हुई थी। सब हुई थी पहले। कहा, पाँच में यह लिया और इसमें यह ? परन्तु इसमें कि अर्थ अमृतचन्द्राचार्य ने ऐसा ही किया है, इसलिए इस प्रकार ही वहाँ समाहित करना चाहिए। देवानुप्रिया! यह सब बात हो गयी। कहो, समझ में आया ? कहा न, अनन्त

द्रव्य-पर्याय ली है इसमें, देखो पाठ में। है न उस ओर ? अनन्त द्रव्यपर्यायरूप व्यक्तियाँ। त्रिलक्षणवाली अनन्तद्रव्यपर्यायरूप कहा। ऐसा ही कहा। परन्तु यह कहते हैं, भले शब्दार्थ ऐसा हो परन्तु यहाँ उसका अर्थ आता है, इसलिए अनन्त पर्यायें लेना। पहला अर्थ तो ऐसा किया। तुम कहते हो ऐसा। सब अनन्त पर्यायें सबकी। उसमें एक-एक पर्याय.... ऐसा कहा था। खबर है। पहले किया था। परन्तु अब अभी इस प्रकार से। भाई, यह तो जिस प्रकार से सधे, वैसे साधना चाहिए न। बैठता हो। आचार्य की शैली ऐसी है देखो। यहाँ भी ऐसा कहा।

प्रत्येक पर्याय में स्थित (व्यक्तिगत भिन्न-भिन्न) सत्ताओं द्वारा ही प्रतिनिश्चित एक-एक पर्यायों का अनन्तपना होता है, इसलिए अनन्त पर्यायमय (सत्ता) को.... इतना कहा। अनन्त द्रव्य की अनन्त पर्याय को, ऐसा नहीं लिया। इतना शब्द नहीं लिया। अनन्त पर्याय को। अब तुम ऐसा कह सकते हो कि अनन्त पर्याय अर्थात् सभी द्रव्यों की अनन्त पर्याय। वह तो है न। वह अर्थ हो गया है पहले। पहले वह अर्थ किया था, हों! पहले किया था। यह ख्याल है। कहो, समझ में आया ? अनन्तपर्यायमय (सत्ता) को एकपर्यायमयपना.... भिन्न-भिन्न होने से उसे अनन्त पर्याय को एक पर्याय भी कहने में आता है। कहो, समझ में आया ? लो, यह पूरा हुआ। छह बोल पूरे हुए।

इस प्रकार सब निरवद्य है.... है न पाठ ? 'सर्वमनवद्यं' ऐसा सब है। सब है। पंचाध्यायी में तो वापस दूसरा लिया। महासत्ता के प्रदेश भिन्न नहीं, ऐसा लिया है। खबर है न, सब खबर तो है। चर्चा हो गयी है न। कहाँ पहली है यह ? महासत्ता के प्रदेश भिन्न नहीं होते, इसलिए एक द्रव्य लिया है महासत्ता में। ऐसा है न तर्क ? परन्तु यह शैली पूरी है। सर्व पदार्थस्थित सविश्वरूप, ऐसा पाठ में कहा है, अर्थ में ऐसा किया है। कहो, समझ में आया इसमें ?

इस प्रकार सब निरवद्य है.... निरवद्य अर्थात् निर्दोष है। निर्दोष अर्थात् सब सच्चा है। (अर्थात् ऊपर कहा हुआ सर्व स्वरूप निर्दोष है, निर्बाध है, किंचित् विरोधवाला नहीं है) क्योंकि उसका (सत्ता के स्वरूप का) कथन सामान्य और विशेष की प्ररूपण की ओर ढलते हुए दो नयों के आधीन है। देखो ! दो नय लिये—द्रव्यार्थिक

और पर्यायार्थिक। इसलिए भाई लिया है न, पंचाध्यायी में यह दो नय लिये हैं यह उतारते हुए। सत्ता में, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक लिया है। एक के एक में, हों! इसलिए तर्क कर सकते हैं न लोग? उसी और उसी के द्रव्य और पर्याय, एक के द्रव्य और पर्याय, उसमें सब कहाँ डाला? यह दो पाठ। परन्तु दो नय ऐसे ले गये हैं। संग्रहात्मक महासत्ता अन्तर्भेद में पर्याय सत्ता ऐसा करके। द्रव्यार्थिक सब है। सब बहुत चर्चा हो गयी है।

सामान्य और विशेष के कथन के प्रति ढलते हुए। 'सामान्यविशेषप्ररूपण' ऐसा शब्द है पाठ में। ढलते हुए। प्रत्येक चीज़ को दो अपेक्षा से देखना चाहिए। महासत्तारूप से देखो सबको तो उसे अन्तर्भेद रूप से भी देखना चाहिए। सविश्वरूप से देखो या एकरूप से भी देखो। वह अनन्त पर्यायपने देखो या एक पर्यायपने भी देखो, ऐसे दो नय के आधीन, दो नयों के आधीन ढलते हुए विशेष का कथन है, सामान्य का कथन है। लो, यह पूरा हुआ।

मुमुक्षु : सार-सार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सार तो पहले से कहा है। सब है और वह एक एकपने नहीं। ऐसा अन्दर वीतरागी ज्ञान होने के लिये पूरा सार है। सब है। अन्तर्भेद भी एक-एक लक्षण से एक एक स्वरूप है। हैपना ऐसा कैसे? ऐसे अंश के अन्तर्भेद में वह है, ऐसा कैसे, यह नहीं रहा। और पूरा ऐसा है, ऐसा ऐसे कैसे? यह भी नहीं रहा। ऐसा सम्यग्ज्ञान है, ऐसा होने से उसकी ज्ञान की पर्याय वीतरागरूप से ढलती है, वह उसका भावार्थ और तात्पर्य है। समझ में आया? यह तो पहले बीच में भी कहा गया है।

सब है। उसके ज्ञान में सब है, ऐसा कब आवे? कि जिसमें द्रव्य और गुण अपने भी आ जायें, तब सब है, ऐसा ज्ञान आता है। वह ज्ञान द्रव्य-गुण का भी ज्ञान करे, तब जो ज्ञान अंशरूप से जो अनादि का ज्ञेय करके पड़ा है, वही ज्ञान द्रव्य-गुण को ज्ञेय करके महासत्ता और सब स्वीकार करके रहे (तो) दृष्टि वीतराग और निर्विकल्प ज्ञान हुए बिना रहे नहीं। ऐसे एक-एक अंश में वह-वह वस्तु सब है। अन्तर्भेद भी ऐसे कैसे? ऐसा वह वह उत्पाद, उस-उस लक्षण से, वह-वह व्यय, उस-उस लक्षण से,

वह-वह ध्रुव उस लक्षण से। पूर्वापर दूसरे को कोई कारण सम्बन्ध नहीं है। ऐसा निरपेक्षपना एक-एक अंश का भी सिद्ध करने से उसकी दृष्टि में, ज्ञान में निरपेक्षपना राग की अपेक्षा बिना का ज्ञान स्वद्रव्य के अवलम्बन से हुए बिना रहता नहीं। समझ में आया ?

अब इसका भावार्थ। कहीं टीका कठिन पड़ी हो तो उसे प्रचलित भाषा में (समझाते हैं)। सामान्यविशेषात्मक सत्ता के.... यह सामान्य-विशेष अर्थात् क्या ? पूरा। जगत पूरा। और उसका विशेष अर्थात् अन्तर्भेद। यहाँ तो सब सामान्य-विशेष सत्ता में दो पक्ष हैं—एक पक्ष वह महासत्ता और दूसरा पक्ष वह अवान्तरसत्ता। (१) महासत्ता अवान्तरसत्तारूप से असत्ता है.... सबका अस्तित्व एकपनेरूप हो जाये, ऐसा अभाव है। और अन्तर्भेद का अस्तित्व सब रूप हो, इसका अभाव है। एकरूप है, वह कहीं सबरूप हो जाये ? और सबरूप है, वह एकरूप हो जाये ? इसलिए सब मान्य हो गया। सब अस्तित्व वह एकरूप अस्तित्व नहीं। एक का अस्तित्वना सबके अस्तित्वनेरूप नहीं। ऐसे प्रत्येक की सिद्धता होने से ज्ञान सम्यक्पने को ज्ञेय करके जो जाने, उसे सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन कहा जाता है।

(२) महासत्ता उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ऐसे तीन लक्षणवाली है.... सब। पूरे जगत के पदार्थ तीन लक्षणवाले सामान्यपने कहते हैं। सामान्य पहलू से। सामान्य पहलू अर्थात् वह द्रव्य, ऐसा नहीं परन्तु सब है, वह सामान्यपना। इसलिए वह 'त्रिलक्षणा' है। वस्तु के उत्पन्न होनेवाले स्वरूप का उत्पाद ही एक लक्षण है, नष्ट होनेवाले स्वरूप का व्यय ही एक लक्षण है और ध्रुव रहनेवाले स्वरूप का ध्रौव्य ही एक लक्षण है इसलिए उन तीन स्वरूपों में से प्रत्येक की अवान्तरसत्ता एक ही लक्षणवाली होने से 'अत्रिलक्षणा' है। तीन लक्षणवाली महासत्ता एक लक्षणवाली अवान्तरसत्तारूप नहीं है। इसलिए तीन लक्षणवाली महासत्ता, वह अत्रिलक्षणवाली है। अर्थात् कि एक-एक लक्षणवाला भी उसमें भिन्न-भिन्न है। दो बोल हुए।

(३) महासत्ता समस्त पदार्थसमूह में.... सब पदार्थों में 'सत्, सत्, सत्' ऐसा समानपना दर्शाती है,.... है.... है.... है.... है.... है.... परमाणु है, पर्याय है, गुण है, द्रव्य है, जड़ है, चेतन है, धर्मास्ति, आकाश सब है। ऐसा समानपना दर्शाती है, इसलिए एक है। सत्पने तो एक है या नहीं ? या कोई नहीं और कोई है, ऐसे दो हैं ?

एक वस्तु की स्वरूपसत्ता अन्य किसी वस्तु की स्वरूपसत्ता नहीं है, इसलिए जितनी वस्तुएँ उतनी स्वरूपसत्ताएँ;.... है। लो! इसलिए ऐसी स्वरूपसत्ताएँ अथवा अवान्तरसत्ताएँ 'अनेक' हैं। यह दो होकर, हों! इसलिए ऐसी स्वरूपसत्तायें अथवा उसी और उसी को अवान्तरसत्तायें, ऐसा। समझ में आया? अनेक है।

स्वरूपसत्ता की अपेक्षा से अवान्तरसत्ता अनेक है और अवान्तरसत्ता की अपेक्षा से स्वरूपसत्ता अनेक है, ऐसा कहा न वहाँ? सेठी! अब देखो। ऐसा नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि महापने जो है, सब है। उसमें प्रत्येक एक-एक की स्वरूप सत्ता कहो या एक-एक की अवान्तरसत्ता कहो, वह तो एक के दो नाम पाड़े हैं। स्वरूपसत्तायें और अवान्तरसत्तायें एक सब है महासत्ता, उसकी अपेक्षा से स्वरूपसत्ता और अवान्तरसत्ता अनेक है। परन्तु एक को अनेक भी कहा जाता है। समझ में आया?

(४) सर्व पदार्थ सत् हैं, इसलिए महासत्ता 'सर्व पदार्थों में स्थित' है। यह विश्वरूप। व्यक्तिगत पदार्थों में स्थित भिन्न-भिन्न व्यक्तिगत सत्ताओं द्वारा ही... प्रत्येक द्रव्य और प्रत्येक परमाणु भिन्न-भिन्न रहें होने से उस द्वारा पदार्थों का भिन्न-भिन्न निश्चित व्यक्तित्व.... अर्थात् पृथक्ता रह सकता है, इसलिए उस-उस पदार्थ की अवान्तरसत्ता उस-उस 'एक पदार्थ में ही स्थित' है। वह-वह पदार्थ सर्व पदार्थ स्थित कहा था, वह एक-एक पदार्थ स्थित एक पदार्थ में स्थित है। जरा सूक्ष्म बात है। व्यापारी को मस्तिष्क फैलाना चाहिए थोड़ा। क्यों सत्य है, भाई? इसमें जरा फैलाना पड़े या नहीं मस्तिष्क को? वासुदेवभाई को कहता हूँ। ऐसा का ऐसा नहीं पकड़ में आये ऐसा, हों! ऐसी की ऐसी भाषा चली जाये, ऐसा का का ऐसा लगे। या तो एक का एक लगे। एक का एक नहीं। कभी सत्य को समझने की दरकार ही नहीं की। इसलिए यह एक का एक लगता है। ऐसा नहीं है। छहों बोल भिन्न-भिन्न हैं।

(५) महासत्ता समस्त वस्तुसमूह के रूपों.... वह सर्व पदार्थस्थित थी। यह तो विश्वरूप। सहित है इसलिए वह 'सविश्वरूप' (सर्वरूपवाली) है। वस्तु की सत्ता का (कथंचित्) एकरूप हो, तभी उस वस्तु का निश्चित एकरूप (-निश्चित एक स्वभाव) रह सकता है, इसलिए प्रत्येक वस्तु की अवान्तरसत्ता निश्चित 'एक रूपवाली'

ही है। उसमें सर्व विश्वरूप कही, वही एक-एकरूप गिनने से अन्तर्भेद रूप एक भी है।

(६) महासत्ता सर्व पर्यायों में स्थित है,.... देखो ! ऐसा अर्थ किया तुम्हारे भाई ने। महासत्ता सर्व पर्यायों में स्थित है,.... फिर अर्थ तो दोनों हो सकते हैं कि सब द्रव्य की पर्यायों में भी किये करना हो तो। यह तो रखा हो ऐसा कहे, परन्तु इसका अर्थ स्पष्टीकरण ऐसा करते हैं करनेवाले।

मुमुक्षु : पहले में द्रव्य भिन्न किये, यहाँ पर्याय भिन्न की।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय को भिन्न किया। परन्तु एक-एक की भिन्न की, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया ? घर में अधिक बात करना।

महासत्ता सर्व पर्यायों में स्थित है, इसलिए वह 'अनन्त पर्यायमय' है। भिन्न-भिन्न पर्यायों में (कथंचित्) भिन्न-भिन्न सत्ताएँ हों, तभी प्रत्येक पर्याय भिन्न-भिन्न रहकर अनन्त पर्यायें सिद्ध होंगी,.... एक-एक पर्याय भिन्न-भिन्न हो तो एक-एक करके अनन्त सिद्ध हो। नहीं तो पर्यायों का अनन्तपना ही नहीं रहेगा—एकपना हो जाएगा; इसलिए प्रत्येक पर्याय की अवान्तरसत्ता उस-उस 'एकपर्यायमय' ही है। लो, इसका योगफल।

इस प्रकार सामान्यविशेषात्मक सत्ता,.... सब होकर। महासत्तारूप तथा अवान्तरसत्तारूप होनेसे,.... दोनों बात। (१) सत्ता भी है और असत्ता भी है,.... एक बोल। (२) त्रिलक्षणा भी है और अत्रिलक्षणा भी है। दो बोल। एक भी है और अनेक भी है। यह तीसरा बोल। (४) सर्वपदार्थस्थित भी है और एकपदार्थस्थित भी है,.... यह चौथा बोल। (५) सविश्वरूप भी है और एकरूप भी है,.... यह पाँचवाँ। (६) अनन्तपर्यायमय भी है और एकपर्यायमय भी है। लो, यह आठ गाथ पूरी हुई।

मुमुक्षु : अनन्त पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक द्रव्य की। उसमें एक-एक पर्याय भिन्न-भिन्न हैं। वजुभाई प्रश्न करते हैं, वह अनन्त पर्याय सब होकर महासत्ता की अनन्त पर्याय में एक-एक पर्याय भिन्न-भिन्न। ऐसा कहते हैं। यह तो कहते हैं। यह तो ख्याल है। पहले ऐसा कहा था, पहला अर्थ ऐसा हुआ था। कहो, आठ गाथा पूरी हुई।

गाथा - ९

दवियदि गच्छदि ताइं ताइं सवभावपज्जयाइं जं।
दवियं तं भण्णंते अणण्णभूदं तु सत्तादो॥१॥

जो द्रवित हो अर प्राप्त हो सदभाव पर्ययरूप में।
अनन्य सत्ता से सदा ही वस्तुतः वह द्रव्य है॥१॥

अन्वयार्थ :- [तान् तान् सदभावपर्यायान्] उन-उन सदभावपर्यायों को [यत्] जो [द्रवति] द्रवित होता है- [गच्छति] प्राप्त होता है, [तत्] उसे [द्रव्यं भणन्ति] (सर्वज्ञ) द्रव्य कहते हैं-[सत्तातः अनन्यभूतं तु] जो कि सत्ता से अनन्यभूत है।

टीका :- यहाँ सत्ता को और द्रव्य को अर्थान्तरपना (भिन्नपदार्थपना, अन्य पदार्थपना) होने का खण्डन किया है।

‘उन-उन क्रमभावी और सहभावी सदभावपर्यायों को अर्थात् स्वभावविशेषों को जो ‘द्रवित होता है-प्राप्त होता है-सामान्यरूप स्वरूप से व्याप्त होता है, वह द्रव्य है’- इस प्रकार अनुगत अर्थवाली निरुक्ति से द्रव्य की व्याख्या की गयी। और यद्यपि लक्ष्यलक्षणभावादिक द्वारा द्रव्य को सत्ता से कथंचित् भेद है, तथापि वस्तुतः (परमार्थतः) द्रव्य सत्ता से अपृथक् ही है, ऐसा मानना। इसलिए पहले (८वीं गाथा में) सत्ता को जो सत्पना, असत्पना, त्रिलक्षणपना, अत्रिलक्षणपना, एकपना, अनेकपना, सर्वपदार्थ-स्थितपना, एकपदार्थस्थितपना, विश्वरूपपना, एकरूपपना, अनन्तपर्यायमयपना और एकपर्यायमयपना कहा गया, वह सर्व सत्ता से अनर्थान्तरभूत (अभिन्नपदार्थभूत, अनन्यपदार्थभूत) द्रव्य को ही देखना (अर्थात् सत्पना, असत्पना, त्रिलक्षणपना,

१. श्री जयसेनाचार्यदेव की टीका में भी यहाँ की भाँति ही ‘द्रवति गच्छति’ का एक अर्थ तो ‘द्रवित होता है अर्थात् प्राप्त होता है’ ऐसा किया गया है; तदुपरान्त ‘द्रवति’ अर्थात् स्वभावपर्यायों को द्रवित होता है और गच्छति अर्थात् विभावपर्यायों को प्राप्त होता है’ ऐसा दूसरा अर्थ भी यहाँ किया गया है।
२. यहाँ द्रव्य की जो निरुक्ति की गयी है, वह ‘द्रु’ धातु का अनुसरण करते हुए (-मिलते हुए) अर्थवाली हैं।
३. सत्ता लक्षण है और द्रव्य लक्ष्य है।

अत्रिलक्षणपना आदि समस्त सत्ता के विशेष द्रव्य के ही है, ऐसा मानना)। इसलिए उनमें (-उन सत्ता के विशेषों में) कोई सत्ताविशेष शेष नहीं रहता जो कि सत्ता को वस्तुतः (परमार्थतः) द्रव्य से पृथक् स्थापित करे॥१॥

गाथा - ९ पर प्रवचन

अब नौ।

दवियदि गच्छदि ताइं ताइं सब्भावपज्जयाइं जं।
दवियं तं भण्णंते अण्णभूदं तु सत्तादो॥१॥

जो द्रवित हो अर प्राप्त हो सद्भाव पर्ययरूप में।

अनन्य सत्ता से सदा ही वस्तुतः वह द्रव्य है॥१॥

यह सत्ता के इतने विशेषण जितने प्रयोग किये, वे सब द्रव्य को लागू पड़ते हैं, ऐसा यह गाथा सिद्ध करती है। समझ में आया? इसलिए इसमें से कहा था न, और तर्क किया था कि देखो! एक द्रव्य को लागू पड़ते हैं, इसलिए वहाँ एक द्रव्य का यह सब है। देवानुप्रिया! भाई! लोगों को तर्क आवे। इसमें जितनी सत्ता के विशेषण हैं, वे एक द्रव्य का लागू पड़ते हैं। इसलिए एक द्रव्य की पूर्व में बात थी। 'ताइं ताइं सब्भाव' पर्याय को ऐसा कहा सही न? अब इसकी टीका कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ६, रविवार, २२-१२-१९६३, गाथा-९, प्रवचन-१६

गाथा, पंचास्तिकाय षट्द्रव्य अधिकार है।

दवियदि गच्छदि ताइं ताइं सबभावपज्जयाइं जं।

दवियं तं भण्णंते अणण्णभूदं तु सत्तादो॥१॥

जो द्रवित हो अर प्राप्त हो सद्भाव पर्ययरूप में।

अनन्य सत्ता से सदा ही वस्तुतः वह द्रव्य है॥१॥

जरा सूक्ष्म बात है, परन्तु कल जो सत्ता का अधिकार आ गया, उसके छह बोल वर्णन किये थे प्रतिपक्षसहित, वे छह बोल द्रव्य को लागू पड़ते हैं—ऐसा इस गाथा में कहा जाता है। यह आयेगा।

टीका :- यहाँ सत्ता को.... सत्ता अर्थात् एक गुण है। प्रत्येक द्रव्य छह द्रव्य है। भले पंचास्तिकाय हो परन्तु उसमें सत्ता नाम का एक गुण है। द्रव्य है वह तो अनन्त गुणस्वरूप पदार्थ है। परन्तु उसमें एक सत्ता नाम का गुण है, उसका इसमें—आठवीं गाथा में अस्तित्व के स्वरूप का वर्णन किया। उस **सत्ता को और द्रव्य को....** उस अस्तित्वगुण में जो वर्णन किया—है—प्रत्येक आत्मायें या प्रत्येक द्रव्य जो हैं, उनमें गुण, उसके छह विशेषणों से महासत्ता का वर्णन किया और उसके अन्तर्भेद का प्रतिपक्ष से भी किया। सत्ता। यह बोल नीचे आयेंगे।

उस **सत्ता को और द्रव्य को....** अर्थात् वस्तु को। सत्ता को और उस पदार्थ अर्थात् वस्तु को अर्थान्तरपना (भिन्नपदार्थपना, अन्यपदार्थपना) होने का खण्डन किया है। वह सत्ता और द्रव्य दोनों भिन्न पदार्थ हैं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? अनन्त द्रव्य, अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, आकाश। भगवान् सर्वज्ञ के ज्ञान में यह जातिरूप से छह, संख्यारूप से अनन्त, ऐसे जो द्रव्य ज्ञान में आये, उस द्रव्य में सत्ता नाम के गुण का वर्णन किया। तो कहते हैं कि वह सत्ता अर्थात् अस्तित्वगुण जो है और वस्तु है, (वे) दोनों कहीं अलग पदार्थ नहीं हैं।

सत्ता नाम के गुण के प्रदेश, अंश, क्षेत्र भिन्न और द्रव्य का क्षेत्र भिन्न, वस्तु का क्षेत्र और अंश भिन्न, ऐसा है नहीं। द्रव्य को और सत्ता को अर्थान्तरपना। अर्थ-अन्तर। अन्तर अर्थात् अन्य, अर्थ अर्थात् पदार्थ। अन्य पदार्थपना अर्थात् भिन्न पदार्थपना अर्थात् कि अन्य पदार्थपना होने का खण्डन किया है।

‘उन-उन क्रमभावी और सहभावी सद्भावपर्यायों को अर्थात् स्वभावविशेषों को.... वस्तु जो है—द्रव्य जो है, वह उसके क्रम से होनेवाली दशायें, क्रम-क्रम से होनेवाली पर्यायें और साथ में रहनेवाले स्वभाव भेद, द्रव्य में साथ में अर्थात् गुणरूप अनेक अनन्त साथ में रहनेवाले सहभाव-द्रव्य के साथ रहनेवाले, ऐसा नहीं परन्तु गुण अनन्त सहभावी—साथ में रहनेवाले ऐसे विशेष और क्रमभावी—क्रम-क्रम से होनेवाली अवस्थायें—विशेष अर्थात् कि स्वभाव विशेष, अर्थात् कि गुण और पर्याय, वे सामान्य द्रव्य के स्वभाव विशेष हैं। सेठी! पदार्थ विज्ञान है यहाँ तो सर्वज्ञ के घर का। जगत के अन्दर वस्तु किस प्रकार है और कैसे स्वरूप से है, ऐसा इसके ज्ञान में यदि आवे तो उसका ज्ञान सम्यक् हो। सम्यक्ज्ञान होने पर....

यहाँ महासत्ता और अवान्तरसत्ता का वर्णन है। समझ में आया? यह सब है। है.... है.... है.... है.... है.... इस अपेक्षा से महासत्ता अर्थात् सब महा अस्तित्व। और अन्तर्भेद का भाग, वह अवान्तर—अन्तर्भेद अस्तित्व। ऐसा सब है, ऐसा यदि ज्ञान में आवे तो ज्ञान में जो अनादि से एक समय की पर्याय और राग जो ख्याल में है, वह सब है, ऐसा ख्याल में आवे तो उसके ज्ञान में द्रव्य-गुण भी है, ऐसा ख्याल में आवे। समझ में आया? नवरंगभाई! सब है अर्थात् कि वस्तु अनन्त है, वह अनन्त वस्तु सामान्य द्रव्यरूप से है, उसके विशेष गुण और पर्यायरूप से है। वह सब है, वह महासत्ता अर्थात् महा अस्तित्व में आ जाता है। जिसे यहाँ महा... द्रव्य शब्द प्रयोग किया है यहाँ; परन्तु उसे महाद्रव्यरूप से कहना। समझ में आया?

अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, (एक) अधर्मास्ति, (एक) आकाश ऐसे अनन्त पदार्थ सब हैं, ऐसा यदि इसके ज्ञान में आवे तो वह ज्ञान निर्विकल्प वीतरागी ज्ञान हो जाये। क्यों? कि सब है, उसकी वर्तमान ज्ञान की

अवस्था, अवस्था को ही अनादि से स्वीकार करती है। और दूसरे पदार्थ हैं, उसकी भी अवस्था की हालत को ही स्वीकार करती है। परन्तु सब है, ऐसा यदि ज्ञान स्वीकार करे तो उस ज्ञान में बाकी रहा हुआ जो द्रव्य-गुण जो त्रिकाल, उन सबमें वह आ जाता है। और दूसरे सब पदार्थों में भी एक अंशरूप से वर्तमान अंश से अंश को देखता था, वह दूसरे अंशवाला द्रव्य उतना नहीं। सब पूर्ण द्रव्य और शक्ति से भरपूर दूसरा पदार्थ है, ऐसा अपनी ज्ञानपर्याय अपना सब और पर का सब, ऐसा निर्णय करने जाये, तब वह ज्ञान द्रव्य-गुण जो पर्याय में बाकी रही हुई सत्ता थी, उस सत्ता का ज्ञान की पर्याय में स्वीकार हो जाता है। बल्लभदासभाई! हमारे नवरंगभाई विशेष कराते हैं, थोड़ा स्पष्टीकरण कराते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

क्योंकि उसके ज्ञान की एक समय की श्रुतज्ञान की पर्याय की भी इतनी ताकत है कि सब पूरा द्रव्य, पूरे गुण और उसकी पर्याय, अनन्त द्रव्य-गुण और उनकी पर्याय, उनकी पर्याय की सत्ता स्वीकार करे, उसकी पर्याय श्रुतज्ञान की पर्याय में इतना सब सत्ता का स्वीकार हो, ऐसी उसकी ताकत है। उस पर्याय का स्वीकार, मैं पूर्ण पूरा और वे सब पूर्ण पूरे—ऐसा स्वीकार कब हो? कि वह ज्ञान की पर्याय द्रव्य पर झुके, तब उसके द्रव्य-गुण का स्वीकार होने पर दूसरे सब द्रव्य-गुणों का परिपूर्णपना है, उसका स्वीकार उसकी ज्ञानपर्याय में आ जाता है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा विशेषरूप से स्वीकार करे। एक-एक अंश है। द्रव्य भी एक अंश है, गुण भी अंश है, पर्याय भी अंश है। दूसरे सब अंश.... अंश.... अंश.... पृथक्.... पृथक् हैं। उस अंश का स्वीकार करे, तब भी उसका द्रव्य-गुण जो अंश है पूरा, वह भी अन्तर्भेद के अंश का पूर्ण स्वीकार करने से वह भी आ जाता है। समझ में आया? सूक्ष्म पड़े परन्तु इसने कभी स्वतत्त्व और परतत्त्व की पूर्णता क्या और अपूर्णता क्या, उसका इसने यथार्थरूप से प्रतीति में, सम्यक्श्रद्धा में लिया नहीं। उसका यह अभ्यास ही नहीं किया। बाहर का यह धूलधाणी का अभ्यास। मोहनभाई! यह बाहर का अभ्यास क्या होगा यह?

मुमुक्षु : बाहर का अभ्यास....

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् यह लड़के पढ़ते हैं न यह सब। और यहाँ के बाहर का

अर्थात् यह बाहर की दया, व्रत और अमुक और वह। वह बाहर की लौकिक विद्या कहलाती है।

यह भगवान आत्मा पूरा, गुण से पूरा, पर्याय से अंशरूप। ऐसे सब आत्मायें और सब द्रव्य, उसका पर्याय अंश, उसका गुण अंश, उसका द्रव्य अंश। अंश के पृथक्-पृथक् रूप से भी अन्तर्भेद का स्वीकार करने जाये, वहाँ भी ज्ञान में वीतरागता आ जाती है। अर्थात् कि यह सब है, उसमें ऐसा कैसे? यह विकल्प का भी अवकाश नहीं। और अन्तर्भेद ऐसा कैसे? उसमें भी जिसे विकल्प का—राग का अवकाश नहीं। समझ में आया? वह है कैसा? 'है'। ऐसा अन्तर्भेद अंश है और राग है और यह अंश निर्मल है और यह गुण है। (यह) कैसे है? 'है'। बल्लभदासभाई! यह तो सर्वज्ञ के विज्ञानघर की कसरत है। समझ में आया? यह तो सर्वज्ञ की व्यायामशाला की कसरत है। समझ में आया?

भगवान आत्मा और ऐसे अनन्त आत्मायें, उनकी सामान्यरूप से प्रतीति करो कि अन्तर्भेद के सब अंश अनन्त.... अनन्त.... अनन्त.... अनन्त.... अनन्त.... अन्तर्भेद, उसे प्रतीति में लावे तो भी यह कैसे, ऐसे विकल्प को यहाँ अवकाश नहीं है। वहाँ ऐसा कैसे? उसमें भी अवकाश नहीं। ऐसे सम्यग्ज्ञान की एक समय की पर्याय पूर्ण को स्वीकार करे, उसकी राग की एकता टूटे बिना नहीं रहती। चन्दुभाई! ऐसा जो एक-एक द्रव्य, वह-वह द्रव्य.... वह-वह द्रव्य क्रमभावी अर्थात् नयी-नयी अवस्थाएँ प्रत्येक पदार्थ में होती हैं, वे क्रमभावी क्रम से होती हैं, क्रम से होती हैं, क्रम से परिणमती हैं। और सहभावी—उस-उस द्रव्य में अनन्त गुण शक्तिरूप से साथ में रहे हुए गुण। ऐसे सद्भाव पर्यायों को अर्थात् कि ऐसे स्वभावविशेषों को अर्थात् कि प्रत्येक द्रव्य अपने पर्याय और गुण के स्वभावरूप भेदों को। कान्तिभाई! बहुत सूक्ष्म। आज आये हो न बराबर।

यह प्रत्येक पदार्थ, प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु, उसमें होनेवाली नयी-नयी अवस्था वह होनेवाली क्रम अवस्था है। क्रम से होना। और एक सहभाव से रहना—साथ में रहना। अनन्त गुण का, प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु में साथ में गुणों

का रहना। वह सहभावी और क्रमभावी अर्थात् कि वह सद्भाव पर्यायें अर्थात् कि स्वभावविशेष। वस्तु के गुण और पर्यायें स्वभावविशेष है। द्रव्य जब सामान्य है तो गुण और पर्यायें उसके स्वभावविशेष हैं। सेठी!.....

स्वभावविशेषों को जो.... अर्थात् द्रव्य। जो अर्थात् द्रव्य। वस्तु आत्मा या एक-एक परमाणु जो उसके स्वभावविशेष को जो द्रव्य 'द्रवता है'—स्वभावविशेषों को द्रवता है जो द्रव्य। जो द्रव्य स्वभावविशेषों को पाता है। सहभावी भाव और क्रमभावी पर्याय को पाता है अथवा व्यापता है। अर्थात् कि जो प्रत्येक द्रव्य अनन्त जितने हैं, वे-वे उनकी क्रमभावी दशाओं—अवस्थाओं और साथ में रहनेवाले गुणभाव ऐसी विशेष पर्यायों को, स्वभावविशेषों को **सामान्यरूप स्वरूप से व्याप्त होता है....** सामान्यरूप ऐसा जो द्रव्य, वह इन स्वभावविशेषों को द्रवता है, पाता है, व्यापता है, **वह द्रव्य है।** उसे पदार्थ और द्रव्य कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें कुछ? अटपटा जैसा लगे नये लोग हों उन्हें।

अरे! केवलज्ञान का कक्का तो यह है। जिस कक्का को केणवता केवलज्ञान होता है। समझ में आया? अहो! मेरा द्रव्य वह सामान्यस्वरूप से स्वभावविशेषों को गुण और पर्यायरूप जो स्वभावविशेष हैं, उन्हें द्रवता है अर्थात् पाता है या सामान्य स्वरूप द्वारा उन स्वभावविशेषों में व्यापता है। समझ में आया? सूक्ष्म कहना और समझ में आया, वापस (पूछना)।

मुमुक्षु : स्थूल तो अब समझ में आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु स्थूल तो अब समझे हुए ही हैं अनादि काल से। धूल में क्या समझना था। मोहनभाई! यह तुम्हारे लड़के पढ़ते हैं न वहाँ कहीं। उसमें क्या धूल जैसा है पठन।

यह वीतराग का ज्ञान.....

मुमुक्षु : हजार-हजार....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी अब हजार लावे तो क्या है? कंकड़। कौन लाता था? आते हों वहाँ जरा हजार और पाँच हजार। आत्मा को क्या? आत्मा को क्या? उसमें आत्मा में क्या आया? आत्मा को तो स्वभाव का लाभ हो, वह आत्मा को आया।

भगवान आत्मा अपना सामान्यस्वरूप से, सामान्य अर्थात् एकरूप जो स्वरूप है वह, उसके स्वभावविशेष अर्थात् गुण अनन्त के स्वभावविशेष और पर्याय अनन्त क्रम से होनेवाले स्वभावविशेष, उसमें सामान्यस्वरूप से उसमें व्यापे और उसे प्राप्त करता है। समझ में आया? कहो, इसमें समझ में आता है या नहीं? ऐ... देवानुप्रिया! बराबर है? ऐसा तो भाई हम सुनने जायें (वहाँ तो ऐसा कहे), छह काय की दया पालना, सूर्यास्त से पूर्व भोजन करना, रात्रि में नहीं खाना, ऐसी बातें करे तो हम तो धर्म समझते हैं। यह और किस प्रकार का?

बापू! तुझे जो धर्म करना है न? उस धर्म की पर्याय कहाँ है? और कितनी है और उसमें कौन व्यापता है? व्यापता अर्थात् पाता कौन है? वह किसे मिलती है? द्रव्य को मिलती है? गुण को मिलती है? या पर को मिलती है? क्या है वह? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो निर्मल पर्याय—ऐसा धर्म, उसमें कौन व्यापता है? समझ में आया? कि द्रव्य जो आत्मा है, वह अपने सहभावी अनन्त गुणों में व्यापता है और ऐसी पर्याय धर्मरूपी दशा में वह द्रव्य व्यापता है। द्रव्य उसे पाता है और द्रव्य उसे पहुँचता है और द्रव्य उसे प्राप्त करता है। ओहोहो! समझ में आया? यह तो दूसरे ढंग से वह की वह बात आयी। तेरे धर्म की पर्याय और दूसरे द्रव्य, गुण, पर्याय व्यापकर यहाँ आ जाये, (ऐसा नहीं है)। समझ में आया? उसका धर्म सामान्य दूसरे जीव का सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान का धर्म, ऐसी जो पर्याय उसकी, उसका भी द्रव्य और गुण का लक्ष्य करने से वह द्रव्य ही स्वयं उस पर्यायरूप से व्यापता है, पाता है और लहता है। दूसरे से पर्याय की प्राप्ति नहीं होती। कहो, समझ में आया?

धर्म एक पर्याय है—अवस्था है—नयी होती दशा है। धर्म, वह कहीं त्रिकाली स्वरूप प्राप्त है, ऐसा है नहीं। शक्ति और दूसरी पर्यायें अधर्म आदि की वह प्राप्त है। परन्तु धर्मपर्याय प्राप्त करनी हो, उसे सब है, उसमें मैं भी द्रव्य से परिपूर्ण, गुण से परिपूर्ण, पर्याय से अपूर्ण, परन्तु पर्याय में अंश से। ऐसे द्रव्य का लक्ष्य होने पर वह द्रव्य ही स्वयं अपने गुण सहभावी को अनन्त के साथ रहनेवाले को और क्रम-क्रम से होती पर्याय को वह द्रव्य पहुँचकर पाता है। समझ में आया? शशीभाई! यह किस प्रकार का धर्म? भाई! यह जैनधर्म ऐसा होगा? यह किसकी लगायी है?

सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा देवाधिदेव जिन्होंने एक समय में छह द्रव्य पृथक् देखे हैं और पंचास्तिकाय अर्थात् काल अस्ति है परन्तु काय नहीं। प्रदेशों का समूह नहीं इसलिए। परन्तु वे छहों द्रव्य और पाँच अस्तिकाय भगवान ने देखे, उसका जहाँ ज्ञान स्वीकार करने जाता है, उसके ज्ञान में निर्मलता और सम्यक्ता होती है। वह सम्यक्ता को प्राप्त अपना द्रव्य प्राप्त करता है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या आता है ?

मुमुक्षु : द्रव्य-पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दूसरी बात है। यहाँ ऐसा नहीं है। ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। वहाँ वह गुण द्रव्य को आलिंगता नहीं। पर्याय द्रव्य को आलिंगती नहीं। ऐसा है, देवानुप्रिया! वहाँ भूले तुम, हों! सब प्रश्न परन्तु यहाँ नहीं चला।

प्रत्येक वस्तु, उसके गुणों का भेद एकरूप को स्पर्शता नहीं। आलिंगन नहीं करता। वस्तु जो है एकरूप, उसके अनन्त गुण जो हैं शक्ति, वह एकरूप को स्पर्शती नहीं। एकरूप को स्पर्श तो अनेकपना टलकर एक हो जाये। एक उसे स्पर्श तो एकपना टलकर अनेक हो जाये। देवानुप्रिया! यह बात दूसरी। यह वह द्रव्य नहीं ऊपर से घोड़ा मारे यह। कहो, समझ में आया इसमें ? यह तो वहाँ दूसरी बात कहते हैं। यह तो जहाँ अभेद वस्तु का वर्णन (किया है).... यहाँ जैसे सब अभेद है.... है.... है.... है, ऐसा वहाँ भी पूरा है.... है.... है.... ऐसा वर्णन करते हुए, एकरूप वर्णन करते हुए उसके गुणभेद भी जहाँ लक्ष्य में नहीं रहते। ऐसा द्रव्य गुण को स्पर्शता नहीं। और एक समय की पर्याय, उसी पर्याय को स्पर्शता द्रव्य अपने सामान्य गुण को स्पर्शता नहीं। और क्या कहा ? यह तो था तब, भाई थे न अलिंगग्रहण के समय।

भगवान आत्मा अपने आनन्दगुण का अनुभव पर्याय में हो। अतीन्द्रिय आनन्द, पूर्ण द्रव्य हूँ, गुण से परिपूर्ण हूँ, पर्याय से अपूर्ण, उसे जब पूर्ण करने का प्रयत्न हो, तब वह पर्याय द्रव्यसन्मुख झुकी हुई होती है। द्रव्य की ओर झुकी हुई होती है, इसलिए उसके अनुभव में अतीन्द्रिय आनन्द का पर्याय में वेदन और व्यक्त अनुभव होता है। उस

अनुभव का वेदन, उतना ही आत्मा है। क्योंकि वह अनुभव वेदन पर्याय का है। अनुभव द्रव्य-गुण का नहीं हो सकता। ऐई! देवानुप्रिया! यह कहा इस प्रकार से बराबर है। पूछा था, उसमें बराबर नहीं था। कहो, समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : पूछनेवाला तो गड़बड़ कर डाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वह तो गड़बड़ करके पूछने आवे ऐसा नहीं। होशियार है। परन्तु इसमें मेल नहीं खाया। कहो, समझ में आया इसमें? वैसे तो होशियार है।

यहाँ कहते हैं, यह एक आत्मा, उसमें त्रिकाल आनन्द पड़ा है। उसकी शक्ति एक आनन्द की है। आनन्द द्रव्य और गुण दोनों में व्याप्त है। आनन्द—अतीन्द्रिय आनन्द। ऐसा जहाँ पर्याय में महासत्तापना स्वीकार करने जाये, वहाँ अपने आनन्द के द्रव्य और गुण को भी स्वीकार में आ जाये, तब उसकी पर्याय में आनन्द प्रगट हो, उसे धर्म और अनुभव कहा जाता है। आत्मा आनन्द की पर्याय का अनुभव कर सके। आत्मा अनुभव में द्रव्य-गुण का अनुभव नहीं होता। वेदन में पर्याय का वेदन होता है, द्रव्य-गुण का नहीं होता। इसलिए वेदन की अपेक्षा से आत्मा पर्याय जितना ही है। गुण-द्रव्य जितना नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें से पूछा था न इसमें? उसमें से इसने पूछा। अलिंगग्रहण में। परन्तु आया नहीं। मिलान खाना आया नहीं। बहुत समय से नहीं स्मरण किया हो। उसमें ही पूछा था, वह अलिंगग्रहण में। गुण स्पर्शता नहीं। क्या स्पर्शता नहीं, ऐसा नहीं कहा उसमें। क्या कहा?

मुमुक्षु : द्रव्य पर्याय में गुण व्यापता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ऐसा। समझ में आया?

एक अलिंगग्रहण के अतिरिक्त एक अर्थ शब्द आता है, उसमें ऐसा कहते हैं। वह दूसरी बात है। वह तो पर्याय द्रव्य को व्यापे, द्रव्य पर्याय को व्यापे। अर्थ-अर्थ जो है न? अर्थ.... व्याप्ति तुमने अलिंगग्रहण की बात की। कहो, यहाँ समझ में आया?

यह आत्मा का द्रव्य—वस्तु अथवा अनन्त द्रव्य अपने स्वभावविशेषों को.... स्वभावविशेष में दोनों आये। उनकी शक्तियों का समूह और क्रमभावी पर्याय। उन सबको जो पदार्थ द्रवता है, पाता है, पहुँचता है, सामान्य स्वरूप से वह पर्याय द्रव्य-गुण को पाती है, व्याप्त है, उसे द्रव्य कहते हैं। उसे द्रव्य कहते हैं। इस प्रकार अनुगत अर्थवाली निरुक्ति से द्रव्य की व्याख्या की गई। नीचे अर्थ है। यहाँ द्रव्य की जो निरुक्ति की गई है, वह 'द्रु' धातु का अनुसरण करते हुए (—मिलते हुए) अर्थवाली है। निरुक्ति शब्दार्थ है। क्या है इस निरुक्ति का अर्थ? व्युत्पत्ति। यह तो ठीक शब्दार्थ में कुछ नहीं। यह तो अनुसरते में जरा अन्तर है। अनुसरता तो ऐसा ही लेना या अनुसरता लेना? ऐसा। उस ध्रुव धातु को अनुसरता का अर्थ ही मिलता-मेलवाला है। द्रु, द्रवना, द्रवना। द्रु—पानी जो है वह तरंग को द्रवता है, द्रवता है ऐसे एक के बाद एक.... एक के बाद एक तरंग। उसे द्रु कहते हैं। इसी प्रकार आत्मा और प्रत्येक वस्तु द्रवती है, पाती है, द्रु धातु द्रवना। ... यह नीचे अर्थ जयसेनाचार्य का है। वह अपने गुण और पर्याय को द्रवे, पावे, पहुँचे, उसे द्रव्य द्रु धातु से उसे द्रव्य कहा जाता है। कहो, समझ में आया? दूसरा अर्थ किसमें से किया? शून्य में से? द्रवता है इसका अर्थ। नीचे नोट।

श्री जयसेनाचार्यदेव की टीका में भी यहाँ की भाँति ही 'द्रवति गच्छति' का एक अर्थ तो 'द्रवित होता है अर्थात् प्राप्त होता है'.... द्रवता है। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु अपने गुण-पर्याय को द्रवे अर्थात् पाता है, ऐसा वस्तु का स्वरूप है। और तदुपरान्त 'द्रवति अर्थात् स्वभावपर्यायों को द्रवित होता है.... वहाँ ऐसा कहा है। जिसे-जिसे विभाव हो, उसे विभाव, स्वभाव हो उसे स्वभाव। आत्मा भी अपने स्वभावपर्यायों को पाता है। वह स्वाभाविक निर्मल आदि पर्यायों को पाता है। निर्मल आदि क्यों कही? कि निर्विकारी नयी हुई हो वह या अस्तित्व गुण की निर्मल पर्याय हो वह। उसे वह स्वभावपर्यायों को द्रवता है।

और गच्छति अर्थात् विभावपर्यायों को प्राप्त होता है... आत्मा अपनी विकारी पर्याय को स्वयं पाता है। कर्म के कारण नहीं। समझ में आया? कान्तिभाई! झगड़े हैं न जैनदर्शन के नाम से? ऐई! अपने तो कर्म के कारण विकार, कर्म के कारण विकार, कर्म के कारण (विकार होता है)। अरे! प्रभु! सुन तो सही। यह द्रवति इति द्रव्यं।

भगवान आत्मा द्रवता है, पानी में जैसे प्रवाह में तरंग उठती है, वैसे वस्तु के अनन्त गुणों का प्रवाह पर्यायरूप प्रवाह उठता है। उसमें 'द्रवति' स्वभावपर्यायों को द्रवे, पावे, प्रवहे, बहे, प्रगटे अथवा विभावपर्यायों को पावे। ऐसा जीव का और परमाणु का विभाव। दोनों में ही है न। चार में तो है नहीं। नवरंगभाई! विभावपर्याय को जीव पावे। देखो! 'गच्छति' अर्थात् विभावपर्याय को पाता है। क्रोध, मान, माया, लाभ, राग, द्वेष, मिथ्याज्ञान आदि विकारी पर्याय को भी एक द्रव्य ही पाता है। उसे कोई पर्याय को कर्म प्राप्त करा दे या संयोग उसे विकार प्राप्त कराये, ऐसा है नहीं। चन्दुभाई! कैसे हुआ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब एक में। स्वभावपर्याय को द्रवता है कहो या पाता है, वह तो एक का एक हुआ। द्रवना कहो या फिर द्रवी होकर पाता है, ऐसा। दो अर्थ किये न? पहला द्रवता है अर्थात् पाता है, साधारण किया। पश्चात् 'द्रवति' दो शब्द पड़े हैं न पाठ में? 'द्रवति गच्छति' दो शब्द पड़े हैं पाठ में। यह 'द्रवति' का एक सामान्य अर्थ तो द्रवता है, इतना ही किया। पश्चात् तदुपरान्त दूसरा अर्थ किया। 'द्रवति' अर्थात् स्वभावपर्यायों को द्रवित होता है.... यह पहले शब्द का अर्थ पाठ का। और 'गच्छति' दूसरा शब्द है। उसकी विकारी पर्याय को गच्छता है, पाता है। अर्थात् उसमें नहीं थी और नयी हुई। निर्मल स्वभाव तो है। उसके स्वभाव को द्रवता है। और यह गच्छति अर्थात् विकारपने को पाता है। क्या कहा?

आनन्द आदि शक्तियाँ आत्मा में गुण आनन्द है, उसे द्रवता है स्वभावपर्याय को। अन्दर है ऐसी शक्ति को पाता है और गच्छति में उसमें कुछ नहीं विकार। परन्तु उस विकारी पर्याय को द्रव्य पाता है। समझ में आया? एक-एक बोल कितने धारना घण्टे भर में? घर में पूछे कि क्या सुनकर आये? तो क्या कहना इसमें?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा होगा? प्रत्येक की बात आनी चाहिए। माहात्म्य.... माहात्म्य अकेला शब्द आवे, वह क्या काम आवे? किस अपेक्षा से माहात्म्य और किस अपेक्षा से माहात्म्य टूटा, ऐसा सब आना चाहिए न ख्याल में? कहो, समझ में आया इसमें?

देवानुप्रिया ! क्या कहा ? स्वभावपर्याय को द्रवता है अर्थात् वह स्वभाव अन्दर है, उसमें से प्रगट होता है, ऐसा। और विभाव कुछ है नहीं। इसलिए पाता है नया।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वाभाविक पर्याय अन्दर में है, वह आती है। यह तो अर्थ हो गये हैं सब तब। पण्डित थे तब नौवीं गाथा चलती थी न। (संवत्) २००३ का वर्ष। २००३ का वर्ष। यह पण्डित अपने तीन दिन विद्वत् परिषद भरी थी न? तब यही गाथा चली थी। यह 'द्रवति गच्छति' की। देखो! यह 'गच्छति'। क्या करे? बोले तो नहीं। यह लिखा तो है इसमें। और मान्यता हो कर्म के कारण विकार, कर्म के कारण विकार। अरे! भगवान! कर्म तो निमित्त है। विकार उसके कारण हो वह तो वह कर्म पहुँच गया उसे। ऐसा दूसरा अर्थ भी वहाँ किया गया है। यह उस 'द्रवति' के द्रव्य के अर्थ में से अर्थ करने का है। कहो, समझ में आया?

और यद्यपि लक्ष्यलक्षण भावादिक द्वारा द्रव्य को सत्ता से कथंचित् भेद है... क्या कहा? लक्ष्य वह द्रव्य। लक्षण वह सत्ता, उसका गुण। सत्ता नाम का गुण, वह लक्षण है। नीचे है देखो! सत्ता लक्षण है और द्रव्य लक्ष्य है। लक्ष्यलक्षण भावादिक द्वारा.... अर्थात् बहुत प्रकार से प्रयोजन, संज्ञा नाम आदि द्वारा द्रव्य को सत्ता से कथंचित् भेद है, तथापि वस्तुतः (परमार्थतः) द्रव्य सत्ता से अपृथक् ही है, ऐसा मानना। वस्तु है, वह उसके सत्ता नाम के गुण से पृथक् नहीं है। सत्ता नाम का गुण और वस्तु दोनों अभेद है।

इसलिए पहले (८वीं गाथा में) सत्ता को जो सत्पना,.... अब आया। बारह बोल। पूर्व में ऐसा कहा था कि प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु में सत्ता नाम का गुण है, उसे सत्पना कहा था। महासत्ता की अपेक्षा से। सब है, उसकी अपेक्षा से। उसे ही असत्पना कहा था अवान्तरसत्ता की अपेक्षा से। किसे? सत्ता को कहा था। वही यहाँ द्रव्य को भी सब कहना। क्या कहा, समझ में आया इसमें? अरे... यह। एक-एक भाषा इसकी तो मानो वह.... ऐसा हो कि भाई यह दया पालने का हो या यह करें। परन्तु सुन न अब, दया किसकी पालता था? पर की ताकत कब थी? पर पर्याय को यह पहुँच

जाये। तेरी पर्याय को तू पहुँचता है। पर की दया कहाँ से करता था तू? कान्तिभाई! रोटियाँ नहीं खायेंगे। लो! रोटियों की पर्याय को यहाँ नहीं आने की पर्याय को वह पहुँचती है। तू पहुँचता है उसे?

जिसके द्रव्य और गुण जो भिन्न-भिन्न है, उसके द्रव्य और गुण उसकी पर्याय को प्राप्त करते हैं। ऐसा यहाँ निर्णय कराते हैं। भिन्न है तेरी पर्याय की प्राप्ति। उसकी पर्याय की प्राप्ति उससे उसका भिन्नपना है। तेरे और उसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। समझ में आया?

सत्पना.... अर्थात् क्या कहा? सत्ता को, हों! अस्तित्व को महासत्ता की अपेक्षा से सत्पना कहा था। उसे ही असत्पना प्रतिपक्ष से कहा था। जो महासत्ता है, वह अन्तर्भेद के एक अंश में नहीं आ जाती। इसलिए अन्तर्भेदपने की अपेक्षा से वह असत् है। समझ में आया? क्या है? जयन्तीभाई! तुमको क्या होगा? बहुत वर्ष से परिचय है न! इन सबने अभ्यास भी किया नहीं कभी। दास! लो! जयन्तीभाई कहते हैं कि कठिन पड़ता है। धन्धा करने में कुछ कठिन नहीं पड़ता वहाँ, मात्र कषाय सुलगती है

कहते हैं कि जो अस्तित्व.... कल बहुत आया था। 'है' ऐसा गुण जो जगत में वह सबमें व्यापता है। व्यापे अर्थात् एक गुण नहीं। परन्तु है.... है.... है.... है.... है.... है.... है.... है.... हैपना उसमें से कौन नहीं है, ऐसा आयेगा? महा सब है.... है.... है.... है की अपेक्षा से महा अस्तित्व अर्थात् महासत्ता। और एक-एक अन्तर्भेद का भाग गिनते हैं, लक्ष्य में लेते हैं तो अवान्तर नाम अवान्तर अर्थात् अन्य—महासत्ता से अन्य एक-एक भाग अलग। एक-एक भाग, उसे अवान्तर कहते हैं। सबमें से एक जीवद्रव्य भिन्न, एक गुण भिन्न, एक पर्याय भिन्न लें अन्तर्भेद। तो एक अन्तर्भेद की अपेक्षा से सब है, वह ऐसा नहीं। सब है, वह है महासत्ता से। अन्तर्भेद की अपेक्षा से असत् है। ऐसे अन्तर्भेद भी स्वयं की अपेक्षा से है। महासत्ता की अपेक्षा से अन्तर्भेद असत् है। एक अंश कोई पूरे में आ नहीं जाता। समझ में आया?

त्रिलक्षणपना.... महासत्ता में त्रिलक्षणपना था। सब है। उत्पाद-व्यय और ध्रुव। नयी अवस्था उपजे, पुरानी जाये और ध्रुवरूप से। तीन लक्षणपना महासत्ता में था। वही

अवान्तरसत्ता से **अत्रिलक्षणपना**,.... एक-एक उत्पाद, वह उत्पादरूप से; व्यय, वह व्ययरूप से; ध्रुव, वह ध्रुवरूप से। कहो, समझ में आया इसमें? इस सत्ता को जो ऐसा कहा था कि तीन लक्षणवाली सत्ता, वही एक लक्षणवाली कहने में आती है। त्रिलक्षण से अत्रिलक्षण। अत्रि अर्थात् तीन लक्षणवाली नहीं। एक-एक स्वरूप को एक-एक लक्षण स्वरूप से उपजना, पूर्व अवस्था का व्यय और ध्रुवरूप से रहना। एकपना सबरूप से एक कहने का आता था। वही एक-एक होकर सब है, इसलिए उसे भी अनेकपना कहने में आता है।

सर्व पदार्थस्थितपना,.... सत्ता.... सत्ता, हों! सर्व पदार्थस्थित है। सत्ता। है.... है.... है.... है.... सब। संग्रहनय की बात है, हों! वे कहते हैं, सब एक व्यापकरूप से, ऐसा यहाँ नहीं। शशीभाई! सर्व पदार्थ में है.... है.... है.... है.... वही **एक पदार्थस्थितपना**.... एक पदार्थ का स्थितपना सर्व पदार्थस्थितपने से भिन्न है। इसलिए सर्व पदार्थस्थित है, वही स्वयं एक पदार्थस्थित है, उसके अन्तर्भेद से।

विश्वरूपपना,.... अनेकरूपपना। विश्व अर्थात् अनेक। अनेकरूपपना महासत्ता से था, वह एक-एक सत्ता की अपेक्षा से इकट्ठा होकर अनेकपना हुआ। समझ में आया? **सर्व पदार्थस्थितपना, एक पदार्थस्थितपना, विश्वरूपपना, एकरूपपना, अनन्त-पर्यायमयपना**,.... महासत्ता में अनन्त पर्यायें थीं। महासत्ता में अनन्त पर्यायें थीं। अनन्त पर्यायों का समूह, अनन्त पर्यायें, अनन्त महासत्ता। अनन्त पर्यायें सब। अनन्त द्रव्य की लेना सब। अनन्त पर्यायोंरूप अनन्त पर्यायें महा अस्तित्व में थी। वही एक पर्यायमयपना उसे कहा गया है। एक-एक पर्याय का भिन्न-भिन्नपना गिनने से जो उसे अनन्त पर्याय कही थी, उसे भी अन्तर्भेद की अपेक्षा से एक पर्याय में होता है, ऐसा कहने में आया।

वह सब सत्ता से अनर्थान्तरभूत.... यह अस्तित्व के गुण से यह सब अनर्थ अर्थात् अन्य अर्थरूप नहीं। अभिन्न पदार्थभूत है, अन्य-अन्य पदार्थभूत नहीं। वह सत्ता में जिसमें बारह बोल कहे, उस **द्रव्य को ही देखना**.... उस वस्तु को भी बारह बोल से देखना। है यह ही सब बोल। अभ्यास नहीं होता न! जयन्तीभाई! यह दरकार नहीं होती। चिमनभाई! बात सत्य है या नहीं? पदार्थ के व्यायाम में कभी आया नहीं। कसरत में भी

आया नहीं कभी। यह तो ज्ञानी की व्यायामशाला है। पदार्थ के स्वरूप की। पदार्थ कैसा है? उसका अस्तित्व कैसा है? उस अस्तित्व को जो यह सत्पना, असत्पना कहा, वे सब बोल द्रव्य को भी लागू पड़ते हैं। सत्ता को महासत्ता कही थी। तो इसे महा द्रव्य कहना। समझ में आया? इसलिए कितने ही निकालते हैं न कि देखो! इसमें द्रव्य को देखना, ऐसा कहा है। एक द्रव्य को ऐसे देखना कहा। इसलिए वहाँ महासत्ता में भी एक-एक द्रव्य को लागू पड़े, ऐसा कितने तर्क करके कहा।

क्या कहा इसमें? कि पहला जो महा अस्तित्व में बारह बोल जो वर्णन किये थे, वे ही बारह बोल द्रव्य को वर्णन करना। क्योंकि सत्ता और द्रव्य दो कहीं भिन्न नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रयोजन वीतरागपने का प्रयोजन है। क्या कहा? यह तो पहले कहा था। ऐसा कि प्रत्येक वस्तु का कोई प्रयोजन होता है न? उसमें कहा था पहले। ओहो!

सत्ता में जब इस प्रकार से है तो द्रव्य भी इस प्रकार से महाद्रव्य अर्थात् सब है.... है.... है.... है, सब द्रव्य है और है महाद्रव्य, वही पेटा द्रव्य की अपेक्षा से असत् है। समझ में आया? और जो महाद्रव्य त्रिलक्षणरूप से है, वही महाद्रव्य एक-एक लक्षणपने की अपेक्षा से अत्रिलक्षण है। वही महासत्ता जैसे एक थी और अनेक थी, वैसे द्रव्य भी वस्तुरूप से सब एक है विश्वरूप से। अन्तर्भेदरूप से द्रव्य भी अनेक है।

सर्व पदार्थस्थितपना। वह द्रव्य भी सर्व पदार्थ है। सब पदार्थ में द्रव्य-गुण है न। किसमें द्रव्य नहीं? उसके अन्तर्भेदरूप से तो वह पदार्थ द्रव्य है। इस अपेक्षा से विरुद्ध हो गया। विश्वरूपपना अनेकरूपपना है द्रव्य में सब होकर। उसमें एक-एकपने की अपेक्षा से भिन्न पड़ गया। सब अनन्त पर्यायों का समूह, वह महाद्रव्य है। महासत्ता। अनन्त पर्यायों का समूह, वह महासत्ता। एक-एक पर्याय की सत्ता, वह एक पर्यायरूप सत्ता है। ऐसे बारह बोल द्रव्य में ही देखना। कहो, समझ में आया इसमें? रतिभाई! यह हेडमास्टर को यह सब.... आज तो सब घण्टा.... सत् के लक्षण की व्याख्या है सब।

इसीलिए कहा है न, पंचाध्यायी में। सत् द्रव्यं सत् मात्रं। वह इसमें से निकाला है। सत् मात्रं इसमें से निकाला है। सत् लक्षण भी कहा और सत् मात्रं भी कहा। सत् से पूरा द्रव्य अभेदरूप से है। वह सब पंचाध्यायी और पंचास्तिकाय और प्रवचनसार में से निकाला हुआ है। मूल उसमें से सब है। उसे भी मिथ्या सिद्ध करना चाहते हैं। कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्या बात उसकी मानी हुई वापस। परन्तु इसमें भी नहीं मिथ्या पड़ती ? पंचास्तिकाय को स्वीकार करने जाये तो उसकी मान्यता मिथ्या पड़ती है। विकार स्वयं से द्रवे और होता है। उसमें भी आया। और प्रत्येक द्रव्य सामान्यस्वरूप से विशेष गुण और पर्याय में व्यापता है। उसमें दूसरा विशेषपना व्यापता नहीं। उसमें क्या रह गया ? उसमें निमित्तपना कुछ किया नहीं। उसमें यह आया। आता है या नहीं ? यह तो पंचाध्यायी और मोक्षमार्गप्रकाशक में यह तो स्पष्टीकरण किया है, विशेष बात करके। यहाँ तो सब बीज संक्षिप्त, चार पैसे सेर तो मण के ढाई, फिर अंक कितने ? कि जितने अंक डालना, उतने तू डाल न ! यह फिर तर्क से दृष्टान्त देकर बात दूसरे में सिद्ध की है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह वस्तु इसके ख्याल में अव्यक्तरूप से तो आयी हुई होती है। छह द्रव्य का अस्तित्व का ज्ञान का सामर्थ्य इतना ख्याल में तो अव्यक्तरूप से आया हुआ होता है। ऐसा बिना भान के नहीं चलता।

मुमुक्षु : अभ्यास न करना हो उसके लिये....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। अभ्यास न करना हो, उसके लिये दृष्टान्त ठीक है। आहाहा ! यह तो मूल वस्तु का ज्ञान है। और उसमें भी अभी तो बहुत विपरीतता घुस गयी है, उतनी ही निकालने के लिये उसे सुलटे ज्ञान के पहलू सेवन करने पड़ेंगे। क्यों, बल्लभदासभाई ! विपरीतता कितनी घुस गयी है ? कहीं इसका मिलान नहीं, इतनी। पूरा स्वयं कौन स्वतन्त्र कहाँ क्या है परन्तु यह वस्तु ? इसकी शक्तियाँ क्या ? इसकी दशा की

कृत्रिमता होने पर भी, नयी-नयी होने पर भी पहली ऐसी और ऐसी कैसे ? ऐसी क्यों, ऐसा। ऐसा है उस समय। ऐसा कैसे क्या ? ऐसा है। यह निमित्त आया, यह निमित्त बदला तब ऐसा हुआ, ऐसा नहीं। दूसरे क्षण में पर्याय ऐसी क्यों ? कि ऐसा है। ऐसा कैसे है ? ऐसा है। सत् ही ऐसा जहाँ पर्याय का है, वैसा पर्यायपने द्रव्य परिणमा है। समझ में आया ?

इसमें प्रयोजन धर्म का है। समझ में आया ? कि सत्ता के जो यह विशेषणों से महा या अन्तर्भेद ऐसे द्रव्य को महा या अन्तर्भेद। सब है द्रव्य, है द्रव्य। छह द्रव्य हैं। है। किसे इनकार करे और किसे विकल्प से उठावे कि यह ऐसा कैसे करता है ? ऐसा कैसे करता है यह ? कैसे करता है अर्थात् क्या परन्तु ? जिसकी जो पर्याय उस समय में उसका सत् है, वह अन्तर्भेद से होती है। कहो, सेठी ! आहाहा ! यह पुरुषार्थ। कितना पुरुषार्थ है यह ? अनन्त द्रव्य की वर्तमान पर्याय को जहाँ खड़ी होने पर मुझसे होती है, ऐसे सत् के नाश को करता है। वह एकदम दृष्टि बदली, उससे यह सब द्रव्य, ऐसा का ऐसा परिणाम रहा है। वह गुण की पर्याय परसन्मुख के अभिमान में थी, उसे स्व सन्मुख की सत्ता के स्वीकार में लाया अर्थात् पर का स्वतन्त्र स्वीकार हो गया। वह पुरुषार्थ नहीं ? पुरुषार्थ कूदना है कहीं ?

मुमुक्षु : अनन्त पुरुषार्थ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह कहते हैं न। यह कहा। यह नियत करके जरा पुरुषार्थ नहीं वहाँ अनन्त पुरुषार्थ (कहते हैं)। गजब कुन्दकुन्दाचार्य के नाम से लिखा है। ऐई ! महेन्द्र। अरे ! भगवान ! तुझे खबर नहीं, बापू ! पुरुषार्थ की गति का कार्य कहाँ होता है ? और कैसे होता है ? वीर्य नाम की जो शक्ति आत्मा में है, उसकी पर्याय कार्यरूप से परिणामे, वह कार्यरूप से परिणामे, ऐसा क्रमसर सब गुण परिणामे और सब द्रव्य क्रमसर परिणामे, ऐसा कहने से सब क्रम की सत्ता का स्वीकार हो गया। यहाँ महासत्तारूप से स्वीकार किया कि ऐसा.... ऐसा.... ऐसा। वहाँ क्रम-क्रम से होनेवाले महा का स्वीकार होने पर कुछ करने का कुछ नहीं, जानने का रहा और करने की बुद्धि का नाश हुआ। इसका नाम अनन्त पुरुषार्थ है। आहाहा ! ऐसे लेख लिखकर उसके सामने डालते हैं। पुराने लेख हैं।

मुमुक्षु : ताजा....

पूज्य गुरुदेवश्री : ताजा । अरे ! भगवान ताजा तुझे....

मुमुक्षु : लींबड़ी मुकाम में राजकोट के....

पूज्य गुरुदेवश्री :में हुआ था न ! लींबड़ी से ताजा हुआ । ऐई ! वे तो ऐसा कहते थे । ऐसा कहते थे । अब भाई !

भगवान ! तेरे ज्ञान की ताकत यह करना कहीं राग का या पर का, वह कहीं ज्ञान की वास्तविक ताकत नहीं है । ज्ञान का वह वीर्य ही नहीं है । ज्ञान का वीर्य स्वरूप को रचे, वह ज्ञान का वीर्य कहलाता है । आहाहा ! अर्थात् कि जगत के सब पदार्थ उसके काल में परिणमे और उस सत्ता में रहे हुए हैं । मेरी सत्ता में वे नहीं और उनकी सत्ता में मैं नहीं । उनकी पर्याय के क्रम में मैं नहीं और मेरी पर्याय के क्रम में वे नहीं । ऐसा होने पर उसके ज्ञान का वीर्य स्वभाव-सन्मुख होकर अकर्तारूप से, राग और पर के अकर्तारूप से स्वरूप की रचना का पर्याय सामर्थ्य हो, उसे वीर्य का कार्य कहा जाता है । आहाहा ! सब भंगभेद कठिन ।

अरे ! भाई ! यह तो वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा देवाधिदेव की जो वाणी, उनका जो ज्ञान, उनका फरमान, उसके सुननेवाले कैसे बड़े होंगे ? आगे आता है न ९५ में । 'लोगसहावं सुणंताणं' अकेला स्वभाव वर्णन किया है । ९५वीं गाथा में आता है । ऐसी सब बातें लोक के स्वभाव के श्रोता सुनने बैठे थे, उन्हें भगवान ने कहा था । आहाहा ! त्रिलोकनाथ का चैतन्यसूर्य झलक उठा सर्वज्ञरूप से, तब वाणी में ऐसे सौ इन्द्रों की उपस्थिति में और लोक के अर्थात्.... ९५ में है । ९५ गाथा । देखो ! १४७ पृष्ठ । ९५ गाथा । यह देखो, इसमें आया यह छह द्रव्य का ।

तम्हा धम्माधम्मा गमणट्टिदिकारणाणि णागासं ।

इदि जिणवरेहिं भणिदं लोगसहावं सुणंताणं ॥९५ ॥

९५ । भगवान लोक के स्वभावों का वर्णन जब समवसरण में करते थे, तब लोक के स्वभाव को सुननेवाले, उन्हें भगवान ने ऐसा कहा था कि आकाश, वह गति और स्थिति में कारण नहीं है । आकाश तो सब पदार्थों को अवगाहन असाधारण दे, वह आकाश

है। धर्मास्ति, अधर्मास्ति गति-स्थिति का कारण है, आकाश नहीं। ऐसे स्वभाव का वर्णन जब लोक का स्वभाव उसमें सब आ गया। द्रव्यस्वभाव, गुणस्वभाव, पर्यायस्वभाव, विभावस्वभाव, गतिस्वभाव, स्थितिस्वभाव, अवगाहनस्वभाव, अचिन्त्य माहात्म्य आदि अनन्त-अनन्त स्वभाव, सब लोक का स्वभाव ऐसे भगवान की वाणी में आता था, तब श्रोता उसे सुनते थे, उन्हें भगवान ने ऐसा कहा था। आकाश वह गति, स्थिति का कारण नहीं। गति-स्थिति का कारण तो धर्मास्ति और अधर्मास्ति है। समझ में आया?... कहो, समझ में आया ?

द्रव्य को ही देखना.... इसमें तो एक द्रव्य आवे। ऐई! देवानुप्रिया! परन्तु यह महा ऊपर कहा है या नहीं? सत्ता नाम का गुण भी सर्व पदार्थस्थित विश्वरूप रहा हुआ समस्त रूप से है। ऐसे यह द्रव्य भी पूरे विश्वरूप लोकालोक रूप में सबको द्रव्य कहा जाता है। यह महाद्रव्य कहा, महाद्रव्य। जैसे महासत्ता, वैसे महाद्रव्य।

मुमुक्षु : एक लें तो सर्व पदार्थस्थित.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह एक लिया है। सर्व पदार्थ अर्थात् पूरा द्रव्य, गुण और पर्याय यह सर्व पदार्थस्थित। ऐसा लिया।

एक पदार्थ का सर्व पदार्थ। अर्थात् सब पूरा द्रव्य-गुण-पर्याय, वह सर्व पदार्थस्थित है। सत्ता सर्व पदार्थस्थित है। समस्त पदार्थ में एक सत्ता व्याप्त है। कहो, समझ में आया इसमें? यह प्रश्न रखा था और एक प्रश्न यह रखा था वहाँ पंचाध्यायी में है न। महासत्ता के प्रदेश भिन्न नहीं हैं, ऐसा पाठ है न। महासत्ता के प्रदेश भिन्न नहीं हैं। तब यह महासत्ता के प्रदेश अलग हो जाते हैं। एक द्रव्य में महासत्ता लो तो प्रदेश अलग नहीं होते। इसमें तो प्रदेश अलग होते हैं। इसलिए यह तर्कवाले का हो सकता है। वस्तुस्थिति ऐसी है।

सब कहकर एकपना सब है और अन्तर्भेदरूप से सब अंश अनन्त भाग पड़ें, उतने अन्तर्भेद हैं। दो ज्ञान में उसे निर्णय कराने को यह बात की है। अस्ति-नास्ति की वापस। जो महासत्ता, वह अवान्तरसत्ता। वही अवान्तरसत्ता अर्थात् उसके भेद में एक-एक है। यह अस्ति-नास्ति अनेकान्त किया। जितने अस्ति के सत्ता नाम के गुण को

जितनेरूप से—बारहरूप से वर्णन किया, उसी प्रकार से द्रव्य को सत्पना अर्थात् महाद्रव्यपना, असत्पना अर्थात् अन्तर्भेद का द्रव्यपना, वह उसमें नहीं, ऐसा लेना। त्रिलक्षणपना महाद्रव्य को, उसी और उसी को अत्रिलक्षणपना इत्यादि। सब सत्ता के विशेष द्रव्य के ही हैं, ऐसा मानना। सत्ता के बारह प्रकार, वे द्रव्य के ही हैं, ऐसा मानना। सूक्ष्म बहुत, हों! कान्तिभाई! यह तो अभ्यास चाहिए। यह तो वीतराग का ज्ञान। ऐसा सब है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह जाने बिना धर्म होगा या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जाने बिना, ज्ञान सच्चा किये बिना धर्म नहीं होगा। कोई आटा लेने जाये तो ऐसा कहे कि ऐ बाजरा का आटा देना दो सेर। पच्चीस प्रकार का आटा पड़ा हो और कहे कि आटा देना। परन्तु कौन सा आटा चाहिए ? यह मुझे खबर नहीं। तब क्या लेने आया ? आटा लेने में मालिक होता है न आटे की दुकानें, नहीं ? बाजरा का आटा, गेहूँ का आटा, चने का आटा बहुत प्रकार का होता है। मोहनभाई! वहाँ जाकर कहे कि आटा देना। वह कहे, कौन सा आटा ? परन्तु यह पच्चीस प्रकार के आटा हैं, देख।

मुमुक्षु : तुमको ठीक पड़े वह दो न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या ठीक पड़े ? वहाँ ऐसा नहीं है। वहाँ तो छोटकर कहता है कि भाई! चने का आटा एक सेर चाहिए है। घर में भुजिया बनाना है। कोई बाजरे का आटा नहीं चाहिए। बाजरे का भुजिया तो होता है, गेहूँ का भुजिया नहीं होता। कहो, समझ में आया ? सुना तो हो न बाजरे के भुजिया होते हैं। कहो, समझ में आया इसमें ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मानना, वही स्वरूप का भान हुआ और सम्यग्ज्ञान हुआ। उस सम्यग्ज्ञान में ऐसा आया कि इस स्वरूप में स्थिर होना। ऐसा आया। क्या आया ? कि सम्यग्ज्ञान होने पर ऐसा आया कि यह मेरे स्वरूप में स्थिर होना। यह आया उसमें करने का।

मुमुक्षु : राग की दिशा बदलनी या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहो, देवानुप्रिया ! आहाहा ! फिर स्थिर होना, स्थिर होना और स्थिर होना । यह स्थिर होकर फिर केवलज्ञान होता है । फिर क्या करना ? कि जानना, देखना और देखना । कहो, समझ में आया इसमें ?

मुमुक्षु : क्या करना यह प्रश्न तो उठे न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु करना अर्थात् क्या ? कोई भी गुण क्रिया बिना का है ? कोई भी गुण पर्याय के कार्य बिना का है, वह कार्य बिना रहता है ? कहो ।

मुमुक्षु : राग की दिशा बदली ।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिशा बदली न । राग में से लक्ष्य छोड़कर द्रव्य में करना । और निर्णय होने के पश्चात् स्वरूप की ओर का झुकाव हुआ ही करे, वह स्थिरता । पश्चात् पूर्ण हो तब तक स्थिर हो । फिर हो गया, हो गया, समाप्त हो गया । मुक्ति हो गयी ।

मुमुक्षु : उसमें व्यवहार कहाँ आया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार का काम क्या है ? बीच में विघ्नकाल में विकल्प उठे, उसका यहाँ ज्ञान होता है । विकल्प कहीं मददगार है ? स्थिरता में मददगार नहीं । जानने के लिये आवे । जानना कि इस समय इस प्रकार का राग आया, है । कहो, समझ में आया ?

इसलिए उनमें (-उन सत्ता के विशेषों में) कोई सत्ताविशेष शेष नहीं रहता.... इस सत्ता के विशेष में बाकी कोई सत्ताविशेष नहीं रहता जो कि सत्ता को वस्तुतः (परमार्थतः) द्रव्य से पृथक् स्थापित करे । सत्ता के जितने विशेष कहे न ? उनसे कोई बाकी नहीं रहता कि द्रव्य में विशेष दूसरा आ जाये । उस सत्ता के जितने विशेष, उतने द्रव्य के विशेष । उनमें (-उन सत्ता के विशेषों में) कोई सत्ताविशेष शेष नहीं रहता.... कोई बाकी रह जाता हो कि द्रव्य में दूसरे प्रकार का होता हो । सत्ता के भाग करते हुए द्रव्य का एक भाग दूसरा आता हो उसमें । क्या कहा ? सत्ता के बारह भाग के सिवाय कोई एक भाग रह जाता हो सत्ता में से कि जिससे द्रव्य को लागू पड़ता हो, ऐसा है नहीं ।

(परमार्थतः) द्रव्य से पृथक् स्थापित करे। देखा! सत्ता को वस्तुत्व द्रव्य से पृथक् स्थापित करे ऐसा कोई सत्ता से पृथक् कुछ नहीं रहता और द्रव्य में कोई पृथक् उससे नहीं रहता। सब सत्ता में जितना है, वही द्रव्य को लागू पड़ता है। पूरा पदार्थ महासत्ता है। अन्तर्भेद है। ऐसे जो बारह कहे, वे द्रव्य को (लागू पड़ते हैं)। वास्तव में तो उसमें वीतरागी ज्ञान की उत्पत्ति का यह कारण है। वीतरागी ज्ञान कहो, सम्यग्ज्ञान कहो, श्रुतज्ञान कहो, स्वभावज्ञान कहो। यह स्वभाव ऐसा जाना, उसे राग और स्वभाव की एकता टूटे बिना नहीं रहती। उसके स्वभाव के झुकाव में इसका झोंक चला जाता है। यह इसका नाम धर्म और मोक्ष का मार्ग है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १०

द्वं सल्लक्ष्णियं उत्पादव्यधुवत्तसंजुत्तं।
गुणपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू॥१०॥

सद् द्रव्य का लक्षण कहा उत्पाद व्यय ध्रुव रूप वह।
आश्रय कहा है वही जिन ने गुणों अर पर्याय का ॥१०॥

अन्वयार्थ :- [यत्] जो [सल्लक्षणकम्] 'सत्' लक्षणवाला है, [उत्पादव्ययध्रुवत्वसंयुक्तम्] जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य संयुक्त है [वा] अथवा [गुणपर्यायाश्रयम्] जो गुण-पर्यायों का आश्रय है, [तद्] उसे [सर्वज्ञाः] सर्वज्ञ [द्रव्यं] द्रव्य [भणन्ति] कहते हैं।

टीका :- यहाँ तीन प्रकार से द्रव्य का लक्षण कहा है।

'सत्' द्रव्य का लक्षण है। पूर्वोक्त लक्षणवाली सत्ता से द्रव्य अभिन्न होने के कारण 'सत्' स्वरूप ही द्रव्य का लक्षण है। और अनेकान्तात्मक द्रव्य का सत्मात्र ही स्वरूप नहीं है कि जिससे लक्ष्यलक्षण के विभाग का अभाव हो। (सत्ता से द्रव्य अभिन्न है इसलिए द्रव्य का जो सत्तारूप स्वरूप वही द्रव्य का लक्षण है। प्रश्न :- यदि सत्ता और द्रव्य अभिन्न है-सत्ता द्रव्य का स्वरूप ही है, तो 'सत्ता लक्षण है और द्रव्य लक्ष्य है'-ऐसा विभाग किस प्रकार घटित होता है? उत्तर :- अनेकान्तात्मक द्रव्य के अनन्त स्वरूप हैं, उनमें से सत्ता भी उसका एक स्वरूप है; इसलिए अनन्त स्वरूपवाला द्रव्य लक्ष्य है और उसका सत्ता नाम का स्वरूप लक्षण है-ऐसा लक्ष्यलक्षणविभाग अवश्य घटित होता है। इस प्रकार अबाधितरूप से सत् द्रव्य का लक्षण है।)

अथवा, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्रव्य का लक्षण है। 'एक जाति का अविरोधक ऐसा जो क्रमभावी भावों का प्रवाह, उसमें पूर्व भाव का विनाश, सो व्यय है; उत्तर भाव का प्रादुर्भाव (-बाद के भाव की अर्थात् वर्तमान भाव की उत्पत्ति) सो उत्पाद है और पूर्व-उत्तर भावों के व्यय-उत्पाद होने पर भी स्वजाति का अत्याग, सो ध्रौव्य है। वे उत्पाद-

१. द्रव्य में क्रमभावी भावों का प्रवाह एक जाति को खण्डित नहीं करता-तोड़ता नहीं है अर्थात् जाति-अपेक्षा से सदैव एकत्व ही रखता है।

व्यय-ध्रौव्य-जो कि सामान्य आदेश से अभिन्न हैं (अर्थात् सामान्य कथन से द्रव्य से अभिन्न हैं), विशेष आदेश से (द्रव्य से) भिन्न हैं, युगपद् वर्तते हैं और स्वभावभूत हैं, वे-द्रव्य का लक्षण हैं।

अथवा, गुणपर्यायें द्रव्य का लक्षण हैं। अनेकान्तात्मक वस्तु के ^१अन्वयी विशेष, वे गुण हैं और व्यतिरेकी विशेष, वे पर्यायें हैं। वे गुणपर्यायें (गुण और पर्यायें)-जो कि द्रव्य में एक ही साथ तथा क्रमशः प्रवर्तते हैं, (द्रव्य से) कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न हैं तथा स्वभावभूत हैं, वे-द्रव्य का लक्षण हैं।

द्रव्य के इन तीनों लक्षणों में से (-सत्, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य और गुण-पर्यायें इन तीन लक्षणों में से) एक का कथन करने पर शेष दोनों (बिना कथन किये) अर्थ से ही आ जाते हैं। यदि द्रव्य सत् हो, तो वह (१) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला और (२) गुण-पर्यायवाला होगा; यदि उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला हो, तो वह (१) सत् और (२) गुण-पर्यायवाला होगा; गुण-पर्यायवाला हो, तो वह (१) सत् और (२) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला होगा। वह इस प्रकार :- सत् नित्यानित्यस्वभाववाला होने से (१) ध्रौव्य को और उत्पाद-व्ययात्मकता को प्रकट करता है तथा (२) ध्रौव्यात्मक गुणों और उत्पाद-व्ययात्मक पर्यायों के साथ एकत्व दर्शाता है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य (१) नित्यानित्य-स्वरूप ^२पारमार्थिक सत् को बतलाते हैं तथा (२) ^३अपने स्वरूप की प्राप्ति के कारणभूत गुण-पर्यायों को प्रकट करते हैं, ^४गुण-पर्यायें अन्वय और व्यतिरेकवाली होने से

१. अन्वय और व्यतिरेक के लिये पृष्ठ १४ पर टिप्पणी देखिये।

२. पारमार्थिक=वास्तविक; यथार्थ; सच्चा। (वास्तविक सत् नित्यानित्यस्वरूप होता है। उत्पाद-व्यय अनित्यता को और ध्रौव्य नित्यता को बतलाता है, इसलिए उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य नित्यानित्यस्वरूप वास्तविक सत् को बतलाते हैं। इस प्रकार 'द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है'-ऐसा कहने से 'वह सत् है' ऐसा भी बिना कहे ही आ जाता है।

३. अपने=उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के। (यदि गुण हो तभी ध्रौव्य होता है और यदि पर्यायें हों तभी उत्पाद-व्यय होता है; इसलिए यदि गुण-पर्यायें न हों तो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अपने स्वरूप को प्राप्त हो ही नहीं सकते। इस प्रकार 'द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है'-ऐसा कहने से वह गुण-पर्यायवाला भी सिद्ध हो जाता है।)

४. प्रथम तो, गुण-पर्यायें अन्वय द्वारा ध्रौव्य को सूचित करते हैं और व्यतिरेक द्वारा उत्पाद-

(१) ध्रौव्य को और उत्पाद-व्यय को सूचित करते हैं तथा (२) नित्यानित्यस्वभाववाले पारमार्थिक सत् को बतलाते हैं।

भावार्थ :- द्रव्य के तीन लक्षण हैं; सत्, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य और गुण-पर्यायें। ये तीनों लक्षण परस्पर अविनाभावी हैं; जहाँ एक हो, वहाँ शेष दोनों नियम से होते ही हैं।१०॥

पौष शुक्ल ९, मंगलवार, दिनांक - २४-१२-१९६३, गाथा-१०, प्रवचन-१७

...विराजते हैं महाविदेहक्षेत्र में। श्री सीमन्धर परमात्मा विराजते हैं न? सीमन्धर भगवान। यहाँ सीमन्धर भगवान को विराजमान किया है। विराजते हैं वर्तमान। महाविदेहक्षेत्र में मनुष्यपने, पाँच सौ धनुष का देह है। करोड़ पूर्व का आयुष्य है और वर्तमान महाविदेह में, बहुत दूर है, वर्तमान विराजते हैं, तीर्थकरपद रूप से। वहाँ आचार्य महाराज दिगम्बर मुनि आचार्य थे कुन्दकुन्दाचार्य, वे आठ दिन वहाँ रहे थे। दो हजार वर्ष पहले की बात है। वे वहाँ गये, आठ दिन रहे, वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया। यह शास्त्र—समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय आदि शास्त्र; भगवान के पास गये थे, वहाँ से यहाँ आकर यह बनाया है। मद्रास से अस्सी मील दूर एक पौन्नूरहिल नाम की पहाड़ी है, वहाँ रहते थे। और वहाँ से भगवान के पास गये थे और वहाँ यह शास्त्र बनाये।

यह पंचास्तिकाय नाम का शास्त्र है। नाम सुना है कभी? पंचास्तिकाय। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये थे। फिर यहाँ भरतक्षेत्र में आये और बनाया। १०वीं गाथा चलती है, देखो! १०वीं। मूल गाथा कुन्दकुन्दाचार्य महाराज की, १०वीं।

दव्वं सल्लक्खणियं उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं।

गुणपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू॥१०॥

व्यय को सूचित करते हैं; इस प्रकार वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को सूचित करते हैं। दूसरे, गुण-पर्यायें अन्वय द्वारा नित्यता को बतलाते हैं और व्यतिरेक द्वारा अनित्यता को बतलाते हैं;—इस प्रकार वे नित्यानित्यस्वरूप सत् को बतलाते हैं।

इसमें नहीं, नहीं? हरिगीत नहीं। देखो, क्या कहते हैं?

कुन्दकुन्दाचार्य महाराज दिगम्बर आचार्य थे। वे भरतक्षेत्र में सर्वोपरी आचार्य उस समय में थे। दो हजार वर्ष हो गये। उन्होंने बनाया। तो कहते हैं कि 'सव्वण्हू' पाठ में है। 'सव्वण्हू' अर्थात् सर्वज्ञ भगवान... यह आत्मा और छह द्रव्य भगवान ने देखे हैं। छह द्रव्य समझते हो? छह द्रव्य के नाम गाँव में तो नहीं होते। जीव, पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल। छह द्रव्य भगवान ने देखे। सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग जैन परमेश्वर, जिनको त्रिकाल का ज्ञान था। उन्होंने ज्ञान में छह पदार्थ देखे। जाति से छह, संख्या से अनन्त। अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु।

कहते हैं, चौथा पद है, 'सव्वण्हू' सर्वज्ञ भगवान ने यह आत्मा और छह द्रव्य का ऐसा लक्षण कहा था। ऐसा मैं यहाँ कहता हूँ। सर्वज्ञ भगवान परमात्मा से सुना, महावीर भगवान से भी परम्परा, मोक्ष पधारे भगवान बाद में ६०० साल के बाद कुन्दकुन्दाचार्य भरतक्षेत्र में हुए। कहते हैं, भगवान सर्वज्ञ परमात्मा को इन छह वस्तु का ऐसा लक्षण कहा, वह तुमको हम कहते हैं।

टीका :- यहाँ तीन प्रकार से द्रव्य का लक्षण कहा है। है? आत्मा है, देह में विराजमान आत्मा। यह (देह) तो जड़ है, यह तो मिट्टी है, पुद्गल है, अजीव है। उसमें एक-एक परमाणु है, परमाणु छोटा टुकड़ा, यह तो बहुत परमाणु का पिण्ड है, उसका टुकड़ा करते... करते... करते... अन्तिम टुकड़ा रहे, उसको भगवान परमाणु कहते हैं। उस परमाणु को द्रव्य कहते हैं। द्रव्य—वस्तु। ऐसे आत्मा देह के अन्दर आत्मा भिन्न वस्तु है, ऐसे अनन्त आत्माएँ हैं। अनन्त परमाणु पॉइन्ट रजकण है, वह भी अनन्त आत्मा से अनन्तगुने परमाणु हैं। असंख्य कालाणु है चौदह ब्रह्माण्ड में, चौदह लोक में भगवान ने देखे। एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और एक आकाश। इन छहों को वस्तु कहते हैं। द्रव्य, द्रव्य कहते हैं। तीन प्रकार से द्रव्य का लक्षण कहा। द्रव्य अर्थात् वस्तु का भगवान ने तीन प्रकार से लक्षण कहा। लक्षण का अर्थ जिससे वह वस्तु पहिचानने में आती है, उसको लक्षण कहते हैं। वस्तु को लक्ष्य कहते हैं। उसका लक्षण कि जिससे पहिचान में आये कि यह आत्मा है, यह परमाणु है, यह आकाश है, ऐसा द्रव्य का तीन प्रकार से लक्षण कहा।

पहला लक्षण—‘सत्’ द्रव्य का लक्षण है। तत्त्वार्थसूत्र सुनते हैं न दसलक्षणी पर्व में? उमास्वामी का। तत्त्वार्थसूत्र है या नहीं? उसमें वह लक्षण है। उमास्वामी कुन्दकुन्दाचार्य के शिष्य थे। यह कुन्दकुन्दाचार्य ने बनाया है। उसमें से उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र बनाया है। उसमें है कि सत् द्रव्य लक्षणं। ऐसा सूत्र है। वह पहला लक्षण बताते हैं। फिर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लक्षणं, वह उसमें दूसरा है, और तीसरा गुणपर्याय आश्रय द्रव्यं। ये तीन लक्षण हैं। वह सब उसमें है।

कहते हैं ‘सत्’ द्रव्य का लक्षण है। यह आत्मा है न, आत्मा? उसका सत् लक्षण है। है, है ऐसा सत्ता नाम का उसमें गुण है। किसी ने उसको बनाया नहीं है। कोई बनानेवाला है ही नहीं। कोई ईश्वर कर्ता हो जगत का कि कोई चीज़ बनाते हैं, ऐसा है नहीं। आत्मा और यह परमाणु, परमाणु अर्थात् पॉइन्ट रजकण, टुकड़ा—अन्तिम टुकड़ा, जिसका दो भाग हो सके नहीं, ऐसा द्रव्य जो है, उसका सत् लक्षण है। सत् द्रव्य का लक्षण है। मौजूदगी उसका लक्षण है। अपने से प्रत्येक पदार्थ होते हैं, रहते हैं, टिकते हैं। पर के कारण से नहीं। कहो, समझ में आया? आत्मा अपने कारण से अन्दर टिकता है, शरीर के कारण से नहीं, कर्म के कारण से नहीं। शरीर भी अपने कारण से सत् लक्षण है। वह अपने से टिकता है, आत्मा से नहीं। क्यों सेठी, दस मिनट हो गये। ठण्डी है, अवस्था हो गयी। कहो, समझ में आता है?

‘सत्’ द्रव्य का लक्षण है। पूर्वोक्त लक्षणवाली सत्ता से द्रव्य अभिन्न होने के कारण... क्या कहते हैं? आत्मा और यह परमाणु भिन्न-भिन्न पदार्थ है। उसमें अपने से होना अपना लक्षण है। वह लक्षण है, वह द्रव्य से अभिन्न है। सत्ता से द्रव्य अभिन्न होने से। वह होनेपने का गुण है, वह वस्तु से अभिन्न है, एकमेक है, भिन्न है नहीं। समझ में आया? यह तो तात्त्विक विषय है न। तत्त्व क्या? मैं क्या हूँ? पर क्या है? और मेरे में क्या है? ऐसा भान किये बिना उसको धर्म होता नहीं। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर... वह तो कहा उसमें, ‘भण्णंति सव्वण्हू’। वह पाठ में है न? गाथा। ‘जं तं भण्णंति सव्वण्हू’ सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर ऐसा कहते थे, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ऐसा फरमाते थे कि प्रत्येक द्रव्य का सत् लक्षण है, वह ‘है’ उसका लक्षण है, ‘है’ वह पदार्थ से ऐकमेक है, भिन्न नहीं। समझ में आया?

अपने आत्मा का होनापना अपने से अभिन्न है, पर का होनापना उससे अभिन्न है। मेरी सत्ता पर से नहीं और पर की सत्ता (मेरे से) नहीं। अपना होनापना से शरीर का होनापना नहीं। शरीर का होनापना से अपना होनापना नहीं। भिन्न-भिन्न पदार्थ है। किसी के कारण किसी की अस्ति, मौजूदगी है नहीं। अपने कारण से प्रत्येक पदार्थ की मौजूदगी-अस्ति है। ऐसा निर्णय करे तो पर की अस्ति मैं कर सकता हूँ, ऐसा विपरीत भ्रम छूट जाये। और मेरी मौजूदगी पर से रहती है—ऐसी मान्यता है, वह, 'मैं मेरे से हूँ', ऐसा निर्णय करे तो पर से मेरी मौजूदगी टिक सके वह भ्रमणा छूट जाये। कहो, समझ में आया? समझाय छे काँई? हमारी गुजराती भाषा है। समझ में आता है, आपकी हिन्दी।

गाथा ही ऐसी आयी है। तीन लक्षण। उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र में लिया है, वह लक्षण कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा था। उनके शिष्य (कहते हैं)। उनको भी दो हजार वर्ष हो गये। उमास्वामी ने जो तत्त्वार्थसूत्र बनाया... वे भी दिगम्बर मुनि थे, जंगल में वनवास में रहते थे। उन्होंने तत्त्वार्थसूत्र (बनाया है)। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। पहला सूत्र आया न? बाद में सब लिया है, तत्त्वार्थ श्रद्धान आदि।

यहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज सन्त आचार्य दिगम्बर मुनि संवत् ४९ में थे भरतक्षेत्र में। क्या कहते हैं? प्रत्येक आत्मा भिन्न-भिन्न और भिन्न-भिन्न परमाणु, वे अपनी सत्ता से अपना होनापना रखते हैं। पर के कारण से नहीं। शरीर से आत्मा टिकता है वह बात नहीं रहती। बराबर है? सेठी! यह कपड़ा है, वह ऐसा है तो यह शरीर टिकेगा, ऐसा नहीं रहता। शरीर शरीर का परमाणु है, अपने से टिकता है। दूसरा परमाणु कपड़ा का कपड़े के कारण टिकता है। कपड़े के कारण शरीर नहीं, शरीर के कारण कपड़ा नहीं और शरीर के कारण आत्मा नहीं। समझ में आया? और आत्मा के कारण शरीर नहीं और आत्मा के कारण कर्म नहीं। क्योंकि प्रत्येक भिन्न-भिन्न पदार्थ है। भिन्न-भिन्न पदार्थ की हयाती-मौजूदगी अपने द्रव्य के कारण से, ... के कारण द्रव्य की मौजूदगी है।

'सत्' स्वरूप ही द्रव्य का लक्षण है। क्यों कहा? कि सत्ता से—होनापना से

प्रत्येक पदार्थ एक है, अभिन्न है। उस कारण से सत् स्वरूप ही द्रव्य का लक्षण है। 'है' उसका लक्षण है। त्रिकाल है, त्रिकाल है। अनादि है, अनन्त काल रहेगा, कोई उसका बनानेवाला नहीं है और उसका कभी नाश होगा नहीं। आत्मा अनादि-अनन्त है। अनादि-अनन्त। वस्तु परमाणु भी अनादि-अनन्त है। उसकी आदि नहीं, उसका अन्त नहीं। ऐसा यदि निर्णय करे तो अपनी सत्ता पर से भिन्न होने से अपने में दृष्टि देने से उससे धर्म होगा। समझ में आया? अपने में जो चीज़ नहीं है, उस पर दृष्टि देने से धर्म कहाँ से होगा? है? अपनी सत्ता में ज्ञान, आनन्द, शान्ति अन्तर में पड़ा है, भरा है।

आत्मा में ज्ञान है, शान्ति है, आनन्द है, अस्तित्व, वस्तुत्व आदि अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं। ऐसा अनन्त शक्ति का स्वभाव, उसमें मेरी सत्ता उसका एक लक्षण है। मेरा द्रव्य अनन्त गुणसम्पन्न है, ऐसी दृष्टि करने से, अपना अनन्त गुणमय आत्मा में दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? ऐसी बात है न! यह तो पहली मूल बात है। मूल बात; देखो!

'सत्' स्वरूप ही द्रव्य का लक्षण है। अब कहते हैं, देखो! और अनेकान्तात्मक द्रव्य का सत्मात्र ही स्वरूप नहीं है... क्या कहते हैं? यह आत्मा और एक-एक परमाणु सत् स्वरूप अभिन्न कहा। अपना सत् गुण से वह पदार्थ अभिन्न कहा। परन्तु कहते हैं कि वह अनेकान्तात्मक द्रव्य है। वस्तु तो अनन्त गुण सम्पन्न है। आत्मा में भी अनन्त गुण हैं। समझ में आता है? भैया! अनन्त गुण हैं, एक आत्मा में? अनन्त गुण हैं। एक परमाणु है न, परमाणु, उसमें भी अनन्त गुण हैं। देखो! अनेकान्तात्मक... अनेक अन्त अर्थात् धर्म। अनेक अर्थात् अनन्त, और अन्त अर्थात् धर्म, आत्मक अर्थात् स्वरूप। अनन्त धर्मस्वरूप प्रत्येक पदार्थ है। समझ में आया?

एक परमाणु है, पॉइन्ट यह टुकड़ा। उसमें भी अनन्त धर्म हैं। अनन्त-अनन्त उसमें गुण हैं। पदार्थ है या नहीं? जगत की चीज़ है। तो कहते हैं कि उस पदार्थ का सत्ता जो लक्षण कहा, जो सत्तामात्र द्रव्य को कहा, तो ऐसा क्यों हुआ? दो भाग क्यों हुए? एक ही सत्तामात्र द्रव्य हो, एक ही गुणमात्र हो तो सत्ता लक्षण और (द्रव्य) लक्ष्य, दो भाग क्यों हुए? तो कहते हैं, सुन! अनेकान्तात्मक द्रव्य का... आत्मा अनन्त

धर्मस्वरूप है, अनन्त गुणस्वरूप है। परमाणु अनन्त गुणस्वरूप है। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश है न। एक अरूपी अरूपी तत्त्व है। उसमें भी अनन्त गुण हैं और कालाणु असंख्य अणु हैं। चौदह लोकप्रमाण आकाश के प्रदेश हैं। एक-एक प्रदेश में कालाणु हैं। अरूपी अनन्त गुण सम्पन्न है। वह भी अनन्त गुण सम्पन्न है।

कहते हैं, अनेकान्तात्मक द्रव्य, अनन्त गुण सम्पन्न द्रव्य-पदार्थ सत्मात्र ही स्वरूप नहीं है... क्या कहते हैं? देखो! पहले ऐसा कहा कि प्रत्येक वस्तु सत्मात्र है। सत् लक्षण द्रव्य लक्ष्य और सत्स्वरूप ही ऐसा कहा। तो सत् स्वरूप ही है तो एक ही गुण है? तो सत् लक्षण और वस्तु लक्ष्य, ऐसा दो भाग एक गुण में क्यों हुआ? ऐसा नहीं है, सुन! प्रत्येक पदार्थ अनन्त गुण सम्पन्न है। उसमें सत्ता नाम का एक गुण है। सत्ता नाम का एक गुण है। और द्रव्य है, वह अनन्त गुण (का पिण्ड) है। सेठी! क्या कहते हैं?

तेरा 'है', ऐसा लक्षण ऐसा लक्षण से लक्ष्यभूत द्रव्य-वस्तु, तो वस्तु में तो अनन्त धर्म हैं, अनन्त गुण हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा शरीर से पृथक् है, कर्म से पृथक् है, वाणी से पृथक् है। यह मिट्टी, यह तो धूल है। क्योंकि पुद्गलास्तिकाय है। क्या है यह? पुद्गल है। यह तो मिट्टी है। वाणी बोलती है, वह भी मिट्टी है। कर्म है आठ कर्म के रजकण भिन्न, वह भी धूल है, बारीक धूल है। आत्मा नहीं। आत्मा अन्तर में सत्... सत्... सत्... है... है... है अपने से। तो कहते हैं कि सत् स्वरूपी आत्मा, सत् स्वरूपी द्रव्य, सत् स्वभावी द्रव्य, सत् से द्रव्य अभिन्न है। भगवान! सत्मात्र कहा था, तो सत् लक्षण और द्रव्य लक्ष्य, ऐसा एक गुण हो तो ऐसा क्यों होता है? तो कहते हैं, नहीं; द्रव्य में अनन्त गुण हैं। वस्तु में अनन्त गुण हैं। सत्ता तो एक गुण है। सेठी! आहाहा!

'है', आत्मा है, वह लक्षण। उसका लक्ष्य द्रव्य। और 'है' उसका लक्ष्य में द्रव्य आता है तो द्रव्य में तो अनन्त गुण हैं। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त वीर्य, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, स्वच्छत्व, विभुत्व—ऐसी अनन्त शक्तियाँ एक आत्मा में पड़ी हैं। समझ में आया? सुनो तो सही कि एक ऐसी चीज़ है अपने जैनदर्शन में। गाँव में तो कुछ मालूम नहीं। चलो यात्रा करें, भक्ति करें। वह है,

शुभभाव है। समझ में आया? शुभभाव है, पुण्यभाव है। पाप से बचने को (आता है)। परन्तु धर्म क्या चीज़ है, वह समझे बिना धर्म होता नहीं। बात ऐसी है, भैया! समझ में आया?

भगवान आत्मा यह देह में विराजमान चैतन्यतत्त्व, तो कहते हैं कि उसका सत् लक्षण है। परन्तु सत्मात्र वस्तु नहीं है। पहले कहा कि सत् से अभिन्न है। अभिन्न है, वह बराबर है। परन्तु एक ही गुणमात्र द्रव्य है, ऐसा नहीं है। इसलिए सत् लक्षण, द्रव्य लक्ष्य—ऐसा विभाग, एक गुण लक्षण... अनन्त गुण लक्ष्य ऐसा लक्ष्य-लक्षण का विभाग हो सकता है। सेठी! बहुत सूक्ष्म बात, भाई! यह तो सम्यग्ज्ञान का विषय है। सम्यग्ज्ञान कब होता है? सम्यग्ज्ञान होता है तो सम्यग्दर्शन होता है। और सम्यग्दर्शन होने के बाद सम्यक्चारित्र होता है। सम्यग्दर्शन बिना चारित्र होता नहीं। यहाँ सम्यग्दर्शन की बात बताने को सम्यग्ज्ञान से बात कही है।

अहो! प्रत्येक वस्तु परमाणु हो तो सत्मात्र तो कहा, सत्मात्र तो कहा। ऐसा प्रश्न हो कि सत्मात्र जो परमाणु है और सत्मात्र आत्मा है तो सत् लक्षण और वस्तु लक्ष्य, ऐसा एक गुण में और एक द्रव्य में ऐसा क्यों भेद पड़ता है? विभाग क्यों हो? सुन, सुन! विभाग पड़ते हैं। सत्ता—होनापना एक गुण है और वस्तु अनन्त गुण है। सत्ता का एक गुण स्वरूप है, वस्तु का अनन्त गुण स्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? रतिभाई! इसमें कुछ सुना नहीं हो। हेड मास्टर में है कहीं?

भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ जैन परमेश्वर वीतरागदेव वस्तु का स्वभाव जैसा कहा, ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज पंचास्तिकाय द्वारा कहते हैं। उसकी टीका अमृतचन्द्राचार्य ने की है। यह टीका है। मूल श्लोक कुन्दकुन्दाचार्य महाराज के हैं। और अमृतचन्द्राचार्य महाराज आज से ९०० वर्ष पहले हुए हैं और कुन्दकुन्दाचार्य के बाद ११०० वर्ष बाद हुए हैं। वे दिगम्बर मुनि थे, जंगल में रहते थे, उनकी यह टीका है। टीका चलती है न? उसकी संस्कृत टीका है। ऊपर संस्कृत है। ऊपर है संस्कृत? 'अत्र त्रेधा द्रव्यलक्षणमुक्तम्'। ऊपर संस्कृत है। वह अमृतचन्द्राचार्य की संस्कृत है। मूल श्लोक है कुन्दकुन्दाचार्य के। अमृतचन्द्राचार्य भी ९०० वर्ष पहले दिगम्बर मुनि

जंगलवासी हुए। उन्होंने यह टीका बनायी है कि कुन्दकुन्दाचार्य यह कहते हैं। उसमें यह भाव भरे हैं। विस्तृत कर दिया। जो संक्षेप में था, (उसका विस्तार किया)। ९०० वर्ष पहले अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त मुनि जंगलवासी, एक मोरपीच्छी, कमण्डल और आत्मध्यान में मस्त। आनन्दमूर्ति भगवान, मस्त आनन्द में रहते थे। एक विकल्प आया कि अहो! जगत के उपकार के लिये ऐसा बन जाये। शास्त्र बन गया। कर्ता-फर्ता रहे नहीं। मैं कर्ता नहीं, मैं तो मेरे ज्ञान का कर्ता हूँ। समझ में आया ?

कहते हैं, **अनेकान्तात्मक द्रव्य का सत्मात्र ही स्वरूप नहीं है...** आहा! यह प्रत्येक द्रव्य की बात होती है, हाँ! आत्मा सत्मात्र है तो एक ही स्वरूप है, ऐसा नहीं। परमाणु सत् होनापना ही अकेला गुण है, ऐसा नहीं। ... **कि जिससे लक्ष्यलक्षण के विभाग का अभाव हो।** देखो! आचार्य स्वयं कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु एक सत्तामात्र गुणस्वरूप नहीं कि जिसमें लक्ष्य और लक्षण का भाग न पड़े। न पड़े, ऐसा नहीं है। एक ही गुण है और द्रव्य एक गुण हो तो लक्ष्यलक्षण का भाग नहीं पड़ता। परन्तु 'है' वह एक गुण है और द्रव्य है, वह अनन्त गुण (का पिण्ड) है। तो लक्ष्यलक्षण का विभाग हो गया। लक्षण एक गुण है, लक्ष्य अनन्त गुणात्मक है। सेठी! दिगम्बर मुनियों की कथनी अलौकिक कथनी अलौकिक! उसमें अमृतचन्द्राचार्य की टीका भरतक्षेत्र में (दूसरी) है नहीं। महामुनि जंगलवासी थे। वनवास। दो-चार दिन में विकल्प उठा तो आहार लेने को आते थे और चले जाते थे, जंगल में रहते थे। भगवान के साथ बात करते थे। वजुभाई! भगवान अर्थात् आत्मा। समझ में आया? परोपकार उपकार का विकल्प आया कि लोग भगवान का न्याय समझे। भगवान ने कही हुई तत्त्वदृष्टि, उसको सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन होने से सुखी होने का उपाय है। दूसरा कोई सुखी होने का उपाय है नहीं। तो क्या कहते हैं ?

अनेकान्तात्मक द्रव्य का सत्मात्र ही स्वरूप नहीं है... आत्मा सत् है, इतना ही नहीं। परमाणु सत् है, इतना ही नहीं। कालाणु सत् है, इतना ही नहीं। परन्तु अनेकान्तात्मक द्रव्य है। अनन्त गुण है उसमें। ओहोहो! समझ में आया? **कि जिससे लक्ष्यलक्षण के विभाग का अभाव हो।** ऐसा नहीं होता, ऐसा कहते हैं। यदि एक गुण सम्पन्न द्रव्य हो

तो लक्ष्य और लक्षण का भाग हो सके नहीं। क्योंकि लक्षण एक गुण सम्पन्न है, वस्तु अनन्त गुण सम्पन्न है। तो लक्ष्य और लक्षण का विभाग हो सकता है। सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो मूल तत्त्व की बात है न। समझ में आया ?

एक-एक द्रव्य में इतने गुण हैं, एक परमाणु में और एक आत्मा में। जितने आत्मा हैं न जगत में अनन्त, उससे अनन्तगुना तो पुद्गल है, यह पुद्गल। उससे अनन्तगुनी त्रिकाल पर्याय है, त्रिकाल काल है। उससे-पुद्गल की संख्या से अनन्तगुना त्रिकाल, त्रिकाल है न? त्रिकाल। अनन्त समय है न? भूत का अनन्त समय, वर्तमान और भावि। त्रिकाल का अनन्त समय है। वह पुद्गल से भी अनन्तगुना है। और उससे अलोकाकाश है—खाली है न? खाली... खाली... खाली... अमाप... अमाप चारों ओर, चौदह ब्रह्माण्ड के अतिरिक्त। अस्ति... अस्ति... अस्ति... अस्ति... अनन्त... अनन्त... अनन्त... उसका जो आकाश प्रदेश है, वह तीन काल के समय से अनन्तगुना है और उससे अनन्तगुना एक द्रव्य में गुण है। सेठी! यह वह कहते हैं, देखो!

अनेकान्तात्मक। तेरे द्रव्य में परमाणु—वस्तु में वह आकाश कहा—अनन्त... अनन्त... अनन्त प्रदेश, हों प्रदेश। द्रव्य तो एक आकाश। परन्तु उसके प्रदेश अनन्त हैं न? उससे भी एक परमाणु में अनन्तगुना गुण हैं। आत्मा में भी अनन्तगुना गुण हैं। आकाश के प्रदेश से भी अनन्तगुना हैं। सत्ता एक है, द्रव्य में अनन्त गुण हैं तो लक्ष्यलक्षण का भाग हो सकता है। समझ में आता है ?

देखो! कोष्ठक में हमारे पण्डितजी ने स्पष्टीकरण किया है। ये हमारे पण्डितजी हैं। उन्होंने बनाया है, यह सब उन्होंने बनाया है। ये बैठे हैं न! यहाँ के पण्डित हैं। उन्होंने सब संस्कृत में से अक्षरशः बनाया है। हिम्मतभाई। उसमें लिखा है, हिम्मतभाई जेठालाल। लिखा है न, फोटो लिया न? देखो! कहाँ है? ... मुश्किल से फोटो दिया है। वह भाई हँसते हैं। हिम्मतलाल जेठालाल। कहाँ है उसमें? कहाँ है? इसमें नहीं है। मुझे लगा, क्यों नहीं आया। वह है, गुजराती में है, भैया! देखो! पण्डितजी ने यह सब बनाया है। दो हजार वर्ष में संस्कृत अनुसार-अक्षरशः हिन्दी था ही नहीं। ... था थोड़ा। अक्षरशः चार पुस्तक बनाया है। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय चार

पुस्तक। उसका हरिगीत भी नीचे है, गुजराती में है। उन्होंने बनाया है। समझ में आया ? क्या कहते हैं, देखो ! हमारे पण्डितजी स्पष्टीकरण करते हैं। कोष्ठक में है ? कोष्ठक में है भैया उसमें ? कोष्ठक में। सत्ता से द्रव्य अभिन्न है। तीसरी पंक्ति। इसलिए द्रव्य का जो सत्तारूप स्वरूप ही द्रव्य का लक्षण है।

प्रश्न:-यदि सत्ता और द्रव्य अभिन्न है—सत्ता द्रव्य का स्वरूप ही है,... एक होनापना सत्ता, वही द्रव्य का स्वरूप है, तो सत्ता लक्षण है और द्रव्य लक्ष्य है—ऐसा विभाग किस प्रकार घटित होता है ? समझ में आया ? सत्ता—होनापना एक गुण (है)। वही एकमात्र यदि द्रव्य हो, अभिन्न हो, सत्ता एकाकार एकरूप ही हो तो सत्ता नाम का गुण लक्षण और द्रव्य लक्ष्य—ऐसे दो भाग हो नहीं सकते। ऐसा शिष्य का प्रश्न था।

उत्तर :- अनेकान्तात्मक द्रव्य के अनन्त स्वरूप हैं,... भगवान आत्मा अनन्त गुणस्वरूप है। बेहद ज्ञान अन्तर में पड़ा है—शक्ति में। समझ में आया ? वह दृष्टान्त हम देते हैं। पीपर होती है न ? छोटी पीपर नहीं होती ? भैया ! छोटी पीपर होती है न ? क्या कहते हैं ? चौंसठ पहरी घूँटते हैं या नहीं ? चौंसठ पहरी घूँटते हैं तो चौंसठ पहरी प्रगट होती है चरपराई। हमारे तो तीखाश कहते हैं, आपमें चरपराई कहते हैं न ! घूँटते-घूँटते प्रगट होती है। तो कहाँ से प्रगट हुई ? उसी में से। पत्थर से नहीं। पत्थर घिसने से आई होती तो कंकड़ घिसो, नहीं निकलेगी। कहाँ से आयेगी ? पीपर के दाने में चौंसठ पहरी चरपराई भरी है और हरा रंग भरा है तो बाहर आता है। ऐसी अनन्त शक्तियाँ एक पीपर के दाने में पड़ी है।

इसी प्रकार आत्मभगवान उसमें केवलज्ञान, केवलदर्शन जब प्रगट होता है, कहाँ से होता है ? उसमें से होता है। समझ में आया ? भगवान आत्मा शरीर, रजकण से पार है। कर्म से पार है और पुण्य-पाप का विकल्प उठता है, उससे भी भिन्न है। है पुण्य-पाप का विकल्प उसके अस्तित्व में। परन्तु उतना तो विकार है। उससे भी अनन्त गुण का पिण्ड द्रव्य-गुणस्वभाव ... आत्मा में। उसमें अनन्त सर्वज्ञशक्ति, अनन्त सर्वदर्शिशक्ति, अनन्त आनन्दशक्ति, अनन्त स्वच्छत्वशक्ति, अनन्त प्रमेयत्वशक्ति, प्रत्यक्ष होने की अनन्त शक्ति, आत्मा प्रत्यक्ष वेदन में आये, ऐसी अनन्त शक्ति, एक-एक शक्ति में अनन्त शक्ति,

ऐसी अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं। समझ में आया? बड़ी बात, भाई! बड़ा भण्डार इसमें भरा है। भण्डार समझते हो? निधान। वह कहते हैं, देखो!

भगवान! सुन! कहते हैं। भगवान कहकर ही बुलाते हैं, समयसार में आचार्य। भगवान आत्मा, ऐसे बुलाते हैं। तेरी महिमा अपार है तेरे में। तुझे तेरी खबर नहीं है। तुम तो यह शरीर मेरा, स्त्री मेरी, कुटुम्ब मेरा, धूल मेरी... अरे! धूल कब तेरी है? वह तो पर है। अथवा कर्म मेरा। कर्म तो जड़ है। कर्म तेरा कहाँ से हो गया? समझ में आया? अथवा पुण्य और पाप विकार है, उतना ही मैं। अरे! उतना ही तू है? उतना ही हो तो निकल जाने के बाद पीछे क्या रहेगा? वह तो विकार है। अपने से विकार है, अपने से विकार है। विकार तो भूल करता है तो होता है न! कर्म नहीं करवाता, परद्रव्य नहीं करवाता। वह तो यहाँ कहते हैं। परद्रव्य कोई अपने में आता नहीं कि करवा दे। वह तो अपनी भूल से होता है। 'अपने को आप भूल के हैरान हो गया।' अपना स्वरूप चिदानन्द ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द निर्मलानन्द प्रभु है, उसको भूलकर विकार करता है। परन्तु विकार है, उतना आत्मा नहीं है। समझ में आया?

आत्मा में अनन्त गुण पड़े हैं बेहद। वह कहा न? आकाश से अनन्तगुना। आकाश के प्रदेश से एक द्रव्य में अनन्तगुना गुण। ...आहाहा! इतने में बड़ा! अरे! तेरे बड़प्पन की क्या बात! भगवान भी तेरा बड़प्पन वाणी में पूरा नहीं कह सकते। वचनातीत तेरी चीज़ है। अरे! प्रत्येक द्रव्य वचनातीत पूर्ण है। अनन्त-अनन्त शक्तिसम्पन्न है। वाणी तो अल्प काल रहती है और उसमें तो अनन्त गुण हैं। एक-एक गुण भिन्न-भिन्न करके कहे तो अनन्त काल लगे। अनन्त काल तो होता नहीं केवली को। एकदम समुच्चय कहते हैं कि अनन्त गुण है। बस।

भगवान! तेरी चीज़ में अनन्त गुण हैं और तेरी पर्याय क्षणिक है। संयोग से तू पृथक् है। पर से पृथक् है। तेरे अनन्त गुण हैं तो सत् लक्षण से लक्षित तू आत्मा है। ऐसा लक्ष्य यदि कर तो तुझे अनन्त गुण लक्ष्य में आयेंगे। अनन्त गुणवाला द्रव्य लक्ष्य में आयेगा, तेरी प्रतीति सम्यक् हो जायेगी। समझ में आया?

कहते हैं, **अनेकान्तात्मक द्रव्य के अनन्त स्वरूप हैं...** द्रव्य तो अनन्त गुणस्वरूप

है। उनमें से सत्ता भी उसका एक स्वरूप है;... प्रत्येक वस्तु—आत्मा, परमाणु आदि अनन्त। उसमें अनन्त गुण हैं। सत्ता तो एक स्वरूप है। आत्मा अनन्त गुणस्वरूप है। तो लक्ष्य और लक्षण का विभाग अनेक गुणसम्पन्न द्रव्य लक्ष्य, एक गुणसम्पन्न सत्ता। बस यह लक्षण और लक्ष्य। ... एक सत्तामात्र ही यदि पदार्थ होता तो सत्ता लक्षण और द्रव्य लक्ष्य, ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि द्रव्य ही सत्तामात्र है। दूसरे गुण तो हैं नहीं। समझ में आता है? समझायें छे काँई? हमारी गुजराती भाषा है। आहाहा! यह समझने की मूल चीज़ है। अनन्त काल से यथार्थ ज्ञान किया नहीं। समझ में आया?

छहढाला में आता है न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो।' आता है भैया? छहढाला में। दौलतरामजी। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पै निज आत्मज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' आत्मज्ञान क्या? सम्यग्दर्शन क्या? यह समझे बिना उसके जन्म-मरण का नाश नहीं हुआ। ग्रैवेयक प्राप्त किया, फिर वापस पटका, चार गति में रुला।

यहाँ तो वह कहते हैं, भगवान! तेरे में अनन्त गुण हैं। द्रव्य में भी, दूसरे परमाणु में अनन्त गुण हैं। 'है', उस एकस्वरूप परमाणु नहीं है। परमाणु भी अनन्त गुण सम्पन्न है। अनन्त गुण की क्रिया उसमें अपने कारण से होती है। तेरे कारण से उसमें नहीं और उसके कारण से तेरे में नहीं। कहो, समझ में आता है या नहीं? थोड़ा-थोड़ा समझ में आता है या नहीं? ... ना कहता था। उसके बजाय अब थोड़ा आता है। कहो, इसमें समझ में आया?

अहो! मेरी पूँजी में क्या पड़ा है, उसकी खबर नहीं। अपने को खो बैठा और दूसरे की बात करता है। भैया! तेरी चीज़ में अनन्त गुण हैं। वह भी परपदार्थ है। अनन्त दूसरे आत्मा हैं। वे भी सत् हैं। सत्मात्र है। किस अपेक्षा से? कि वह सत् अभिन्न है, उसे अपेक्षा से। परन्तु सत्मात्र गुण (स्वरूप) ही द्रव्य है, ऐसा नहीं। अनन्त गुण है उसमें। प्रत्येक आत्मा अनन्त गुण सम्पन्न है, प्रत्येक परमाणु अनन्त गुण सम्पन्न है। तेरी उसको जरूरत नहीं है और तुझे उसकी जरूरत नहीं है। होनेवाली चीज़ है। है तो तेरी चीज़ की उसको जरूरत नहीं और उसकी चीज़ को तेरी जरूरत नहीं है।

अनन्तस्वभाव वाला द्रव्य लक्ष्य है और उसका सत्ता नाम का स्वरूप लक्षण

है... पण्डितजी ने बड़ा अच्छा स्पष्टीकरण किया है। ऐसा लक्ष्यलक्षणविभाग अवश्य घटित होता है। है न? अवश्य घटित होता है। सत्ता लक्षण है, द्रव्य अनन्त गुण सम्पन्न लक्ष्य है। हो, 'है'—ऐसा जब निर्णय करने जाये तो अनन्त गुण लक्ष्य में आते हैं, ऐसा द्रव्य लक्ष्य में आया तो द्रव्य का ज्ञान हुआ। ...मोहनभाई! कहते हैं कि गुजराती तो हो गया। परन्तु गुजराती में से नया समझना पड़ता है। आहाहा! बात तो बड़ी अच्छी आयी है। अलौकिक!

भगवान त्रिलोकनाथ कहते हैं कि अरे! तेरी सत्ता, किसमें तेरी सत्ता है? तेरे में है। अकेला तेरा गुण है? सत्तास्वरूप एक ही गुण है? नहीं। अनन्त गुण सम्पन्न द्रव्य, सत्ता एक स्वरूप लक्षण। लक्षण का एक स्वरूप, लक्ष्य का अनन्त स्वरूप। सत्ता लक्षण से लक्षित द्रव्य। ओहोहो! क्या... हैं! समझ में आया? ऐसे प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक आत्मा 'है' वह एक लक्षण है। 'है' वह लक्ष्य को बताता है। लक्ष्य द्रव्य है। तो द्रव्य में अनन्त गुण हैं। लक्षण से लक्ष्य में लग जाता है तो अनन्त गुणसम्पन्न द्रव्य की प्रतीति होती है। समझ में आया?

लक्षण से लक्ष्य की प्रतीति होने पर जो ज्ञान सम्यक् हुआ, उसमें भी अनन्त परद्रव्य हैं, वह भी उसके सत्ता लक्षण से लक्षित है। ऐसा अपने ज्ञान में—सम्यग्ज्ञान में स्व-पर का स्व-परप्रकाशकज्ञान आ जाता है। कहो, सोगनचन्दजी! क्या करना? धर्म करना। हम तो यहाँ धर्म करने आये हैं। इसमें धर्म क्या आया? भाई! उसमें ही धर्म आया। वह धर्म है। तेरा स्वरूप क्या है, वह पहिचानना, प्रतीति करना, वही धर्म है। धर्म कोई बाहर से चीज़ आती नहीं। समझ में आया? पहले सुनने मिले नहीं तो विचार में कहाँ से रखे? और अन्दर प्रयोग तो कहाँ से करे?

मैं आत्मा एक होने रहनेवाली चीज़ है। 'है' एक ही गुणसम्पन्न है? 'है' कहा था न? कि सत्ता से तो अभिन्न है। गुण-गुणी लक्षण-लक्ष्य से भेद है। फिर भी सत्तास्वरूप ही द्रव्य है? तो क्या द्रव्य एक ही गुण है? नहीं। अनन्त गुण हैं। अनेकान्तात्मक, अनेकात्मक। अनेक शब्द का अर्थ अनन्त है। दो से लेकर अनन्त को अनेक कहते हैं। दो से लेकर अनन्त को अनेक कहते हैं। दो को भी अनेक कहते हैं, तीन, चार (से

लेकर) अनन्त को भी अनेक कहते हैं। समझ में आया? ओहो! देवानुप्रिया! इसमें कुछ रहता नहीं है कि पर के कारण इसमें हो। क्या है?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : निवृत्त ही है। नवरा समझे? नवरा हमारी गुजराती भाषा है। नवरा को क्या कहते हैं? फुरसत लेकर। फुरसत लेकर विचार करे तो इस बात की समझ हो। निवृत्त ही है। पर से भिन्न है, उसका नाम फुरसत ही है उसमें। क्या पर उसमें घुस गया है? परचीज़ क्या तेरे में घुस गयी है? और तेरी चीज़ क्या पर में घुस गयी है? फुरसत ही है, निवृत्त ही है। निवृत्त तत्त्व है। आहाहा! ऐसी निवृत्त तत्त्व की क्या चीज़ है? क्या स्वरूप है? उसमें कितनी शक्तियाँ हैं, वह कभी पहिचान में लिया नहीं। बाहर से, बाहर से यह किया, वह किया, यह किया। हो, रागादि मन्द हो तो पुण्य बँध जाये। ... निवृत्त अर्थात् स्त्री-पुत्र छोड़कर बैठ जाये, उसकी बात है? सम्यग्दर्शन तो, छियानवें हजार स्त्रियों के बीच में रहे चक्रवर्ती को सम्यग्दर्शन था। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ। तीन ज्ञान, क्षायिक समकित लेकर आये थे और छियानवें हजार स्त्रियाँ थी। छियाँनवें करोड़ पैदल (सैनिक) थे। निवृत्त ही थे, उसमें क्या है? मेरा और उसका कोई सम्बन्ध है ही नहीं। हम तो हमारे में है, वह उसमें है। हमारी चीज़ में वह नहीं है, उसकी चीज़ में हम नहीं है। साथ में दिखते हैं तो दिखो। वह तो अनन्त है। उसमें क्या? अनन्त पदार्थ में हम हैं? यहाँ है तो अनन्त पदार्थ यहाँ है। नहीं है? ये शरीर के रजकण अनन्त हैं। तो क्या आत्मा हो जाता है शरीर? यहाँ कर्म के रजकण अनन्त हैं और यहाँ आत्मा है वहाँ अनन्त सूक्ष्म निगोद आदि आत्मा है। पूरे लोक में जीव भरे हैं न। पूरे लोक में भरे हैं। यहाँ पेट में निगोद का जीव है। जगत का सूक्ष्म जीव। चौदह लोक में कोई भाग खाली नहीं है कि जहाँ सूक्ष्म जीव न हो। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति। पाँच। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु है, वह प्रत्येक है और वनस्पति है, वह साधारण है। यहाँ भी है। यहाँ शरीर है, उसमें भी है। लेकिन उसको क्या आत्मा के साथ सम्बन्ध है। उसके साथ उसका, इसके साथ इसका। किसी सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! एक क्षेत्र में रहने पर भी दूसरे के साथ सम्बन्ध नहीं है तो दूर रहते हैं, उसके साथ कहाँ सम्बन्ध आया?

वह तो कहते हैं, यहाँ क्षेत्र में रहते हैं। यहाँ धर्मास्ति भी है, लोकप्रमाण तो थोड़े असंख्य प्रदेश तो यहाँ भी है। आकाश का बड़ा भाग है। काल के असंख्य अणु हैं इतने में। एक-एक आकाश (प्रदेश में) एक कालाणु, ऐसे असंख्य हैं। तो क्या उसको आत्मा के साथ उसको सम्बन्ध है। यहाँ समीप है तो उसका सत् उसमें और मेरा सत् मेरे में। तो अन्य स्त्री, पुत्र तो दूर रह गये। देवानुप्रिया! फुरसत ही है।

उसका सत्ता नाम का स्वरूप लक्षण है—ऐसा लक्ष्यलक्षणविभाग अवश्य घटित होता है। इस प्रकार अबाधितरूप से सत् द्रव्य का लक्षण है। निर्विघ्न, दोष आये बिना सत् नाम का द्रव्य का लक्षण अबाधित सिद्ध हुआ। उसमें कोई दोष आता नहीं। भगवान् अमृतचन्द्राचार्य का स्पष्टीकरण है। अन्त में तो वही है न उसमें? भाई! 'यतो लक्ष्यलक्षणविभागाभाव' बस, उतना पाठ है। यह तो स्पष्टीकरण किया। स्पष्टीकरण किया।

अब, दूसरा लक्षण। एक लक्षण कहा। अब, सत् दूसरा लक्षण है। उत्पादव्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्। सत् द्रव्य लक्षण। अब, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सत्। **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्रव्य का लक्षण है।** देखो! उसमें बड़ी भेदज्ञानदशा है। प्रत्येक आत्मा... प्रत्येक कहते हैं न? भिन्न-भिन्न। भिन्न-भिन्न आत्मा और भिन्न-भिन्न परमाणु जितने अनन्त द्रव्य हैं, उन प्रत्येक में सत् लक्षण है और सत् का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ऐसा स्वरूप है। **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य द्रव्य का लक्षण है।** देखो! क्या कहते हैं? प्रत्येक पदार्थ नयी अवस्था का उत्पन्न होना, पुरानी अवस्था का व्यय—अभाव होना और अपनी जाति को नहीं छोड़ना, वह ध्रुव। प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु, रजकण नयी अवस्था से उत्पन्न होना, पुरानी अवस्था से (व्यय होना)। जैसे सोना-सुवर्ण। उसमें कुण्डल की पर्याय का उत्पन्न होना और कड़ा की पर्याय का व्यय होना और सोना का पीलापन, चिकनापन ध्रुव रहना। सोना की जाति को छोड़े बिना पूर्व की अवस्था का व्यय होना, नयी अवस्था का उत्पन्न होना। वह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य वस्तु का स्वरूप है।

ऐसे प्रत्येक द्रव्य में अपने से नयी पर्याय का उत्पन्न होना। देखो! अपनी पर्याय पर से उत्पन्न नहीं होती है, ऐसा कहते हैं। राग-द्वेष, सम्यग्दर्शन, ज्ञानादि जो पर्याय है,

वह अपनी अपने से उत्पन्न होती है। पर में उससे पर्याय उत्पन्न होती है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं वह भी सत् है। समझ में आता है ?

एक जाति का अविरोधक ऐसा... एक जाति का अविरोधक—नीचे स्पष्टीकरण है। प्रत्येक आत्मा और परमाणु **द्रव्य में क्रमभावी भावों का....** क्रम-क्रम से अवस्था होती है न ? जैसे सोना में कुण्डल, कड़ा, अँगूठी। ऐसे आत्मा के ज्ञान की पर्याय, दर्शन की पर्याय एक के बाद एक नयी-नयी होती है। **द्रव्य में क्रमभावी भावों का प्रवाह एक जाति को खण्डित नहीं करता...** परमाणु में नयी-नयी पर्याय होती है तो परमाणु की जाति का नाश नहीं होता। आत्मा में नयी-नयी पर्याय होती है परन्तु आत्मद्रव्य चेतन मिटकर जड़ होता है, ऐसा कभी नहीं होता। अपनी जाति रखकर नयी अवस्था का उत्पन्न होना, पुरानी अवस्था का व्यय होना, अपनी जाति को नहीं छोड़ना—उसका नाम उत्पाद व्यय और ध्रुव कहने में आता है। समझ में आता है ? गाँव में तो बहुत अभ्यास नहीं होता। लोगों को अभ्यास (नहीं है)। यह चीज़ क्या है ? तत्त्व की मूल चीज़ क्या है ? पहिचान में आवे नहीं, तब तक उसको ज्ञान में रुचि होवे नहीं। क्या कहते हैं, देखो !

एक जाति का अविरोधक... अर्थात् अपनी जाति को खण्डित नहीं करते, छोड़ते नहीं। जाति-अपेक्षा से सदैव एकत्व ही रखता है। **ऐसा जो क्रमभावी भावों का प्रवाह, उसमें पूर्व भाव का विनाश...** आत्मा में, जैसे कि पूर्व में मिथ्यात्व था वह, जहाँ सत् लक्षण से द्रव्य लक्षित हुआ कि द्रव्य तो अनन्त गुण सम्पन्न है। एकरूप है। ऐसा लक्ष्य हुआ तो मिथ्यात्व दृष्टि में, मैं मात्र रागमयी था, एक पर्याय जितना था—ऐसी मान्यता थी तो अपनी चैतन्य की जाति को छोड़े बिना पूर्व भाव का मिथ्यात्व का विनाश हो गया। और **उत्तर भाव का प्रादुर्भाव...** (हुआ)। सम्यग्दर्शन की पर्याय का उत्पन्न होना। समझ में आया ? वह उसके साथ लगाया।

सत् एक गुण से—लक्षण से लक्षित आत्मा हुआ तो अनन्त गुण का लक्ष्य हुआ कि मैं शुद्ध चैतन्य हूँ। पहले ऐसा नहीं माना था। पहले तो मैं रागमात्र हूँ, मैं एक समयमात्र की पर्याय जितना हूँ। मुझे दूसरे मदद करते हैं, मैं दूसरे को मदद करता हूँ

ऐसा जो भ्रम था, मिथ्यात्व-विपरीत अभिप्राय; वह सत् लक्षण से लक्षित द्रव्य का लक्ष्य करने से अनन्त गुण सम्पन्न द्रव्य का लक्ष्य हुआ, तो पहले जो अनन्त गुण लक्षणवाला मैं था, उसको नहीं माना था, मैं पर्याय और रागमात्र हूँ ऐसी पर्याय में दृष्टि थी, तब भ्रान्ति थी—भ्रमणा, वह लक्ष्य हुआ कि मैं अनन्त गुण का पिण्ड हूँ (तो) उससे सम्यक् की नयी पर्याय उत्पन्न हुई। अपनी चैतन्य की जाति को छोड़े बिना। पुराने मिथ्यात्व का नाश हुआ, चैतन्य की जाति छोड़े बिना। और चैतन्य की जाति ध्रुव रही। समझ में आया? सोगनचन्दजी! समझ में आता है या नहीं? यह सब धर्म समझने के लिये ऐसी समझ करनी पड़ेगी?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्पन्न हुआ। द्रव्य तो ध्रुव रहा। क्यों? कैसे? यहाँ तो ऐसा लगा दिया न। सत् है। कैसा? कि द्रव्य का लक्षण। द्रव्य पर लक्ष्य गया तो द्रव्य तो अनन्त गुण स्वरूप एकरूप द्रव्य है। ऐसा लक्ष्य होने से, अनन्त काल में पर्याय जितना माना था, वह द्रव्य मैं पूर्ण हूँ, ऐसी प्रतीति हुई तो भ्रान्ति का व्यय हुआ, सम्यक् की उत्पत्ति हुई और चैतन्य की जाति छोड़े बिना अनन्त गुण उसमें ध्रुव रहे। समझ में आया? धर्म की उत्पत्ति का यह कारण है। द्रव्य कारण है। पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती। पर्याय है पूर्व की, वह तो व्यय हो जाती है। नयी पर्याय होती है, वह व्यय होती है उसमें से नहीं आती है। पर्याय तो द्रव्य में से आती है। समझ में आया?

सत् है। मैं हूँ। मैं कौन? द्रव्य सत् लक्षणवाला। अनन्त गुणस्वरूप एक द्रव्य जहाँ प्रतीति में आया तो पर्यायदृष्टि अनादि की थी, एक समय जितना मैं पर्यायमात्र हूँ, ऐसी मान्यता थी वह, द्रव्य की प्रतीति लक्षण से हुई, लक्षण से लक्ष्य की प्रतीति हुई। प्रतीति-पूर्ण स्वरूप हूँ, ऐसा प्रतीति हुई तो सम्यग्दर्शन की पर्याय चैतन्य की जाति को छोड़े बिना उत्पन्न हुई और पूर्व का मिथ्यात्व का व्यय चैतन्य की जाति को छोड़े बिना व्यय हुआ। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीनों एक समय में हो गये। आहाहा! कहो, इसमें कुछ समझ में आता है? ऐ... देवानुप्रिया! ये सब फुरसत वाले का आता है इसमें।

(बाद के भाव की अर्थात् वर्तमान भाव की उत्पत्ति), सो उत्पाद और पूर्व-

उत्तर भावों के व्यय-उत्पाद... और पूर्व-उत्तर भावों के व्यय-उत्पाद होने पर भी... उसका स्पष्टीकरण किया। उत्तर भाव का प्रादुर्भाव मान ? (बाद के भाव की अर्थात् वर्तमान भाव की उत्पत्ति)... ऐसा। पूर्व भाव का विनाश और पीछे का जो उत्पन्न नहीं था, उसकी वर्तमान पर्याय में उत्पत्ति। वह उत्पाद। दो हुए। और पूर्व-उत्तर भावों के व्यय-उत्पाद... पूर्व का व्यय और उत्तर का उत्पाद होने पर भी स्वजाति का अत्याग सो ध्रौव्य है। ऐसे प्रत्येक (द्रव्य में)। इस शरीर में यह परमाणु है, देखो! ऐसी अवस्था है, ऐसी हुई तो पूर्व की अवस्था ऐसी थी, वह व्यय हुई, नयी अवस्था का उत्पाद हुआ, और परमाणु की जाति छोड़े बिना ऐसा उत्पाद-व्यय होता है। वह परमाणु के कारण से होता है, आत्मा के कारण से नहीं। क्योंकि उसका उत्पाद-व्यय उसमें है। दूसरा उत्पाद-व्यय अपने में करे। उसमें करे कि अपने में करे? दूसरा दूसरे में (करे)। समझ में आया?

संक्षेप में गागर में सागर भर दिया है। टीका करके। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने तो बहुत थोड़े शब्दों में सर्वज्ञ का पेट भर दिया है और टीकाकार ने स्पष्ट करके... भैया! ऐसी चीज़ है, प्रभु! सुन तो सही एक बार। तू क्या है? कितना है? तुझे तेरा ज्ञान कभी सम्यक् अनन्त काल में हुआ नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य—जो कि सामान्य आदेश से अभिन्न हैं... देखो! वहाँ सत् को अभिन्न कहा था न? भाई! पुनः भिन्न भी कहा। पहले लक्षण से भिन्न कहा। पुनः सत् स्वरूप कहा। इसमें भी ऐसा कहा। आत्मा और एक-एक परमाणु, उसमें नयी-नयी पर्याय (होती है)। पूर्व की पर्याय का व्यय, नये का उत्पाद वर्तमान, ध्रुव का त्याग किये बिना ध्रुव रहा। प्रत्येक वस्तु में एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, वह सामान्य आदेश से द्रव्य से अभिन्न हैं। भिन्न नहीं है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ही द्रव्य है। वह वस्तु है। सामान्य अर्थात् अभिन्न दृष्टि से देखो तो प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप ही है। पर का आत्मा और पर का परमाणु उसके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप है। अपने से वह नहीं और उससे अपने में नहीं। (अर्थात् सामान्य कथन से द्रव्य से अभिन्न हैं) विशेष आदेश से... उसमें कहा था न? भाई! ...उसमें अनन्त गुण सम्पन्न लेकर कहा था। ओहोहो!

विशेष आदेश से (द्रव्य से) भिन्न हैं,... क्योंकि द्रव्य है, उससे कथंचित् उसका

नामभेद हुआ न? उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य। द्रव्य का नाम द्रव्य रहा। द्रव्य का नाम एक, उसके तीन नाम हुए। नाम अपेक्षा से भिन्न पड़ गया। संज्ञा अपेक्षा से भिन्न पड़ गया, प्रयोजन अपेक्षा से भी भिन्न पड़ गया। विशेष आदेश से (द्रव्य से) भिन्न हैं, युगपद् वर्तते हैं... एक-एक प्रत्येक द्रव्य में सत्ता, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य एकसाथ है। उत्पाद पहले समय में हो और व्यय दूसरे समय में हो अथवा व्यय पहले समय में हो और उत्पाद दूसरे समय में हो, (ऐसा नहीं होता)।

देखो! यह अँगूठी। यह सीधी है। यह टेढ़ी हुई। तो सीधी का काल भिन्न और टेढ़ी का नाश का काल भिन्न, ऐसा नहीं है। वांकी कहते हैं न? टेढ़ी, टेढ़ी। टेढ़ी का नाश और सीधी का उत्पाद, समय एक है। और अपनी जाति छोड़े बिना (ऐसा होता है)। ध्रौव्य भी एक समय में है। ऐसा प्रत्येक आत्मा में और प्रत्येक परमाणु में एक समय में नयी पर्याय का उत्पन्न (होना), पुरानी का व्यय होना, ध्रौव्य का साथ में रहना—जाति का। एक समय में तीनों युगपद् प्रवर्तते हैं।

और स्वभावभूत हैं... वाह! वह उत्पाद-व्यय तो उसका स्वभाव है। देखो! प्रत्येक पदार्थ का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य उसका स्वभाव है। अपना उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य दूसरा क्या करे? और दूसरे का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य यह आत्मा क्या करे? उसका ही स्वभाव है तो होता है। वही द्रव्य का लक्षण है। दूसरा लक्षण सिद्ध किया। पहला सत् लक्षण किया, दूसरा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का। तीसरा लक्षण बाकी रहा।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल १०, बुधवार, दिनांक - २५-१२-१९६३, गाथा-१०, प्रवचन-१८

दसवीं गाथा चलती है!। पृष्ठ २७ है। दूसरा पैराग्राफ। क्या चलता है यह? भगवान वीतरागदेव केवलज्ञानी प्रभु तीर्थकरदेव, उन्हें जब सर्वज्ञ अर्थात् केवलज्ञान प्रगट हुआ, तब छह द्रव्य ज्ञान में देखे। अनन्त काल से केवली होते आते हैं, उन्होंने इस जगत के अन्दर छह द्रव्य अनादि अकृत्रिम—किसी ने नहीं किये हुए स्वभावस्वरूप ऐसे छह, जाति से छह, संख्या से अनन्त (द्रव्य देखे), उन्हें यहाँ बतलाते हैं। प्रत्येक द्रव्य कैसे हैं? उनका लक्षण क्या लक्षण? अर्थात् किस लक्षण से वे लक्ष्य अर्थात् द्रव्य अर्थात् पदार्थ पहिचाना जा सकता है? छहों द्रव्यों में उनका लक्षण एक-एक का क्या? कि जिस लक्षण द्वारा उस वस्तु को, द्रव्य अर्थात् वस्तु को जाना जा सकता है, पहिचाना जा सकता है, लक्ष्य में लिया जा सकता है। ऐसे तीन लक्षण वर्णन किये हैं। उसमें दो आ गये हैं। छह काय का उत्तर बाद में आयेगा।

प्रत्येक वस्तु—अनन्त आत्मायें और अनन्त परमाणु,... सभी आत्मायें और अनन्त परमाणु, यह मिट्टी, उसका लक्षण क्या कि जिसके द्वारा भिन्न चीज़ है। दूसरे.... लक्षण द्वारा पहिचानी जा सके? उसके तीन लक्षण कहे। उसमें दो आ गये। एक तो सत् लक्षण। प्रत्येक वस्तु 'है', 'है'। यह पहला आ गया। 'है' से पहिचानी जा सकती है, अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा या अनन्त गुण का पिण्ड परमाणु। यह 'है' ऐसे सत्ता नाम के गुण से पहिचाना जा सकता है।

दूसरा उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य। प्रत्येक वस्तु क्षण-क्षण में नयी अवस्था से उपजती है, उसी क्षण पूर्व की अवस्था से व्यय होता है, उसी क्षण अपनी जाति को छोड़े बिना टिकी रहती है। समझ में आये ऐसा है, हों! यह सब ध्यान रखने का है। यह समझनेयोग्य है। पुस्तक तो लेकर बैठे। मुम्बई से आये हैं। यह समझे बिना सब गड़बड़ हो गयी है अभी।

भगवान ने तीर्थकरदेव ने जो वस्तु कही, उसका क्या स्वरूप है? किस प्रकार हो रहा है? किस प्रकार टिक रहा है? किस प्रकार हो रहा है और किस प्रकार टिक रहा

है ? ऐसी उसकी जाति को जाने बिना पर के कारण मुझमें हो और मेरे कारण पर में हो, ऐसी भ्रमणा अनादि काल की अज्ञान में घुस गयी है। तो कहते हैं, प्रत्येक वस्तु उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य (स्वरूप है)। देखो ! उसे भी लक्षण कहा। असाधारण लक्षण ज्ञान, वह ज्ञायक को पहिचानने के लिये आत्मा के लिये कहा। यहाँ तो सब द्रव्य को पहिचानने के लिये यह लक्षण है। समझ में आया ? नयी-नयी अवस्था से उपजे, पुरानी अवस्था व्यय हो, जाति को—अपनी चैतन्य या जड़ जो जाति है, उसे छोड़े बिना वह टिकी रहे, यह प्रत्येक वस्तु का उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य लक्षण है। यह दो बातें आ गयी।

अब आज तीसरा। **अथवा, गुणपर्यायें द्रव्य का लक्षण है।** है दूसरा पेरोग्राफ ? क्या कहते हैं ? घर में इसका पिता पूँजी रख गया हो तो मर जाने के पश्चात् तुरन्त सम्हालता है। निश्चित कर लें मर जाने से पहले कि कितनी पूँजी है। यह भगवान सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर ने क्या पूँजी द्रव्य की—वस्तु की क्या स्थिति कही ? वे कह गये परन्तु उसे समझने की दरकार नहीं और उसे भगवान के भक्त कहलाना है और भगवान क्या कहते हैं, उसके लक्षणों से पहिचानना नहीं है।

अब प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु.... ऐसे छह द्रव्य हैं। **गुणपर्यायें द्रव्य का लक्षण है।** अब, गुण-पर्याय अर्थात् क्या ? देखो ! **अनेकान्तात्मक वस्तु के....** प्रत्येक वस्तु कैसी है ? आत्मा और प्रत्येक परमाणु। अनेक अर्थात् अनन्त। अन्त अर्थात् गुण, धर्म। आत्म अर्थात् स्वरूप। अनन्त धर्मस्वरूप, अनन्त गुणस्वरूप प्रत्येक वस्तु है। आत्मा भी अनन्त गुणस्वरूप है। परमाणु है, वह रजकण, वह भी अनन्त गुणस्वरूप है। यह तो मूल वस्तु नहीं। इसके टुकड़े करो, अन्तिम टुकड़ा रहे, उसे भगवान परमाणु कहते हैं। वह परमाणु भी अनेकान्तात्मक वस्तु है।

अनन्त धर्मस्वरूप वस्तु में **अन्वयी विशेष, वे गुण हैं....** कायम रहनेवाले, सदृश्यरूप रहनेवाले, उन्हें गुण कहते हैं। आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि कायम आत्मा में अनन्त गुण कायम रहनेवाले सदृश्यरूप से रहनेवाले, वह के वह... वह... वह... ऐसे रहनेवाले, इस अपेक्षा से उन्हें अन्वयी विशेष—सदृश्यरूप से रहनेवाले ऐसे विशेष (कहने में आता है)। द्रव्य, वह सामान्य और उसके साथ रहनेवाले अन्वय-

विशेष उसे गुण कहते हैं। यह तो भगवान का विज्ञान-पदार्थज्ञान है। संसार में भी पदार्थज्ञान सीखते हैं या नहीं लौकिक कला के लिये? यह तो आत्मा के कल्याण के लिये सीखने की बात है। कहो, समझ में आया?

आत्मा और यह एक-एक परमाणु, ऐसे अनन्त आत्मायें और अनन्त परमाणु रजकण। वे अनेकान्तात्मक, अनेक धर्मस्वरूप। अन्त अर्थात् धर्म है। अनन्त गुणस्वरूप ऐसी वस्तु के अन्वय। नीचे है। **अन्वय और व्यतिरेक के लिये पृष्ठ १४ पर टिप्पणी देखिये।** इसका अर्थ ऊपर किया है पूर्व में कहा कि सदृश्यरूप से वह के वह रहे, उसे अन्वय अर्थात् सदृश्यपने के विशेष गुण कहते हैं। **और व्यतिरेकी विशेष, वे पर्यायें हैं।** भिन्न-भिन्न क्षण-क्षण में प्रत्येक वस्तु में पर्याय हो—अवस्था नयी-नयी हो, उसे व्यतिरेक विशेष। भिन्न-भिन्न। व्यतिरेक अर्थात् भिन्न-भिन्न। विशेष अर्थात् अवस्थायें। वे विशेष हैं। सामान्य द्रव्य, उसकी प्रत्येक पर्याय विशेष, उसे पर्याय कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? कभी सुना है इसमें? कभी विचार भी किया था? यह कमाना और यह और हम जैन हैं। नाम जैन दिया उसमें जैन क्या हो गया? वीतराग सर्वज्ञदेव परमात्मा जैसी वस्तु की स्थिति का लक्षण और वस्तु वर्णन करते हैं, वैसा लक्ष्य में लेकर यथार्थ प्रतीति करे तो उसे जैन कहा जाता है। कहो, समझ में आया? थैली में चिरायता भरा हो और ऊपर नाम शक्कर लिखे तो कहीं चिरायता कड़वा मिट जाये? सेठी! चिरायता कहते हैं न तुम्हारे?

कहते हैं, वे (गुण और पर्यायें)—**जो कि द्रव्य में एक ही साथ....** देखो! प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु। दो की बात। चार तो अरूपी है जरा। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल। भगवान ने छह द्रव्य देखे। उनमें गुण, पर्यायें और अवस्थायें **जो कि द्रव्य में एक ही साथ....** एक साथ कौन? गुण। आत्मा में और परमाणु में, आत्मा में ज्ञान, दर्शन एक साथ रहे हुए अनन्त गुण हैं। एक रजकण में रंग, गन्ध, रस, स्पर्श ऐसे अनन्त गुण रहे हुए हैं।

जो कि द्रव्य में.... अर्थात् वस्तु में **एक ही साथ....** गुण रहे हुए हैं **तथा क्रमशः पर्याय प्रवर्तते हैं,....** और अवस्था है, वह क्रम-क्रम से वर्तती है। ज्ञान की पहली अवस्था,

दूसरी अवस्था, तीसरी अवस्था, चौथी अवस्था, दशायें-हालत। ऐसे अनन्त गुण की अवस्थायें क्रम से वर्तती हैं। समझ में आया इसमें? वे (द्रव्य से) कथंचित् भिन्न... कौन? गुण और पर्याय। वह वस्तु आत्मा है और यह परमाणु पॉइन्ट है उसे, कहते हैं, उसमें जो कायम रहनेवाले गुण हैं, और क्रम-क्रम से होनेवाली अवस्था वह पर्याय है। वह वस्तु से कथंचित् भिन्न। नाम है न भिन्न? गुण का नाम गुण, द्रव्य का नाम द्रव्य, ऐसे नाम भिन्न हैं, लक्षण भिन्न हैं। पर्याय का नाम पर्याय, गुण का नाम गुण और द्रव्य का नाम द्रव्य, ऐसे नामभेद लक्षणभेद से भेद है।

वस्तु से अर्थात् आत्मा से उसके गुण कायम रहनेवाले और क्रम-क्रम से होनेवाली पर्याय, द्रव्य से कथंचित् किसी अपेक्षा से लक्षण और नामभेद से भेद है। कथंचित् अभिन्न है। वस्तुरूप से अभिन्न है। शक्कर का नाम शक्कर और मिठास का नाम मिठास। ऐसे कथंचित् शक्कर और मिठास को कथंचित् भिन्न उसकी अपेक्षा से कहा। परन्तु वस्तुरूप से देखो तो प्रदेश अभिन्न है। स्वयं शक्कर और मिठास दोनों एक ही चीज़ है।

इसी प्रकार आत्मा उसके ज्ञान, दर्शन आदि गुण हैं और क्रम-क्रम से होनेवाले पर्यायें हैं—अवस्थायें। स्वयं से अपने में। पर के कारण नहीं और पर में हो, वह इसके कारण नहीं। इस शरीर में अवस्था होती है, वह आत्मा के कारण नहीं और आत्मा में अवस्था होती है, वह कर्म के, शरीर के कारण नहीं। क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अपने अनन्त गुण विशेषों से रहा हुआ है और उसकी पर्यायोंसहित है। वह कथंचित् उन गुण और पर्याय से द्रव्य भिन्न भी संज्ञा आदि से कहा जाता है। वस्तु से अभिन्न है। तथा आत्मा और परमाणु के स्वभावभूत गुण और पर्यायें हैं। क्या कहा?

आत्मा और यह एक-एक रजकण पृथक्। यह तो पिण्ड है। यह शरीर कहीं मूल वस्तु नहीं। यह तो टुकड़े हो-होकर बहुत रजकणों का पिण्ड बना है। यह आत्मा नहीं, तथा यह एक वस्तु नहीं। यह तो अनन्त वस्तु है, अनन्त रजकण पॉइन्ट परमाणु इकट्ठे हुए हैं। एक-एक रजकण में और एक-एक आत्मा उसमें गुण और पर्याय—कायम रहनेवाली शक्तियाँ, पलटती अवस्थायें, वे द्रव्य के स्वभावभूत हैं। वह वस्तु का

स्वभाव है, अपना स्वभाव है। परमाणु का गुण-पर्याय स्वभाव, आत्मा का गुण-पर्याय स्वभाव, ऐसे आकाश आदि छहों द्रव्य है। कहो, समझ में आया इसमें ?

और वे—द्रव्य का लक्षण है। उसमें ऐसे शब्द नहीं आये थे। है उसमें ? सत् में। सत्... सत्। सत् का समूह। वहाँ लक्ष्य-लक्षण का विभाग का अभाव होता है, ऐसा नहीं है। इसलिए कहा। और इन दो में ऐसा कहा जरा। उत्पाद-व्यय ध्रौव्य में स्वभावभूत है, वे द्रव्य का लक्षण है। गुण में ऐसा कहा स्वभावभूत है और वे द्रव्य का लक्षण हैं। इतना कहा। समझ में आया ?

वस्तु भिन्न-भिन्न काम कर रही है। प्रत्येक रजकण-रजकण और आत्मा-आत्मा। कोई किसी का कर्ता नहीं ? इस शरीर को सम्हाले या नहीं आत्मा ? नहीं ? ले, घर का पूछते हैं। घर का अर्थात् कौन ? पुत्र-स्त्री, माता-पिता। ठीक ! माता-पिता और लड़के का आत्मा भिन्न, उसके शरीर के रजकण-रजकण भिन्न। यहाँ यह कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु अपनी गुण अर्थात् कायम रही हुई शक्तियाँ और अवस्था से टिक रही है। उसके स्वभाव से है। पर के कारण नहीं। कहो, दिनेशभाई ! समझ में आया या नहीं ? यह पदार्थ विज्ञान की बात है। जवानों को समझ में आये, ऐसा यह है।

भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा सर्वज्ञदेव सौ इन्द्रों की उपस्थिति में, इन्द्रों की हाजिरी में भगवान की वाणी निकली। अरे... आत्माओं ! तुम कौन किस प्रकार पहिचानने में आवे ऐसी तुम चीज़ हो ? जगत की चीज़ किस प्रकार पहिचानी जा सके, ऐसी चीज़ है ? उसका लक्षण और लक्ष्य दोनों समझाया। यह यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य महाराज छह द्रव्य और पंचास्तिकाय का स्वरूप अद्भुत रीति से भगवान ने कहा, वैसा वर्णन करते हैं।भाई ! कहो, समझ में आया ? इन तीनों के लक्षण हो गये। अब यह प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु, एक निगोद का इतना टुकड़ा लो, निगोद-निगोद समझ में आता है ? यह आलू-शकरकन्द। तो इतने टुकड़े में असंख्य तो शरीर हैं। और उसमें अनन्त आत्मा हैं एक-एक शरीर में। उस एक-एक आत्मा में तीन लक्षण वर्णन करते हैं। प्रत्येक में सत्पना अलग, प्रत्येक का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अलग और प्रत्येक का गुण-पर्यायस्वरूप वह दूसरे से अत्यन्त भिन्न।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वभावभूत ही है। उसका स्वभाव ही है। स्वस्य भवनं स्वभाव। अपनी पर्याय में हो, उसे उसका स्वभाव (कहते हैं)। ऐई! देवानुप्रिया! आता है, बहुत जगह आता है। यहाँ तो (है परन्तु) दूसरे बहुत जगह आता है। अपना स्वभाव है। विकार भी इसकी पर्याय में—स्वयं करता है, इसकी दशा में; इसलिए वह भी एक इसका लक्षण है। वह ... आत्मा भिन्न है एक राग जितना नहीं परन्तु त्रिकाल है, ऐसे उत्पाद-व्यय और ध्रुव से आत्मा पहिचाना जा सकता है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और बाद में। अब आयेगा देखो। यह आयेगा इसमें अब।

द्रव्य के इन तीनों लक्षणों में से.... प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक रजकण में तीन लक्षण हैं। एक साथ तीन, हों! तीन एक ही है। यह तो अपेक्षा से तीन को अलग (कहे), इसलिए अब वर्णन करते हैं। द्रव्य में अर्थात् वस्तु में। द्रव्य अर्थात् यह पैसा नहीं, हों! यह वहाँ ले जाते हैं। द्रव्य आवे अर्थात् पैसा कहे यह। द्रव्य अर्थात् परमाणु और आत्मा को द्रव्य कहना। द्रव्य क्यों कहा? द्रवति इति द्रव्यं। 'द्रु' पहले आ गया है 'द्रु' 'द्रु' धातु आ गयी है। देखो! उस ओर। उस ओर आ गया है उसमें। द्रु धातु। नीचे है। २५वें पृष्ठ पर नीचे है। यहाँ द्रव्य की जो निरुक्ति की गई है वह 'द्रु' धातु का अनुसरण करते हुए (-मिलते हुए) अर्थवाली है। नीचे है नोट में। 'द्रु' बड़ा शब्द पड़ा है। नोट में नीचे नोट। २५ पृष्ठ। है?

भगवान ने अनन्त आत्मा और अनन्त रजकण को द्रव्य कहा। द्रव्य क्यों कहा? कि पानी जैसे तरंग को द्रवता है, बहता है, पानी पानीपना रखकर क्षण-क्षण में नई तरंगें-तरंगें उठाता है, उसे द्रवे.... द्रवे.... द्रवे.... बहे-प्रवहे (कहते हैं)। इसी प्रकार प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक पॉइन्ट / परमाणु क्षण-क्षण में गुण-पर्याय को द्रवता है। पर्याय अर्थात् अवस्था को द्रवता है, बहता है, करता है। इसलिए भगवान की वाणी में द्रव्य शब्द आया है। कहो, समझ में आया इसमें?

अब यहाँ तीन लक्षण में से सत् लक्षण, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य दूसरा लक्षण और

तीसरा गुण-पर्यायें। इन तीन लक्षणों में से एक का कथन करने पर शेष दोनों (बिना कथन किए) अर्थ से ही आ जाते हैं। पहला न्याय देंगे अभी, हों! अभी सम्मुचय बात समान्तर (करते हैं)। एक आत्मा लो या एक परमाणु लो, वह वस्तु जगत की स्वयंसिद्ध अकृत्रिम—किसी ने की नहीं। ईश्वर-बिश्वर कोई कर्ता-फर्ता है नहीं। ऐसी अकृत्रिम चीज़ जो अनन्त आत्मा और अनन्त परमाणु, उसमें जो सत् लक्षण वर्णन किया कि 'है' इस लक्षण से जाना जा सकता है। उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य से प्रत्येक चीज़ जानी जा सकती है और उसके गुण-पर्यायों से वह वस्तु जानी जा सकती है। वह-वह वस्तु उसके लक्षण से जानी जा सकती है। उन तीन में से एक कहने पर बाकी के दोनों बिना कहे अर्थ से अर्थात् भाव से ही उसमें आ जाते हैं। किस प्रकार आ जाते हैं? देखो! अब कहते हैं।

यदि द्रव्य सत् हो,.... यदि आत्मा और परमाणु सत् है, सत् है तो वह (१) उत्पादव्ययध्रौव्यवाला और गुण-पर्यायवाला होता है.... क्या कहा? महा लॉजिक से, न्याय से बात करते हैं यहाँ तो जरा। दुनिया के कानून समझना चाहे परन्तु यह कानून वीतराग के पदार्थ का स्वभाव क्या, उसकी वस्तु क्या, खबर बिना ममता (करे कि) यह मेरे और यह तेरे। झगड़ा करके मर गया। समझ में आया? प्रसन्न हो। परन्तु प्रसन्न होने की पर्याय तुझमें, यह अप्रसन्न होने की पर्याय तुझमें। पर के कारण कुछ है नहीं। कहो, समझ में आया?

यदि द्रव्य सत् हो,.... जो वस्तु हो (तो) 'है' वह उसका एक गुण है। तो वह उत्पादव्ययध्रौव्यवाला.... सत् हो वह नयी अवस्था से उपजे, पुरानी अवस्था से व्यय हो.... ध्रुव हो। और गुण-पर्यायवाला.... सत् हो वह कायम शक्तियाँ रहनेवाला और क्रम से प्रवर्तती पर्यायोंवाला। यह सत् होता है, वह तीनों लक्षणवाला होता है। अभी इसका स्पष्टीकरण करेंगे, हों! वापस। किस प्रकार यह? किसका आया यह? जो द्रव्य सत् हो वह, द्रव्य हो सत् हो वह। इस एक पर दो उतारने हैं। सत् है आत्मा और परमाणु। सत् अस्ति गुण से है। पश्चात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है और वही गुण-पर्यायवाला है। अभी इसका स्पष्टीकरण करेंगे। छोड़ेंगे नहीं। यहाँ तो आचार्य हैं। जगत

को तत्त्व... भगवान के मुख में जो वाणी आयी, उसे जगत के तत्त्व भिन्न-भिन्न अपने स्वभाव से रहे हैं। वह ममत्व—पर की ममता छोड़ दे। मैं पर के काम कर दूँ और पर से मुझमें काम हो। मूढ़ है ? जगत के पदार्थ स्वतन्त्र हैं। ऐई! देवानुप्रिया! व्यवहार से बोला जाता है। यह गाँव मेरा। धूल में भी नहीं। झोंपड़ा भी न हो इसके गाँव में। कौन सा गाँव ? बरवाला ? ऐसा कहते हैं या नहीं ? कौन सा गाँव ? राजकोट। कौन गाँव तुम्हारा ? राजकोट। झोंपड़ा भी न हो घर में। यह तो बोला जाता है कि यहाँ रहता था, यहाँ रहता हूँ, ऐसे क्षेत्र में। ऐसा बोला जाता है कि यह मेरी स्त्री, यह मेरे पुत्र। धूल में थे इसके ? यह तो जगत के तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं। कहो, सेठी! क्या करना ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। अब....

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। ऐसा नहीं। उसके एक द्रव्य के गुण और पर्याय के भेद द्वारा समझा जा सकता है। उसके भेद द्वारा यह समझा सकते हैं, ऐसा है। दूसरे मेरे हैं, इसलिए समझा सकते हैं, ऐसा नहीं। सुनो! क्या कहा ? यह मेरे हैं, ऐसा समझा नहीं जा सकता। वह तो बाहर में लोक का उपचार कथन है।

प्रत्येक वस्तु को 'वह है' उसके लक्षण से पहिचाना जा सकता है। इतना भेद डाला न! ऐसे उत्पाद-व्यय। यह नयी-नयी अवस्था उपजे, पुरानी व्यय हो, ध्रुव (रहे) उससे पहिचाना जा सकता है। प्रत्येक वस्तु उसके गुण—कायम रहनेवाली शक्ति से, नयी-नयी अवस्थायें उससे पहिचाना जा सकता है। यह भेद डालकर पहिचाना जा सकता है, इतनी बात है। यह पर मुझसे पहिचाना जा सकता है, ऐसा नहीं है। उसमें तो भ्रमणा घुस जाती है। समझ में आया ? एक बोल लिया। पहला बोल आया। तीन लक्षण में से पहला एक सत्। अस्ति है अस्ति। प्रत्येक वस्तु है। 'है' नाम का उसमें गुण है। तो जो गुण है सत्, वह सत् हो, वहाँ उत्पाद-व्यय-ध्रुव ही होता है। नयी अवस्था उपजे। क्योंकि 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' अर्थात् तीन लक्षणवाला वह सत् होता ही है। सत् होता है, वह तीन लक्षणवाला होता ही है। और जो सत् है, वह गुण-

पर्यायवाला ही होता है। 'है' कायम रहनेवाली शक्तिवाला होता है, पलटती अवस्थावाला होता है।

अब यदि उत्पादव्ययध्रौव्यवाला हो,.... कौन? द्रव्य-द्रव्य पहले कहा वह। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला होता है। अपने में नयी-नयी अवस्था से प्रत्येक पदार्थ उपजता है। प्रत्येक क्षण में पूर्व की अवस्था से बदल जाता है और उसके गुण की जाति बनाकर टिका रहता है। प्रत्येक अपने-अपने कारण से। किसी के कारण से नहीं। यदि उत्पादव्ययध्रौव्यवाला (द्रव्य) हो, तो वह (१) सत् और (२) गुणपर्यायवाला होगा;.... तो वह अस्तित्वाला होता है और शक्ति और अवस्थावाला होता है।

तीसरा बोल। यदि गुणपर्यायवाला हो,.... जो वस्तु है, परमाणु है, उसकी गुण अर्थात् कायम रहनेवाली शक्तियाँ। पर्याय अर्थात् अवस्था क्रम-क्रम से दशा बदले। वह गुण-पर्यायवाला द्रव्य हो तो वह सत् होता है.... होता है, उसे गुण-पर्याय होते हैं या नहीं? और गुण-पर्यायवाला हो, वह उत्पादव्ययध्रौव्यवाला होगा। इसके कारण देंगे, हों! जो गुण-पर्यायवाला होता है, वह सत् होता है और उसे उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यवाला होता है। यह तो एक लक्षण कहने पर दूसरे लक्षण उसमें आ जाते हैं। किस प्रकार आ जाते हैं, उसकी बात की। अब उसका विस्तार करते हैं। उसी का और उसी का।

वह इस प्रकार:—सत्.... अब खोला, देखो! ओहोहो! जो आत्मा या परमाणु सत् कहे हैं, है। तो वह नित्यानित्यस्वभाववाला होने से.... प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक यह परमाणु कायम रहे, उसे नित्य कहते हैं, कायम रहता है और अवस्था बदलती है, वह अनित्य है। समझ में आये ऐसा है, हों! नहीं समझ में आये ऐसा नहीं। यह तो सादी भाषा से बात होती है। परन्तु दरकार ही कभी की नहीं। कमाना, खाना हो गया जाओ। भगवान के पास एक बार सुन आवे या भगवान के दर्शन कर लूँ। ऐसे धर्म नहीं होता। सेठी! धर्म करनेवाले के क्या लक्षण हैं? और किस लक्षण से वह धर्म करनेवाला पहिचाना जा सकता है? भिन्न-भिन्न प्रत्येक वस्तु है। ऐसा अन्तर ज्ञान हुए बिना सम्यक् और सम्यग्दर्शन की धर्मदशा होती नहीं। शंकरभाई! भाई! एक बार सुने तो सही। सुने

कि यह क्या है। सुनना नहीं और कान बन्द कर दिये। यह ऐसा है, ऐसे भड़के। सुन तो सही। वीतराग त्रिलोकनाथ प्रत्येक वस्तु को भिन्न-भिन्न अपने लक्षण से वर्णन करते हैं।

सत् जो वस्तु आत्मा और परमाणु सत् है। 'है', वह नित्यानित्यस्वभाववाला होता है। क्योंकि जो सत् है, वह कायम रहनेवाले की अपेक्षा से नित्य और बदलने की अपेक्षा से (अनित्य)। क्योंकि बदलता है न समय-समय में, क्षण-क्षण में? अवस्था बदलती है न। पहले यह रजकण.... यह रजकण तो थे दाल-भात के। यह रजकण तो यहाँ आये परन्तु उसकी पर्याय बदल गयी। दाल-भात की थी, वह रक्त की हो गयी। रक्त के बाद.... राख की, फिर धूल की होती है। धूल की वापस गेहूँ होती है, गेहूँ की वापस आटा होती है, आटा की वापस रक्त होती है। ऐसे अवस्थायें बदला करे और मूल पॉइन्ट जो द्रव्य रजकण है, वह तो कायम रहता है। नित्य रहकर पलटता है। सोना कायम रहकर कुण्डल और कड़े की नयी-नयी अवस्थायें होती है। ऐसे प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु सत् नित्यानित्यस्वभाववाला होने से.... देखो! किसके साथ मिलाते हैं अब? दूसरे गुण के साथ लक्ष्यलक्षण के साथ। सत् को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य जो दूसरा लक्षण कहा है, उसके साथ मिलाते हैं। पश्चात् गुण-पर्यायवाला लक्षण के साथ मिलायेंगे।

है, जो वस्तु है, वह सत् है और सत् हो वह नित्य-अनित्य स्वभाववाला होने से। जो चीज़ होती है, वह कायम रहनेवाले की अपेक्षा से नित्य है। पलटने की अपेक्षा से अनित्य है। पलटती है या नहीं? एक का एक रहता हो तो यह सब यह भाषा और वाणी और अवस्था में यह सब हो नहीं सकता। समझाने में भी एकरूप हो तो उल्टी समझ हो, उसे सुलटी समझकर पलटना, वह पर्याय न हो और बदलना न हो तो वह हो सकती नहीं। वह का वह आत्मा न हो तो समझनेवाला यह और नहीं समझनेवाला यह, वह नित्य के बिना टिक नहीं सकता, अनित्य बिना वह पलट नहीं सकता। समझ में आया?

कहते हैं, जो वस्तु भगवान ने छह द्रव्य अनन्त देखे। उन प्रत्येक का सत् लक्षण वर्णन किया है। है, वह 'है' उसमें दो भाग आ जाते हैं। एक नित्य और अनित्य। 'है'

वह नित्य-अनित्य स्वभाववाला होता है। 'है' अकेला कूटस्थ नित्य हो, ऐसा भी नहीं और 'है' अकेला क्षणिक अवस्थावाला हो, ऐसा भी नहीं। समझ में आया ? इस कारण से.... अब न्याय देते हैं। जो आत्मा और परमाणु सत् है और वह सत् नित्य और अनित्य स्वभाववाला होने के कारण, नित्य और अनित्य उसका स्वभाव होने के कारण ध्रौव्य को और उत्पाद-व्यय आत्मा को प्रसिद्ध अर्थात् प्रगट करते हैं। क्या कहते हैं ?

प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु और भिन्न-भिन्न सब आत्मायें, उनमें सत्पना है। वह नित्य और अनित्यपने के कारण, टिककर बदलने के स्वभाव के कारण, ध्रुव को नित्य अर्थात् ध्रुव को प्रगट करता है। नित्य है, इसलिए ध्रुव को प्रगट करता है। अनित्य है, वह उत्पाद-व्यय स्वरूप को प्रसिद्ध करता है। ध्रुवरूप से नित्य हूँ और उत्पाद-व्ययरूप से अनित्य हूँ। ऐसी वस्तु स्वयं जाहिर / प्रसिद्ध करती है। ओहो! वह वस्तु अपनी अपील करती है। दूसरे प्रकार से मानोगे तो तुम्हारा नहीं चलेगा, ऐसा कहते हैं। वे पण्डितजी कहते लोगों को सुनाते, फूलचन्दजी। वस्तु यह अपील करती है। तुम मुझे नित्य ही मानो तो नहीं चलेगा। अनित्य मानो तो नहीं चलेगा। क्योंकि मैं टिकती-बदलती चीज़ हूँ। कायम रहनेवाली और पलटती चीज़ हूँ। यह मेरी अपील है। कोर्ट का अन्तिम नियम मेरा है। उसे तू मान, प्रसिद्ध कर। ऐई! देवानुप्रिया! आहाहा!

प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक रजकण-रजकण। यह तो मिट्टी है। यह तो मिट्टी है, यह बहुत रजकण का पिण्ड है। तो इसका एक पॉइन्ट अन्तिम, उसे भगवान द्रव्य कहते हैं। वह द्रव्य सत् होने के कारण नित्य-अनित्य स्वभाववाला है। कायम टिककर बदलने के स्वभाववाला है। प्रत्येक अपने-अपने कारण से। इस कारण से ध्रौव्य को, टिका रहता है, इसलिए ध्रौव्य को प्रसिद्ध करता है। बदलता है, वह अनित्य को प्रसिद्ध करता है, यह उत्पाद-व्ययात्मकता को प्रसिद्ध करते हैं। कहो, इसमें समझ में आये ऐसा है या नहीं ?है या नहीं ? समझ में आये ऐसा है। न समझ में आये, ऐसा हो इसमें ? भाई, दिनेशभाई ! नही समझ में आता ? दिनेश तो सूर्य कहलाता है। न समझ में आये आत्मा को ? आत्मा चैतन्य सूर्य है। ज्ञान का पुंज भगवान आत्मा। यह परमाणु का सूर्य है, यह दिखता है वह। रजकण का बना हुआ पिण्ड है। भगवान आत्मा ज्ञानसूर्य

झबकता चैतन्य सूर्य है।यहाँ से छोड़कर चला गया है यह। अनादि काल से मुट्टी बाँधकर पर का करूँ और पर से हो, मिथ्या भ्रमणा में गोते खा रहा है।

कहते हैं, अहो! जो वस्तु सत् है—छहों द्रव्य की बात है। परमाणु, आकाश, धर्मास्ति, अधर्मास्ति (आदि)। यह नित्य-अनित्य स्वभाववाली होने से; वस्तु है, वह टिककर टिकने की अपेक्षा से नित्य है। नहीं टिकने की अपेक्षा से अनित्य होने से नित्य, वह ध्रौव्य को प्रसिद्ध करती है और अनित्य, वह उसकी उत्पाद-व्यय नयी अवस्था उत्पन्न हो और पुरानी जाये, उसे अनित्य उसे प्रसिद्ध करता है। आहाहा! कहो, दूसरा द्रव्य उसे प्रसिद्ध करता है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। यह अनित्यपना उसमें है, वह उत्पाद-व्यय को प्रसिद्ध करता है। क्या कहा? प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक रजकण, उनमें अनित्यपना है, वह उनकी उत्पाद-व्यय की पर्याय को प्रसिद्ध करता है। साथ में दूसरा द्रव्य था, इसलिए उसके उत्पाद-व्यय को प्रसिद्ध करता है, ऐसा नहीं है। नित्य है, वह ध्रुव को प्रसिद्ध करता है कि मैं टिकता कायम हूँ। यह अनित्य है, वह नयी-नयी अवस्था हो और जाये, ऐसा प्रसिद्ध करता है। कहो, अब इसे बी.ए. और एल.एल.बी. पढ़ना हो तो कितना ध्यान रखे। प्रोफेसर एक घण्टे बोल जाये। हो गया जाओ। कुछ पूछा जाये नहीं वहाँ।

यह तो भगवान सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग सौ इन्द्रों की सभा में दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा वस्तु का स्वरूप वर्णन करते थे। यह भगवान के पास कुन्दकुन्दाचार्य महाराज संवत् ४९ में गये थे, आठ दिन वहाँ गये थे। सीमन्धर भगवान विराजते हैं, अभी तीर्थंकर हैं। केवलज्ञानी विराजते हैं महाविदेहक्षेत्र में। अभी मनुष्यरूप से है। करोड़ पूर्व का आयुष्य और पाँच सौ धनुष का देह है। दो हजार हाथ ऊँचा और करोड़ पूर्व का आयुष्य। अभी विराजते हैं महाविदेहक्षेत्र में। सीधे मनुष्यरूप से। वहाँ कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर यह (शास्त्र बनाये)। भगवान सर्वज्ञ ऐसा (कहते हैं)। आया था न भाई कल, नहीं? ऐसा ही आया था। 'तं भण्णंति सव्वण्हू' इसमें ही आया। दसवीं गाथा में। 'तं भण्णंति सव्वण्हू' दसवीं गाथा, देखो, उस ओर। २६ पृष्ठ पर। लाल-लाल (अक्षर में) 'तं भण्णंति सव्वण्हू' ऐसा सर्वज्ञ

भगवान वहाँ कहते थे। सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ वहाँ कहते थे। आहाहा! कहो, स्वयं कहते हैं, तथापि सर्वज्ञ भगवान को पक्ष में लेकर कहते हैं। भगवान ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञ परमात्मा अरिहन्तदेव की वाणी में ऐसा कहते थे। आहाहा! कितनी नम्रता! कितनी निर्मानता! भगवान सर्वज्ञ प्रभु त्रिलोकनाथ की वाणी में ऐसा 'भण्णंति' ऐसा कहते थे कि वस्तु ऐसी है, वह हमने भगवान के निकट सुनी है, ऐसी तुम्हें कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

वस्तु है, वह सत् है। इसलिए नित्यानित्य स्वभाववाली है। इसलिए नित्य, वह ध्रुव को प्रसिद्ध करता है, अनित्य वह उत्पाद-व्यय के.... उत्पाद व्ययात्मक है न? आत्मक अर्थात् स्वरूप है। उत्पाद अर्थात् नयी अवस्था का उपजना और व्यय अर्थात् नाश होना। आत्मक अर्थात् स्वरूप। उत्पाद-व्ययस्वरूप को अनित्य प्रसिद्ध करता है। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक रजकणों में जो परिवर्तन दिखता है, वह उसकी अनित्यता को प्रसिद्ध करता है अथवा अनित्य, वह उत्पाद-व्यय को प्रसिद्ध करता है। तेरे कारण वहाँ दया पली और तेरे कारण से पैसा आया, ऐसा प्रसिद्ध नहीं करता। ऐसा कहते हैं।

यह पैसा था रजकणरूप से पैसे की पर्याय। वह वहाँ से आकर यहाँ आया, वह अनित्य उसके उत्पाद-व्यय को प्रसिद्ध करता है। तूने विकल्प किया और तेरे पास आया, ऐसा है नहीं। ओहोहो! कहो, देवानुप्रिया! गजब भाई! पहेली भी बड़ी। मण के ढाई तो चार पैसे का सेर। चाबी। चाहे जो दृष्टान्त ले लो फिर। कहते हैं, एक बोल के ऊपर एक बोल उतारा। क्या कहा? सत् के ऊपर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य उतारे। एक बोल के ऊपर एक बोल उतारा, ऐसा कहा। एक और दूसरा ऐसा। क्या कहा, समझ में आया इसमें?

प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु सत्पना प्रसिद्ध करता है। वह सत् नित्य और अनित्य स्वभाववाला है। इसलिए वह सत् ध्रौव्य को प्रसिद्ध करता है नित्य की अपेक्षा और अनित्य की अपेक्षा से उत्पाद-व्यय नयी अवस्था का उत्पाद और पूर्व की अवस्था के व्यय को प्रसिद्ध करता है कि हम वस्तु से ध्रुव हैं, नित्य हैं। पर्याय अनित्य पलटती है। ऐसी वस्तु प्रगट प्रसिद्ध करती है। दूसरी चीज़ के कारण टिकना या दूसरी चीज़ के

कारण उपजना, उस दूसरी चीज़ में हो नहीं सकता। ओहो! कहो, समझ में आया इसमें ?

अब यह सत् का दूसरा बोल लागू करते हैं। दूसरा कौन सा ? गुण और पर्याय का। एक लक्षण में तीनों लक्षण कैसे समा जाते हैं, उसका यहाँ मेल करते हैं। उसमें दुमेल नहीं परन्तु तीन का मेल है। जो सत् है—प्रत्येक आत्मा और परमाणु, उसका नित्य-अनित्य स्वभाव है। ओहो! यह ध्रौव्यात्मक गुणों और उत्पादव्ययात्मक पर्यायों के साथ एकत्व दर्शाता है। कहो! समझ में आया ? जो सत् वस्तु है प्रत्येक आत्मा और परमाणु और इससे नित्यानित्यस्वभाववाला है। उसकी बात तो उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य के साथ मिलायी। समझ में आया ? अब गुण-पर्याय के साथ मिलाते हैं कि प्रत्येक सत् है, वह नित्य-अनित्य स्वभाववाला होने के कारण, नित्य वह ध्रुवात्मक गुण को एकत्व दर्शाता है और अनित्य वह उत्पाद-व्यय पर्यायों को एकत्वरूप से दर्शाता है। कहो, ध्यान रखे तो कुछ विकल्प आवे ऐसा नहीं बीच में, लो! कहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : चोंच गिरे क्या, यह तो घास निगल जाये ऐसा है। चोंच की बात करते हैं। यह तो बड़ा घास निगल जाये ऐसा है। आधे-आधे लड्डू.... नहीं देते ? विवाह के समय नहीं देते अपने बनियों में ? अभी तो खाकर बैठे हों वहाँ वह.... देने जाये। भाईसाहब खाकर बैठे हैं, हों! अब उल्टी होगी। आधा लड्डू डाले।

मुमुक्षु : धक्का मारे।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर बाँस से धक्का मारे। उल्टी न हो तो। ऐसा। लक्षण देखो न बनियों के विवाह के।

यहाँ तो कहते हैं कि घास उतर जाये ऐसी चीज़ है अन्दर। आहाहा! प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक रजकण सत् होने के कारण नित्यानित्यस्वभाववाला है, इसलिए वह ध्रौव्यात्मक गुण नित्य, वह ध्रौव्यात्मक गुण। ध्रुव अर्थात् कायम रहनेवाले गुण और अनित्य वह उत्पाद-व्ययात्मक पर्यायों के साथ सत् को एकत्व दर्शाते हैं। सत् को एकत्वरूप से दर्शाते हैं। उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य गुण और पर्याय के साथ एकत्व दर्शाते हैं। उत्पाद-व्यय और ध्रुव के साथ प्रसिद्ध करते हैं। कहो, समझ में आया इसमें ? यह

लिख डाला, ऐसा नहीं। अन्दर अकेले पिण्ड के न्याय वर्णन किये हैं। इसमें समझे नहीं, लो, क्या लिखा है इसमें? अता-पता गज का आंक सूझे नहीं इसमें। है न पंचास्तिकाय? दिया है न यहाँ?यह साथ में आया न तुम्हारे?

क्या कहा? एक लक्षण के साथ दूसरे दो लक्षण का मेल किया। कौन सा एक लक्षण? सत्। प्रत्येक सत्, वह कैसा है? नित्य-अनित्य स्वभाववाला है। इसलिए उसके नित्य वह गुण को दर्शाते हैं, ध्रुव को दर्शाते हैं और अनित्य वह उत्पाद-व्यय को दर्शाता है। एक लक्षण के साथ मिलाया। अब दूसरा—वह सत् **नित्यानित्यस्वरूप....** होने से नित्य वह गुणों को दर्शाता है, अनित्य वह उत्पाद-व्ययात्मक गुणपर्यायरूप जो कहा, उसके साथ एकत्व को दर्शाता है। आहाहा! एकत्व है, उसके गुण-पर्याय के साथ एकत्व है। गुण-पर्याय जो सत् जो नित्यानित्य है, वह उत्पाद-व्यय को प्रगट करता है, सत् नित्यानित्य है, वह गुण-पर्याय के साथ एकत्व दर्शाता है। गुण और पर्याय का एकत्वपना सत् में है। गुण और पर्याय का एकत्व सत् को है। कहो, रतिभाई!

वस्तु क्या, उसके लक्षण क्या, कैसे हो रहे, कैसे टिक रहे, कैसे बदल रहे? उसकी उसे खबर न हो तो जहाँ-तहाँ अभिमान हुए बिना नहीं रहता। हमने इसे बदलाया। हमने इसे ऐसा किया। परन्तु यह बदले बिना का स्वभाव बिना का है कि तू उसे बदलाये। मैंने उसे टिकाया। तो वह टिके बिना का स्वभाववाला है तो तू उसे टिकाये? भ्रमणा.... भ्रमणा.... मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याश्रद्धा पापश्रद्धा है। उसके कारण वह अनन्त काल से दुःखी हो रहा है। कहो, समझ में आया इसमें?

अब तीसरा लक्षण उसके साथ पहले और तीसरे के साथ मिलाते हैं। तीसरा लक्षण है न यह उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य? इस तीसरे लक्षण को पहला लक्षण सत् और तीसरा गुण-पर्याय के साथ मिलाते हैं। आहाहा! उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य प्रत्येक वस्तु नयी अवस्था से उपजती है, क्षण-क्षण में... अवस्था से बदलती है। ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य एक लक्षण, उसे नित्यस्वरूप **पारमार्थिक सत् को बतलाते हैं...** देखो, वहाँ वापस यह लिया। पहले लिया था न, नित्यानित्य? उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, वह नित्यानित्यस्वरूप पारमार्थिक सत् को बतलाता है। ऐसा। वह सत् नित्यानित्यात्मक, इसलिए उत्पाद-

व्यय-ध्रौव्य को वह प्रसिद्ध करता है और गुण-पर्याय के साथ एकत्व दर्शाता है।

यहाँ कहा, उत्पाद-व्यय और ध्रुव है। प्रत्येक वस्तु नयी अवस्था से उपजती है, पूर्व की व्यय (होती है) और ध्रुव (रहती है)। वह नित्यानित्यस्वरूप ऐसा जो पारमार्थिक सत्, ऐसा। सत् ही ऐसा परमार्थ है कि नित्यानित्यस्वरूप है। वहाँ ऐसा कहा था। नित्यानित्यस्वभाववाला होने से। देखो, नीचे है इसकी नोट पारमार्थिक = वास्तविक; यथार्थ; सच्चा। वास्तविक सत्.... अर्थात् जो वस्तु है, वह नित्यानित्यस्वरूप होता है। उत्पादव्यय अनित्यता को और ध्रौव्य नित्यता को बतलाता है, इसलिए उत्पादव्ययध्रौव्य नित्या-नित्यस्वरूप वास्तविक सत् को बतलाते हैं। इस प्रकार 'द्रव्य उत्पादव्यय-ध्रौव्यवाला है' — ऐसा कहने से 'वह सत् है' — ऐसा भी बिना कहे ही आ जाता है। कहो, समझ में आया ? पढ़ा है इस प्रकार से ? हाँ करना या नहीं करना ? लो है जवाब ? इस प्रकार से पढ़ा है ? यह ना नहीं करेंगे। नहीं ? आहाहा !

सम्यग्ज्ञान भेदज्ञान का विषय है, लो ! भेदज्ञान। प्रत्येक वस्तु उससे सत्, उससे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, उससे गुण-पर्याय। तेरा तुझसे और उसका उससे। एक रजकण का फेरफार तू कर नहीं सकता और एक रजकण तुझे कहीं फेरफार करता नहीं। तुझमें अनित्यपना तेरे कारण से, उसमें दूसरा अनित्यपना फेरफार कैसे कर सके ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : कमर कसने जैसी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह कमर कसना किस ओर ? इस लक्षण से अन्दर द्रव्य का लक्ष्य करना, उसका नाम कमर कसना है। तेरी चीज़ है, दूसरी कौन कमर कसनी है ? द्रव्य के लक्षण को बराबर पकड़ना और फिर द्रव्य पर स्थिर होना, यह कमर कसना। कमर कसना क्या बाहर में कुदक्का मारना है.... वह कमर कसना। क्या है ? शब्द बराबर पकड़ रखे हैं, हों ! कहो, समझ में आया इसमें ?

उत्पाद-व्यय-ध्रुव, नित्य-अनित्यस्वरूप। कौन स्वरूप ? पारमार्थिक सत् वास्तविक सत् वह नित्य-अनित्य परमार्थ स्वयं है। इसलिए वह उत्पाद-व्यय को अनित्य प्रसिद्ध करता है और ध्रुव को नित्य प्रसिद्ध करता है। इसलिए इसमें सत् आ

गया। उत्पाद-व्यय-ध्रुव में सत् आ गया। अब उत्पाद-व्यय-ध्रुव अपने स्वरूप की प्राप्ति के कारणभूत गुण-पर्यायों को प्रसिद्ध करता है। उत्पाद-व्यय और ध्रुव प्रत्येक द्रव्य का, वह अपने स्वरूप की, अपने अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रुव के स्वरूप की प्राप्ति के कारणभूत गुण-पर्यायों को प्रसिद्ध करता है। देखो! इसका स्पष्टीकरण नीचे अपने = उत्पादव्ययध्रौव्य के.... यह उत्पाद-व्यय... सत् को और गुण-पर्यायों को मिलाते हैं। उसके सत् को मिलाया पहले। अब उत्पाद-व्यय-ध्रुव को गुण-पर्याय के साथ मिलाते हैं।

यदि गुण हो तभी ध्रौव्य होता है,... गुण कायम हो तो ध्रुव हो, और यदि पर्यायें हों तभी उत्पादव्यय होता है; इसलिए यदि गुणपर्यायें न हों तो उत्पादव्ययध्रौव्य अपने स्वरूप को प्राप्त हो ही नहीं सकते। देखो! उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य गुण-पर्याय के कारण से अपने स्वरूप को पा सकते हैं। पर के कारण पा नहीं सकते। यदि गुणपर्यायें न हों तो उत्पादव्ययध्रौव्य अपने.... अपने अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रुव का स्वरूप को प्राप्त हो ही नहीं सकते। गुण-पर्याय बिना के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को पा नहीं सकते। पर के कारण पा नहीं सकते, ऐसा नहीं है। इस प्रकार 'द्रव्य उत्पादव्ययध्रौव्यवाला है' — ऐसा कहने से वह गुणपर्यायवाला भी सिद्ध हो जाता है। समझ में आया? दो बोल हुए। अब तीसरा रहा। तीसरा कौन? ऐई! देवानुप्रिया! लो, ऐ... ऐं.... हो गया।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उसमें ही आता है, वहाँ आगे कहाँ गये? गुण-पर्याय।

पहला—प्रत्येक वस्तु सत् है, इसलिए नित्यानित्य है। इसलिए उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाला है, इसलिए गुण-पर्यायवाला है, ऐसा सिद्ध किया। दूसरा लक्षण उत्पाद-व्यय-ध्रुव है, वह उत्पाद-व्यय-ध्रुव वह सत् परमार्थ को बतलाता है और उत्पाद-व्यय-ध्रुव वह गुण-पर्याय को पाता है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव वह गुण-पर्याय को पाता है। अब रहे गुण-पर्याय। तीसरा बोल। उसके साथ सत् को और उत्पाद-व्यय-ध्रुव को मिलाना। उसमें जरा मिलाने में अन्तर किया। पहले सत् के साथ नहीं मिलाया।

गुण-पर्यायें.... पहले उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के साथ मिलाया। फिर.... इतना जरा कथन पद्धति में अन्तर किया। क्या कहा? जो आत्मा और यह परमाणु गुण-पर्यायों के

लक्षणवाले हैं, वे गुण-पर्यायें अन्वय और व्यतिरेकवाले होने से। पहले सत् को नित्यानित्यस्वभाववाला होने से कहा था। समझ में आया? और उसे अन्वय और व्यतिरेकवाला होने से। अर्थात्? देखो, नीचे है। प्रथम तो, गुणपर्यायें अन्वय द्वारा ध्रौव्य को... अन्वय अर्थात् कायम रहना, सदृश्यरूप से रहना। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु में गुण सदृश्यरूप से शक्तिरूप से कायम रहते हैं। वे गुणपर्यायें अन्वय द्वारा ध्रौव्य को सूचित करते हैं और व्यतिरेक.... अर्थात् भिन्न-भिन्न अवस्था द्वारा उत्पादव्यय को सूचित करते हैं; इस प्रकार वे उत्पादव्ययध्रौव्य को सूचित करते हैं। दूसरे, गुणपर्यायें अन्वय द्वारा नित्यता को बतलाते हैं और व्यतिरेक द्वारा अनित्यता को बतलाते हैं; —इस प्रकार वे नित्यानित्यस्वरूप सत् को बतलाते हैं। इस प्रकार वे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को सूचित करते हैं। दूसरा, गुण-पर्यायें अन्वय द्वारा नित्यता को बतलाते हैं और व्यतिरेक द्वारा अनित्यता को बतलाते हैं; इस प्रकार वे नित्यानित्यस्वरूप सत् को बतलाते हैं। दोनों आ गये। स्पष्टीकरण तो पण्डितजी ने नीचे वापस बहुत अच्छा किया है।

क्या कहा? आत्मा.... अनन्त आत्मायें और अनन्त परमाणु वे गुण-पर्यायवाले हैं। अर्थात्? गुण अर्थात् कायम रहनेवाली शक्तियाँ और पर्याय अर्थात् क्रम से होनेवाली पर्यायें। वह प्रत्येक वस्तु उसके गुण-पर्यायेंवाली है। उसमें गुण को अन्वय कहते हैं। सदृश्यता रहना ऐसा। व्यतिरेक को भिन्न-भिन्न पर्यायें कहते हैं। ऐसा होने से—गुण-पर्यायें अन्वय और व्यतिरेकवाले, सदृश्यरूप से और भिन्न-भिन्न अवस्थावाले गुण-पर्यायें होने से ध्रौव्य को और उत्पाद-व्यय को सूचित करते हैं। तीसरे लक्षण को दूसरे लक्षण के साथ पहले मिलाया। फिर तीसरे लक्षण को पहले लक्षण के साथ बाद में मिलायेंगे। समझ में आया? गुण-पर्यायें.... ओहोहो! गाथा कौन सी....

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : याद नहीं रहता। ऐई! मोहनभाई! कहते हैं, तीन के नाम याद रहे तो बस है। यह अन्तर्भेद तो कहाँ हमें (याद रहे)? ऐसा कहते हैं। उड़ा देते हैं पूरा वह सब बहुत याद रहता है न संसार का। इसलिए यह (याद नहीं रहता)।

भाई! तू तो केवलज्ञान प्रगट करने की ताकतवाला है न। आहाहा! पूरा केवलज्ञान कन्द तेरे चैतन्य की शक्ति में से निकले। केवलज्ञान का पाक हो, वह तेरा क्षेत्र है। खबर नहीं होती। केवलज्ञान एक समय में भी तीन काल-तीन लोक को जानता है। ऐसे तुझमें गुण शक्तिरूप से पड़े हैं। उसमें से एकाग्र होकर उत्पादरूप से केवलज्ञान प्रगट हो, ऐसी ताकतवाला तू है। ऐसा यहाँ तो कहते हैं। अब उसे पूरी बात धारना, उसे महँगी पड़ती है, यह तुझे शोभा नहीं देता। ऐई! मास्टर रतिभाई! यह कहे याद न रहे। अरे! प्रभु! तुझे नहीं शोभा देता, हों! ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

अरे! तेरी स्मृति में.... एक याद आया। वह आता है न भाई! परमात्मप्रकाश में? वस्तु स्तवन.... रामचन्द्रजी आदि बहुत पुरुष सम्यग्दर्शन को प्राप्त होने के पश्चात् वस्तु का स्तवन करते थे। अर्थात् जैसी वस्तु है, उसके स्वरूप का चिन्तन करते थे। जैसे छह द्रव्य हैं,.... रामचन्द्रजी आदि भगवान जितने परमात्मा हुए, वे मोक्ष पधारे हैं। अनादि अरिहन्त भी पहले जब तक.... जीव केवलज्ञान पाये न हो, मुनि हों अथवा गृहस्थाश्रम में हों, (वे) वस्तु का स्तवन करते थे, ऐसा पाठ है। ऐसी वस्तु की शक्तियों की अचिन्त्यता, उसकी पर्याय की अचिन्त्यता, अद्भुतता, महिमा उसे बारम्बार महिमा से देखते थे। समझ में आया? केवलज्ञान होने से पहले मुनि या गृहस्थाश्रम में रहे हुए समकिति गृहस्थ (इस वस्तु का स्तवन करते थे)। आहाहा! समझ में आया? वस्तु आत्मा यह क्या है? उसकी पर्याय की सामर्थ्य कितनी! शक्ति की सामर्थ्य कितनी? परमाणु की शक्ति की सामर्थ्य कितनी? उसकी पर्याय की अवस्था की सामर्थ्य कितनी? उसके वस्तु के स्तवन को जब तक पूर्ण स्वरूप में स्थिर नहीं हो सकते थे, तब तक ऐसे वस्तु के स्तवन को करते थे और भगवान की स्तुति को भी करते थे। समझ में आया?

यह गुण-पर्यायें.... रहनेवाले कायम गुण। और पर्यायें अर्थात् भिन्न-भिन्न होनेवाली अवस्थायें। ऐसे अन्वय और व्यतिरेकवाले गुण-पर्यायें होने से ध्रुव को और उत्पाद-व्यय को सूचित करते हैं। गुण-पर्यायें ध्रुवपना सूचित करते हैं गुण के कारण। और पर्यायें उत्पाद-व्यय नयी-नयी अवस्था हो, पुरानी जाये, उसे सूचित करता है। तीसरे लक्षण को दूसरे लक्षण के साथ पहले मिलाया। अब तीसरे लक्षण को पहले लक्षण से मिलाते हैं। सत् से उठाया, वह सत् से (पूरा) करते हैं।

नित्यानित्यस्वभाववाले पारमार्थिक सत् को बतलाते हैं। कौन? गुण-पर्यायें। प्रत्येक वस्तु गुण और पर्यायवाली है। गुण अर्थात् शक्तियाँ अनन्त। और पर्याय अर्थात् अवस्था क्षण-क्षण में होती है वह। वह गुण-पर्यायवाली होने से, अन्वय-व्यतिरेकवाली होने से नित्य और अनित्य स्वभाववाला ऐसा जो परमार्थ सत्। सत् को परमार्थ शब्द प्रयोग किया। देखो! पहले प्रयोग किया था। परमार्थ सत्, ऐसा। परमार्थ से वस्तु है नित्यानित्यस्वभाववाले पारमार्थिक सत् को.... वह गुण-पर्यायें बतलाती हैं। फावाभाई! यह तो ऐसा लिख डालते हैं तीन नाम याद रहते नहीं। न समझ में आये ऐसा है? इसमें न समझ में आये ऐसा है? पढ़ना भी न आवे।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा होगा? समझ में तो बात आवे इसकी अन्दर। यह गुण, यह पर्याय, यह अन्वय, यह व्यतिरेक, यह नित्य, यह अनित्य, यह सत्, नित्य-अनित्यस्वरूप परमार्थ और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, गुण वह अन्वय, पर्याय वह व्यतिरेक, उसके कारण गुण-पर्याय.... और उसके कारण उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य। मूलभाव ख्याल में आवे तो उसे कुछ रटना पड़े नहीं। यह रटने की कहाँ चीज़ है? घर में निसरणी की सीढ़ियाँ कितनी है? यह खबर होती है या नहीं? मंजिल करानी हो तो निसरणी में कितनी सीढ़ियाँ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी वास्तविक बात है। कालजी बिना के हों, उन्हें खबर भी नहीं होती। कालजी अर्थात्? रामजीभाई जैसों को दरकार नहीं। मकान बनाया और जाओ.... डालो। पैसा ले गया जाओ। किसे.... यहाँ भगवान पूछते हैं तुझे? ऐई! सेठी! उसको शंकर-शंकर न? कौन था वह? तुम्हारा नौकर है न? वह नहीं था? सेवक, सेवक। जाओ, करो और पैसे (ले जाओ)। इतना किया कौन पूछता है? ऐई! देवानुप्रिया! ऐसा यहाँ नहीं, हों! वहाँ तो उस जाति की ममता की दरकार कम, इसलिए (ऐसा हो)। यहाँ तो करनी चाहिए ममता। ममता अर्थात् वस्तु को समझने की दरकार। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

देखो न! एक गाथा द्वारा अमृतचन्द्राचार्य ने मूल पाठ में रहे हुए तीन अक्षरों को एकसाथ अविनाभाव अर्थात् एक हो वहाँ दूसरे होते ही हैं। उसके भाव में ही यह सब आ जाता है। ऐसा यहाँ उनका मेल किया है।

भावार्थ :- द्रव्य के तीन लक्षण हैं; सत् उत्पादव्ययध्रौव्य और गुण पर्यायें। ये तीनों लक्षण परस्पर अविनाभावी हैं;.... एक हों वहाँ दूसरे होते ही हैं। जहाँ एक हो वहाँ शेष दोनों नियम से होते ही हैं। ऐसा एक-एक वस्तु का स्वरूप अनन्त पदार्थ इस प्रकार हैं, ऐसा यदि इसे ज्ञान हो तो उसे स्व के ऊपर लक्ष्य आवे और पर की ओर का लक्ष्य, यह मेरे और यह तेरे, यह दृष्टि छूट जाये। भ्रमणा छूटकर संसार का भ्रमण छूट जाए और आत्मा का.... परिणमन हो, इसलिए यह बात वर्णन की है। आहाहा!

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ११, गुरुवार, दिनांक - २६-१२-१९६३, गाथा-१०-१२, प्रवचन-१९

पंचास्तिकाय, १० गाथा चली। दसवीं में ऐसा कहा कि प्रत्येक पदार्थ सत् है और उसके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हैं और गुण-पर्यायों के आश्रय से है। प्रत्येक वस्तु सर्वज्ञ भगवान, महाश्रमण मुनि ऐसा प्ररूपित करते हैं, ऐसा कहते हैं, ऐसा है। ऐसा कहते आते हैं। भगवान ऐसा कहते हैं.... भगवान ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञान का दूसरा प्रकार होगा ?

वस्तु सब सत् है। सत् के ये लक्षण। और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य संयुक्त-सहित और गुण-पर्याय के आश्रय से। गुण-पर्याय का आश्रय से द्रव्य-द्रव्य।

मुमुक्षु : निमित्त का आश्रय नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो, उसमें तो यह आया। इसमें है देखो! गुणपर्याय का आश्रय है। दसवें में आ गया, देखो! 'गुणपञ्जायसयं' देखो! गुणपर्याय का आश्रय है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : पर्याय के आश्रय से द्रव्य ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यहाँ क्या कहा ? देखो न, सर्वज्ञ द्रव्य कहते हैं। ओहो! भगवान किस प्रकार वस्तु को द्रव्य कहते हैं। है इसमें ? द्रव्य अन्तिम शब्द है। वह द्रव्य सत् है, उसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहित है, अभेद वर्णन किया है और गुण-पर्याय का वह द्रव्य आश्रय है। प्रत्येक द्रव्य अपनी शक्ति या अपनी वर्तमान अवस्था उसका वह आधार और आश्रय है।

मुमुक्षु : दूसरे का नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे का नहीं, यह इसमें आ गया। आ गया....

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है, परन्तु यहाँ तो इससे व्यवहार का ज्ञान कराना हो, तब

यह बात होगी। वस्तु की स्थिति जहाँ निश्चय सत् है, जैसे उसमें प्रत्येक वस्तु, आत्मायें, अनन्त रजकण 'है' यह पहली बात। 'है' इस लक्षण से लक्षित हो तो उसमें कितने गुण और क्या परिणमे, यह बात चलती है। वह 'है' ऐसे लक्षण से लक्षित कहकर उत्पाद-व्यय-ध्रुव संयुक्त अर्थात् वह वस्तु प्रत्येक उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहित है और वह वस्तु उसके गुण और पर्याय को आश्रय है द्रव्य का। गुण और पर्याय को आश्रय द्रव्य का है। प्रत्येक वस्तु के गुण और उसकी पर्याय उसका आश्रय द्रव्य है। पहले बहुत बात की। तीन को मिलाया।

अब इसे दो नय से उठाते हैं।

गाथा - ११

उप्पत्ती व विणासो दव्वस्स य णत्थि अत्थि सब्भावो।
विगमुप्पादधुवत्तं करेत्ति तस्सेव पज्जाया॥११॥

उत्पाद-व्यय से रहित केवल सत् स्वभावी द्रव्य है।

द्रव्य की पर्याय ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवता धरे॥११॥

अन्वयार्थ :- [द्रव्यस्य च] द्रव्य का [उत्पत्तिः] उत्पाद [वा] या [विनाशः] विनाश [न अस्ति] नहीं है, [सद्भावः अस्ति] सद्भाव है। [तस्य एव पर्यायाः] उसी की पर्यायें [विगमोत्पादध्रुवत्वं] विनाश, उत्पाद और ध्रुवता [कुर्वन्ति] करती हैं।

टीका :- यहाँ दोनों नयों द्वारा द्रव्य का लक्षण विभक्त किया है (अर्थात् दो नयों की अपेक्षा से द्रव्य के लक्षण के दो विभाग किये गये हैं।)

सहवर्ती गुणों और क्रमवर्ती पर्यायों के सद्भावरूप, त्रिकाल-अवस्थायी (त्रिकाल स्थित रहनेवाले), अनादि-अनन्त द्रव्य के विनाश और उत्पाद उचित नहीं है। परन्तु उसी की पर्यायों के-सहवर्ती कतिपय (पर्यायों) का ध्रौव्य होने पर भी अन्य क्रमवर्ती (पर्यायों) के-विनाश और उत्पाद होना घटित होते हैं। इसलिए द्रव्य द्रव्यार्थिक आदेश से (-कथन से) उत्पाद रहित, विनाश रहित, सत्स्वभाववाला ही जानना चाहिए और वही (द्रव्य) पर्यायार्थिक आदेश से उत्पादवाला और विनाशवाला जानना चाहिए।

- यह सब निरवद्य (-निर्दोष, निर्बाध, अविरुद्ध) है, क्योंकि द्रव्य और पर्यायों का अभेद (-अभिन्नपना) है॥११॥

गाथा - ११ पर प्रवचन

उप्पत्ती व विणासो दव्वस्स य णत्थि अत्थि सब्भावो।
विगमुप्पादधुवत्तं करेत्ति तस्सेव पज्जाया॥११॥

उत्पाद-व्यय से रहित केवल सत् स्वभावी द्रव्य है।

द्रव्य की पर्याय ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवता धरे॥११॥

११वीं गाथा। टीका :- यहाँ दोनों नयों द्वारा... दो नय अर्थात् ज्ञान के दो पहलू। ज्ञान पर्यायरूप से प्रमाण परन्तु उसके दो भाग पड़ते हैं। ज्ञान के दो भाग। उसे विषयरूप से क्या-क्या होता है, उसका यहाँ ज्ञान में भाग (कहते हैं)। नय, वह ज्ञान का एक भाग है। किस ज्ञान का? त्रिकाल ज्ञान का भाग है? क्या कहना? सेठी! आत्मा वस्तु है उसका अन्दर ज्ञान त्रिकाल गुण है। उसकी वर्तमान ज्ञान की पर्याय जो सामान्य द्रव्य को अथवा गुण को जानती है और वर्तमान अंश अर्थात् दशा को जाने, एकसाथ। ऐसे ज्ञान की दशा को प्रमाण कहते हैं। उस प्रमाण के दो भाग हैं। उसे नय कहते हैं।

यहाँ दोनों नयों द्वारा द्रव्य का.... अर्थात् पदार्थ का—छहों द्रव्य का। लक्षण विभक्त किया है.... लक्षण के भाग किये हैं। दो नय के लक्षण के भाग किये हैं। द्रव्य का लक्षण विभक्त किया अर्थात् नय का जो स्वरूप है, उस प्रकार से द्रव्य के लक्षण के भाग किये हैं। (अर्थात् दो नयों की अपेक्षा से द्रव्य के लक्षण के दो विभाग किये गये हैं।) लो। समझ में आया? लोगों को बहुत कठिन लगे। अभ्यास नहीं होता न, सेठी!

अब प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक आत्मा जो है, वह सहवर्ती गुण—अनन्त गुण साथ में रहे हुए, प्रत्येक चीज़ में है। आत्मा या एक-एक रजकण, उसमें अनन्त गुण—शक्तियाँ साथ में गुण—शक्तियाँ रही हुई हैं। वे सहवर्ती गुणों और क्रमवर्ती पर्यायों के.... प्रत्येक द्रव्य में क्रम-क्रम से नयी-नयी अवस्थाएँ होती हैं, उन्हें क्रम से वर्तनेवाली पर्यायें कहा जाता है। क्रमवर्ती पर्यायों के सद्भावरूप,... द्रव्य। वस्तु जो है आत्मा और परमाणु, आकाश, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, काल, उसके साथ अनन्त गुण रहे हुए और क्रम-क्रम से होनेवाली अवस्थाएँ, उनके सद्भावरूप वह वस्तु है, सद्भावरूप है।

वह सद्भावरूप त्रिकाल-अवस्थायी (त्रिकाल स्थित रहनेवाले),... द्रव्य लेते हैं। (त्रिकाल स्थित रहनेवाले), अनादि-अनन्त... प्रत्येक रजकण और प्रत्येक आत्मा तीनों काल टिकनेवाले अनादि-अनन्त हैं। उस द्रव्य का अर्थात् वस्तु का विनाश और उत्पाद उचित नहीं हैं। उस वस्तु का.... वस्तु विनाश पावे या वस्तु उत्पन्न हो, ऐसी चीज़ नहीं है। सद्भावरूप जो वस्तु। अनादि-अनन्त तीन काल टिकनेवाले ऐसे द्रव्य का अभाव हो या ऐसे द्रव्य का ही उत्पाद हो, वह उचित नहीं है। समझ में आया?

परन्तु उसी की पर्यायों के- उसी वस्तु के। आत्मा के और रजकण-रजकण के पर्यायों के-सहवर्ती कुछ (पर्यायों) का ध्रौव्य होने पर भी.... उसी वस्तु में आत्मा में और परमाणु में अनन्त गुण एक क्षण में साथ में रहते होने पर भी.... सहवर्ती पर्याय कही। ध्रौव्य होने पर भी.... आत्मा में और परमाणु में अनन्त गुण साथ में रहते होने पर भी उसका ध्रुव होने पर भी दूसरे क्रमवर्ती के, दूसरी पर्यायें क्रम-क्रम से होती हैं उनके विनाश और उत्पाद होना घटित होते हैं। समझ में आया? सर्वज्ञ भगवान ऐसा कहते हैं। ऐसा पहले कहा। १२वें में वापस कहेंगे। 'समणा परूवेति' सन्त अर्थात् वीतरागी मुनि उन्हें यहाँ श्रमण कहते हैं। समझ में आया? यह पहली ही गाथा में आ गया है न! पहली ही गाथा में आ गया है और बारहवें में है। 'समणा परूवेति' और यह.... १२वीं में 'समणा' आता है न! नौवीं में 'समणा' आता है न?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो १० में। यह तो कहा। 'भण्णंते' वहाँ समुच्चय बात है नौवीं में। 'भण्णंते' इतनी बात है। और १०वीं में 'भण्णंति सव्वण्हू' ऐसा है। ११ में ऐसा कहा। १२वीं में 'समणा परूवेति' ऐसा कहेंगे। समझ में आया? पहली गाथा में से ही शुरू किया है। 'समणा'।

वीतराग सर्वज्ञ को श्रमण कहते हैं। सन्त वीतरागी थे। उससे केवलज्ञान हुआ, वह भी वीतरागी ही श्रमण कहने में आते हैं। केवलज्ञान प्राप्त वीतरागी श्रमण, चैतन्य की जिसकी शक्ति का पूर्ण विकास पर्याय में हुआ है, ऐसे महा श्रमण—भगवान, केवली, वीतरागी, अरिहन्त ऐसा कहते थे, ऐसा प्ररूपित करते थे, ऐसा आचार्य कहते हैं। अहो! महा श्रमणो, आत्मा का वीतराग पिण्ड अकेली जमावट हो गयी है। ऐसे वीतरागी महासन्त ऐसा कहते थे कि द्रव्य, वह अनादि-अनन्त है। उसका उत्पाद और विनाश उचित नहीं है। और जो कितने ही पर्याय साथ में रहे—सहवर्ती गुण। और क्रमवर्ती पर्यायें, उनका विनाश और उत्पाद होना घटित होता है। ओहो! वस्तु स्वभाव। लोगों को ऐसा लगता है कि यह क्या है? यह क्या कहते हैं? हमें धर्म करना है उसमें। होना है, सुखी होना है, उसमें यह क्या?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह श्रम अर्थात् आनन्द का उग्र पुरुषार्थ करे, उसे श्रमण कहा जाता है। उसे दूसरा डालकर हल्का कर देना था। बहुत श्रम करे, बहुत मेहनत करे, ऐसा। समझ में आया? मेहनत किसकी? यह तो पहले आया। वीतराग पर्याय का महापुरुषार्थ करके जिसने महाश्रमणपना, सर्वज्ञपना प्रगट किया है, ऐसे सन्तों की, केवलियों की वाणी में ऐसा आया। कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं ऐसा कहते हैं, लो। श्रमण ऐसा कहते हैं। श्रमण के मुख में से ऐसा आया है। देखो न कितनी निर्मानता है! समझ में आया? पहली गाथा में आया था या नहीं? पहली में नहीं आया था? पहली। 'समणमुहुग्गदमट्टं' दूसरी गाथा में आया था। 'समणमुहुग्गदमट्टं' यह तो 'जिणाणां' कहकर नमस्कार किया। परन्तु कहनेवाले ने यहाँ से लिया। 'समणमुहुग्गदमट्टं' दूसरी गाथा। श्रमण के मुख में से निकली हुई गाथा। मुख में से निकली हुई अर्थ में आया। है न? अर्थ है न शब्द? ओहोहो! विनय वह कहीं विनय! देखो तो सही! अहो! भगवान श्रमण महावीतरागी श्रमण। श्रम का अर्थ उसे मेहनता करना थी। मेहनत करके। वह मेहनत अर्थात् यह सब। ऐसे का ऐसे नहीं मिल जाता सहज से। ऐसा। जरा ऐसा करना पड़े, ऐसा करना पड़े। देवानुप्रिया! उसके पेट में यह था।

यहाँ तो आत्मा ज्ञान का कन्द चैतन्यमूर्ति अन्तर सन्मुख में ढलने का जो प्रयत्न उसे श्रम कहते हैं। उस श्रम को प्राप्त, पूर्ण पुरुषार्थ को प्राप्त सन्तों को श्रमण कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह महा श्रमण। अर्थ में ऐसा कहा है न फिर? दूसरी गाथा में। श्रमण के मुख में कहे हुए। श्रमण अर्थात् महाश्रमण, वापस ऐसा कहा, देखो टीका। महाश्रमण सर्वज्ञ वीतरागदेव। चैतन्य के ढाले में अन्दर में ढल गये हैं। उस उग्र पुरुषार्थ के ध्यान द्वारा अन्तर ढाले में ढल गये हैं अन्तर में। और विकास पूर्ण हो गया, उन्हें श्रमण और केवली और वीतराग कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

ऐसे श्रमण यह कहते हैं कि द्रव्य का पर्याय से, ... द्रव्य का विनाश और उत्पाद वह उचित नहीं परन्तु पर्याय का विनाश और उत्पाद होना घटित होता है। वह उचित है। कहो, समझ में आया इसमें? स्वयं के कारण से, हों! उसमें दूसरे के कारण से नहीं।

जीव उसका उत्पाद-व्ययवाला है या नहीं? बहुत गड़बड़ हो गयी है। ऐसी हुई थी, अब निकल गया है अन्दर से। परन्तु यह सूझता नहीं और सूझ पड़ती नहीं। समझ में आया? अरे! वस्तु! स्वतन्त्र सत् अपने द्रव्य से त्रिकाल उत्पन्न या विनाश पावे नहीं, और पर्याय से उत्पाद-व्यय उचित कहो, घटित होता है कहो। उसमें पर्याय से उत्पत्ति-व्यय उसके कारण से उसके प्रत्येक द्रव्य में होती है। दूसरे द्रव्य का उत्पाद-व्यय दूसरे द्रव्य से नहीं होता। क्योंकि उसकी पर्याय और गुण का आधार तो वह द्रव्य है। किसी की पर्याय के उत्पाद की पर्याय का आधार दूसरा द्रव्य आश्रय है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

वीतरागी मुनि, अनादि काल से सन्त श्रमण होते आये। महाश्रमण होते आये। कुन्दकुन्दाचार्य की भाषा 'समणा परूवेति' श्रमण में केवली किया है, हों! परन्तु यह साधु पन्थ.... जो संस्कृति, साधु की संस्कृति, साधकदशा के संस्कार से, वीतरागभाव के संस्कार से जो श्रमणपना अर्थात् महाश्रमणपना.... अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त आनन्द—ऐसे चतुष्टय को महाश्रमण प्राप्त हुए। वह प्ररूपित करते हैं। यहाँ तो व्यवहार से भाषा है। यह कहते हैं। वस्तु का उत्पन्न और विनाश उचित नहीं। उसकी पर्याय का उत्पाद और विनाश उचित और वाजबी घटित होता है। कहो, समझ में आया?

इसलिए द्रव्य.... इसलिए वस्तु प्रत्येक आत्मा या परमाणु द्रव्यार्थिक आदेश से (—कथन से) उत्पादरहित, विनाशरहित, सत् स्वभाववाला ही जानना चाहिए.... लो! समझ में आया? सत् स्वभाव है न पहली (लाईन) का अन्तिम? सद्भाव, सद्भाव, सत् स्वभाव। द्रव्यार्थिकनय से आत्मा। द्रव्य अर्थात् ऐसा का ऐसा टिकने की अपेक्षा से आत्मा उत्पादरहित, विनाशरहित, सत् स्वभाववाला.... सत्स्वभाववाला त्रिकाल है.... त्रिकाल है.... त्रिकाल है। वैसे परमाणु उत्पाद-व्यय बिना का अपना स्वभाव का सत्स्वभावरूप परमाणु भी त्रिकाल.... त्रिकाल.... त्रिकाल.... त्रिकाल है। अरे! यह भेदज्ञान करे तो इसे समता हो। समझ में आया? खदबदाहट मिट जाये। दूसरे ने ऐसा किया, दूसरे ने ऐसा किया, मुझे ऐसा किया। किसी ने किया नहीं। सुन न! तुझमें तू कर, दूसरे में वह करे। कहाँ निवृत्त था कि वह तुझे करने आवे? यह कहाँ कार्य के

करनेरहित निवृत्त था कि तेरा कार्य करने आवे ? और तू कहाँ कार्य से निवृत्त है कि तेरे कार्य में दूसरा आकर कर जाये ? सेठी ! समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा बोलो न। देवानुप्रिया ! यह तो निमित्त से बात की। अधिगम और निसर्ग की बात की है। ठीक, परन्तु याद है। बराबर समय में तो रखता है। कहो, समझ में आया ? जागनेवाला जगा कौन ? जगानेवाले के कारण जगा ? या जागनेवाले के कारण स्वयं जगा ? उसके कारण जगे तो भगवान तो अनन्त काल से जगाते आते हैं।

मुमुक्षु : दोनों की सन्धि तो मिली चाहिए न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सन्धि का अर्थ क्या ? अपने से जगे, तब दूसरी चीज़ ने मुझे जगाया, ऐसा कहने में आता है। यह समयसार (में) नहीं आता ? गुरु के बारम्बार कहने से जगा। आता है या नहीं ? किसमें ? समयसार में। वस्त्र ओढ़कर सो रहा है और जगाया धोबी ने। बारम्बार गुरु के कहने से। एकबार कहे तो सुने, समझे, ऐसा नहीं। कहो, समझ में आया ? यहाँ समझनेवाले का उत्पाद का उत्पाद करनेवाला कौन ? वह उत्पाद किसके आश्रय से होता है ? द्रव्य के आश्रय से अपने द्रव्य के आश्रय से होता है या उस जगानेवाले के द्रव्य के आश्रय से होता है ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा ! अर्थात् कि वह पृथक्-पृथक् कार्य कर रहे हैं। उसे कौन बदल सके ? इसका अर्थ यह। निमित्त-निमित्त का अर्थ कि पृथक्-पृथक् कार्य कर रहे हैं, उन्हें कौन बदले ? ऐसा उसका अर्थ है। कहो, समझ में आया इसमें ? वहाँ भी ऐसा लगाते होंगे यहाँ का थोड़ा उसके सामने। समझण लगाये यह। कहो, समझ में आया ? आहाहा !

वीतराग... शरीर का चाहे जैसा हो। यह तो तीर्थंकर आदि की वाणी हुई; इसलिए यह तो अलौकिक बात है। परन्तु दूसरे सामान्य केवली होते हैं, जहाँ वीतराग पूर्ण दशा हो गयी उनकी वाणी में आया तो यही आया है। केवली, सामान्य केवली।

तीर्थकर सर्वोत्कृष्ट पुण्य के धनी और उन्हें समवसरण आदि होता है। परन्तु उनके अन्तर में यह कुछ है नहीं। उसे और उन्हें कुछ सम्बन्ध नहीं है। वाणी का योग भी उसके कारण से निकला। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से ऐसा कहा गया, देखो यहाँ। 'परूवेति'— भगवान ने कहा। बाकी तो वाणी, वाणी के कारण से निकली है। परन्तु कहनेवाले का निमित्त कैसा था, यह बतलाने को भगवान ने कहा है, ऐसा कहने में आया है। लो!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वाणी कहाँ उसकी थी? वह तो यहाँ कहते हैं। वाणी का एक-एक रजकण उत्पाद के कारण से, उसके परमाणु के कारण से उत्पाद है। वह कहीं भगवान के कारण से उसका उत्पाद है? भगवान ऐसा स्वयं कहते हैं। यह वाणी के परमाणु का समय-समय का उत्पाद और पूर्व की पर्याय का व्यय, वह दोनों उस परमाणु के आश्रय से है। मेरे आश्रय से नहीं। भाई! आया या नहीं इसमें? अरे...!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : बन्द रही वाणी। परमाणु में नहीं निकलने की थी, वह अवस्था (होनेवाली) नहीं थी।.... इसलिए हुई। समझे न? तुम्हारा तो वह कहना था, निमित्त नहीं था इसलिए। परन्तु यहाँ परमाणु में परिणमने का उस समय भाषा का काल नहीं था, इसलिए भाषा नहीं निकली। बोलने में ऐसा आया (कि) गणधर नहीं थे, इसलिए वाणी नहीं निकली। बोलने में ऐसा आया। निमित्त के अभाव का। वाणी ६६ दिन में निकली। केवलज्ञान को खबर नहीं कि इस समय वाणी निकलेगी? वाणी का.... उस समय परिणमेगा? समझ में आया? केवलज्ञान तो हुआ। राजगृही। राजगृही नगरी। विपुलाचल पर्वत। ऐसा है न?

वीतराग केवलज्ञान तो हुआ। उनकी वाणी के कर्ताहर्ता वे कहाँ हैं? वाणी का योग ही नहीं था। यह तो यहाँ कहते हैं। परमाणु का उत्पाद और व्यय उसके परमाणु के आश्रय से है। वह उत्पाद-व्यय कहीं मेरे आश्रय से नहीं थे। भाषा उत्पन्न हुई, वह मेरे आश्रय से नहीं थी। तथा गणधर आये, इसलिए भाषा की पर्याय उत्पन्न हुई, ऐसा नहीं है। उस पर्याय का उत्पाद गणधर के कारण नहीं है। ऐई! देवानुप्रिया! व्यवहार के बोल

पर घोड़ा हो जाता है। व्यवहार ऐसा है। जरा सा फल देखे न तो ऐसा हो जाये, देखो! मेरे बिना चलता है? मेरे बिना चलता है? व्यवहार से.... समझाना पड़ता है या नहीं? समझाना पड़े परन्तु वह अनुसरण करनेयोग्य नहीं है। समझ में आया?

और वही (द्रव्य) पर्यायार्थिक आदेश से उत्पादवाला तथा विनाशवाला जानना चाहिए। लो! वह सत् स्वभाववाला देखना—द्रव्य से। पर्याय अर्थात् अवस्था से देखो। पूर्व की अवस्था व्यय हो, नयी अवस्था उत्पन्न, वह-वह पदार्थ स्वयं के कारण से, ऐसा उत्पाद और विनाशवाला जानना। आचार्यों की कथनी...! —यह सब निरवद्य.... देखा! 'सर्वमिदमनवद्यं च' यह सब निर्दोष है, निर्दोष है। वस्तु का... स्वभाव वस्तु के कारण से, उत्पाद-व्यय पर्याय के कारण से, वह वस्तु का निर्दोष स्वभाव है। समझ में आया? यहाँ से घोटाला उठावे तो उसकी श्रद्धा में सदोषता होगी। यहाँ (वस्तु में) होगी नहीं।

यह सब निरवद्य (—निर्दोष, निर्बाध, अविरोद्ध) है,.... परमाणु से परमाणु की पर्याय उत्पन्न होती है, विनाश होती है, वह पर्याय के आश्रित वर्तमान अवस्था, अंश को आश्रयदृष्टि से वह अंश उसमें से होता है। अंश हुआ, अंश गया और ध्रुव रहा। यह सब कथन निरवद्य है। एक भी बोल को बराबर बैठावे तो पूरा शासन बैठ जाये। लो। एक भाव को बराबर बैठाने से पूरा शासन (बैठ जाता है)। ऐसी चीज़ है। एक भाग.... है न? 'ऐगं जाणई, सव्वं जाणई' नहीं। यह और अलग। यह तो एक भाव को जाने, वह सब भाव को जाने, ऐसा आता है।

क्योंकि द्रव्य और पर्यायों का अभेद है (—अभिन्नपना) है। दोनों का अभिन्नपना। प्रत्येक वस्तु आत्मा और परमाणु, वह ध्रुवपना और उत्पाद-व्यय उससे द्रव्य अभेद है। कहो, पर से भेद है और स्वयं से अभेद है। अपने उत्पाद-व्यय से अभेद और पर से भेद। आहाहा! यहाँ तो अनन्त परमाणु... इससे यह हो, इससे यह हो (ऐसा नहीं है)।

गाथा - १२

पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूवेत्ति॥१२॥

पर्याय विरहित द्रव्य नहीं नहि द्रव्य बिन पर्याय है।
श्रमणजन यह कहें कि दोनों अनन्य-अभिन्न हैं॥१२॥

अन्वयार्थ :- [पर्यायवियुतं] पर्यायों से रहित [द्रव्यं] द्रव्य [च] और [द्रव्यवियुक्ताः] द्रव्य रहित [पर्यायाः] पर्यायों [न सन्ति] नहीं होती; [द्वयोः] दोनों का [अनन्यभूतं भावं] अनन्यभाव (-अनन्यपना) [श्रमणाः] श्रमण [प्ररूपयन्ति] प्ररूपित करते हैं।

टीका :- यहाँ द्रव्य और पर्यायों का अभेद दर्शाया है।

जिस प्रकार दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि से रहित गोरस नहीं होता, उसी प्रकार पर्यायों से रहित द्रव्य नहीं होता; जिस प्रकार गोरस से रहित दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि नहीं होते, उसी प्रकार द्रव्य से रहित पर्यायों नहीं होती। इसलिए यद्यपि द्रव्य और पर्यायों का आदेशवशात् (-कथन के वश) कथंचित् भेद है तथापि, वे एक अस्तित्व में नियत (-दृढरूप से स्थित) होने के कारण *अन्योन्यवृत्ति नहीं छोड़ते, इसलिए वस्तुरूप से उनका अभेद है॥१२॥

गाथा - १२ पर प्रवचन

१२। अब इसे सिद्ध करते हैं कि पर्याय बिना द्रव्य नहीं होता और द्रव्य बिना पर्याय नहीं होती। दोनों को साथ में वर्णन करते हैं नय से।

पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूवेत्ति॥१२॥

* अन्योन्यवृत्ति=एक-दूसरे के आश्रय से निर्वाह करना; एक-दूसरे के आधार से स्थित रहना; एक-दूसरे के बना रहना।

ओहो! देखो न निर्मानता कितनी! वीतराग सन्त कुन्दकुन्दाचार्य.... मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं। जो तीसरे नम्बर पर गणधर के पश्चात् आये, वे स्वयं कहते हैं कि श्रमण... परन्तु ऐसी सादी बात साधारण को तो ऐसा लगे। यह तो उसमें क्या परन्तु? पर्याय बिना का द्रव्य नहीं और द्रव्य बिना की पर्याय नहीं। लो, सामान्य बिना का विशेष नहीं और विशेष बिना का सामान्य नहीं। अब इसमें क्या था? एक व्यक्ति कहता था। अरे! भगवान! ओहोहो! उसमें क्या सामान्य विशेष, सामान्य विशेष। बापू! यह सामान्य वह द्रव्य, उस विशेष बिना का नहीं होता और विशेष पर्याय, वह द्रव्य बिना की नहीं होती। ओहो! उसमें तो पूरा भेद तोड़ डाला। जगत के सब पदार्थ अपनी पर्याय बिना का द्रव्य नहीं और अपने द्रव्य बिना अपनी पर्याय नहीं। पर के द्रव्य बिना पर्याय नहीं, (ऐसा नहीं)। देवानुप्रिया! भगवान बिना वाणी नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। गणधर बिना वाणी नहीं, ऐसा नहीं। उसकी पर्याय बिना का वह द्रव्य नहीं और उस द्रव्य बिना की उसकी पर्याय नहीं। ओहोहो! क्या करना परन्तु? वह अधिक कथन आवे इकट्ठा यह.... अकेली मैल की कोटडी में रहना तो कहीं दाग लग जाये या नहीं?

पर्याय विरहित द्रव्य नहीं नहि द्रव्य बिन पर्याय है।

श्रमणजन यह कहें कि दोनों अनन्य-अभिन्न हैं॥१२॥

एक-एक बात कितनी.... एक-एक बात में। अहो! महामुनि, केवली, तीर्थकर तो ऐसा कहते हैं। आहाहा! वे कहे, हम कहते हैं, हम कहते हैं। अरे! भगवान! तू कौन, भाई! कुन्दकुन्दाचार्य जैसे एक ऐसी सादी बात (कहने पर ऐसा कहते हैं) लोगों ने बहुत बार सुनी हो न, इसलिए ऐसा लगे कि यह तो पर्याय बिना द्रव्य नहीं। अब सुन न भाई! समझ में आया?

टीका :- यहाँ द्रव्य और पर्यायों का अभेद दर्शाया है। इसमें आ गया। उसमें श्रमण नहीं आवे अब टीका में। समझ में आया? यह पाठ में आ गया। दर्शाया है, उसमें आ गया, लो न! यहाँ.... प्रत्येक वस्तु और उसकी पर्याय। अर्थात् उस क्षण में नयी-नयी होनेवाली अवस्था, उसका अभेद श्रमणों ने दर्शाया है, ऐसा लेना। उसका अभेद महामुनि

वीतराग सन्त पुकार करके यह कह गये हैं। समझ में आया ?

जिस प्रकार दूध, दही, मक्खन,... दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि से रहित गोरस नहीं होता.... ऐसा कि गोरस है परन्तु कोई दशा न हो—हालत न हो—पर्याय न हो—अवस्था न हो। दूध की, दही की, मक्खन, घी अवस्था है। अवस्था अर्थात् कार्य है। पर्याय अर्थात् दशा है। उस दशा बिना का गोरस होता नहीं। उसी प्रकार पर्यायों से रहित द्रव्य नहीं होता;.... मनुष्य, युवा, बाल और वृद्ध अवस्था बिना का मनुष्य होता नहीं। समझ में आया ? जैसे दूध, दही और मक्खन, घी आदि अवस्था, इसके बिना का गोरस नहीं होता। गोरस अर्थात् क्या ? गाय का रस। दूध, दही ऐसा नहीं। दूध, दही तो अवस्था है। गोरस अर्थात् गाय का रस, ऐसा। उस रस की ये पर्यायें हैं। दूध, दही, मक्खन, घी, छाछ इत्यादि इनसे रहित गोरस नहीं है। सामान्यरूप से.... विशेष अवस्था बिना नहीं रहता, नहीं रहता। क्यों ? प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु पर्यायों से रहित द्रव्य नहीं होता। उस अवस्था बिना का द्रव्य नहीं होता। कहो, समझ में आया इसमें ? यह पहली पर्याय कौन सी अनादि में ? कहो। ऐ... जीतु ! पहली पर्याय कौन सी होगी इस आत्मा की ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : क्यों नहीं होगी ?

मुमुक्षु : अनादि-अनन्त चला आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अनादि का.... अनादि का पहला होगा या नहीं ? पहले घोड़ा था या पहले मनुष्य था ? कुछ पहले नहीं होगा ? सेठी आये हैं या नहीं ? क्या है इसमें ?

मुमुक्षु : सच्ची बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या सच्ची बात है ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अनादि भी पहला कुछ होगा या नहीं ?

कहते हैं कि यदि पहली पर्याय हो तो उसके पहले द्रव्य, पर्याय बिना का रहा। ऐसा हुआ या नहीं? रतिभाई! ऐसा कहते हैं, यह पर्याय पहली। तो फिर द्रव्य? द्रव्य.... पर्याय यह पहली। तो वह द्रव्य उससे पहले, पर्याय पहली कही, उससे पहले द्रव्य पर्याय बिना का रहा। परन्तु पर्याय बिना का द्रव्य हो नहीं सकता। कहो, बराबर है? ऐ...! देवानुप्रिया! आहाहा! ...ऐसी की ऐसी अवस्थायें पहले थी... पहले थी, वह आयी ऐसा है? आहाहा! वस्तु अनादि न हो तो यह पर्याय पहली किसकी? और पर्याय अर्थात् अवस्था, वह अवस्था पहली तो द्रव्य किसका? द्रव्य पहला और पर्याय बाद में? यह वस्तु का स्वभाव ही कोई अचिन्त्य और अलौकिक है! वजुभाई! ...ऐसी की ऐसी अवस्थायें यह कब पहली.... परन्तु किसे पहली कहना? ऐसी की ऐसी अनादि के रजकणों की अवस्थायें नयी-नयी होती है, परन्तु तथापि अनादि की ऐसी की ऐसी है। जीव भी अनादि का है और जीवपर्याय भी अनादि की और द्रव्य भी अनादि का। लोग प्रश्न करते हैं। केवली ने यदि सब देखा तो मेरी पहली पर्याय कौन सी, यह क्यों नहीं देखा? रतिभाई!

भगवान! पर्याय बिना का द्रव्य नहीं होता। जब द्रव्य भी अनादि तो पर्याय भी अनादि। पर्याय बिना की चीज़ होती नहीं, अवस्था बिना की चीज़ होती नहीं। ...दशा बिना होती नहीं। आहाहा! कोई स्वभाव, छह स्वभाव का पिण्ड उसे जगत कहा और एक आकाश स्वभाव अमाप को अलोक कहा। आहाहा! मुनियों ने, भगवान सर्वज्ञों ने छह जाति के स्वभाव का यह जग, जग, इसे जगत कहकर कहा। और खाली अनन्त, एक आकाश स्वभाव का टुकड़ा। यह... लोक मिलता है, तब पूरा होता है न? इसके अतिरिक्त वह भी टुकड़ा कहलाता है वह। एक भाग। ऐई! देवानुप्रिया! किसकी अपेक्षा से? अलोक एक भाग। इतना भाग निकल गया न, इसलिए एक भाग। भले भाग का माप अमाप, परन्तु है एक भाग। अरे! आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी एक भाग। यह पूरा कहें तो एक। यहाँ से लेकर ऐसा का ऐसा। किसी भी जगह.... परन्तु जब लोक आकाश कम करो तो एक भाग हो गया,

यह भी। भले उस भाग का माप न हो। अमाप.... अमाप, परन्तु वह भाग। अमाप, ऐसा एक स्वभाव है, वह (आकाश) भी पर्याय बिना का द्रव्य नहीं है। जहाँ आकाश है, परन्तु पर्याय नहीं, (ऐसा नहीं होता)। अरे! ... पर्याय क्या होगी यह? रतिभाई!

यह वस्तु है न! यह वस्तु है, वह उसकी अवस्था बिना की किसी जगह नहीं होती। किसी काल में, किसी क्षेत्र में, किसी स्थान में नहीं होती। वहाँ भी सब पर्याय बिना का यह आकाश नहीं। अमाप आकाश ऐसा का ऐसा और उसकी पर्याय? हाँ। पर्याय। और उसमें प्रदेशत्वगुण (है, इसलिए) उसमें आकार होता है। वह प्रदेशत्वगुण भी उसकी पर्याय बिना का नहीं होता। बराबर होगा? क्या कहा? आकाश नाम के द्रव्य में एक प्रदेशत्व नाम का गुण है। उसमें.... एक पर्याय है। तो एक गुण प्रदेश, परन्तु उसकी पर्याय बिना का गुण नहीं होता। द्रव्य का हो कहो या पर्याय का हो। पश्चात् द्रव्य बिना.... यह बाद में। यहाँ तो पर्याय बिना द्रव्य नहीं और द्रव्य बिना पर्याय नहीं। गुण बिना पर्याय नहीं, ऐसा वर्णन नहीं किया। यह दोनों साथ में वर्णन करेंगे। कौन से दो? पर्याय बिना द्रव्य नहीं, द्रव्य बिना पर्याय नहीं। गुण बिना द्रव्य नहीं, द्रव्य बिना गुण नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, पर्यायों से रहित द्रव्य नहीं होता;.... ओहोहो! एक भी बात.... आकाश का द्रव्य, उसे पर्याय? कैसी पर्याय होगी वहाँ अरूपी को? वस्तु है न! कायम सहवर्ती अनन्त गुणों से वर्तते उत्पाद-व्यय से बदलती ऐसी पर्याय बिना का वह आकाश भी है नहीं। ओहोहो! ऐसा स्वभाव। ऐसा आत्मा का स्वभाव। आत्मा भी किसी काल में पर्याय बिना नहीं था। पर्याय बिना था नहीं। कौन सी पर्याय पहले लेनी? और भविष्य में पर्याय बिना का द्रव्य रहेगा नहीं। मोहनभाई! क्या कहा? भविष्य में पर्याय बिना का द्रव्य रहेगा नहीं। अन्तिम पर्याय कौन सी होगी? देवानुप्रिया!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो द्रव्य हुआ।यह तो द्रव्य हुआ। अन्तिम पर्याय कौन सी? पर्याय तो उत्पन्न होती है या नहीं? द्रव्य उत्पन्न नहीं होता, परन्तु पर्याय उत्पन्न होती है या नहीं? तो वह पर्याय उत्पन्न होती है, वह अन्तिम कौन सी? उत्पन्न होती है न?

तो पहली उत्पन्न कौन सी हुई? पहली-अन्तिम थी ही कब? वह जब-जब... पर्याय बिना का द्रव्य नहीं होता कभी अनन्त काल में। अनन्त काल में भूतकाल में भी पर्याय बिना का द्रव्य नहीं होता। बस, उसके कारण से, स्वयं के कारण से, पर से नहीं। कहो, सेठी!

जिस प्रकार गोरस से रहित दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि नहीं होते,.... दूसरा बोल। पहला बोल आया कि पर्याय बिना द्रव्य नहीं होता। अब जैसे गोरस से रहित.... गोरस न हो और दूध, दही, मक्खन, घी हो, ऐसा कभी नहीं होता। गोरस से रहित दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि नहीं होते,.... द्रव्य नहीं होता और घी, दूध हो, गोरस न हो और घी, दूध हो.... होगा या नहीं? उसी प्रकार द्रव्य से रहित पर्यायें नहीं होतीं। इसी प्रकार वस्तु से रहित अवस्था नहीं होती। ओहोहो! वीतरागता... वीतरागत.... अर्थात् अन्दर देखो। समझ में आया? अमाप पर्यायवाला। आकाश अमाप पर्याय बिना का द्रव्य नहीं। भाव-गुण अमाप शक्ति। पर्याय बिना का वह गुण नहीं। एक-एक गुण में अनन्त स्वभाव, एक समय में एक गुण में अनन्त स्वभाव, ऐसे अनन्त स्वभाव का पिण्ड वह अनन्त गुण का। एक गुण का अनन्त स्वभाव ऐसे अनन्त गुण का अनन्त स्वभाव, ऐसे अनन्त गुण का एकरूप द्रव्य। उस द्रव्य बिना पर्याय नहीं होती। उस द्रव्य बिना पर्याय नहीं होती। समझ में आया? निकाल डालने की बात है यह।

एक-एक बोल में वीतरागता भरी है। आहाहा! अर्थात्? स्वभाव भरा है। और स्वभाव का भान हो, वह वीतराग दृष्टि हुए बिना रहे नहीं। आहाहा! यहाँ ऐसा कैसे भूतकाल में? अवकाश ही कहाँ है? यह द्रव्य बिना पर्याय होगी? वस्तु न हो और पर्याय हो, (ऐसा नहीं होता)। वस्तु और पर्याय दोनों त्रिकाल अनादि है। वर्तमान भी कहीं वस्तु हो और पर्याय न हो, ऐसा नहीं होता। तथा पर्याय हो और द्रव्य न हो, (ऐसा नहीं होता)। उसकी पर्याय हो और दूसरा द्रव्य उस काल में न हो। ऐई! देवानुप्रिया! पर्याय हो और उसका द्रव्य न हो, (ऐसा नहीं होता)। समझ में आया? ऐसा निमित्त नहीं होता। अब यह निमित्त की कहाँ लगायी अब? सुन न! दूसरा द्रव्य चाहे जो हो वहाँ। परन्तु यह (दूसरा) द्रव्य न हो और यह पर्याय न हो, ऐसा नहीं है। यहाँ तो यह

पर्याय द्रव्य बिना नहीं होती। वह द्रव्य न हो तो पर्याय नहीं होती। गोरस न हो तो दूध, दही की अवस्था नहीं होती। इसी प्रकार द्रव्य न हो तो पर्याय नहीं होती।

यह तो देखो न! ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य। श्रमणा, महाश्रमणा। आहाहा! यह महासर्वज्ञ श्रमण ऐसा कहते थे। अरे! तेरी बलिहारी! स्वभाव का ऐसा वर्णन सन्त-महामुनि कहते हैं। प्रभु! तुम मुनि नहीं? आचार्य नहीं?महामुनि स्वरूप है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने इनकार किया? किसने इनकार किया? उसके लिये तो यह बात चलती है। अर्थात् क्या? तो यह गड़बड़ कहाँ से रहे यह? तो यह गड़बड़ रहे किसकी? ताकत है आत्मा में परमात्मा होने की। अभी होने की है। क्योंकि पर्याय बिना का द्रव्य नहीं होता। समझ में आया? इसमें.... है न। पुरुषार्थ प्रमाण उसकी पर्याय होगी। पुरुषार्थ (थोड़ा हो) और पर्याय अधिक आवे, ऐसा होगा? जितना पुरुषार्थ, उसके पर्याय बिना का द्रव्य नहीं होता और द्रव्य बिना की वह पर्याय नहीं होती। मनुष्यदेह बिना अन्दर पर्याय जीव में नहीं होती, ऐसा नहीं कहा। क्या कहा? ब्रजवृषभनाराच संहनन न हो तो यहाँ पर्याय नहीं होती—केवलज्ञान की पर्याय नहीं होती, ऐसा नहीं है। वह केवलज्ञान की पर्याय उसके द्रव्य बिना नहीं होती। और उसके द्रव्य बिना की पर्याय नहीं और पर्याय बिना का द्रव्य नहीं। द्रव्य है और पर्याय नहीं, (ऐसा नहीं होता)। समझ में आया?

प्रत्येक में एक समय की अवस्था प्रत्येक द्रव्य में अनन्त काल से अनन्त पर्याय एक गुण की और वह द्रव्य भी है। ऐसा का ऐसा अनादि से है। वह अवस्था बिना का द्रव्य नहीं होता। इतनी दीर्घता ज्ञान में! उस अवस्था बिना का द्रव्य नहीं होता और द्रव्य बिना वह अवस्था नहीं होती, इतना जो ज्ञान में ऐसा स्वीकार करे, उसका वीर्य कितना उग्ररूप से काम करे। समझ में आया? अनन्त द्रव्य एक जगह रहने पर भी उनकी अवस्था बिना का द्रव्य नहीं होता। और वहाँ-वहाँ वह द्रव्य उस-उस अवस्था बिना नहीं होता। पूरा लोक और अलोक और तीन काल इस प्रकार है, ऐसा जहाँ ज्ञान में बैठे तो वह ज्ञान स्वभाव की ओर ढलकर वीतरागी होता है। ऐसा यहाँ कहना चाहते हैं। समझ में आया?

जिस प्रकार गोरस से रहित दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि नहीं होते, उसी प्रकार द्रव्य से रहित पर्यायें नहीं होतीं। इस जगत में जितने द्रव्य हैं, उन द्रव्यरहित पर्याय नहीं होती। उस वस्तु से रहित दशा होती नहीं। दूसरी वस्तु से रहित दशा होती नहीं, ऐसा नहीं। दूसरी चीज़ बिना की यह पर्याय है। परन्तु यह पर्याय उसके द्रव्य बिना नहीं होती।भाई! आहाहा! अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश की अवस्था किसी भी क्षण में भूतकाल में, वर्तमान में, भविष्य में उसकी पर्याय द्रव्य बिना नहीं होती। उसके द्रव्य बिना पर्याय नहीं होती। दूसरे द्रव्य बिना नहीं होती, ऐसा नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? क्या कहा इसमें? मोहनभाई!

दूध की पर्याय गोरस बिना नहीं होती। और गोरस बिना, गोरस न हो और दूध पर्याय हो, ऐसा नहीं होता। और दूध की पर्याय हो और गोरस न हो, ऐसा नहीं होता। अकेला गोरस हो और दूधपर्याय न हो, दूधपर्याय हो और गोरस न हो, ऐसा कभी नहीं होता। इसी प्रकार अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु की यहाँ पर्याय न हो और द्रव्य हो, ऐसा नहीं होता। और द्रव्य न हो और पर्याय हो, ऐसा नहीं होता। ओहोहो!इसमें सब गणित समाहित हो गया। जोड़ बाकी, भाग, गुणा और जितने ले, एक से दस हुए। ग्यारह में आँकड़ा ले? इसी प्रकार यह नियम बिना का द्रव्य नहीं है। अनन्त द्रव्य अनन्त काल के और संख्या बिना अनन्त। तथापि वे सब पदार्थ इस आँकड़े में आ गये। रतिभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री :क्या.... वह भाई थे न? द्रव्यदृष्टि वह सम्यग्दृष्टि। देखो! यह द्रव्य कहाँ से आया? रतिभाई! है या नहीं अपने सामने, देखो! बड़े अक्षर में। वह यहाँ था पहले। मोहनभाई बाहर बैठे थे और उनके रिश्तेदार बाहर बैठे थे। यह सब सेठिया सब पैसेवाले आवे, उसमें द्रव्यदृष्टि वह सम्यग्दृष्टि यहाँ कहाँ से आ गया? आहाहा! जैन में जन्मे.... जन्मे परन्तु द्रव्य क्या कहलाये, इसकी खबर नहीं।

द्रव्य अर्थात् परमाणु और आत्मा आदि छह वस्तु हैं, उसे द्रव्य कहते हैं। और

द्रव्य का कल अर्थ किया था द्रवति इति द्रव्यं। वह द्रवे बिना द्रव्य नहीं। समझ में आया? द्रवे बिना द्रव्य नहीं, पर्याय बिना द्रव्य नहीं और द्रव्य द्रवे बिना रहता नहीं। अनन्त जितने द्रव्य हैं, वे द्रवे बिना-पर्याय बिना रहते नहीं। और वह द्रवित (पर्याय) द्रव्य बिना रहती नहीं। कहाँ से द्रवा? आहाहा! वीतराग के शब्द.... वस्तु को द्रव्य कहकर पुकारा। ऐसे छह द्रव्य। आहाहा! छह द्रव्य। वाह! यह कथनी वाचक की भी पूर्णता बतलाने की शैली। समझ में आया?

यह द्रवे बिना, द्रव्य अकेला द्रवे बिना रहे, ऐसा नहीं है। अर्थात् पर्याय बिना द्रव्य नहीं, ऐसा। और पर्याय न हो और द्रव्य रहे, ऐसा नहीं हो सकता। और द्रवा सही, पर्याय हुई परन्तु द्रव्य नहीं। अनादि प्रत्येक वस्तु अपनी पर्याय से द्रवति है। वह पर्याय द्रव्य बिना की नहीं और वह द्रव्य पर्याय बिना का नहीं।

यद्यपि द्रव्य और पर्यायों का आदेशवशात्.... संज्ञा, लक्षण आदि भेद से कथंचित् भेद है। द्रव्य अर्थात् वस्तु और पर्याय अर्थात् अवस्था। इतने नाम दो भिन्न पड़े। लक्षण भी... त्रिकाली है। ऐसे नामभेद से भेद है, लक्षणभेद से भेद है, प्रयोजनभेद से भी भेद है। तथापि वे एक अस्तित्व में नियत होने के कारण.... वे अर्थात्? द्रव्य और पर्याय। एकपने के अस्तित्व में दृढरूप से रहे हुए अनन्त परमाणु और अनन्त जीव, असंख्य कालाणु, एक (-एक) धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश। यह उसका वस्तुपना और उसकी पर्याय भेददृष्टि से कथंचित् भेद है। तो भी वे एक अस्तित्व में नियतरूप से, एकपने के अस्तित्व में नियतरूप से रहे हुए होने के कारण अन्योन्यवृत्ति नहीं छोड़ती.... ओहोहो! अन्योन्यवृत्ति = एक-दूसरे के आश्रय से निर्वाह करना;... क्या कहा? द्रव्य को पर्याय के आश्रय से निभना, पर्याय को द्रव्य के आश्रय से निभना। इस वस्तु की पर्याय को द्रव्य के आश्रय से निभना, परन्तु उसकी पर्याय को पर के आश्रय से निभना, ऐसा नहीं होता। कोई किसी के आश्रय से नहीं निभता। ऐ... देवानुप्रिया!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। उसका परमाणु उसकी पर्याय के आधार से है। परमाणु की वह पर्याय द्रव्य के आश्रय से निभती है। द्रव्य पर्याय से निभता है, पर्याय द्रव्य से

निभती है, द्रव्य पर्याय से निभता है। दूसरे पर्याय से यह द्रव्य निभे और यह द्रव्य दूसरी पर्याय करे, यह वस्तु में कहाँ था? अज्ञानी का खीचड़ा देखकर खीचड़े की दृष्टि करता है। कहो, समझ में आया? आहाहा! वह इसका मार्ग मिलना महापुरुषार्थ है। वह कहीं यह बातें नहीं कहते, हों! यह तो ऐसा मार्ग वर्णन करते हैं। यह पर्याय का मार्ग द्रव्य से आता है और पर्याय मार्ग उसके द्रव्य बिना होता नहीं। सम्यग्दर्शन की पर्याय का निभना, टिकना द्रव्य के आश्रय से है और द्रव्य का निभना पर्याय के आश्रय से है। आहाहा! समझ में आया?

अन्योन्यवृत्ति = एक-दूसरे के आश्रय से निर्वाह करना;.... पर्याय और द्रव्य परस्पर एक-दूसरे का आश्रय परिणति, एक-दूसरे के आश्रय से निभना, एक-दूसरे के आधार से टिकना। पर्याय द्रव्य के आश्रय से टिके, द्रव्य पर्याय के आधार से टिके। आहाहा! और एक-दूसरे के कारण अस्ति रहना। (द्रव्य) पर्याय के कारण अस्ति है, पर्याय द्रव्य के कारण अस्ति है। पूरा वर्णन करना है न! समझ में आया? इसलिए **अन्योन्यवृत्ति....** परस्पर। प्रत्येक वस्तु द्रव्य त्रिकाली और उसकी पर्याय। परस्पर अन्योन्यवृत्ति अर्थात् एक-दूसरे के आधार से निभते हैं, टिकते हैं और आधार। अस्ति होने से **इसलिए वस्तुरूप से उनका अभेद है।** वह प्रत्येक वस्तु की पर्याय और वस्तु तो अभेद है। यह अकेला एक समझे तो इसे भेदज्ञान हो।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १३

द्व्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं द्व्वं विणा ण संभवदि।
अव्वदिरित्तो भावो द्व्वगुणाणं हवदि तम्हा॥१३॥

द्रव्य बिन गुण नहीं एवं द्रव्य भी गुण बिन नहीं।

वे सदा अव्यतिरिक्त हैं यह बात जिनवर ने कही ॥१३॥

अन्वयार्थ :- [द्रव्येण विना]द्रव्य बिना [गुणः न]गुण नहीं होते, [गुणैः विना] गुणों बिना [द्रव्यं न सम्भवति] द्रव्य नहीं होता; [तस्मात्] इसलिए [द्रव्यगुणानाम्] द्रव्य और गुणों का [अव्यतिरिक्तः भावः]अव्यतिरिक्तभाव (-अभिन्नपना)[भवति] है।

टीका :- यहाँ द्रव्य और गुणों का अभेद दर्शाया है।

जिस प्रकार पुद्गल से पृथक् स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण नहीं होते, उसी प्रकार द्रव्य के बिना गुण नहीं होते; जिस प्रकार स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण से पृथक् पुद्गल नहीं होता उसी प्रकार गुणों के बिना द्रव्य नहीं होता। इसलिए द्रव्य और गुणों का आदेशवशात् कथंचित् भेद है तथापि, वे एक अस्तित्व में नियत होने के कारण अन्योन्यवृत्ति नहीं छोड़ते इसलिए वस्तुरूप से उनका भी अभेद है (अर्थात् द्रव्य और पर्यायों की भाँति द्रव्य और गुणों का भी वस्तुरूप से अभेद है)॥१३॥

पौष शुक्ल १२, शुक्रवार, दिनांक - २७-१२-१९६३, गाथा-१३-१४, प्रवचन-२०

षट्द्रव्य पंचास्तिकाय का वर्णन। १३वीं गाथा। १२वीं गाथा में ऐसा आया कि प्रत्येक वस्तु जो है द्रव्य, द्रव्य—वस्तु उसकी पर्यायें—अवस्थायें, वे द्रव्य से अभेद है। समझ में आया? प्रत्येक आत्मा या प्रत्येक परमाणु उसकी वर्तमान जो पर्याय हो—अवस्था, उस अवस्था बिना का द्रव्य नहीं होता और द्रव्य बिना की अवस्था नहीं होती। इस अपेक्षा से उसे अभिन्न कहा गया है। समझ में आया?

अब यहाँ द्रव्य और गुणों का अभेद दर्शाया है। प्रत्येक आत्मा और परमाणु वह द्रव्य—वस्तु, वस्तु उसके जो शक्तिरूप गुण, वे वस्तु से अभेद हैं, एक हैं, भिन्न नहीं।

जिसे गुण शोधना हो तावे वे बाहर मिले, ऐसा नहीं है। जिसे शान्ति, आनन्द आदि शोधना (होवे तो) वह गुण है तथा गुण और द्रव्य अभेद है। बराबर है? शान्ति, आनन्द, पवित्रता, स्वच्छता, ये सब गुण अन्दर हैं। इन गुणों को शोधना हो तो वे गुण और द्रव्य कहीं पृथक् नहीं हैं। आत्मा द्रव्य और उसके गुण भिन्न नहीं हैं। उन गुणों का द्रव्य-वस्तु के साथ अभिन्नपना है, ऐसा दर्शाकर गुण की और द्रव्य की सत्ता या क्षेत्र, काल और भाव सब अभेद हैं, ऐसा दर्शाते हैं। कहो, बराबर है? रतिभाई! आत्मा को शान्ति शोधना हो तो कहाँ खोजना? शान्ति गुण है चारित्र। वह गुण द्रव्य के साथ— आत्मा के साथ अभेद है। आनन्द भी गुण है, वह आत्मा के साथ अभेद है। जिसे आनन्द चाहिए हो, उसे आनन्द धारक (आत्मा को शोधना)। क्योंकि आनन्द का आधार, आनन्द का टिकना और द्रव्य का टिकना, सब एक ही है।

१३वीं गाथा में द्रव्य और गुण का अभेदपना, एकपना दर्शाते हैं।

द्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि।

अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा॥१३॥

द्रव्य बिन गुण नहीं एवं द्रव्य भी गुण बिन नहीं।

वे सदा अव्यतिरिक्त हैं यह बात जिनवर ने कही॥१३॥

इसकी टीका :- यहाँ द्रव्य और गुणों का अभेद दर्शाया है। देखो! जिसे धर्म समझना हो, उसे यह समझना पड़ेगा। धर्म कहीं बाहर के साथ मिले ऐसा नहीं है। धर्म आत्मा का कहीं परमाणु और पर आत्मा में से मिले, ऐसा नहीं है। धर्म ऐसा उसका स्वभाव वह आत्मा के साथ अभेद है। उसके साथ अभेद होने से धर्म प्राप्त होता है। ऐसा वर्णन करना चाहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म कहो या सुख कहो। और धर्म अर्थात् क्या? ठीक! धर्म की छटपटाहट नहीं ऐसा कि सुख की है। सुख कहो या धर्म कहो। जिसे सुख की छटपटाहट हो, जिसे सुख चाहिए हो तो वह सुखगुण आत्मा में रहा हुआ है। वह सुखगुण और आत्मा दोनों अभेद हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : धर्म कहाँ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धर्म वहाँ। धर्म अर्थात् यह। सुख, शान्ति नाम की शक्तियाँ उसे और द्रव्य को अभेद है। ऐसी अन्दर की होने से दृष्टि में शान्ति और श्रद्धा, ज्ञान की दशा हो, उसे धर्म कहते हैं। यह धर्म है। सेठी! धर्म की व्याख्या ऐसी है जरा।

आचार्यों ने जरा दृष्टान्त छह द्रव्य में परमाणु का दिया है। गुण और द्रव्य को समझाने के लिये (दिया है)। परमाणु दिखता है न? ऐसे नजर पड़े न? उसका दृष्टान्त दिया है। नजर करनेवाला कौन है, यह फिर उसमें से ले लेना। छह द्रव्य की बात है, हों! इसमें गुण और द्रव्य की। छह वस्तु है न? भगवान, तीर्थकर भगवान केवलज्ञानी ने छह वस्तुएँ देखी हैं। उन छह संख्या से अर्थात् जाति से। संख्या अनन्त है। उन अनन्त द्रव्यों में एक यह पुद्गल दिखता है। इसके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श का दृष्टान्त द्रव्य के साथ अभेद दर्शाकर छहों द्रव्य के गुण और द्रव्य को एकपना दर्शा रहे हैं। समझ में आया ?

जिस प्रकार पुद्गल से.... यह परमाणु। यह परमाणु है न? यह कहीं मूल चीज़ नहीं। एक रजकण। टुकड़ा होते... होते... होते.... अन्तिम पॉइन्ट जिसे परमाणु कहते हैं। परमाणु पुद्गल। यह सब परमाणु बहुत होकर यह सब हाथ, पैर, शरीर, मिट्टी यह सब बना है। आत्मा तो भिन्न चीज़ है। आत्मा सीधे नजर से नहीं दिखता। नजर में जो आनेवाली चीज़, उसके गुण और गुणी की एकता करके दृष्टान्त में उसे दर्शाते हैं। समझ में आया ?

जिस प्रकार पुद्गल से.... परमाणु से उसका पृथक् स्पर्श- स्पर्श... स्पर्श। देखो! यह स्पर्श है या नहीं? कोमल। यह कहीं परमाणु से पृथक् स्पर्श है? भले यहाँ दिखती है पर्याय, यहाँ वर्णन करना है गुण को। परन्तु इस स्पर्श गुण का स्वभाव, वह पुद्गल से पृथक् नहीं होता। उसका रसगुण, परमाणु में रसगुण है। वह पुद्गल से पृथक् नहीं रहता। उसका गन्धगुण है, वह परमाणु से गन्धगुण पृथक् नहीं रहता, इसी प्रकार उसका रंगगुण। वर्ण अर्थात् रंगगुण, वह परमाणु से पृथक् नहीं होता। कहो, समझ में आया ? दृष्टान्त दिया। ऐसे दिखायी देता है न कि यह वस्तु। भले दिखती है पर्याय—अवस्था।

परन्तु उस अवस्था में रंग की, गन्ध की, रस की, स्पर्श की अवस्था दिखती है। उस अवस्था का कारण गुण वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श। वह वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श उसके परमाणु अर्थात् द्रव्य बिना पृथक् नहीं दिखते। समझ में आया ?

जिस प्रकार पुद्गल से पृथक् स्पर्श-रस-गंध-वर्ण नहीं होते, उसी प्रकार द्रव्य के बिना गुण नहीं होते;.... उसी प्रकार यह परमाणु बिना उसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श (नहीं होते)। यह तो उसी प्रकार द्रव्य के बिना.... सिद्धान्त कहा। वह दृष्टान्त था। जैसे.... अब उसी प्रकार द्रव्य के बिना... अर्थात् कि वस्तु के बिना उसके गुण नहीं होते;.... अर्थात् कि आत्मा बिना ज्ञान, दर्शन और आनन्द आत्मा के बिना नहीं होते। धर्मास्ति द्रव्य बिना गति अरूपी आदि गुण द्रव्य के बिना नहीं होते। ऐसे छहों द्रव्य में ले लेना। समझ में आया ?

उसी प्रकार द्रव्य के बिना.... अर्थात् जैसे पुद्गल बिना वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श नहीं होते। चार लिये। उसी प्रकार द्रव्य के बिना.... प्रत्येक वस्तु-आत्मा, परमाणु, काल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश (आदि) छह द्रव्य, इन द्रव्य के बिना गुण नहीं होते; जिस प्रकार स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण से पृथक् पुद्गल नहीं होता... जैसे स्पर्श-रस-गन्ध और रंग से पृथक् पुद्गल नहीं होता। गुण से पुद्गल भिन्न नहीं होता। उसके द्रव्य से वर्ण-गन्ध पृथक् नहीं होते, ऐसा कहा। द्रव्य से उसके गुण भिन्न नहीं होते। अब गुण से द्रव्य भिन्न नहीं होता।

उसी प्रकार गुणों के बिना द्रव्य नहीं होता। वैसे प्रत्येक द्रव्य उसके गुण बिना नहीं होता। ओहो! वस्तु गुण बिना नहीं होती और गुण द्रव्य बिना नहीं होते। वस्तु आत्मा उसके बिना गुण नहीं होते और उन गुण बिना वह आत्मा नहीं होता।आत्मा अभेद सत्ता है। समझ में आया ? इसलिए.... इस कारण से। इस कारण से अर्थात् एक अभेद दोनों हैं। इसलिए यद्यपि द्रव्य और गुणों का आदेशवशात् कथंचित् भेद है.... वस्तु आत्मा और परमाणु, यह द्रव्य और उसके ज्ञान-दर्शन आत्मा के गुण, परमाणु में वर्ण-गन्ध, उसके आदेश अर्थात् कथन अपेक्षा से नामभेद से, लक्षणभेद से भेद है।

तथापि, वे एक अस्तित्व में नियत होने के कारण.... तथापि वे, अर्थात् गुण और

द्रव्य तथा द्रव्य और गुण एक अस्ति में निश्चय टिके हुए होने के कारण अन्योन्यवृत्ति नहीं छोड़ते.... एक-दूसरे के आधार से टिके हैं। गुण के आधार से द्रव्य और द्रव्य के आधार से गुण। क्या है यह? क्या कहा? जैसे आत्मा। उसके ज्ञान—जानना, देखना, श्रद्धा, आनन्द (आदि) उसके गुणों बिना वह द्रव्य नहीं होता और उस द्रव्य बिना वे गुण नहीं होते। नामभेद से भेद पड़े, संज्ञाभेद से भेद, प्रयोजनभेद से भेद, लक्षणभेद से भेद (होने) पर भी उसके वस्तुभेद से भेद नहीं है। अर्थात् कि गुण जो आत्मा के ज्ञान, दर्शन, आनन्द और द्रव्य आत्मा, उसका एक सत्ता के कारण—एक अस्तित्व के कारण एक द्रव्य है। आत्मा उसके ज्ञान, दर्शन और आनन्द के एक अस्तित्व के कारण—एक सत्ता के कारण, एक सत्ता की निष्पन्नता के कारण वह द्रव्य और गुण दोनों अभेद है। समझ में आया? अरे! यह भारी ज्ञान भाई!

वे एक अस्तित्व में नियत.... निश्चय होने के कारण अन्योन्यवृत्ति नहीं छोड़ते.... एक-दूसरे के आधार से टिकना और एक-दूसरे की अस्ति एक-दूसरे के कारण है, यह छोड़ते नहीं। कहो, समझ में आया? आत्मा उसके ज्ञान, दर्शन, आनन्द गुण। उसका जो गुण, उसका अस्तित्व एक, सत्ता एक, अस्तित्व एक, आधार एक, आश्रय एक, निभना एक। इसलिए उस अस्तित्व के कारण द्रव्य और गुण तथा गुण और द्रव्य अभेद है। समझ में आया? अब ऐसे द्रव्य और गुण क्षेत्र से अभेद है। आत्मा द्रव्य, उसके जो प्रदेश और उसके ज्ञान, दर्शन, आनन्द अनन्त गुण के प्रदेश, उन प्रदेश का एकपना होने के कारण एक प्रदेश में भी गुण और भाव, गुण और द्रव्य एक है। कहो, देवानुप्रिया! इसमें पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं, ऐसा कहते हैं। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का अर्थ दो हुए। दो हुए इसलिए पृथक् हुए। समझ में आया?

यह आत्मा उसके अनन्त गुण, उनका अस्तित्व दोनों का एक है। इसलिए एक अस्तित्व को.... कहा न? एक अस्तित्व में नियत.... एक सत्ता में रहे हुए दो होने से

उनका द्रव्य से एकपना है। ऐसे आत्मा के प्रदेश और गुण के प्रदेश-क्षेत्र दोनों एक (होने से) वह गुण और द्रव्य तथा द्रव्य और गुण का क्षेत्र अभिन्न है। कहो, समझ में आया? इसी प्रकार आत्मा और उस गुण की पर्याय उत्पाद-व्यय की दशा, वह गुण का उत्पाद-व्यय का भाव और द्रव्य का उत्पाद-व्यय का भाव, वह काल भी एक है। संसार की चतुराई समझने और सुनने में भारी बहुत। एक-एक बात एम.ए. की और एल.एल.बी. की और अमुक की। यह बात उसे ऐसी पड़े, मानो झूठी बात जैसा हो जाये। फावाभाई! समझ में आया इसमें? जयन्तीभाई!

आत्मा, उसकी सत्ता एक। गुण एक और द्रव्य की एक अभेद। क्षेत्र एक, प्रदेश एक के कारण से क्षेत्र एक, इसलिए अभेद। काल अर्थात् द्रव्य का उत्पाद-व्यय और गुण का.... एक ही है। नयी अवस्था से उपजे, पुरानी अवस्था से जाये, ऐसा जो गुण में हो वह द्रव्य में होता है। द्रव्य और गुण दोनों काल से भी एक हैं। स्वरूप से एक है। गुण का स्वरूप और द्रव्य का स्वरूप कहीं भिन्न दो पक्ष नहीं है और भाव भी अभिन्न है। सेठी! समझ में आया? उसके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव उसमें पड़े हुए हैं गुण के, द्रव्य के अभेद। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : काल में ही दिक्कत आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : काल में क्या दिक्कत आती है? एक समय की पर्याय होती है गुण की, वह द्रव्य की है, द्रव्य की वह गुण की है। दोनों अभेद है। कहो, समझ में आया इसमें? देवानुप्रिया! क्या इसमें बराबर है कहने में दिक्कत उठे ऐसा है। उसकी पर्याय, गुण की पर्याय—अवस्था अथवा गुणपर्याय, दूसरी भाषा से कहें तो। गुण का कार्य और द्रव्य का कार्य एक होने से काल एक है। समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण का समुदाय अर्थात्? अस्तित्व एक है या दो? यह अस्तित्व दोनों का एक है या दो? बस। क्षेत्र दोनों का एक है या दो? काल दोनों का एक है या दो? स्वरूप एक है या दो? अधिक स्पष्ट होता है न! इसमें क्या है? कहो, समझ में आया इसमें? यह लिया है, हों! जयसेनाचार्य ने। जयसेनाचार्य में है। सब

चारों घटित किये हैं। पर्याय को घटित किया है उसमें। काल घटित किया है न। गुण का, पर्याय का जो काल है, वह द्रव्य का काल है, ऐसा यहाँ कहना है। उस पर्याय में इतना काल है और द्रव्य तो कायम रहा हुआ है। यहाँ तो एक समय का जो ज्ञान, दर्शन, आनन्द की पर्याय है एक स्वकाल है, वह द्रव्य का स्वकाल है—वस्तु का स्वकाल है। कहो, समझ में आया ?

इसी प्रकार परमाणु में। परमाणु है, उसका रंग, गन्ध, रस, स्पर्श गुण है। उसका अस्तित्व एक है। सत्ता एक है या सत्ता दो है ? गुण की सत्ता अलग और द्रव्य की सत्ता अलग, दो है ? एक पॉइन्ट लो परमाणु, उसमें रंग-गन्ध-रस-स्पर्श गुण अनन्त। वे गुण और द्रव्य का अस्तित्व सत्ता एक है, क्षेत्र एक है, प्रदेश एक है। परमाणु का प्रदेश, अनन्त गुण का प्रदेश एक ही है, क्षेत्र एक है, काल भी एक है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श की पर्याय होती है, वह द्रव्य की पर्याय है। और भाव एक है। स्वरूप दोनों का एक ही है। गुण का स्वरूप और द्रव्य का स्वरूप कहीं भिन्न नहीं है। भाव से अभिन्न है। कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और किसने कहा यहाँ ? यह कार्य कहा न। कूटस्थ कहाँ से आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर्याय का। परन्तु अभेद है या नहीं ? अभेद है या भिन्न पड़ता है ?भिन्न रहता है अकेला पूरा ? द्रव्य भिन्न रहता है और गुण भिन्न रहता है और गुण की पर्याय पृथक् होती है और द्रव्य की पृथक् होती है, ऐसा है ? बस ! ऐसी बात है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए तो आगे कार्य शब्द प्रयोग किया था। गुण का कार्य, वह द्रव्य का कार्य है। या दूसरे द्रव्य का कार्य है वह ? इसलिए तो उसमें कहा चार में।

भगवान आत्मा, उसमें अनन्त गुण हैं। ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण।

उसका कार्य अर्थात् पर्याय। उस कार्य का काल और गुण का कार्य काल दोनों एक ही है या भिन्न? या पर के कार्य के काल में इसका कार्य है? निमित्त के कारण है या नहीं? नहीं तो निमित्त-नैमित्तिक किस प्रकार रहेगा?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इसका काल है या नहीं? वर्तमान काल है या नहीं अविनाभावी? गुण के उत्पाद-व्यय वह अविनाभावी है या नहीं? तो द्रव्य के अविनाभावी उसके उत्पाद-व्यय हैं, काल है, स्वकाल है न। वर्तमान स्वकाल एक समय का स्वकाल। एक समय का स्वकाल। गुण का और द्रव्य का एक समय का स्वकाल अभेद है, एक है। उसमें कहीं चले ऐसा नहीं इसमें। आहाहा!

इसी प्रकार एक धर्मास्ति। धर्मास्ति नाम का द्रव्य अरूपी, उसके गुण अरूपी। वह गुण और द्रव्य का अस्तित्व एक है, उनके प्रदेश एक हैं, उनका दोनों का स्वकाल एक है और दोनों का स्वरूप एक है। द्रव्य का स्वरूप अलग रहता है और भाव का स्वरूप अलग रहता है, ऐसा नहीं है। बाकी द्रव्य स्वरूप से एकरूप है और गुण अनन्त स्वरूप से है। वह अलग। यहाँ तो उसका भाव। उसका स्वरूप ऐसा अभेद है। भाव तो उसका भाव अलग और इसका भाव अलग, ऐसा है नहीं। कहो, समझ में आया? ऐसे अधर्मास्ति, ऐसे आकाश, ऐसे कालाणु हैं। पूरे लोक प्रमाण असंख्य प्रदेश आकाश हैं, उसमें एक-एक (प्रदेश में कालाणु हैं)। उसमें भी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से उसमें अभेद है गुण के साथ। एक कालाणु में अनन्त गुण हैं, उनका अस्तित्व एक है, प्रदेश एक है, क्षेत्र एक है, काल एक है और भाव एक है। कहो, समझ में आया इसमें?

वे एक अस्तित्व में नियत होने के कारण.... ओहोहो! भाई! तेरे गुण तुझमें और तू तेरे गुण में। तेरे गुण तुझमें और तू उनमें—तेरे गुणों में। तू नहीं किसी के गुण में और.... समझ में आया? और किसी के गुण नहीं तुझमें। तू नहीं किसी के गुण में और तू नहीं किसी के गुण में और किसी के गुण नहीं तुझमें। तेरे अनन्त गुण तुझमें और.... द्रव्य में। आहाहा! सेठी! लड़के-लड़कियों के साथ कुछ लगता होगा या नहीं? नहीं? आहाहा! किसके लड़के और किसकी लड़की और किसके भाई, माँ-बाप कौन किसके

हैं ? उनके गुण और उन गुण का द्रव्य । उसके गुण का वह द्रव्य आधार । वह गुण द्रव्य के आधार से टिके, वह द्रव्य गुण के आधार से निभे । कहो, समझ में आया ? यह प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्याय और गुण के आधार से निभे और उसके गुण और पर्याय द्रव्य के आधार से निभे, टिके, आधार से रहे, एक-दूसरे के कारण अस्ति धारे । एक-एक गाथा पूरी दुनिया की चीजें जैसे भिन्न-भिन्न हैं, वैसे वर्णन कर डाली है । पर के साथ भिन्न, तेरे गुण के साथ अभिन्न । क्या कहा ? पर अनन्त द्रव्य और अनन्त गुण और अनन्त पर्याय से तेरा तत्त्व भिन्न और तेरे अनन्त गुण और अनन्त पर्याय से अभिन्न ।

मुमुक्षु : ज्ञान और वैराग्य सब....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब क्या आ गया इसमें ? पर से भिन्न उसमें वैराग्य हुआ । अपने से अभिन्न में अस्तित्व का भान हुआ ।

मुमुक्षु : वैराग्य की व्याख्या....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वैराग्य की नहीं, यह वैराग्य की व्याख्या । पर से भिन्न अर्थात् पर से उपेक्षा हो गयी, वैराग्य हुआ । अपने गुण और पर्याय अभिन्न है, उनके अस्तित्व की प्रतीति होकर भान हुआ ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : साथ ही होता है । स्व की अपेक्षा, वहाँ पर की उपेक्षा, इसका नाम वैराग्य । वैराग्य अर्थात् सब द्रव्य के प्रति, संयोग के प्रति मेरे अस्तित्व में कोई संयोग नहीं, मुझे किसी पदार्थ की आवश्यकता नहीं । मुझे मेरे गुण और पर्याय की आवश्यकता है । ऐसा होना, इसका नाम वैराग्य कहने में आता है । वैराग्य अर्थात् राग मन्द पड़ा और स्त्री-पुत्र छोड़ दिये, इसलिए वैराग्य, ऐसा वैराग्य नहीं हो सकता । उसे वैराग्य नहीं कहा जाता । जो उसमें नहीं, उसमें उसकी उपेक्षा वर्तती है, इसका नाम वैराग्य और जो इसमें है, उसकी अपेक्षा वर्ते, इसका नाम अस्तित्व का भान । इसलिए यह अब अस्ति-नास्ति लेंगे । देखा ! ओहोहो ! कथन पद्धति की शैली ! दिगम्बर सन्त धर्म के स्तम्भ, धर्म के स्तम्भ रोपे हैं । एक-एक गाथा से वस्तु अस्तित्व.... कहो, समझ में आया या नहीं ? मोहनभाई ! यह तो समझ में आये ऐसा है आज तो । कहो, अब यह कान्तिभाई और

मोहनभाई के आत्मा को कितना अन्तर होगा ? एकमेक का कितना होगा ? नहीं ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे और इन्हें क्या है परन्तु ? लेना या देना अब ।

कहते हैं कि पर के गुण और पर्याय उसके द्रव्य में और उसका द्रव्य उसके गुण-पर्याय में । तेरा द्रव्य तेरे गुण-पर्याय में । तेरे गुण और पर्यायें तेरे द्रव्य में । कोई किसी को लेना या देना कुछ (नहीं) । छोड़कर चले गये । जाओ उठो । ओहोहो ! भरे घर में से । तुम्हारा निरंजन कहता था कि बापूजी बिना कौना खाली लगता है । निरंजन । मकान का कौना खाली-खाली लगता है । पर से सब खाली ही है । प्रत्येक पदार्थ अनन्त पदार्थ पर से खाली है । यह आयेगा अब । अब यह आयेगा । शून्य है, यह कहेंगे । प्रत्येक वस्तु अपने से भरपूर है अशून्य है और पर अनन्त वस्तुओं से वह शून्य है, खाली है । समझ में आया ? गजब वीतरागमार्ग की बात । मूल तत्त्व की बात समझे बिना धर्म कहाँ होता था ? समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुद्धता आयी इसकी पर्याय में । क्या आया यह कहा न । इसके गुण की यह पर्याय, उसका स्वकाल है । क्या है ? यह १२वीं में पर्याय नहीं कही ? दूध, दही की पर्याय गोरस बिना नहीं होती और गोरस पर्याय बिना नहीं होता और पर्याय गोरस बिना नहीं होती । इसी प्रकार पर्याय अर्थात् विकारी पर्याय, संसार विकारी पर्याय और अविकारी पर्याय बिना का द्रव्य नहीं होता और द्रव्य विकारी अविकारी पर्याय बिना नहीं होता ।

मुमुक्षु : विभाविक पर्याय है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब विभाविक पर्याय । दूध-दही क्या सब विभाविक । यह सब विभाविक है । मक्खन, घी विकारी पर्याय है । विकारी पर्याय है । स्कन्ध की है न । यह पर्याय उसके द्रव्य के आधार से है । गोरस के आधार से है । कहो, समझ में आया ? उसकी अशुद्ध पर्याय में कुछ लकड़ा-कर्म हो तो होती है, यह ठीक पड़े जरा ।

कहते हैं कि तेरा आत्मा वस्तु अनन्त गुण की शक्ति सहवर्ती पिण्ड, उसका

आधार द्रव्य को और द्रव्य का आधार उसे। उसकी होनेवाली पर्याय, पर्याय का आधार द्रव्य को और द्रव्य का आधार पर्याय को। पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। लेना और देना (कुछ नहीं है)। कहो, समझ में आया? सेठ को तो साथ में लेना है। मोटर में साथ में बैठाना है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह खाली होता है। उसने ऐसा कहा था परन्तु हमारे मोहनभाई को.... एक हमारे सेठ देखे न सामने? सामने उन्हें बैठाना है। कहो, समझ में आया?

कहते हैं, ओहोहो! वस्तु, वस्तु है, उसकी समझ तो करो कि जहाँ है, वहाँ है सब। सबके गुणों के कारण द्रव्य और द्रव्य के कारण गुण हैं। तेरे गुण दूसरे द्रव्य के कारण नहीं, तेरी पर्याय दूसरे द्रव्य के कारण नहीं और दूसरे की पर्याय दूसरे द्रव्य के कारण नहीं—तेरे कारण नहीं। उसमें यह आ गया या नहीं? आहाहा! कर्म द्रव्य के कारण विकारी पर्याय नहीं। विकारी पर्याय के कारण कर्म द्रव्य नहीं। विकारी पर्याय का आधार द्रव्य, द्रव्य के आधार से पर्याय हुई है। स्व चतुष्टय से पूरा ऐसा कहते हैं। यहाँ चतुष्टय उतारना है न भाई अब। इसलिए इस प्रकार से बात लेकर.... द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव है। स्व से (है) और पर से नहीं, ऐसा... ओहोहो! समझ में आया? कथन पद्धति कोई ऐसी पद्धति आ गयी है न! महा सन्तों का प्रवाह!

किसी ने गाया नहीं था? वाह वाह रे सन्तों की अमीरी। अमीरी अमीरी नहीं गाता था कोई? भाई नहीं थे तब। प्रभुभाई थे तब। तुम्हारी मोटर में आया था न तब.... वहाँ तुम्हारा आधे घण्टे रहा न, रखा था उसमें निकला। वाह वाह रे अमीरी सन्तों की.... अमीरी सन्तों की, ऐसा शब्द था। तुम्हारे उसमें। सामने प्रभुभाई थे।रात्रि में आधे घण्टे रहा था। प्रभुभाई थे सामने। वाह वाह रे अमीरी सन्तों की.... समझ में आया? उसी प्रकार यह वाह वाह रे अमीरी सन्तों की। यह अमीरी है। बाहर के पैसे और ढेर और धूल के कारण अमीरी नहीं है। वह अमीरी नहीं है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं चलता। अनेकान्त—यह अमीरी इसमें नहीं

और यह अमीरी उसमें नहीं। ऐसा है। इसका नाम अनेकान्त है। अमीरी किसे? एक-एक परमाणु में द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से भरपूर पदार्थ है। उससे अन्य उसकी उसमें है, इसकी इसमें है। उसके कारण यहाँ नहीं और इसके कारण वहाँ यह था कब? ऐसा होगा रतिभाई? यह पैसे के कारण अमीरी नहीं? कहो, समझ में आया?

वे.... वे अर्थात् कौन? गुण और द्रव्य। एक अस्तित्व में.... एक ही अस्तित्व में नियत होने के कारण अन्योन्यवृत्ति नहीं छोड़ते.... दूसरे का आधार, आश्रय, अस्तित्व एक-दूसरे के आधार से नहीं छोड़ते होने से वस्तुरूप से उनका भी अभेद है। लो! समझ में आया? वस्तुरूप से उनका भी.... उनका (भी) क्यों कहा? उसमें पर्याय का कहा था न पहले? बारहवीं में। पर्यायें जैसे अभेद कहीं थीं। पर्याय अर्थात् अवस्था। प्रत्येक वस्तु की अवस्था से जैसे द्रव्य को अभेद लिया, उसे वस्तुरूप से उनका भी अभेद है।

(अर्थात् द्रव्य और पर्यायों की भाँति....) देखो! स्पष्टीकरण किया। स्पष्टीकरण किया। पण्डितजी ने बाकी नहीं रखा, हों! देखो! द्रव्य और पर्यायों की भाँति द्रव्य और गुणों का भी वस्तुरूप से अभेद है। यह 'भी' आया वहाँ रखा इन्होंने वापस। कहो, समझ में आया इसमें? ऐसी धर्मकथा। अपने वीतरागमार्ग में ऐसी धर्मकथा...! आहाहा! पूजा करो, भक्ति करो, यात्रा करो, दूसरे को दान दो। कहते हैं, सुन न अब। दान वह जड़ का कौन देता था? सुन न। यह परमाणु उसे जाना-आना, उसके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव उसकी सत्ता के आधीन है। क्या तेरे आधीन है वह सत्ता? बाहर की भी हो हा लगे ऐसी। ...लाख खर्च किये। बीस लाख खर्च किये। मुँह भर जाये, लोगों को सुने नहीं....

मुमुक्षु : आठ लाख तो कल आये थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : आठ लाख आये और आठ लाख बाद में भाई ने खर्च किये थे न वहाँ। छदामीलाल, फिरोजाबाद। बड़ा करोड़पति है न। एक व्यक्ति ने मन्दिर बनाया पाँच.... तो दूसरा ऐसा कारीगरी से बनाया है कि ऐसे ओहोहो! यह चन्दुभाई कहते थे। चन्दुलाल शिवलाल गये थे न यात्रा में वहाँ। छह-सात लाख का एक मन्दिर, फिरोजाबाद में। वहाँ व्याख्यान पढ़ा था न २०१३ के वर्ष में। तब व्याख्यान पढ़ा था।

पाठशाला, अमुक.... बड़ा गृहस्थ चूड़ियों का व्यापारी। आहाहा! परन्तु तेरे वैभव की दशा यहाँ है या वहाँ? तूने यह किया है यहाँ? राग हुआ, वह तुझमें हुआ है। राग से आत्मा अभिन्न है। उस चीज़ से होती हुई से तो तू भिन्न है। वह तुझसे हुई नहीं। समझ में आया? ओहोहो!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : मीठी लगे। ऊँची रोटी कि यह वीतरागभाव है? राग बिना के कस की बात है। वीतराग के रस की बात है।

एक आत्मा अपने गुणपर्याय से अभेद है। दूसरे आत्मायें उसके गुण-पर्याय से अभेद है। एक सिद्ध भगवान, अरिहन्त भगवान का आत्मा उनके गुण-पर्याय से अभेद है। उनके आत्मा से उनका भेदपना है। शुद्ध हो या सिद्ध हो। शुद्ध हुए हो या सिद्ध हुए हों। सब द्रव्य उसके गुण और पर्याय से अभेद है। दूसरे के गुण-पर्याय से कभी एकमेक है नहीं। ओहोहो! श्रीमद् ने पंचास्तिकाय का तो अर्थ किया है। गुजराती। उनके वाँचनकार को खबर नहीं होती। शुद्ध द्रव्य पर कहलाये?अपने शुद्ध हैं और वह भी शुद्ध। शुद्ध.... शुद्ध.... शुद्ध.... वह तो सब एक होता है। ऐसा होगा या नहीं?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों सिद्ध हो गये। नहीं? इनकार करते हैं। यह तुम्हारा.... तुम्हारे पिता का.... शुद्ध सब एक। वजुभाई! भाईलालभाई ने एक बार पूछा था। सब सिद्ध अलग-अलग होंगे? मैंने कहा, सब अलग। एक-एक अलग। ओहो! सिद्ध हो वे सब अलग एक-एक। दूसरे गाँव में पूछा था, यह शास्त्र शुद्ध कहलाता है, वह अलग होगा? अनन्त बार भिन्न, अनन्त काल से भिन्न। अनन्त बार अर्थात् अनन्त काल से भिन्न। अनन्त काल भिन्न रहनेवाले। पर को और आत्मा को सम्बन्ध क्या है? कहो, समझ में आया? यह १३ हुई, लो।

गाथा - १४

सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं।

दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि॥१४॥

स्यात् अस्ति-नास्ति-उभय अर अवक्तव्य वस्तु धर्म हैं।

अस्ति-अवक्तव्यादि त्रय सापेक्ष सातों भंग हैं॥१४॥

अन्वयार्थ :- [द्रव्यं] द्रव्य [आदेशवशेन] आदेशवशात् (-कथन के वश) [खुल] वास्तव में [स्यात् अस्ति] स्यात् अस्ति, [नास्ति] स्यात् नास्ति, [उभयम्] स्यात् अस्ति-नास्ति, [अवक्तव्यम्] स्यात् अवक्तव्य [पुनः च] और फिर [तत्रितयम्] अवक्तव्यतायुक्त तीन भंगवाला (-स्यात् अस्ति-अवक्तव्य, स्यात् नास्ति-अवक्तव्य और स्यात् अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य) (-सप्तधङ्गम्) इस प्रकार सात भंगवाला [सम्भवति] है।

टीका :- यहाँ द्रव्य के आदेश के वश सप्तभंगी कही है।

(१) द्रव्य 'स्यात् अस्ति' है; (२) द्रव्य 'स्यात् नास्ति' है; (३) द्रव्य 'स्यात् अस्ति और नास्ति' है; (४) द्रव्य 'स्यात् अवक्तव्य' है; (५) द्रव्य 'स्यात् अस्ति और अवक्तव्य' है; (६) द्रव्य 'स्यात् नास्ति और अवक्तव्य' है; (७) द्रव्य 'स्यात् अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य' है।

यहाँ (सप्तभंगी में) सर्वथापने का निषेधक, अनेकान्त का द्योतक 'स्यात्' शब्द 'कथंचित्' ऐसे अर्थ में अव्ययरूप से प्रयुक्त हुआ है। वहाँ (१) द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'अस्ति' है; (२) द्रव्य परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'नास्ति' है; (३) द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से और परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से क्रमशः कथन किया जाने पर 'अस्ति और नास्ति' है; (४) द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से और परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से युगपद् कथन किया जाने पर 'अवक्तव्य' है; (५) द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से और युगपद् स्वपरद्रव्य-क्षेत्र-

१. स्यात्=कथंचित्; किसी प्रकार; किसी अपेक्षा से। ('स्यात्' शब्द सर्वथापने का निषेध करता है और अनेकान्त को प्रकाशित करता है-दर्शाता है।)

१. अवक्तव्य=जो कहा न जा सके; अवाच्य। (एक ही साथ स्वचतुष्टय तथा परचतुष्टय की अपेक्षा से द्रव्य कथन में नहीं आ सकता इसलिए 'अवक्तव्य' है।)

काल-भाव से कथन किया जाने पर 'अस्ति और अवक्तव्य' है; (६) द्रव्य परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से और युगपद् स्वपरद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'नास्ति और अवक्तव्य' है; (७) द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से, परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से और युगपद् स्वपरद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य' है।-यह (उपर्युक्त बात) अयोग्य नहीं है, क्योंकि सर्व वस्तु (१) स्वरूपादि से 'अशून्य' है, (२) पररूपादि से 'शून्य' है, (३) दोनों से (स्वरूपादि से और पररूपादि से) 'अशून्य और शून्य' है (४) दोनों से (स्वरूपादि से और पररूपादि से) एक ही साथ 'अवाच्य' है, भंगों के संयोग से कथन करने पर (५) 'अशून्य और अवाच्य' है, (६) 'शून्य और अवाच्य' है, (७) 'अशून्य, शून्य और अवाच्य' है।

भावार्थ :- (१) द्रव्य *स्वचतुष्टय की अपेक्षा से 'है'। (२) द्रव्य परचतुष्टय की अपेक्षा से 'नहीं है'। (३) द्रव्य क्रमशः स्वचतुष्टय की और परचतुष्टय की अपेक्षा से 'है और नहीं है'। (४) द्रव्य युगपद् स्वचतुष्टय की और परचतुष्टय की अपेक्षा से 'अवक्तव्य है'। (५) द्रव्य स्वचतुष्टय की और युगपद् स्वपरचतुष्टय की अपेक्षा से 'है और अवक्तव्य है'। (६) द्रव्य परचतुष्टय की, और युगपद् स्वपरचतुष्टय की अपेक्षा से 'नहीं और अवक्तव्य है'। (७) द्रव्य स्वचतुष्टय की, परचतुष्टय की और युगपद् स्वपरचतुष्टय की अपेक्षा से 'है, नहीं है और अवक्तव्य है'।-इस प्रकार यहाँ सप्तभंगी कही गयी है।।१४।।

१. अशून्य=जो शून्य नहीं है ऐसा; अस्तित्ववाला; सत्।

२. शून्य=जिसका अस्तित्व नहीं है ऐसा; असत्।

* स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव को स्वचतुष्टय कहा जाता है। स्वद्रव्य अर्थात् निज गुणपर्यायों के आधारभूत वस्तु स्वयं; स्वक्षेत्र अर्थात् वस्तु का निज विस्तार अर्थात् स्वप्रदेशसमूह; स्वकाल अर्थात् वस्तु की अपनी वर्तमान पर्याय; स्वभाव अर्थात् निजगुण-स्वशक्ति।

गाथा - १४ पर प्रवचन

अब १४। देखो! द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का अस्तित्व उतारा न? अब इसमें उतारेंगे सप्त भंगी।

यहाँ द्रव्य के आदेश के वश सप्तभंगी कही है। टीका का पहला शब्द है। द्रव्य के आदेश—कथन से, कथन के वश। उसके भाव भी उसमें अन्दर है।

सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं।

दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि॥१४॥

स्यात् अस्ति-नास्ति-उभय अर अवक्तव्य वस्तु धर्म हैं।

अस्ति-अवक्तव्यादि त्रय सापेक्ष सातों भंग हैं॥१४॥

देखो! अब यह जैनशासन और वस्तु का मर्म। जैनशासन का मर्म सप्तभंगी में। समझ में आया? यह द्रव्य। पहला शब्द है न टीका के बाद (१) द्रव्य.... अर्थात् वस्तु। कोई भी आत्मा, कोई भी परमाणु, कालाणु, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश। 'स्यात् अस्ति' है;... स्यात् कथंचित् अस्ति है। सर्वथा अस्ति, ऐसा नहीं। स्यात् अस्ति। क्यों? अपनी अपेक्षा से अस्ति। कहीं पर की अपेक्षा से भी अस्ति है, ऐसा नहीं है। इसलिए द्रव्य स्यात्... है। स्यात्... है। स्यात् अस्ति। स्यात् का अर्थ किया है नीचे। स्यात्=कथंचित्; किसी प्रकार; किसी अपेक्षा से (स्यात् शब्द सर्वथापने का निषेध करता है....) अर्थात् कि सर्वथा अस्ति है ही, ऐसा कहो, तब तो पर से भी 'है' हो जाये। 'है' इसलिए वह आत्मा है, सब प्रकार से द्रव्य है, ऐसा यदि कहो तो अपनेरूप से भी है और पररूप से भी है, ऐसा हो जाये। इसलिए सब प्रकार से नहीं। स्यात् है। किसी अपेक्षा से है। इसके बाद इसका स्पष्टीकरण करेंगे। किसी अपेक्षा से अर्थात् अपनी अपेक्षा से है। सर्वथा है कहो, तब तो आत्मा सबरूप हो जाये। अपनेरूप भी है और पररूप भी है। ऐसा है नहीं।

'स्यात् अस्ति' है; (२) द्रव्य 'स्यात् नास्ति' है;... वस्तु स्यात्-कथंचित् नास्ति। कहेंगे, हों। यह तो साधारण.... है न। सर्वथा नास्ति कहो तो अपने से भी नास्ति हो

जायेगी। स्यात् नास्ति है। पर से नास्ति है। (३) द्रव्य 'स्यात् अस्ति और नास्ति' है;.... एक समय में अपने से है और पर से नहीं। एक समय में दोनों इकट्ठे हैं। (४) द्रव्य 'स्यात् अवक्तव्य' है;.... एक साथ नहीं कहा जा सकता, इसलिए गुण एक साथ रहे हुए हैं परन्तु एक साथ नहीं कहे जाते; इसलिए अवक्तव्य है। कहा नहीं जा सकता, ऐसा है। अवक्तव्य—वाणी में न आवे ऐसा।

(५) द्रव्य 'स्यात् अस्ति और अवक्तव्य' है;.... इसका स्पष्टीकरण बाद में करेंगे, हों। द्रव्य स्वयं से है और दो द्वारा अवक्तव्य है। स्वयं... एकसाथ कहना चाहे तो अवक्तव्य है। (६) द्रव्य 'स्यात् नास्ति और अवक्तव्य' है;.... वस्तु पर से नहीं और स्व-पर से एकसाथ कहना चाहे तो अवक्तव्य है। (७) द्रव्य 'स्यात् अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य' है। अपने से है, पर से नहीं और दोनों साथ की अपेक्षा से (अवक्तव्य है)। सात हुए। बस! सात से आठवाँ भंग नहीं हो सकता।

यहाँ (सप्तभङ्गी में) सर्वथापने का निषेधक, अनेकान्त का द्योतक.... अनेकान्त का द्योतक अर्थात् इससे भी है और इससे भी है, ऐसा नहीं। अनेकान्त का अर्थ ऐसा नहीं। स्व से है और पर से नहीं, ऐसा अनेकान्त का अर्थ है। ऐ देवानुप्रिया! निश्चय से भी है और व्यवहार से भी है, उपादान से भी है और निमित्त से भी है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। निश्चय से है, व्यवहार से नहीं। उपादान से है वह निमित्त से नहीं। ऐसा अनेकान्त का द्योतक स्यात् है। क्या है कुछ?गोली हो अन्दर एक दूसरी।

'स्यात्' शब्द 'कथंचित्' ऐसे अर्थ में अव्ययरूप से प्रयुक्त हुआ है। लो अव्यय। ऐई! अव्यय अर्थात् क्या? लो, यह व्याकरण (आया)। व्याकरण का कोई नियम है लो न।व्याख्या करनी पड़ेगी।

अब (१) द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'अस्ति' है;.... देखो! स्यात् द्रव्य स्यात् अस्ति है कहा था, (उसे) स्पष्ट करते हैं कि प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु, प्रत्येक कालाणु छह द्रव्य भगवान ने देखे हैं अनन्त। अनन्त में एक-एक द्रव्य स्वद्रव्य, गुण-पर्याय का पिण्ड स्व; स्वक्षेत्र-चौड़ाई; स्वकाल-अवस्था, स्वभाव.... उसे कहने में आने पर अस्ति है। स्व से कहने में आने पर अस्ति है। स्व

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव कहने में आने पर अस्ति है। कहो, बराबर है? कहो, इसमें निश्चय और उपादान का आ जाता होगा या नहीं इसमें?

मुमुक्षु : सब आ जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब आ जाता है?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसमें रहा निमित्त। यहाँ कहाँ आ गया? उसका निमित्त जो है, वह भी एक द्रव्य है। उसकी पर्याय है भले। उसमें उसके स्वद्रव्य, उसका स्वक्षेत्र, उसका स्वकाल और स्वभाव से वह है। कि उसके स्वद्रव्य और स्वभाव से यहाँ है? कि उपादान के स्वकाल के कारण निमित्त का स्वकाल है? या निमित्त के स्वकाल के कारण उसका स्वकाल है? कि नहीं। उपादान के स्वकाल के कारण अस्ति है, निमित्त के स्वकाल के कारण नास्ति है। निमित्त के स्वकाल के कारण निमित्त है, उपादान के स्वकाल के कारण वह नास्ति है। समझ में आया? अनेकान्त कहा। इसका नाम अनेकान्त हो गया। अनेकान्त को क्या कहा? कहो, लगाओ कोई नय-बय का है पीछे? स्पष्टीकरण होता है। कहो, समझ में आया? उसमें कहनेवाले सामने पक्ष के हों और बहुत बैठे।स्पष्टीकरण हो, उसमें क्या? कहो, समझ में आया इसमें?

स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल-स्वभाव, एक चीज के चार अंश। प्रत्येक द्रव्य, प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक कालाणु, एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, एक इतना रजकण पॉइन्ट अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है। और अनन्त आकाश, अमाप अकाश अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है। परमाणु से अनन्त आकाश अनन्त गुणा है। क्षेत्र से चौड़ाई की अपेक्षा से। एक परमाणु चौड़ा है। स्वक्षेत्र से है। वह द्रव्य-गुण-पर्याय उससे है, पर्याय से है अवस्था से, उसकी अनादि की पर्याय। और गुण से है, वह पर से नहीं। पूरा आकाश सर्वव्यापक आकाश वह द्रव्य से है, गुण-पर्याय के पिण्ड से। उसके क्षेत्र की चौड़ाई से है। ओहो! क्षेत्र से है। उस क्षेत्र से है आकाश। उस क्षेत्र से—स्वक्षेत्र से आकाश है। है, ऐसा आया। कहीं स्वक्षेत्र से कहीं नहीं, ऐसा नहीं आया। क्या कहा? आकाश स्वक्षेत्र से है। ओहो! अमाप क्षेत्र है न। स्वक्षेत्र से है। क्षेत्र से है। स्वक्षेत्र से है।

कहीं अन्त नहीं। अमाप.... अमाप.... अमाप.... अमाप.... अमाप.... स्वक्षेत्र से है। वह है, ऐसा ज्ञान में आ जाता है। समझ में आया? चारों ओर। वह खाली भी है। स्वक्षेत्र से आकाश है।आकाश है। उसमें-आकाश में अवस्था है। उसके गुण से आकाश है। समझ में आया?

ऐसे प्रत्येक आत्मा अपना द्रव्य अर्थात् वस्तु है। उसके असंख्य प्रदेश की चौड़ाई से है, उसकी वर्तमान अनन्त अवस्था से है। उसके त्रिकाली भाव अर्थात् शक्ति से है। ऐसे का ऐसा है, अनादि-अनन्त है। समझ में आया? दृष्टि को दीर्घ किये बिना यह बात पकड़ में आये ऐसी नहीं है। बड़ा माप। अमाप का माप करनेवाला, अमाप का माप करनेवाला। आहाहा! समझ में आया? जिसकी मर्यादा नहीं, उसकी मर्यादा में लानेवाला ज्ञान माप। क्षेत्र अमर्यादित, उसे ज्ञान में लानेवाला। कि मेरे ज्ञान की पर्याय मुझसे है, उसका अमापना है। उसका भी ज्ञान मुझे हुआ, वह मेरे ज्ञान का मेरे में से मुझसे है। वह अमाप है, उससे मेरा ज्ञान नहीं। बहुत सूक्ष्म परन्तु, हों! ऐसा तत्त्व सूक्ष्म पड़े न, इसलिए लोगों को बेचारों को समझ में नहीं आता। वह सरल (लगे), यह दया पाली, व्रत किये, भक्ति की, उपधान किये, हो-हो की, माला पहनायी मोक्ष की। क्या कहलाती है वह? माळ-माळ। धूल में माळ नहीं वहाँ। संसार की माळ है। अभी धर्म कैसे होता है और द्रव्य कैसे है (इसकी खबर नहीं होती)।

मुमुक्षु : धर्म से चूके नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म से चूके हैं।

ओहोहो! एक-एक गाथा, एक-एक भाव। प्रत्येक अनन्त द्रव्य हैं, वे सब अपने द्रव्य से-वस्तु से है। परवस्तु से नहीं।

मुमुक्षु :निमित्त है ही कहाँ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अपने अस्तित्व की अपेक्षा से कोई चीज़ अपनी अपेक्षा से तो है ही नहीं पर। उसकी अपेक्षा से वह चीज़ है। इसकी अपेक्षा से वह अद्रव्य, अक्षेत्र, अकाल और अभाव है। कहो, क्या? अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा से अस्ति। और अपनी अपेक्षा से दूसरे सब नास्ति। उसकी इसमें नास्ति, यह फिर एक

ओर रखो। इसकी अपेक्षा से दूसरे सब अस्ति नहीं। उसकी अपेक्षा से है और इसकी अपेक्षा से नहीं। एक वस्तु की अपेक्षा से दूसरे सब पदार्थ अद्रव्य-अक्षेत्र-अकाल-अभाव है। अभाव हो गया न चारों, इसलिए अवस्तु हुई।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : उपादान पर की अपेक्षा से नहीं। नहीं। नहीं, ऐसा नहीं। पर की अपेक्षा से नहीं। अपनी अपेक्षा से है, पर की अपेक्षा से नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : उपादान अर्थात् जो द्रव्य की पर्याय की बात कहते हैं, वह स्वयं से है। उससे पर नहीं। उससे पर नहीं। पर से वह नहीं। तब उसका नाम दो कहलाये। अस्ति-नास्ति की अपेक्षा से दो कहलाये। दोनों की अस्ति से, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : पर से पर उसमें रहे। पर के कारण यहाँ नहीं और इसके कारण वह नहीं। उसमें भले हो। तो क्या है? समझ में आया? एक बोल कहा।

अब, (२) द्रव्य परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'नास्ति' है,.... यह प्रत्येक चीज़ परद्रव्य से, परक्षेत्र से, परकाल से और परभाव से नहीं। लो। यह आत्मा नहीं। किस अपेक्षा से? परद्रव्य-परवस्तु, पर की चौड़ाई, पर की अवस्था और पर के भाव की अपेक्षा से नहीं। पर की अपेक्षा हो तो दोनों एक हो जाये। भिन्न रहे नहीं। बहुत सूक्ष्म परन्तु। जैन में तत्त्वज्ञान की बात चले नहीं और झगड़े मिटे नहीं। यदि यह तत्त्व समझे तो झगड़ा एक भी खड़ा न रहे।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : भले समझे तो कहो न। लाओ, तुम तत्त्व तुम कौन सा तत्त्व ?

यहाँ कहते हैं कि शरीर में आत्मा नहीं। शरीर में (आत्मा) नहीं और आत्मा में शरीर नहीं, इसलिए आत्मा का शरीर दास कहाँ से आया? शरीर आत्मा में नहीं, फिर दास कहाँ से आया? दास ही नहीं कोई किसी का। दास किसका हो? स्वस्वामी और

सेवक स्वयं है। स्वयं अपना स्व और स्वयं अपना (स्वामी)। दूसरे उसका स्व और दूसरे का वह स्वामी तीन काल में नहीं हो सकता। जगत के स्वयंसिद्ध तत्त्व, उसमें और दास किसका और सेवक कौन? समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार कारक अर्थात्? यह व्यवहार कारक असत् कारक है—झूठ। क्या? है उसमें—प्रवचनसार में है। १६वीं गाथा में। असत् कारक है। असद्भूत उपचार से कहे जाते हैं, वे झूठे कारक हैं। इसकी (निश्चय की) अपेक्षा से वे झूठे हैं। उनकी अपेक्षा से भले वहाँ हो। ऐसा। समझ में आया? मिट्टी से घड़ा होता है, यह कारक यथार्थ है। कुम्हार से घड़ा होता है, यह कारक झूठे हैं। आत्मा का ज्ञान आत्मा की पर्याय से होता है, वह यथार्थ है। पुस्तक पृष्ठ से, दिव्यध्वनि से होता है, वह यथार्थ नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन है। इसमें यह आया या नहीं? आत्मा अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है। काल में पर्याय आयी या नहीं? अपनी पर्याय से है। भगवान की दिव्यध्वनि की पर्याय से यह नहीं। भगवान की वाणी और भगवान की पर्याय से यह पर्याय नहीं। वाणी के कारण यहाँ पर्याय नहीं। यहाँ वे पण्डित लोग बेचारे चिल्लाहट मचाते हैं। क्योंकि पर का अवलम्बन है न, मानो मेरी पर्याय का टिकना ही मानो उसके कारण से है। परन्तु तेरी पर्याय तेरे द्रव्य के कारण टिकी है। समझ में आया? और तेरा द्रव्य पर्याय के कारण टिका है। नहीं कि पर के कारण टिका है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री :वृत्ति छोड़ते नहीं, एक-दूसरे का आश्रय, आधार, समझना, टिकना, अस्ति। बात बहुत कठिन। चन्दुभाई! लो, ऐसा कहे, वह भगवान की वाणी...! अरर! यह तो ऐसा कहते हैं सोनगढ़ (वाले), भगवान की वाणी आत्मा को लाभ नहीं करती। कहते हैं कि भगवान की वाणी तुझमें नहीं कि तुझे कुछ कर दे। वह तुझमें नहीं। वह भगवान की वाणी के चतुष्टय में तेरी पर्याय घुस नहीं गयी। इसलिए तू उसमें और

छुए तथा स्पर्श। आहाहा! बात बहुत (कठिन)। पण्डित लोग विरोध करते हैं। किसी पृथक् को-ज्ञान को कोई स्पर्श या नहीं? त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं कि प्रत्येक वस्तु अपने गुण-पर्याय के पिण्ड से है, चौड़ाई से है, अवस्था से है और शक्ति से है। वह पर के द्रव्य-गुण-पर्याय के पिण्ड से नहीं, पर के क्षेत्र से नहीं, पर की अवस्था के कारण नहीं, पर की शक्ति के कारण नहीं। वह तो यह दूसरा बोल चलता है। वजुभाई! बराबर होगा? यह रुपया रुपये के कारण आता-जाता होगा? या तुम्हारी इच्छा के कारण? इच्छा का अस्तित्व यहाँ पर्याय में रहा। परमाणु की पर्याय कहाँ उसमें रही? इच्छा की पर्याय में वह (परमाणु की) पर्याय नहीं और वह परमाणु पैसे की पर्याय में इच्छा की पर्याय नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अपने आप जायेगी। वह परमाणु वहाँ जानेवाला था। रतिभाई! इसलिए बापूजी को भाव आया, ऐसा नहीं। भाव, भाव के कारण से आया और उसके कारण वह वस्तु हुई और जाये। शशीभाई! यह वजुभाई ने बहुत मकान बनाये हैं। यहाँ इनकार करते हैं। किसी की पर्याय से किसी की पर्याय नहीं होती।

द्रव्य—प्रत्येक वस्तु परद्रव्य-(पर)क्षेत्र..... पर सबमें, पर लागू करना। उसमें स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल-स्वभाव ऐसा लागू (करना)। ऐसे परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव से कहने में नास्ति है,.... ऐसा जिसे भेदज्ञान हो, उसकी दृष्टि स्व में समा जाती है और पर से पृथक् हो जाती है। इसलिए.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल १३, शनिवार, दिनांक - २८-१२-१९६३, गाथा-१४, प्रवचन-२१

पंचास्तिकाय । षट्द्रव्य आदि का कथन करते हैं । भगवान कुन्दकुन्दाचार्य इसके करनेवाले कर्ता हैं । कुन्दकुन्दाचार्य महाराज दिगम्बर मुनि थे । संवत् ४९, प्रथम शताब्दी में । और लब्धि थी तो भगवान के पास गये थे । महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर तीर्थकर भगवान विराजते हैं । उनके पास गये थे, वहाँ आठ दिन रहे थे और वहाँ से सुनकर यहाँ आये और ये शास्त्र बनाये । समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, नियमसार, अष्टपाहुड़ इत्यादि । ...उसमें पंचास्तिकाय में १४ वीं गाथा (चल रही है) । जो जैनदर्शन अथवा वस्तुदर्शन का प्राण है । समझ में आया ? सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यमत में ऐसी चीज़ कभी होती नहीं । सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग जैन परमेश्वर, उन्होंने एक समय में तीन काल तीन लोक ज्ञान में जाने । जैसा वस्तु का स्वरूप था, ऐसा जानने में आया, ऐसा कहा (और) वही वस्तु है ।

यह सप्तभंगी, पदार्थ स्वयंसिद्ध कैसा है ? प्रत्येक परमाणु, अनन्त आत्मायें, उससे अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, एक आकाश । इतने संख्या से अनन्त और जाति से छह (देखे) । जाति से छह द्रव्य देखे, जाति छह । संख्या अनन्त । अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु इत्यादि । प्रत्येक पदार्थ स्वयंकृत (हैं) । किसी ने बनाया नहीं है । किसी ने किया नहीं । किसी से बना हुआ है, कोई ईश्वर है और बना है, ऐसी चीज़ है नहीं । स्वयंसिद्ध अकृत्रिम अनादि वस्तु अपने से है । वह बात कहते हैं । देखो ! यहाँ से है । द्रव्य । ३२ पृष्ठ है । नीचे दूसरी पंक्ति ।

प्रत्येक पदार्थ—द्रव्य, द्रव्य । प्रत्येक वस्तु—द्रव्य । स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'अस्ति' है;.... क्या कहते हैं ? देखो, थोड़ी सूक्ष्म बात है । प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु—एक-एक पॉइन्ट—रजकण, यह कहीं मूल चीज़ नहीं है । यह तो अनन्त परमाणु का स्कन्धरूप पिण्ड है । उसका अन्तिम टुकड़ा, उसको भगवान परमाणु कहते हैं । परमाणु एक द्रव्य है । ऐसे अनन्त द्रव्य हैं और उससे अनन्तवें भाग अनन्त आत्मा हैं । संख्या में ।

प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु कैसे हैं ? द्रव्य—वस्तु। स्वद्रव्य अपने गुण-पर्याय के आधारभूत वस्तु अपने से है। स्वद्रव्य प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु स्वद्रव्य से अपना द्रव्य अर्थात् गुण-कायमी शक्तियाँ और उसकी पर्याय। गुण और पर्याय के आधाररूप वस्तु स्वयं अपने से है। समझ में आया ? कोई द्रव्य, अपना द्रव्य पर के कारण से है, ऐसा तीन काल में नहीं है। अपना द्रव्य स्वद्रव्य से है।

स्वक्षेत्र से है। दूसरा बोल। अपना क्षेत्र अर्थात् चौड़ाई। असंख्य प्रदेश है न आत्मा में ? परमाणु में एक प्रदेश है। थोड़ी सूक्ष्म बात है। यहाँ तात्त्विक बात है न। एक परमाणु-पॉइन्ट है—रजकण, वह जितनी जगह को रोके, उतनी जगह को प्रदेश कहते हैं। ऐसे एक जीव में असंख्य प्रदेश हैं। वह असंख्य प्रदेश उसकी चौड़ाई है। उस चौड़ाई को क्षेत्र कहने में आता है।

अपने द्रव्य से आत्मा है, अपने क्षेत्र से अपने में है। इस प्रकार प्रत्येक। परमाणु और अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, अनन्त आत्मायें। स्वद्रव्य से है, (स्वक्षेत्र) से है, स्वकाल से है। तीसरा बोल। वह आया है कुदरती अन्दर। पहले से गाथा शुरु की है। अभी आयी है। तुम आये और यह १४वीं गाथा सप्तभंगी की आयी है। सूक्ष्म तो है, परन्तु समझना तो पड़ेगा या नहीं ? अपनी पर्याय स्वकाल। देखो ! काल अर्थात् प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु की वर्तमान पर्याय। वस्तु अनन्त गुण का पिण्ड है, अनन्त गुण हैं और उसकी अनन्त गुण की एक समय में अनन्ती पर्याय हैं। पर्याय को यहाँ भगवान स्वकाल कहते हैं। पण्डितजी ! बराबर समझते हैं न ? बराबर समझते हैं ? समझ में आता है ? ठीक है। हमारी हिन्दी बराबर स्पष्ट नहीं है। साधारण हिन्दी चलती है। कहो, समझ में आया ?

प्रत्येक आत्मा... प्रत्येक समझते हो न ? भिन्न-भिन्न। भिन्न-भिन्न आत्मा और भिन्न-भिन्न एक-एक पॉइन्ट—परमाणु। ये कहीं मूल चीज़ नहीं है। ये तो अनन्त इकट्ठा होकर स्कन्ध पिण्ड बना है। उसका आखिर का टुकड़ा—परमाणु, ऐसे अनन्त परमाणु, ऐसे अनन्त आत्मा। एक राई का... राई कहते हैं न ? राई टुकड़ा लो, इतना (जितना) एक बटाटा... बटाटा को क्या कहते हैं ? आलू। आलू और लील-फूग-काई कहते हैं

न? उसमें से इतना टुकड़ा लो, टुकड़ा, तो उसमें असंख्य तो औदारिकशरीर है। और एक शरीर में अभी तक जितने सिद्ध हुए, उससे अनन्तगुना जीव हैं। प्रत्येक आत्मा भिन्न-भिन्न आत्मा अपने द्रव्य से है, अपने क्षेत्र से है, अपना स्वकाल—पर्याय से है। समझ में आया? अधिकार सूक्ष्म आया है।

इतने में रहते हैं और उससे अनन्तगुना परमाणु उसके पास है। क्योंकि एक-एक आत्मा के पास दो-दो शरीर हैं। एक कर्मण और एक औदारिक। आलू कन्दमूल, शक्करकन्द... अनन्त हैं न? अनन्त। एक-एक प्रत्येक आत्मा, भिन्न-भिन्न परमाणु अपने द्रव्य से है, अपने क्षेत्र से है, अपनी पर्याय से है। समझ में आया? और अपने भाव से है। भाव अर्थात् गुण। काल अर्थात् पर्याय। भाव अर्थात् गुण। द्रव्य अर्थात् गुण और पर्याय का आधार स्वयं वस्तु। समझ में आया? ऐसा भेदज्ञान है कि सब आत्मा अपने-अपने से है, पर से नहीं है। सब परमाणु अपने से—अपने द्रव्य से है, पर परमाणु के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नहीं है। सूक्ष्म बात। जैनदर्शन वीतराग... कुन्दकुन्दाचार्य महाराज तो साक्षात् भगवान के पास गये थे। वहाँ आठ दिन रहे थे। वर्तमान भगवान सीमन्धर प्रभु विराजते हैं। ये सीमन्धर भगवान विराजते हैं। देखा न सब? समवसरण में है, उसमें है। मानस्तम्भ में सीमन्धर भगवान विराजमान किये हैं। वे भगवान तो वर्तमान विराजते हैं। पाँच सौ धनुष का देह है, करोड़ पूर्व का जिनका आयुष्य है। वर्तमान महाविदेहक्षेत्र में मनुष्य देह में विराजमान है। तीर्थकरपने, अरिहन्तपदपने विराजमान हैं। और जो चौबीस तीर्थकर हुए, वे तो सिद्धपद में विराजमान हैं, उनका तो मोक्ष हो गया। अरिहन्त नहीं है। वर्तमान भगवान विराजते हैं वे तो अरिहन्तपद में विराजते हैं। बारह सभा है। इन्द्र आते हैं, वाणी निकलती है। उन भगवान के पास कुन्दकुन्दाचार्य आठ दिन सदेह गये थे। लब्धि थी। समझ में आया? मद्रास से अस्सी मील दूर एक पौन्नूरहिल है। वहाँ ध्यान में रहते थे और वहाँ से गये थे। भगवान के पास गये थे। कभी देखा है? देखा नहीं? मद्रास के पास पौन्नूरहिल है। अभी हम यहाँ से जानेवाले हैं। संघ ५००-६०० लोग जानेवाले हैं। अभी यहाँ सात-आठ दिन हैं। रविवार को ... वहाँ पौन्नूरहिल जाना है। वहाँ कुन्दकुन्दाचार्य ध्यान में रहते थे और वहाँ भगवान के पास गये थे। आठ दिन वहाँ रहे थे। और पौन्नूर हिल पर यह शास्त्र रचे। वन्देवास है, वहाँ से

पाँच मील है। मद्रास से अस्सी मील है। यहाँ से १५०० मील है। दक्षिण में है। अभी हम जानेवाले हैं। यहाँ से रविवार को निकलकर, २६ जनवरी को वहाँ होंगे। २६ और २७ दो दिन पौनूरहिल हैं। हम! वहाँ ताड़पत्र पर बनाये।

भगवान सन्त थे, भावलिंगी आत्मा के आनन्द में झूलनेवाले। उसमें विकल्प आया और शास्त्र बन गया। तो उन्होंने कहा, प्रभु! यहाँ तो आत्मा को प्रभु कहकर बुलाते हैं। शक्तिरूप से प्रभु है या नहीं? प्रभु जब होता है तो प्रभु की पर्याय कहाँ से होगी? कहीं बाहर से आती नहीं। अन्तर में आत्मा में प्रभुता पड़ी है। बराबर है? छोटी पीपर का हम दृष्टान्त देते हैं। वहाँ टीकमगढ़ में दृष्टान्त दिया था। टीकमगढ़ में भी व्याख्यान दिया था। पीपर का दृष्टान्त दिया था। पीपर होती है न? छोटी पीपर। उसमें चौंसठ पहरी चरपराहट अन्दर पड़ी है। घूँटते हैं न? घूँटते-घूँटते चौंसठ पहरी आती है, वह कहाँ से आयी? पत्थर से आयी? पत्थर से आवे तो कोयला, कंकड़ घिस डाले। अन्दर में है। एक-एक पीपर के दाने में चौंसठ पहरी चरपराहट (भरी है)। हमारी काठियावाड़ी भाषा में तीखाश कहते हैं, तीखाश। तुम्हारे में चरपराहट (कहते हैं)। अन्दर पड़ी है और हरा रंग उस पीपर में पड़ा है। बाहर में काली है, अन्दर में हरा पड़ा है। है उसमें से बाहर आती है।

ऐसे भगवान आत्मा... यह आत्मा। उसमें परमात्मपद पड़ा है। समझ में आया? आत्मा की शक्ति। यह भाव कहा न, भाव? अपने (भाव से) है। तो अपना भाव क्या आत्मा का? अनन्त सर्वज्ञपद अन्दर पड़ा है। सर्वदर्शि पड़ा है, अनन्त आनन्द पड़ा है। अनन्त वीर्य शक्तिरूप में अन्दर पड़ा है। भावरूप से। देखो!

द्रव्य, स्वद्रव्य से है, स्वक्षेत्र से है, स्वकाल से है, स्वभाव से है तो अस्ति है। स्वभाव से अस्ति है। समझ में आया? ...अपना द्रव्य अपने में है, अपना क्षेत्र अपने से है, अपनी पर्याय अपने से है। बेहद अपरिमित शक्ति से भरा अपना भाव है। ऐसा अपने में है और पर से नहीं है। बाद में उतारेंगे। पर से नहीं है तो अपनी पर्याय शान्ति की, सम्यग्दर्शन, ज्ञान की धर्म की पर्याय प्रगट करनी हो (तो) अन्दर भाव में अनन्त ज्ञान, दर्शन पड़ा है। उसका पिण्ड वह द्रव्य है। द्रव्य का आश्रय करने से वह धर्म की पर्याय

प्रगट होती है। समझ में आया? भाषा कठिन, भाई! यह तो वीतराग का कथन है। सर्वज्ञ का तत्त्व।

नौवीं ग्रैवेयक अनन्त बार गया, परन्तु यथार्थ समझ में आया नहीं। वह आता है न? छहढाला में नहीं आता है? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, नै निज आत्मज्ञान बिना लेश सुख न पायो।' दौलतराम। दौलतरामजी कृत छहढाला है न? छहढाला। उसमें है। 'मुनिव्रत धार...' आत्मज्ञान बिना। आत्मा क्या चीज़ है? आनन्दमूर्ति अन्तर में अनन्त आनन्द पड़ा है। जैसे छोटी पीपर के अन्दर चरपराई की शक्ति और हरा रंग पड़ा है तो बाहर आता है। प्राप्त की प्राप्ति है। है, उसमें से आती है। इसी तरह आत्मा... यहाँ तो सब द्रव्य की बात है। सब द्रव्य की, छहों द्रव्य की। यहाँ आत्मा अपनी वस्तु से है, अपने क्षेत्र से है, अपनी पर्याय वर्तमान अनन्त गुण की पर्याय है, उससे है और अपना अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द भाव से अपने से है। ऐसा निर्णय करे तो उसकी वर्तमान पर्याय—दशा धर्मरूप (प्रगट होती है)। अपना धरनेवाला गुण और पर्याय, भाव और काल, उसको धरनेवाला द्रव्य—वस्तु, उसका लक्ष्य करने से धर्म की सम्यग्दर्शन आदि पर्याय प्रगट होती है। ...भाई! समझ में आता है या नहीं यह? सेठी! यह बच्चों को समझ में आता है या नहीं? वृद्ध के पीछे (बैठे हैं)। आहाहा!

अरे! भगवान! एक बार सुन तो सही, तेरी क्या चीज़ है? प्रत्येक परमाणु... अरे! अभव्य का आत्मा हो, वह भी अपने द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से है और पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं है। ऐसा जब निर्णय करे तो परपदार्थ के लक्ष्य से मेरे में शान्ति, धर्म नहीं होगा। मेरे अन्तर द्रव्य में शक्तियाँ पड़ी हैं, अन्तर का अवलोकन की पर्याय मुझे प्रगट होगी, ऐसा निर्णय (हुआ)। स्व में मैं हूँ, पर में नहीं हूँ, ऐसे निर्णय का फल वह है। समझ में आया? यह विषय भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने पंचम काल के प्राणियों के लिये लिखा है या नहीं? या चतुर्थ काल के लिये (लिखा है)? पंचम काल के साधु थे। दो हजार वर्ष हो गये। ४९ के वर्ष। वह पंचम काल था। विक्रम की ४९ वर्ष। उन्होंने जगत के हित के लिये बनाया।

अरे! आत्माओ! प्रत्येक वस्तु अपने गुण अर्थात् शक्तियाँ और पर्याय अर्थात्

वर्तमान दशा, उस शक्ति और अवस्थारूप द्रव्य का आधार... गुण और पर्याय का आधार वस्तु है। उसकी चौड़ाई, वह उसका क्षेत्र है और उसकी वर्तमान अनन्त गुण की दशा—पर्याय—हालत उसका स्वकाल है। उसकी अनन्त शक्तियाँ—गुण त्रिकाल रहनेवाले उसका भाव है। समझ में आया? अपना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से कथन करने पर अस्ति है, अस्ति है।

अब, (२) द्रव्य परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'नास्ति' है,... दूसरा बोल। अपना आत्मा और प्रत्येक परमाणु। यह आत्मा... परद्रव्य परमाणु है, कर्म है, शरीर है। तो सब परमाणु अपने द्रव्य से वस्तु है, क्षेत्र से वस्तु है, उसकी पर्याय से वस्तु है और गुण से (वस्तु) है। परन्तु परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से यह आत्मा नहीं है। पण्डितजी! बराबर है? शास्त्रीजी! उसमें महासिद्धान्त पड़ा है, दोनों के बीच में तो।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो आता है, सप्तभंगी यहाँ से लिया है न! कुन्दकुन्दाचार्य ने पहले कहा न। वह तो बाद में। यह तो मूल है। उसमें तो घट, पट, रंग, गन्ध, रस में बहुत उतारा है। वह बाद में। अलग-अलग बात है। वह तो बाद में एक में हीं रंग से अस्ति है, गन्ध से नहीं है। और गन्ध से अस्ति... बात है। वह नहीं। यहाँ तो पहले भेदज्ञान की बात है। क्या कहते हैं?

अपना आत्मा और अनन्त आत्मा, एक परमाणु रजकण पॉइन्ट। ऐसे अनन्त परमाणु। ऐसे असंख्य कालाणु। अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है। द्रव्य परद्रव्य से, परद्रव्य से नहीं है। आत्मा शरीर से नहीं है। आत्मा कर्म से नहीं है। कर्म परद्रव्य है। कर्म से विकार कहाँ होता है? अपनी पर्याय अपने से है। पर की पर्याय की अपने में नास्ति है। वह अभी आयेगा। देखो! द्रव्य, परद्रव्य से नास्ति है। अपना द्रव्य और प्रत्येक द्रव्य परक्षेत्र से नास्ति है। अपना द्रव्य पर का द्रव्य परकाल से नास्ति है। काल अर्थात् कर्म के उदय की जो पर्याय है, वह तो परद्रव्य की पर्याय है। ... समझ में आया?

अपना आत्मा परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नास्ति (स्वरूप है)। उसका अर्थ कि प्रत्येक परमाणु परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नास्ति है। ऐसा मेरा आत्मा भी और

सब आत्मा और सब परमाणु परद्रव्य अर्थात् गुण-पर्याय का पिण्ड, क्षेत्र अर्थात् चौड़ाई, काल अर्थात् अवस्था, भाव अर्थात् शक्तियाँ, वह परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से अपना द्रव्य और (दूसरे) परद्रव्य है नहीं। कहो, सेठी! यह आत्मा कर्म के कारण नहीं है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : विकार कहाँ से हुआ? अपना स्वकाल से है और परकाल से नहीं है। समझ में आया? है या नहीं उसमें देखो। परद्रव्य, परक्षेत्र। सब में पर (लगाना)। पहले में स्व चारों में लेना। द्रव्य परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव से कथन किया जाने पर 'नास्ति' है। वस्तु के ज्ञान बिना तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन कहाँ से आता है? तत्त्वार्थश्रद्धान में तो सात तत्त्व आते हैं। सातों तत्त्व भिन्न है। पाँच पर्याय है और दो द्रव्य है सात में। जीव और अजीव (दो द्रव्य है) और पाँच पर्याय है। आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। कहते हैं कि तुझे सात तत्त्व की श्रद्धा कहाँ से आयेगी? अपना द्रव्य अपने से है और अपनी पर्याय—आस्रव, बन्ध, संवर... आती है। समझ में आया?

अपना आत्मा, शक्ति—गुण अनन्त और पर्याय का आधार वह द्रव्य स्वयं। और अपनी पर्याय में आस्रव, पुण्य-पाप का भाव, वह अपनी पर्याय है। भावबन्ध, हाँ! भावबन्ध। जड़बन्ध पर का है। संवर, निर्जरा और मोक्ष। अपनी स्वकाल की पर्याय अपने से है। परकाल से अपनी पर्याय संवर, निर्जरा, आस्रव, बन्ध है नहीं। सेठी! ये तो दस आँकड़े हैं। दस अंक सीखते हैं न? दस में से कुछ भी कम करे, गुणा करे तो दस की संख्या में दूसरी ग्यारहवीं संख्या नहीं आती है।

ऐसे यह सप्तभंगी सब अनन्त द्रव्य पर उतरती है। प्रथम तो अभी पर से भिन्न करने की बात है। अपने से... अपना आत्मा अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है। पर कर्म, शरीर, वाणी, भाषा और पर आत्मा अनन्त सिद्ध, लाखों केवली विराजमान हैं महाविदेहक्षेत्र में—उस परद्रव्य से, परक्षेत्र से, परकाल से, परभाव से अपना आत्मा नहीं है। कहो, समझ में आया? भगवान की प्रतिमा का जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव है उससे इस आत्मा का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव नहीं है। समझ में आया?

प्रत्येक वस्तु परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल अर्थात् पर अवस्था और परभाव से नास्ति है। है ही नहीं। अपने काल से—पर्याय से अपनी पर्याय धर्म की अथवा अधर्म की, आस्रव की, बन्ध की, शुद्ध की या पुण्य-पाप की, वह अपने स्वकाल में अपने से है और पर का स्वकाल अर्थात् पर की पर्याय से नहीं है। बराबर है ? पण्डितजी ! आहा ! यह समझ में आवे नहीं, इसके बिना तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन कहाँ से आयेगा ? अभी 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः' आता है पहला सूत्र ? सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग । बाद में तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं । तत्त्वार्थ—जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष तत्त्व कहे । स्व से है और पर से नहीं । समझ में आया ? ऐ देवानुप्रिया ! क्या सीखे हो ? आँकड़े ? क्या सीखा अस्ति में से ? आँकड़े या भाव ?

यहाँ अपनी पर्याय के काल से अपनी पर्याय है । पर के अनन्त शरीर, कर्म आदि अनन्त दूसरे द्रव्य, अनन्त सिद्ध हों, केवली हों, सब हैं, भगवान की प्रतिमा हो या सम्मोदशिखर हो, उस परद्रव्य की... परद्रव्य का स्वकाल, स्वकाल अर्थात् उससे अपनी पर्याय है नहीं । यदि अपनी पर्याय उससे हो तो दो एक हो जाती है । ऐसा कभी बनता नहीं है । समझ में आये नहीं । शंकरभाई ! ये तो जैनदर्शन नहीं, वस्तुदर्शन है । जैनदर्शन वस्तु का स्वभाव है । वस्तु का स्वभाव जानना, उसका नाम जैनदर्शन है । वह तो वस्तु का स्वरूप है । जैनदर्शन सम्प्रदान नहीं है । वस्तु ऐसी है, ऐसा भगवान ने देखा, ऐसा कहा, ऐसा है । समझ में आया ?

धर्म करना हो तो पहले किस चीज़ में तुझे धर्म करना है ? धर्म तो मेरी पर्याय में करना है । धर्म तो पर्याय में होता है न ? द्रव्य त्रिकाली है, गुण तो त्रिकाली है । धर्म तो नयी पर्याय होती है । तो नयी पर्याय की उत्पत्ति कहाँ से होती है ? कि अपनी पर्याय में होती है । अपनी पर्याय पर से होती नहीं । तो कहाँ से होती है ? वह अपनी पर्याय अपने द्रव्य से होती है । समझ में आया ? द्रव्य में अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं । पहले शक्ति कही थी न । अनन्त सर्वज्ञपद आत्मा में पड़ा है । ऐसे अनन्त पद का गुण का पिण्ड द्रव्य है । गुण और पर्याय का पिण्ड, सो द्रव्य है । उसका आधार वह द्रव्य है । तो उसकी पर्याय अपने में अपने से है । वह पर्याय पर से नहीं है । अपने से है तो कैसे धर्म होगा ? सम्यग्दर्शन की पर्याय । अपने से है । तो अपने से है तो किससे है ? वह पर्याय अपने

द्रव्य के लक्ष्य से उत्पन्न होती है। पर के लक्ष्य से उत्पन्न नहीं होती। क्योंकि पर आत्मा में है नहीं और आत्मा पर में नहीं है। अपनी स्वपर्याय पर में नहीं है और पर की पर्याय अपने में नहीं है। सेठी! यह तो मूल सिद्धान्त वस्तु का स्वरूप ऐसा है। भगवान ने कहीं बनाया नहीं है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहते हैं ? क्या कहते हैं ? पर से मैं नहीं हूँ और मेरी पर्याय मेरे से है, ऐसा निर्णय करनेवाले की दृष्टि अपने द्रव्य पर जाती है। वह करना है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करता है ? करे कौन ? अपनी पर्याय करता है। पर की कौन करता है ? वह तो बात कहते हैं।

अनन्त परमाणु, अनन्त जीव और असंख्य कालाणु, सबकी स्वकाल... स्वकाल कहो या उसकी पर्याय कहो, उसकी पर्याय उससे है। क्या.. ? उसकी पर्याय तो उसमें है और तेरी पर्याय तेरे से है। शरीर की पर्याय से तेरी पर्याय है नहीं, कर्म की पर्याय है नहीं। पर का लक्ष्य हटाना और अपनी पर्याय प्रगट करने को द्रव्य का लक्ष्य करना। यह करना है उसको। देवानुप्रिया!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ये निष्क्रिय हो गया ? फिर जड़ की क्रिया नहीं कर सकेगा। परन्तु कौन कर सकता है ? ...भाई! अभी उसको जड़ की क्रिया में कुछ करना हो तो सक्रियपना हो। यहाँ तो भगवान ना कहते हैं। एक-एक परमाणु की वर्तमान पर्याय उससे होती है। स्वकाल से अस्ति है। पर की इच्छा से उसमें अस्ति है, ऐसा है नहीं। यह समझना। सच्ची चीज़ क्या है ? भेदज्ञान की बात चलती है। भेदज्ञान करना। पहले अपना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपने से है, पर से नहीं है। उसका—परद्रव्य का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उससे है, मेरे से नहीं है। मुझे पर का क्या करना ? और मुझ से क्या होता है ? ऐसा निर्णय होने के बाद, अपने स्वकाल में जो विकार है, वह विकार क्षणिक स्वकाल में है; त्रिकाल द्रव्य और गुण में है नहीं। तो द्रव्य-गुण में दृष्टि देने से विकार...

है, और स्वभाव की रुचि होती है उसका नाम सम्यग्दर्शन धर्म कहते हैं। उस सम्यग्दर्शन में सातों तत्त्व की श्रद्धा आ गयी। देवानुप्रिया!

द्रव्य मेरा परिपूर्ण मेरे से है, ऐसी प्रतीति हो गयी। उससे मेरी धर्म की पर्याय प्रगट होती है, उसकी प्रतीति हो गयी। बाकी रहे आस्रव और बन्ध विकारी अंश वह भी मेरे से है, ऐसी प्रतीति हो गयी। और संवर, निर्जरा पूर्ण शुद्ध मेरे द्रव्य के आश्रय से होगी, उसकी प्रतीति हुई। ज्ञान बिना सम्यक् क्या चीज़ है, वह समझे बिना बाहर से कुछ आता है? समझ में आया? क्या करना? यह समझे तो सही हम। क्या समझा? ... यहाँ तो अभी परद्रव्य से भिन्न बताते हैं।

अपने में भी जब विकारी पर्याय अपनी पर्याय में है, द्रव्य और गुण में है नहीं। त्रिकाली वस्तु गुण-पर्याय का आधार वस्तु और अनन्त गुण, उसमें तो विकार है ही नहीं। विकार का जिसको नाश करना हो उसको, विकारी क्षणिक एक समय के अस्तित्व का लक्ष्य छोड़कर, त्रिकाली द्रव्य और गुण के अस्तित्व की दृष्टि (करनी)। विकार मेरे में है, ऐसी रुचि हट जायेगी और मेरे में आनन्द और शुद्धता पड़ी है, ऐसी रुचि उत्पन्न होगी, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। ओहो! बराबर समझ में आता है या नहीं? ... सात भंग दो में आ गये।

द्रव्य, परद्रव्य से—परक्षेत्र से—परकाल से, शरीर की अवस्था से मेरे में राग नहीं और राग के कारण शरीर की अवस्था नहीं, ऐसा कहते हैं। क्या कहा? यहाँ इच्छा हुई और वह अवस्था हुई, ऐसा नहीं है। क्योंकि मेरी इच्छा का यहाँ स्वकाल है और उसकी पर्याय का काल उसमें है। उसकी पर्याय के काल में इच्छा का काल है ही नहीं। सूक्ष्म बात है। समझ में आया?

भगवान की सप्तभंगी का एक बोल और दो बोल समझे तो पूरे चौदह ब्रह्माण्ड का भेदज्ञान हो जाये। और भेदज्ञान बिना कभी आत्मा की मुक्ति होती नहीं।

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।

अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥१३१॥

जिसने भी अब तक मुक्ति प्राप्त की है, सबने भेदविज्ञान से पाये हैं और बँधे हैं,

वे भेदविज्ञान के अभाव से बँधे हैं। श्लोक है, श्लोक संवर के अधिकार में है। 'भेदविज्ञानः सिद्धाः' अभी तक जितने परमात्मा सिद्धपद को प्राप्त हुए वे सब, पर से मेरी चीज़ भिन्न है और विकार से भी मेरी चीज़ द्रव्य-गुण में विकार है नहीं, ऐसा भेदज्ञान करके चारित्र को प्राप्त करके मुक्ति को प्राप्त हुए। 'अस्यैवाभावतो बद्धा'। भेदज्ञान के अभाव के कारण अनन्त काल से विकार से बन्ध में पड़ा है। देवानुप्रिया! वह कहते हैं यह। समझने की दरकार नहीं और यूँ ही अन्धी दौड़ लगाकर, चलो, चलो ये करते हैं, चलो, चलो। क्या करे? तुम क्या कर सकते हो? तेरे में दूसरा क्या करे? तुम पर में क्या कर सकते हो? ऐसी भेदज्ञान की बुद्धि नहीं है, तब तक पर की अवस्था का अभिमान छूटता नहीं। पर की अवस्था मैंने की, वह अभिमान छूटता नहीं। और मेरी अवस्था के लिये पर हो तो हो, ऐसी दीनता हटती नहीं, दीनता दूर होती नहीं। मेरी दशा पर हो तो हो,... और पर की अवस्था मैं हूँ तो होती है। खोटा अज्ञान का अभिमान है। समझ में आया?

कुन्दकुन्दाचार्य... दो हजार वर्ष पहले यह पुस्तक बनायी है। संवत् ४९ में गये थे प्रभु के पास, वहाँ से आकर बनाया है। यह भगवान की चीज़ है। वीतराग जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ सौ इन्द्र के पूजनीक परमात्मा, ऐसा कहते थे। मुनि हैं, परन्तु भगवान का नाम लेकर कहते हैं न। पहले भी आया था न? उसमें आया था। १३वीं गाथा में आया था, १२वीं में आया था। 'समणा परुविति'। १२वीं गाथा है न? ऐसा श्रमण। श्रमण अर्थात् भगवान सर्वज्ञ, हाँ! श्रमण ऐसा कहते थे। श्रमण महाश्रमण। महाश्रमण सर्वज्ञ भगवान। महाश्रमण सर्वज्ञ भगवान ऐसा प्ररूपते थे। आहाहा! परम भट्टारक, परम पूजनीक, 'समणा परुविति'। महाश्रमण। पहली गाथा में है। पंचास्तिकाय की पहली गाथा है न? दूसरी में है। 'समणमुहुग्गदमट्ठं' है न? दूसरी गाथा। 'समणमुहुग्गदमट्ठं' दूसरी गाथा है। सातवाँ पन्ना है। सात। 'समणमुहुग्गदमट्ठं'। श्रमण के मुख से निकले हुए अर्थमय... पदार्थ। सर्वज्ञ महामुनि के मुख से कहे गये पदार्थों का कथन... दूसरी गाथा। पृष्ठ ७। है उसमें? भगवान पहली गाथा (में कहते हैं), 'समणमुहुग्गदमट्ठं'। महाश्रमण सर्वज्ञ भगवान, उनके मुख से निकले हुए 'मट्ठं' 'मट्ठं'

अर्थात् पदार्थ। भगवान के मुख से (कहे गये) पदार्थ को हम कहते हैं। हमारे घर की बात नहीं है। समझ में आया ?

श्रमण भगवान महा सर्वज्ञ परमात्मा। महामुनि थे वे। मुहामुनि हैं न? दूसरे छठवें-सातवें में हैं, वे मुनि हैं। ये तो महामुनि हैं। सर्वज्ञ महामुनि। (उनके मुख से) अर्थ अर्थात् सब द्रव्य की व्याख्या—कथन भगवान के मुख से निकली थी। ऐसा हमने सुना, हम समझे, हमने माना। ओहोहो! समझ में आया कुछ? कुन्दकुन्दाचार्य तो समर्थ मुनि थे। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, फिर तीसरे (पद में) आये, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो। गौतमस्वामी के बाद उनका ही नाम आया। मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं। ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं कि) हम कहते हैं ऐसा, भगवान के मुख में से ऐसा आया। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा महाश्रमण केवली ऐसा कहते थे कि पदार्थ—वस्तु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है और पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं है। ऐसा महामुनि कहते थे। ऐसा है, ऐसा कहते हैं, ऐसा हमको भान में, प्रतीति में आया है। कहो, समझ में आता है या नहीं? देवानुप्रिया! देखो, महामुनि (और) अर्थ शब्द था, दूसरी गाथा में। अर्थ। उस अर्थ की व्याख्या (चलती है)। अर्थ अर्थात् पदार्थ।

सब परमाणु—प्रत्येक अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है। दूसरे परमाणु के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से भी नहीं। ...सहित होता है। परमाणु की पर्याय में आत्मा की पर्याय से कुछ नहीं होता। हो तो अपनी पर्याय से पर की पर्याय हो, ऐसा बड़ा दोष (आता है)। ऐसा हो सकता नहीं। समझ में आया? दो भंग हुए। ...उसका विस्तार है।

तीसरा बोल है न? (३) द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से और परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से क्रमशः कथन किया जाने पर... एकसाथ कथन नहीं कर सकते। वस्तु तो एक साथ में है। (उसका) कथन किया जाने पर 'अस्ति और नास्ति' है;... एक साथ कहो तो अस्ति-नास्ति है। (४) द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से और परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से युगपद् कथन किया जाने पर 'अवक्तव्य' है। क्रम से कथन करो तो अस्ति नास्ति है। एकसाथ करो तो अवक्तव्य है। कह नहीं सकते। वह सब जानने की चीज़ है। (५) द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से और युगपद् स्वपर-द्रव्य-क्षेत्र-

काल भाव से कथन किया जानेपर 'अस्ति और अवक्तव्य' है;... स्व से अस्ति है, युगपद्... (६) द्रव्य परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से और युगपद् स्वपर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'नास्ति और अवक्तव्य' है; (७) द्रव्य स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से, परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से और युगपद् स्वपरद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से कथन किया जाने पर 'अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य' है।

यह (उपरोक्त बात) अयोग्य नहीं है,... देखो! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की टीका करनेवाले, अमृतचन्द्राचार्य मुनि दिगम्बर सन्त ९०० वर्ष पहले हुए। ...परन्तु यह टीकाकार जो अमृतचन्द्राचार्य हैं, वे ९०० वर्ष पहले हुए। महामुनि दिगम्बर वनवासी ताड़पत्र पर संस्कृत टीका (लिखी)। कहते हैं, यह अयोग्य नहीं है। देखो! है न उसमें? है? 'न चैतदनुपपन्नम्' वह न? 'न चैतदनुपपन्नम्' गैरवाजिब नहीं है, अयोग्य नहीं है, सब योग्य है। देखो! पाठ में लिखा है? अमृतचन्द्राचार्य महासन्त मुनि दिगम्बर भगवान जैसे मुनि थे। वे कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु अपने से है, पर से नहीं। यह अयोग्य नहीं है, यह अयोग्य नहीं है, गैरबाजिब नहीं है, यह अनुचित नहीं है; उचित है। कहो, समझ में आता है? यह देखो न, कितना अन्दर लिखा है! ओहोहो! टीका, भरतक्षेत्र में ऐसी टीका। शास्त्र की टीका अमृतचन्द्राचार्य की है, ऐसी टीका कहीं नहीं है। समयसार की, पंचास्तिकाय की, प्रवचनसार की गजब टीका! केवली जैसी टीका है!

कहते हैं, हमने जो सात भंग कहे, वह अयोग्य नहीं है। किसी को ऐसा लगे, ऐसा क्यों? ऐसा ही है। अयोग्य नहीं है। प्रत्येक द्रव्य अपने से है और पर से नहीं है। वह अयोग्य नहीं है, इसी प्रकार से है। ऐ... देवानुप्रिया! ना कह सके ऐसा नहीं है। निकाले तो भी निकले, ऐसा नहीं है। यह परमाणु है एक रजकण। एक रजकण अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है, दूसरे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं है। अपने आत्मा की इच्छा और ज्ञान की पर्याय से भी नहीं है। वह अयोग्य नहीं है। यही उचित है। आहाहा! आत्मा की इच्छा के कारण शरीर की पर्याय है? शरीर की पर्याय शरीर से है, मेरी पर्याय से वह नहीं है और उसकी पर्याय से मेरी इच्छा नहीं है। वह अयोग्य नहीं है। वही योग्यता युक्त है। और वही वाजिब और निर्दोष बात है। ऐसा कहते हैं, देखो! ओहोहो!

‘न चैतदनुपपन्नम्। मेल न खाये, ऐसी नहीं है। मेलवाली यही बात है। मेलवाली समझते हो? मिलाने होवे सत् का, ऐसी ही बात है। दूसरी रीति से है नहीं। आहाहा! समझ में आता है? देवानुप्रिया! क्या?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : सामान्य से विशेष बलवान क्या है? सम्यग्ज्ञान विशेष हो, वह बलवान है। ऐसे बलवान है। जैसे-जैसे निर्मल ज्ञान हो, वैसे-वैसे बलवान है। इस रीति से बलवान है। अपनी पर्याय में निर्मल ज्ञान हो वह बलवान है। पर से भिन्न और अपने से अपनी पर्याय अभिन्न। ऐसे सम्यग्ज्ञान की जैसे-जैसे निर्मलता बढ़े, वह निर्मलता बलवान है। ... प्रगट होती है, वह बलवान नहीं। पर्याय का प्रगट होना सामान्य के आश्रय से है। वहाँ सामान्य बलवान है। समझे देवानुप्रिया? वह तो खबर है न! आपको कहना है। परन्तु आपको हाँ कहकर फिर यह कहा। क्या कहा समझ में आया?

अपना आत्मा द्रव्य, क्षेत्र और भाव से सामान्य त्रिकाल एकरूप है। क्षेत्र के प्रदेश की आकृति विशेष होती है, वह दूसरी बात। और अपनी पर्याय में अनन्त गुण की अवस्था होती है, उसका विशेष कहने में आता है। अपना विशेष अपने से है, पर से है नहीं। धर्म भी एक विशेष दशा है। सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र वह धर्म की एक विशेष दशा है। वह दशा अपने से है, पर से नहीं। और वह दशा सामान्य के (आश्रय से उत्पन्न होती है)। पर्याय के आश्रय से पर्याय उत्पन्न होती नहीं। बहुत सूक्ष्म बात। सम्यक् समझ नहीं और जो मन में आया वो लगाकर चले। समझ में आया? सामान्य से विशेष बलवान है। ऐसा कहकर क्या (कहना है)? पर्याय बलवान है। पर्याय बलवान है अपने में। अपना बल अपने में, पर में नहीं। एक बात। और अपनी पर्याय में ... वह सामान्य के आश्रय से आया है। वह पर के लक्ष्य से नहीं आया है।

‘भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो’ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ११वीं गाथा में (कहते हैं)। व्यवहार अभूतार्थ है। पर्याय, राग आश्रय करनेयोग्य नहीं है। अपने अनन्त गुण की पर्याय, रागादि है अपने में, परन्तु अभूतार्थ है। अभूतार्थ अर्थात् अवलम्बन करनेयोग्य नहीं है। ‘भूदत्थमस्सिदो’ त्रिकाल ज्ञायक भगवान ज्ञायक चिदानन्द

प्रभु का आश्रय करने से सम्यग्दृष्टि होता है। विशेष, द्रव्य के सामान्य के आश्रय से होता है। कहो, वह विशेष पर के आश्रय से नहीं; विशेष, विशेष के आश्रय से नहीं। बात बहुत (सूक्ष्म)।

अन्तर चीज प्रभु पूरा आत्मा अनन्त शक्ति का भण्डार, उसका अवलोकन अन्तर अवलोकन करने से धर्म की पर्याय प्रगट होती है। बाह्य के अवलोकन में विकल्प उठते हैं। शुभभाव होता है। पूजा, दया, दान का भाव शुभ है। शुभ है शुभ। और स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, राजपाट पर लक्ष्य जाये तो वह अशुभभाव है। और वह परलक्ष्यी भाव उत्पन्न हो वह तो... अपने द्रव्य के आश्रय से पर्याय प्रगट हो (उसमें) निर्विकारी धर्म होता है। पण्डितजी! थोड़ी सूक्ष्म बात है। दिगम्बर माने, वह कोई सम्प्रदाय नहीं है। वह तो धर्म का स्वरूप ही ऐसा है। समझ में आया ?

अपना स्वरूप और बाद में आत्मा का पुरुषार्थ करके स्वरूप में स्थिर जब चारित्र होता है, तब शरीर की दशा शरीर के कारण (नग्न हो जाती है)। उसकी पर्याय अपने से नहीं, अपनी चारित्र की पर्याय नग्न पर्याय से नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आता है ? अपनी पर्याय सामान्य द्रव्य के आश्रय से सम्यक् हुआ। फिर विशेष एकाकार होने से चारित्र हुआ। (तब शरीर की दशा) नग्न हो जाती है। वस्त्र, पात्र रह जाये और अन्दर मुनिपना हो, ऐसा हो नहीं सकता। नग्नदशा की पर्याय परकाल की, परवस्तु की है। अपने काल में वह नहीं और उसके काल में (स्व नहीं)। तो उसकी स्वपर्याय का काल अपनी पर्याय से नहीं, अपनी पर्याय स्वचारित्र की पर्याय नग्न (दशा से नहीं)। उसमें नास्ति है। समझ में आता है ? यह तो सूक्ष्म तत्त्व सम्यग्दर्शन का विषय भेदज्ञान है। और यह भेदज्ञान समझे बिना उसकी निःशंकता होती नहीं।

परद्रव्य का जहाँ-तहाँ स्वामी हो जाता है। मैंने किया, मैंने किया। ... उसकी अवस्था का करनेवाला ... क्यों, पाटनीजी! और तेरे में दूसरे ने किया तो तूने क्या किया ? उसने किया तो तूने क्या किया ? तूने तेरी क्रिया की, उसने उसकी क्रिया की। दोनों भिन्न-भिन्न है। समझ में आया ? अब कहते हैं, वह अयोग्य नहीं। उसके ऊपर थोड़ा आया।

एक आत्मा अपनी वर्तमान दशा से है। पर की पर्याय से नहीं, यह अयोग्य नहीं है। यही योग्य है। शरीर की अवस्था, वाणी की अवस्था, नग्न अवस्था, वह पर्याय परमाणु के स्वकाल से है। अपने काल की इच्छा और ज्ञान से नहीं है। वह अयोग्य नहीं है, वही योग्य है। देवानुप्रिया! इसमें कुछ बोला जाये, ऐसा नहीं है, हों! बोला नहीं जाये, ऐसा कहकर मौन रहती हैं। नहीं तो बहुत विपरीत बात बोलने में आये। बोलने में।

अब कहते हैं, **क्योंकि सर्व वस्तु (१) स्वरूपादि से 'अशून्य' है,...** है? सर्व वस्तु। एक-एक आत्मा... एक-एक कहते हैं? प्रत्येक-प्रत्येक। एक-एक प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक परमाणु स्वरूपादि से अशून्य है। अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से अशून्य नाम अस्ति है। अशून्य है अर्थात् अस्ति है, अशून्य अर्थात् पूर्ण है। नीचे अशून्य का अर्थ किया है। 'जो शून्य नहीं है ऐसा, अस्तित्ववाला, सत्।' नीचे नोट है। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु अपने से अशून्य है। अर्थात् अपने से भरा पड़ा है। अपने गुण और पर्यायशक्ति से भरा है। अशून्य का अर्थ शून्य नहीं अर्थात् खाली नहीं। खाली कहते हैं न? खाली कहते हैं न? प्रत्येक वस्तु खाली नहीं है, अपने स्वरूप से। अपने स्वरूप से है और पर स्वरूप से शून्य है। देखो! देवानुप्रिया! निमित्त से प्रत्येक द्रव्य शून्य है। प्रत्येक की पर्याय पर से शून्य है, खाली है, अभाव है।

मुमुक्षु : घुस जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : घुस कैसा जाये? घुस जाये तो शून्य न रहे। पर से शून्य है। आहाहा!

वह अयोग्य नहीं है। वही योग्य और वस्तु का स्वभाव है। क्या है देखो। दो शब्द लिये दो भंग के। पहला भंग जो लिया था, स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है। यहाँ कहा, स्वरूपादि से अशून्य है। कारण दिया। प्रत्येक चीज़, अपनी शक्तियाँ और पर्याय का पिण्डरूप द्रव्य और विस्तार क्षेत्र, काल पर्याय, भाव गुण उससे अशून्य है अर्थात् उससे है। अपना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से अशून्य है अर्थात् है।

(२) पररूपादि से 'शून्य' है,.... आहाहा! एक आत्मा पर आत्मा, पर कर्म की पर्याय से शून्य है। बराबर है? कर्म के परमाणु अपने से अशून्य है। इस आत्मा से वह

शून्य है। अपना आत्मा अपने द्रव्य, क्षेत्र, भाव से अशून्य नाम है अस्ति। पर के द्रव्य, क्षेत्र, भाव से शून्य है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं है। आत्मा की पर्याय में कर्म की नहीं। दोनों भिन्न-भिन्न हैं। समझ में आया ? विभाव की पर्याय (से अशून्य) और कर्म का उदय की पर्याय से (शून्य है)। कर्म के उदय की पर्याय उससे (कर्म से) अशून्य है। अपने विभाव से वह (कर्म शून्य है)। समझ में आया ? यह तो बहुत बार कहा है। पहली बार नहीं है। ऐसा तो बहुत बार आया है। उतर गया है उसमें, उतर रहा है।

... अनन्त पदार्थ जगत में जितने भगवान ने देखे, वे सब अपने से अशून्य अर्थात् भरे पड़े हैं। ..., क्षेत्र से, द्रव्य से अपने से अस्ति रखते हैं, अशून्य है और परपदार्थ से शून्य है। परपदार्थ से... पदार्थ का अभाव है। जिसको नास्ति कहा था, उसको यहाँ शून्य कहा। उसमें अस्ति कहा था, उसको यहाँ अशून्य कहा। आहाहा! अनन्त पदार्थ मेरे से भिन्न हैं और अनन्त से मैं अकेला भिन्न हूँ। मेरा परपदार्थ के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध का अर्थ निमित्त मेरी पर्याय में नहीं, मेरी पर्याय निमित्त में नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान क्या करना है ? स्व का या उसका ? निमित्त की पर्याय में अपनी पर्याय शून्य है और अपनी पर्याय में निमित्त की पर्याय शून्य है। ऐसा ज्ञान करने में स्व-पर का ज्ञान साथ में आ जाता है। बहुत गड़बड़ भाई! समझ में आया ? गड़बड़ नहीं, यह तो सीधी सरल बात है। दो और दो चार। कोई दो और दो अढाई कहे (झूठ है)। आचार्य ने कहा न, योग्य है, उपपन्न है, उपपन्न है, बाजिब है, ऐसा मिलान है, ऐसा मेल है।

अरे... आत्मा! वाणी वाणी का एक-एक रजकण अपने से अशून्य है, अस्ति है। आत्मा की इच्छा से और ज्ञान से शून्य है परमाणु। इच्छा से और ज्ञान से भाषा का परमाणु शून्य है। अर्थात् उससे अस्ति नहीं है। क्या कहते हैं, कुछ खबर नहीं। अपनी

अस्ति कैसे है उसकी खबर नहीं। ... है तो वह शरीर में है, कर्म में है। अरे! नहीं। तेरे अनन्त गुण और तेरी अनन्त विकारी, अविकारी पर्याय में तुम हो। पर में नहीं। और पर पर में है, तेरा एक अंश से पर नहीं है। समझ में आया ?

पररूपादि से शून्य है,... वह सात भंग कहे न? वैसे दोनों में अशून्य शून्य एकसाथ। अपने से है, पर से शून्य एकसाथ। अस्ति नास्ति। दोनों से परपदार्थ से और पररूपादि से अवक्तव्य। **भंगों के संयोग से कथन करने पर (५) 'अशून्य और अवाच्य' है,...** पर से शून्य। अपने से है, पर से नहीं है। दो से अवाच्य। अपने है, पर से नहीं, है और नहीं, दो से अवाच्य। सात बोल हो गये। ओहोहो! एक भंग भी शान्ति से विचार करे... ऐसे ही पढ़ ले और पढ़ डाला, पढ़ डाला। बहुत पढ़ डाला। पढ़ डाला न? ग्रहण नहीं किया न? पकड़ा नहीं। सप्तभंगी तो बहुत बार पढ़ डाली है। बहुत अच्छा, भैया! देवानुप्रिया!

यहाँ भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने कहा हुआ कुन्दकुन्दाचार्य आदि कहते हैं, भैया! पढ़ डाला छोड़ दे, पढ़ ले। अपना स्वरूप, कहो! तेरी नजर तेरे में कर। तेरी अस्ति तेरे में है, वहाँ नजर कर। तेरी अस्ति पर में नहीं है। वहाँ नजर करने से तुझे क्या मिलेगा? पर की चीज़ उससे है। तू उसको साथ देने से उसमें क्या होगा? वह तो उससे होनेवाला होगा, तेरे से तो होता नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़ लिया। अन्दर। आहाहा! समझ में आया? बात बहुत... एक ... इसके बाद... एक घण्टा हो गया....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १५

भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो।

गुणपज्जएसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति॥१५॥

सत्द्रव्य का नहीं नाश हो अरु असत् का उत्पाद ना।

उत्पाद-व्यय होते सतत सब द्रव्य-गुणपर्याय में॥१५॥

अन्वयार्थ :- [भावस्य] भाव का (सत् का) [नाशः] नाश [न अस्ति] नहीं है [च एव] तथा [अभावस्य] अभाव का (असत् का) [उत्पादः] उत्पाद [न अस्ति] नहीं है; [भावाः] भाव (सत् द्रव्यों) [गुणपर्यायेषु] गुणपर्यायों में [उत्पादव्ययान्] उत्पाद-व्यय [प्रकृर्वन्ति] करते हैं।

टीका :- यहाँ उत्पाद में असत् के प्रादुर्भाव का और व्यय में सत् के विनाश का निषेध किया है (अर्थात् उत्पाद होने से कहीं असत् की उत्पत्ति नहीं होती और व्यय होने से कहीं सत् का विनाश नहीं होता-ऐसा इस गाथा में कहा है)।

भाव का-सत् द्रव्य का-द्रव्यरूप से विनाश नहीं है; अभाव का-असत् अन्य द्रव्य का-द्रव्यरूप से उत्पाद नहीं है; परन्तु भाव-सत् द्रव्यों, सत् के विनाश और असत् के उत्पाद बिना ही, गुणपर्यायों में विनाश और उत्पाद करते हैं। जिस प्रकार घी की उत्पत्ति में गोरस का-सत् का-विनाश नहीं है तथा गोरस से भिन्न पदार्थान्तर का-असत् का-उत्पाद नहीं है, किन्तु गोरस को ही, सत् का विनाश और असत् का उत्पाद किये बिना ही, पूर्व अवस्था से विनाश प्राप्त होनेवाले और उत्तर अवस्था से उत्पन्न होनेवाले स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णादिक परिणामी गुणों में मक्खनपर्याय विनाश को प्राप्त होती है तथा घी पर्याय उत्पन्न होती है; उसी प्रकार सर्व भावों का वैसा ही है (अर्थात् समस्त द्रव्यों को नवीन पर्याय की उत्पत्ति में सत् का विनाश नहीं है तथा असत् का उत्पाद नहीं है, किन्तु सत् का विनाश और असत् का उत्पाद किये बिना ही, पहले की (पुरानी) अवस्था से विनाश को प्राप्त होनेवाले और बाद की (नवीन) अवस्था से उत्पन्न होनेवाले *परिणामी गुणों में पहले की पर्याय विनाश और बाद की पर्याय की उत्पत्ति होती है)॥१५॥

* परिणामी=परिणमित होनेवाले; परिणामवाले। (पर्यायार्थिकनय से गुण परिणामी हैं अर्थात् परिणमित होते हैं।)

पौष शुक्ल १४, रविवार, दिनांक - २९-१२-१९६३, गाथा-१५, प्रवचन-२२

पंचास्तिकाय, इसमें षट्द्रव्य का कथन है। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग परमेश्वर जिन्होंने एक समय में काल के सूक्ष्म समय में तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए, उसमें षट्द्रव्य पंचास्तिकाय का ज्ञान अपनी पर्याय में पर्याय जानने से प्रगट हुआ। जैसा स्वरूप है, वह सर्वज्ञ परमात्मा ने प्रत्येक द्रव्य का-वस्तु का स्वरूप वर्णन किया। वे कुन्दकुन्दाचार्य महाराज पंचास्तिकाय द्वारा वर्णन करते हैं।

१५वीं गाथा। पुस्तक देना पुस्तक। पंचास्तिकाय। शंकरभाई! खबर तो पड़े कि इसमें क्या है? विद्यालय में हिम्मतभाई क्या पढ़ाते हैं और यहाँ क्या है?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : जरूरी इसका ही है। ऐसा ज्ञान। ज्ञान करना। पढ़ो-पढ़ो। अहमदाबाद। कहाँ गये मलूकचन्दभाई? तुमको याद किया था कि मलूकचन्दभाई के गाँव में.... सब करके आये होंगे वहाँ।

१५वीं गाथा बहुत सरस है। देखो! यहाँ पण्डितजी आये थे न एक बार बंसीधरजी। पिचहत्तर पण्डितों को लेकर। (संवत्) २०१३ के वर्ष। तब यह गाथा चली थी। यह १५वीं।

भावस्स णत्थि णासो णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो।

गुणपज्जएसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति॥१५॥

सत्द्रव्य का नहीं नाश हो अरु असत् का उत्पाद ना।

उत्पाद-व्यय होते सतत सब द्रव्य-गुणपर्याय में॥१५॥

इसकी टीका :- यहाँ उत्पाद में असत् के प्रादुर्भाव का और व्यय में सत् के विनाश का निषेध किया है। इसका अर्थ करते हैं। यह कहीं अकेले शब्द नहीं जाने देते। (अर्थात् उत्पाद होने से कहीं असत् की उत्पत्ति नहीं होती और व्यय होने से सत् का विनाश नहीं होता—ऐसा इस गाथा में कहा है।) अर्थात् क्या कहा? जो अनन्त आत्मायें हैं, अनन्त परमाणु हैं, असंख्य कालाणु हैं, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और

आकाश है। ऐसे अनन्त द्रव्य एक समय में अस्तिरूप से मौजूद ऐसे के ऐसे अनादि-अनन्त हैं। उसमें प्रत्येक द्रव्य में—आत्मा में, परमाणु में.... यह मुख्य तो दो की बात है न। वे चारों भी अरूपी हैं। प्रत्येक वस्तु में नयी अवस्था उपजे तो कहीं उसमें नया पदार्थ प्रगट नहीं होता। असत् का प्रादुर्भाव अर्थात् प्रगट होना नहीं है।

जैसे कि आत्मा में द्रव्य तो त्रिकाल है। उसके गुण त्रिकाल हैं। उसकी एक समय की पर्याय निर्मल सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न हुई, तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होने पर वह कहीं असत् अर्थात् नहीं था और नया हुआ (है, ऐसा नहीं है)। (असत् का) प्रादुर्भाव होने का निषेध किया है। अत्यन्त नयी वस्तु उत्पन्न हो, ऐसा नहीं होता। समझ में आया ? किसे ? व्यय। पूर्व की मिथ्यात्व अवस्था का नाश होने पर सत् का नाश, उसका निषेध कहा है। मिथ्यात्व का नाश होने पर कहीं वस्तु का नाश नहीं होता। समकित का उत्पाद होने पर कहीं नयी वस्तु उत्पन्न होती है, ऐसा नहीं है। कहो, बराबर है ?

परमाणु में एक रजकण पॉइन्ट—परमाणु, उसमें परमाणु में पहले शीत अवस्था हो, वह शीत अवस्था के बाद उसे उष्ण अवस्था हो। तो (उस उष्ण अवस्था का) उत्पन्न होना, वह कहीं नया द्रव्य ही उत्पन्न होता है, पदार्थ नया उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं है। और शीत अवस्था का (व्यय होने पर) पदार्थ का नाश हो जाता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? यह तो अनन्त पदार्थ की व्याख्या है, हों ! यह तो दो दृष्टान्त दिये। आत्मा और परमाणु के।

अनन्त पदार्थ। देखो, अब कहते हैं। **भाव का—सत् द्रव्य का—** अर्थात् वस्तु है परमाणु, आत्मायें, असंख्य कालाणु इत्यादि अनन्त द्रव्य। वह भाव अर्थात् सत् द्रव्य। उसका **द्रव्यरूप से विनाश नहीं है**,... उसका वस्तुरूप से नाश नहीं है। समझ में आया ? यह परमाणु की इस शरीर की पर्याय अभी उत्पन्न हुई। तो वह पर्याय उत्पन्न हुई, वह कहीं नया द्रव्य है, ऐसा नहीं है। और पूर्व की पर्याय आटा और दाल की थी, उसका नाश हुआ, इससे कहीं द्रव्य का नाश हुआ, ऐसा नहीं है। कहो, सेठी !

द्रव्यरूप से विनाश नहीं है,... वस्तुरूप से विनाश नहीं। पहली उत्पाद से बात

की थी। यहाँ नाश से बात पहले से करते हैं। प्रत्येक आत्मा एक समय के अन्दर वर्तमान अनन्त परमाणु और अनन्त आत्मायें, उनमें सत् द्रव्य का—द्रव्यरूप से विनाश नहीं है, अभाव का—असत् अन्य द्रव्य का—द्रव्यरूप से उत्पाद नहीं है;... समझ में आया? शीत अवस्था का नाश होने पर। पहला बोल ऐसा लिया है न नाश? यह रजकणों के द्रव्य का नाश नहीं है। और उष्णता में अन्य द्रव्य अन्दर उत्पन्न हो गया है, ऐसा नहीं है। कि अग्नि ने आकर उसे उष्णता उपजाई है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? ठण्डे का गर्म पानी हुआ, तो कहते हैं कि उस पानी के जो (रजकण हैं), उनमें शीतल का व्यय हुआ, उसमें द्रव्य का नाश नहीं और उष्णता की उत्पत्ति हुई और वह अन्य द्रव्य वहाँ उष्णपने उत्पन्न हुआ है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : रजकण बदल गये नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे रजकण स्वयं बदले हैं। पर (वस्तु) नहीं। रजकण दूसरे हो गये हैं वहाँ, (ऐसा नहीं है)। रजकण वह का वह है और नयी अवस्था का उपजना, वह द्रव्य नया हुआ नहीं। शीतल का जाना, वह द्रव्य का जाना हुआ नहीं। रजकण तो वह का वह है। उन रजकण के अन्दर (नयी) अवस्था स्वयं के कारण से उपजे—अवस्था और पुरानी अवस्था स्वयं के कारण से व्यय हो। दूसरी चीज़ के कारण से उसमें हो, ऐसा वस्तु के स्वरूप में नहीं है। ओहोहो! समझ में आया? देखो!

भाव अर्थात् वस्तु का.... अनन्त वस्तुएँ हैं, उनका अर्थात् सत् द्रव्य का अर्थात् कि 'है' ऐसे द्रव्य का, विद्यमान अस्तित्वाले पदार्थ का द्रव्यरूप से अर्थात् सत् रूप से विनाश नहीं। और अभाव अर्थात् असत्, अभाव अर्थात् असत् अन्य द्रव्य का अन्दर नया उत्पाद हो, ऐसा नहीं है। बराबर है? समझ में आया इसमें कुछ? देवानुप्रिया! यह सब उड़ जाता है, यह निमित्त। उसमें है यह। यह उसमें। आत्मा... यह तो नारद है न! प्रश्न नारद नाम दिया है।

आत्मा... कहते हैं कि धर्म की पर्यायरूप से उपजे, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निर्मल अविकारी पर्याय (उसरूप से) आत्मा उपजे तो कहीं द्रव्य नया नहीं उपजा है। और मिथ्यात्व और अज्ञानपने की अवस्था का (नाश हुआ तो) अन्य द्रव्य आकर वहाँ

नाश हुआ है, ऐसा नहीं है। अन्य द्रव्य नाश हुआ नहीं। वह द्रव्य... अब स्वयं कहते हैं। इतनी.... परन्तु भाव-सत् द्रव्यों,.... देखो! अब यह दूसरे पद की व्याख्या है। पहले पद की व्याख्या 'भावस्स णत्थि णासो' यह पहला पद है। वस्तु के सत्पने का नाश नहीं। 'णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो।'अद्रव्य का उत्पाद नहीं। यह दो आ गयी। अब तीसरे पद की व्याख्या महा है। यह तीसरा और चौथा पूरा महापद है।

'उप्पादवए पकुव्वंति' चौथा पद। प्रत्येक वस्तु द्रव्यरूप से रहकर, उसके गुण की जो पर्याय है, वह द्रव्य अर्थात् भाव, अपने गुण की पर्याय को उत्पाद 'पकुव्वंति'। अर्थात् करता है। समझ में आया? देखो!' भावा' अर्थात् सत् द्रव्य। यह तीसरे पद की व्याख्या। सत् के विनाश और असत् के उत्पाद बिना ही,.... अपने द्रव्य का नाश और इस द्रव्य का अन्यरूप से उपजना... उसके (द्रव्य के) अभाव बिना गुणपर्यायों में विनाश और उत्पाद करते हैं। देखो! यह महासिद्धान्त। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु अपने गुण की पर्याय में वे गुण परिणमते हैं। क्योंकि गुण भी पर्यायनय से परिणमते हैं। द्रव्य परिणमने से द्रव्य अपने गुण-पर्यायरूप परिणमने से वह द्रव्य अपने गुण-पर्यायरूप से 'पकुव्वंति' वह द्रव्य गुण द्वारा पर्याय को करता है।

गुण, पर्यायों में विनाश और उत्पाद करते हैं। कौन? भाव—द्रव्य। द्रव्य स्वयं। समझ में आया? जैसे कि पानी का दृष्टान्त। घड़ा लो। मिट्टी के रजकण, उन रजकणों में उनके गुण हैं वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श। वे रजकण भाव अर्थात् द्रव्य। भाव अर्थात् द्रव्य। भाव, वह द्रव्य। उन रजकण में जो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श गुण है, वह 'गुणपज्जएसु' वह भाव अपने गुण की पर्याय में पर्यायरूप से उपजना और मिट्टी के पिण्डपने का व्यय, वे रजकण अपने गुण-पर्याय को 'पकुव्वंति' अर्थात् उसकी पर्याय को दूसरा द्रव्य तीन काल में नहीं कर सकता। समझ में आया? फेरफार नहीं करता, ऐसा इसमें आया? 'गुणपज्जएसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति' यह महासिद्धान्त है। इसे जरा वह था.... देखो यहाँ (ऐसा कहा)। 'गुणपज्जएसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति' 'पकुव्वंति' है। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु वह द्रव्य जो भाव है वस्तु। द्रव्य को यहाँ भाव कहा। 'भावा' 'भावा' वस्तु। यह 'भावा' अर्थात् द्रव्य, 'गुणपज्जएसु' आत्मा अपने

ज्ञान, दर्शन गुण हैं, उनके (सम्यक्) ज्ञान की पर्याय, सम्यग्दर्शन की पर्याय, सम्यक्चारित्र की पर्याय, आनन्द की पर्यायें। वह 'गुणपञ्जएसु भावा' अपने गुण के परिणमन द्वारा अपनी नयी पर्याय को करता है और पुरानी पर्याय का नाश करता है। कहो, समझ में आया इसमें? बल्लभदासभाई! यह महा गाथा है।

अनन्त द्रव्य वे स्वयं उपजते हुए कहीं द्रव्य नया उपजे, नाश होने पर कहीं द्रव्य नाश हो, ऐसा नहीं है। परन्तु है क्या? कि प्रत्येक समय में प्रत्येक द्रव्य—भाव अपनी शक्तियाँ जो गुण, उनके परिणमन द्वारा वह अपनी नयी अवस्था को उपजे-करे और पुरानी अवस्था के व्यय को करे। नयी अवस्था को करे और पुरानी अवस्था के व्यय को करे। उस उपजने को करे, उस व्यय को करे। समझ में आया? देखो! ऐसे यह लकड़ी। यह लकड़ी जरा ऐसे है। उसकी ऐसे होती है। उसे यह अँगुली उसमें कुछ करती नहीं। वह द्रव्य जो स्वयं परमाणु उसके गुण परिणमते हैं। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, क्रियावर्ती-शक्ति आदि उन गुणों द्वारा उनका उत्पाद सरलता का करते हैं और ऐसे आड़ी थी, टेढ़ी का व्यय करते हैं, वे परमाणु स्वयं गुण द्वारा पर्याय को उत्पन्न और व्यय करते हैं। इस अँगुली के कारण नहीं और आत्मा के ज्ञान से नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कहता है अँगुली इसे स्पर्श करती है? स्पर्श करती ही नहीं। समझ में आया?

....असंख्य भाग में अनन्त द्रव्य मौजूद वर्तमान है न त्रिकाल। वहाँ एक-एक समय के अन्दर वह-वह पदार्थ 'गुणपञ्जएसु' देखो न। सत् द्रव्यों, सत् के विनाश और असत् के उत्पाद बिना ही, गुण पर्यायों में विनाश और उत्पाद करते हैं। समझ में आया? ...यह रजकण में रोटी की पर्याय का उत्पाद और पिण्ड की लोई.... क्या कहलाती है वह? लोई। अपनी भाषा में यह कहते हैं। उस लोई का व्यय और रोटी का उत्पाद। वह परमाणु स्वयं सत्, वह गुण द्वारा उस पर्याय को, उत्पाद को, व्यय को करते हैं। बेलन से होती है और चकले के कारण होती है और स्त्री के कारण होती है, हराम बात है। ऐसा कहते हैं। ऐ.... मगनभाई!

मुमुक्षु : निमित्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त की तो यहाँ इनकार करते हैं। निमित्त का अर्थ ही यह है कि कुछ करता नहीं। करे नहीं, उसका नाम निमित्त। यदि उसके कारण करे तो निमित्त कहलाये नहीं। इसलिए करने की बात है नहीं। समझ में आया ? जब करे नहीं तो उसका नाम निमित्त कहलाता है। यदि करे तो निमित्त कहलाये नहीं। तब तो उपादान कहलाये। समझ में आया ? महासिद्धान्त है जगत के स्वयंसिद्ध तत्त्व। 'गुणपज्जएसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति' समझ में आया ? निमित्त उसे कहते हैं। निमित्त भी अपने गुण-पर्याय को उत्पाद-व्यय करता है। वह कहाँ किये बिना रहता है ? निमित्त भी द्रव्य है। अपने गुण की पर्यायरूप उपजे और व्यय को करता है। वह इसे करता नहीं, दूसरे को करता नहीं। समझ में आया ?

यह तत्त्व है। वीतराग ने देखा हुआ स्वयंसिद्ध अकृत्रिम सत्। किसी से किया गया नहीं, उसका अर्थ कि इसका... नहीं। जैसे ईश्वर से कराया हुआ तत्त्व नहीं। समझ में आया ? ऐसा प्रत्येक पदार्थ का... (अन्य) द्रव्य द्वारा कराया हुआ नहीं। यदि दूसरे के द्वारा कराया हुआ हो तो ईश्वर कर्ता और यह कराया हुआ, दोनों एक दृष्टिवाले कहलायें। मिथ्यादृष्टि दृष्टि एक ही हो जाये। अन्तर रहता नहीं। समझ में आया ?

बड़े पण्डित थे तब यह गाथा आयी थी। अन्दर बैठे नहीं। ...प्रश्न उठता था। एक सूक्ष्म रजकण है, उसमें यह कोमल या स्पर्श नहीं परमाणु में। वह यहाँ आया। ...उसके कारण होता है ? नहीं। उस परमाणु में स्पर्श नाम का गुण प्रथम पर्यायरूप से उत्पाद था, वह दूसरे समय में स्थूलरूप से, कोमलरूप से गुण स्वयं उपजे हैं और पूर्व के व्यय को गुण करता है। यह... दूसरा द्रव्य नहीं। समझ में आया ? वस्तु ऐसी है कि जगत को अभी जीव और अजीव सात तत्त्व की श्रद्धा, उसमें जीव और अजीव एक-एक समय में स्वयंसिद्ध कार्य करनेवाले, वे बैठे बिना इसे जीव-अजीव की सच्ची श्रद्धा नहीं है। उसमें यह जीव अनन्त और अजीव अनन्त। यह अनन्तानन्त जितने संख्या से हैं। जीव अनन्त, उससे परमाणु अनन्तगुणे। समझ में आया ? यह प्रत्येक द्रव्य, उसमें गुण रहे हैं प्रत्येक द्रव्य में। परमाणु हो एक सूक्ष्म या आकाश सर्वव्यापी हो। आत्मा यहाँ

शरीर के अंगुल के असंख्य भाग में असंख्य औदारिकशरीर हो और निगोद के एक शरीर में अनन्त जीव हो वह प्रत्येक जीव और प्रत्येक वहाँ का परमाणु, उसमें रहे हुए अनन्त गुण हैं। समझ में आया ?

यह कहते हैं कि वह भाव, वह द्रव्य, सत् द्रव्य सत् का विनाश, अपना अभाव और नया होना गुण-पर्यायों में उसकी शक्तियों की पर्याय में वह द्रव्य उत्पन्न करता है और व्यय करता है। बात पूरी हो गयी। तीन लोक का भेदज्ञान। समझ में आया ? बैठना भी कहाँ यह अनन्त काल से इसे बैठता नहीं।वह हो तो यहाँ हो, मैं होऊँ तो वहाँ हो। तब इसने क्या किया ? तू हो तो वहाँ हो तो उसने क्या किया ? यह सिद्ध करते हैं। समझ में आया ? ओहो !

यह परमाणु और एक आत्मा ऐसे अनन्त आत्मा और अनन्त परमाणु, छह द्रव्य के इतने गुण हैं.... गुण। समझ में आया ? कि जितने जीव हैं, उससे अनन्तगुणे (पुद्गल हैं, उससे अनन्तगुणे) तीन काल के समय हैं, उससे अनन्तगुणे अलोकाकाश के प्रदेश हैं। अमाप आकाश। माप नहीं। (इससे अनन्तगुणे) एक द्रव्य में गुण हैं। बल्लभदासभाई ! एक परमाणु, हों ! यह तो पिण्ड है। यह कहीं.... परमाणु भिन्न-भिन्न उसके हैं। एक-एक परमाणु में अनन्त गुण हैं। एक-एक आत्मा (में) कहे इतने अनन्त गुण हैं। द्रव्य, अपने गुणों द्वारा गुण का परिणमन है, परिणमता है पर्यायदृष्टि से। सदृश्यता तो ध्रुवता की अपेक्षा से। परिणमन द्वारा वह भाव गुण के परिणमन द्वारा एक समय में अनन्त गुणों का वर्तमान नयी अवस्था से उत्पाद को गुण करे-भाव करे गुण द्वारा और वह द्रव्य पुरानी अवस्था को व्यय को 'पकुव्वंति' वह द्रव्य उसके व्यय को करे, द्रव्य उसके उत्पाद को करे, दूसरे (अन्य) द्रव्य उसके उत्पाद-व्यय को करे नहीं। बराबर है ? महासिद्धान्त देखो ! आहाहा ! उसे है, ऐसा मानने में बाधा उठती है अन्दर से। अनन्त काल से उठा है।

कहते हैं, कर्म का एक रजकण कर्मरूप से परिणमता है। पहले पृथक् परमाणु था। फिर कर्मरूप से परिणमे। एक-एक परमाणु भिन्न-भिन्न है न, सब अनन्त कर्म के। एक-एक कर्म की अवस्थारूप से, कहते हैं कि वह कर्म अवस्था हुई, इसलिए कहीं

द्रव्य नया हुआ है और पूर्व के परमाणु कर्मरूप नहीं थे, इसलिए द्रव्य नाश हो गया है और दूसरा द्रव्य हुआ है, ऐसा नहीं है। एक-एक परमाणु अपना भाव अर्थात् द्रव्य वह गुण-पर्यायरूप (परिणमता है)। उसकी यह कर्म होने की योग्यता के अविभाग प्रतिच्छेद को वह परमाणु उत्पन्न करता है और पूर्व की अवस्था को परमाणु व्यय करता है।

आत्मा अपने सम्यग्दर्शन को प्राप्त करता है, शुद्ध चैतन्य की.... क्योंकि पर्याय द्रव्य के आश्रय से प्रगट होती है। वह सम्यक् चिदानन्द आत्मा अखण्डानन्द पूर्ण है। उसके लक्ष्य से सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई। इसीलिए द्रव्य, उसका जो सम्यक् श्रद्धा नाम का गुण था, ऐसे अनन्त गुण, उन गुण द्वारा वह सम्यग्दर्शन की पर्याय को उत्पन्न करता है।मिथ्यात्व पर्याय को व्यय करता है। और उस क्षण में दर्शनमोह के रजकण थे, दर्शनमोह के वह (कर्म) पर्याय का उत्पाद था, वह के वे ही परमाणु ने दूसरे समय में अकर्म पर्याय को वह परमाणु गुण अकर्म पर्यायरूप उत्पन्न हुआ और कर्म की पर्याय का व्यय किया। आत्मा ने उसे किया नहीं।

पहले से विवाद। णमो अरिहंताणं में से विवाद। अरिहंताणं आता है न? चार घनघाति कर्म का नाश किया। भगवान कहते हैं कि नहीं, ऐसा है ही नहीं। वह तो निमित्त बतलाने की बात। बाकी कर्म के रजकण घाति पर्यायरूप परिणमित थे, अपने गुण की पर्याय के कारण से। आत्मा ने विकार किया, इसलिए नहीं। वह गुण की पर्याय, उसका व्यय होकर उसकी अकर्मपने की पर्यायरूप वे परमाणु उपजते हैं। आत्मा उन्हें उपजावे और आत्मा उनका नाश करे, यह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। कहो, समझ में आया इसमें? गजब बात, भाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य। अकिंचित्कर। देवानुप्रिया! देव-गुरु, वे द्रव्य हैं। देव का आत्मा द्रव्य है। वह द्रव्य अपने गुण द्वारा उसकी केवलज्ञान आदि पर्याय को उत्पन्न करता है। पूर्व की केवलज्ञान की पर्याय का व्यय करता है। क्या कहा?

अरिहन्त भगवान को केवलज्ञान हुआ है। अनन्त दर्शन है, अनन्त आनन्द है,

अनन्त वीर्य है। उनका आत्मा उसमें जो अनन्त गुण हैं, वे 'भावा' अर्थात् द्रव्य। अपने गुण.... केवलज्ञानरूप से समय-समय में उपजते हैं, पूर्व के केवलज्ञान की पर्यायरूप से वह गुण स्वयं उसका व्यय करता है और नये केवलज्ञान को (उत्पन्न करता है)। आहाहा! गजब बात! केवलज्ञान की पर्याय का व्यय और उत्पाद हुआ करता है। क्योंकि केवलज्ञान पर्याय है। समझ में आया? गुण अन्दर ज्ञान है। आत्मा वस्तु, उसका ज्ञान गुण, उसके परिणमन द्वारा केवलज्ञान की पर्याय वह भाव द्रव्य उत्पन्न करता है। और पूर्व के केवलज्ञान की पर्याय का वह भाव द्रव्य नाश करता है। 'गुणपज्जएसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति' यह तो तीन काल-तीन लोक को चीरकर समय-समय का... बताया है। क्यों, कृष्णकुमारजी! यह तुम्हारे पिताजी ने वहाँ जयपुर में सुना नहीं था, हों! समझ में आया? आहाहा!

एक भी वाक्य और उसका.... वाक्य यह 'गुणपज्जएसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति' यह वाक्य। वाचक। उसका वाच्य। वाच्य अर्थात् कि प्रत्येक द्रव्य अपने गुण द्वारा वह अनन्त गुण हैं, उन सब गुणों का समय-समय में परिणमन है। वे गुण ही अपनी पर्याय को द्रव्य गुणों द्वारा अपने उत्पाद को करता है, वह द्रव्य ही गुणों की पूर्व पर्याय को व्यय करता है। बस! तीनों काल—तीन लोक में ऐसा हो रहा है। समझ में आया? बराबर है?

(संवत्) २०१३ के वर्ष में बंसीधरजी हैं न? बड़े शास्त्री पण्डित। वे आये थे। देखो, क्या है? यह एक शब्द लो। 'गुणपज्जएसु भावा' तीनों बोल आ गये—द्रव्य-गुण और पर्याय। भाव अर्थात् द्रव्य, गुण अर्थात् शक्ति, पर्याय अर्थात् अवस्था। वह द्रव्य स्वयं अपने अनन्त गुणों के परिणमन द्वारा (अपनी) नयी पर्याय को करे, पुरानी पर्याय का नाश करे। बाकी सब बातें। जितनी कहनी हो उतनी। जानने की बात है। वस्तु की मर्यादा यह है। ऐसी प्रतीति न करे, तब तक अनन्त द्रव्य को, उसके अनन्त गुण को और उसकी अनन्त पर्यायें उसके द्वारा होती हैं, ऐसा इसकी श्रद्धा में लिया नहीं। किसी को मिलाकर किसी ने और किसी ने मिलाकर किसी में (समझे)। तो अनन्त-अनन्त द्रव्यों की पर्याय.... अनन्त द्रव्य, अनन्त गुण और अनन्त पर्याय समय-समय में काम करे, उसका अस्तित्व स्वीकार करे, उतनी इस ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य है। इस प्रकार जब

तक न माने, तब तक उसकी ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य उसने माना नहीं। पर्याय का सामर्थ्य माना नहीं तो गुण का माना नहीं तो द्रव्य का माना नहीं। यह विपर्यास है। समझ में आया? विमलचन्दजी! ...भाई! यह तो लॉजिक से बात चलती है। ऐसी गड़बड़-गड़बड़ नहीं चलती।

सर्वज्ञ भगवान की कोर्ट में लॉजिक से काम चलता है। परमेश्वर सौ इन्द्रों के मध्य में फरमाते थे। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य, भगवान के पास गये थे। आठ दिन रहकर यह (शास्त्र बनाया है)। यह कल आ गया है। 'समणा परुर्वेति' यह पहले आ गया। बारहवीं गाथा में आ गया। बारहवीं में आ गया। 'भावं समणा परुर्वेति' श्रमण सर्वज्ञ मुनि ऐसा कहते हैं। स्वयं निर्माणरूप से। 'समणा' अर्थात् महाश्रमण, महाश्रमण अर्थात् केवली। सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ वीतराग परमेश्वर दिव्यध्वनि से ऐसा फरमाते थे। ऐई! देवानुप्रिया! गड़बड़ चले, ऐसा नहीं है, हों! इसमें कहीं चले, ऐसा नहीं। आहाहा!

इसमें भी एक परमाणु से परमाणु, कर्म में एक परमाणु से परमाणु, आत्मा में एक शरीर में अनन्त जीव, उसमें जीव जीव का द्रव्य स्वतन्त्र। निगोद के (जीवों का)। समझ में आया? पूरे लोक में.... सूक्ष्म से भरा हुआ लोक है जीव का। पूरा लोक। यहाँ अनन्त सूक्ष्म जीव हैं। असंख्य पृथ्वी, असंख्य जल, असंख्य अग्नि, असंख्य वायु। यहाँ अनन्त निगोद एक अंगुल के असंख्य भाग में पूरा लोक ठसाठस भरा है। वह एक-एक द्रव्य और एक-एक परमाणु चैतन्य और रजकण समय-समय में अपने.... गुण द्वारा पर्याय को उत्पन्न करे और व्यय करता है, वह द्रव्य। ओहोहो! रतिभाई! तब यह सब लोहे के व्यापार कौन करता होगा? नहीं?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं, देखा! ऐसा कि ऐसा करते हैं और ना कहते हो। मोहनभाई! यह हमारे दलाल हैं। (मिथ्यात्व) भ्रमणा की है अनादि से।

एक-एक वस्तु अपने गुण द्वारा पर्याय को करे और उपजे और नाश करे यह.... मूढ़ मिथ्यादृष्टि जैन वीतराग तत्त्व का अनजान और वीतराग से विरुद्ध मान्यतावाला है।

सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथदेव परमेश्वर, ऐसा ही गुरु सन्तों ने माना, अनुभव किया चारित्रसहित, ऐसा ही शास्त्र में कहने में आया। इस प्रकार न माने, उसे देव-गुरु की श्रद्धा नहीं। बराबर है ? बल्लभदासभाई ! ऐसा आता है न ? आनन्दघनजी में। 'श्रद्धा कहो केम रहे, केम रहे शुद्ध श्रद्धान आणो। शुद्ध श्रद्धान विण सर्व क्रिया करे, छार पर लीपणुं तेह जाणो। देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा कहो केम रहे ?' यह कहते हैं, उसकी तो तुझे खबर नहीं। कहाँ से तुझे श्रद्धा रहे उसकी ? तू उससे तो विरुद्ध मानता है। 'केम रहे शुद्ध श्रद्धान आणो।' शुद्ध श्रद्धा न करो तब तक देव-गुरु-धर्म की आस्था कहाँ से लाया ? वे कहते हैं कुछ और तू माने कुछ। समझ में आया ? बराबर है ? रतिभाई !

शुद्ध श्रद्धा। प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने गुण-पर्याय से उत्पन्न और व्यय होता है। और वह पर्याय उत्पन्न करने के लिये, धर्म की पर्याय उत्पन्न करने के लिये पर्याय में से पर्याय नहीं आती, वह द्रव्य में से आती है। उस द्रव्य का लक्ष्य करे और अन्तर्मुख रुचि करे, तब सम्यक्त्व होता है—ऐसा वस्तु का स्वभाव है। ऐसा जो श्रद्धा नहीं करता उसने भगवान ने कहे हुए, भगवान ने कहे हुए द्रव्य को, भगवान को, गुरु को और शास्त्र को चारों को नहीं मानता। समझ में आया ? अभी मान्यता का ठिकाना नहीं हो, वहाँ व्रत और चारित्र आये कहाँ से ? ओहोहो ! 'पकुव्वंति' शब्द पड़ा है। अकेला 'कुव्वंति' नहीं। प्रकृष्टरूप से.... ऐसा।

प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु, उसके अनन्त गुणों से... अनन्त... यह तो वीतराग वह कोई नया पन्थ नहीं। वस्तु का जैसा स्वभाव है, वैसा भगवान ने देखा, जाना, और पूर्ण वीतरागता हुई। जगत के लोक में छह स्वभावों से भरपूर पदार्थ है, यह लोक। छह स्वभाव। छह स्वभाव कहो या छह द्रव्य कहो। समझ में आया ? यह छह द्रव्य अनन्त संख्या से एक समय में एक-एक द्रव्य अपने गुण-पर्याय को व्यय करे, ऐसा देखा, ऐसा उसमें है, ऐसा हमने जाना, ऐसा हमने कहा। क्या कहा यह ? अपनी पर्याय से गुण-पर्याय उपजे, ऐसा भगवान ने कहा है। यह (अज्ञानी) कहते हैं, ऐसा नहीं। दूसरा हो तो उपजे। ऐई ! समझ में आया ? नया सर्वज्ञ हुआ तू।

सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ज्ञान में ऐसा अस्ति का स्वरूप, सत् का

देखने में आया और कहा कि अनन्त आत्मा का सत्, अनन्त परमाणु का सत्, असंख्य कालाणु और एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश है। यह प्रत्येक द्रव्य अर्थात् 'भावा' अनन्त गुण। द्रव्य एक, गुण अनन्त। अपार.... अपार.... अपार.... अपार.... आहाहा! लोक के, अलोक के आकाश कहाँ? माप कहाँ? आकाश के प्रदेश कहाँ होकर रहते होंगे? अमरचन्दभाई! आकाश के प्रदेश कहाँ होकर रहते होंगे? होकर रहते होंगे या नहीं ऐसे कहीं.... कहीं.... कहीं? माप कैसा? उसका अन्त कैसा? अमाप.... अमाप.... अमाप.... अमाप.... अनन्त.... अनन्त.... अनन्त.... योजन, अनन्त करोड़, अनन्त लाख, अनन्त-अनन्त करोड़ चला जाये तो उसका माप कहीं है नहीं। और है अस्ति। वापस है अस्ति। यह आकाश अमाप अस्ति। अमाप अस्ति। उसकी अपेक्षा एक द्रव्य में अनन्त गुणे गुण। आहाहा! वह यहाँ रह गये अन्दर। उसका माप नहीं आता, उससे अनन्त गुण यहाँ आ गये इसमें। एक-एक द्रव्य में और एक-एक परमाणु में और आत्मा में है। ऐसा एक द्रव्य अपने 'गुणपज्जएसु भावा उप्पादवए पकुव्वंति' अपने गुण-पर्यायों में। यह और क्या कहा? पर में नहीं। संस्कृत में है, देखो। 'गुणपर्यायेषु' पहली लाईन है ३५ पृष्ठ पर। संस्कृत है।

आत्मा और परमाणु 'गुणपज्जएसु' अपने गुण की पर्याय में उत्पाद और व्यय समय-समय में अर्थात् दो अंश हुए, भावरूप से रहते हैं, वह ध्रुव हुआ। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त एक समय में सत्। इस प्रकार सत् सत् रूप से रहकर.... परमाणुरूप से रहकर उसके अनन्त गुणों द्वारा उत्पाद-व्यय गुण की पर्यायों में, उसके गुण की दशाओं में ... रहता है। किसी की पर्याय में उत्पाद-व्यय करता है और किसी की पर्याय के कारण उसमें गुण की पर्याय में उत्पाद-व्यय होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! जैन में जन्मे, उसे भी खबर नहीं होती कि जैन क्या कहते हैं। ऐसे के ऐसा अभिमान। हम जानते हैं.... हम जानते हैं.... हम जानते हैं। हो गया जाओ। अभिमान। सेठी! जानने में आया नहीं और हम जानते हैं। उसका कभी अज्ञान (अज्ञान) टलेगा नहीं और जानना कभी होगा नहीं। मोहनभाई! बराबर है? गाथा बहुत अच्छी आयी है, हों! रविवार की। यह लड़कों को समझ में आता है या नहीं?

मुमुक्षु :स्थूल बुद्धिवालों को....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्थूल बुद्धिवालों के लिये है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गाथा तो ठीक थी। यह पहले कही, फिर अब बात। उनकी वाणी में तो एकसाथ सब आया है। पहले-बाद में कुछ नहीं। कहो, समझ में आया? यह सब खबर है, वह क्या कहते हैं यह! ऐसा नहीं। यह तो एक वाणी में बारह अंग एक साथ आते हैं। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पहले आये हैं, ऐसा है नहीं। समझ में आया इसमें?

भगवान तो सर्वज्ञ हैं। उन्हें इच्छा नहीं। मैं वाणी का प्रकार करूँ, ऐसा नहीं। वाणी एक समय में पूरी-पूरी आती है। आवे भले क्रम से वाणी। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य (पहले) है और बाद में यह है, ऐसा वस्तु में नहीं हो सकता। ऐसी वस्तु की स्थिति है। ऐसा फिर यह सब खबर है न! लोग क्या कहते हैं न? यह तो सब जाना है न हमने। भगवान ने पहले उत्पाद-व्यय कहे थे। उसके बाद गणधर ने यह रचा। ऐसा है ही नहीं। समझ में आया?

भगवान ने (केवलज्ञान में) तीन काल-तीन लोक जाने। वाणी की ध्वनि परमाणु, उस परमाणु में भी.... यह कुछ भगवान ने किये नहीं। भगवान तो अपना द्रव्य जो है, उसके गुणों की पर्याय में केवलज्ञानरूप से उपजते हैं। समय-समय में केवलज्ञानरूप से उपजते हैं, हों! दूसरा दूसरे समय में नया, तीसरे समय में नया केवलज्ञान, चौथे समय में नया केवलज्ञान। वह का वह केवलज्ञान पर्याय में नहीं रहता। वह का वह दर्शन नहीं रहता, वह का वह आनन्द नहीं रहता, वह का वह वीर्य नहीं रहता। व्यय वह गुण.... वह भगवान का आत्मा गुण-पर्याय 'गुणपञ्जएसु' पहले का व्यय करते हैं, नये का उत्पाद 'गुणपञ्जएसु' परमाणु की भाषा में कुछ नहीं करते। भगवान परमाणु की भाषा में गुण-पर्याय नहीं करते।

अब भाषा में। भाषा जो रजकण खिरते हैं, वह अनन्त रजकण का स्कन्ध और पिण्ड है। उसमें एक-एक रजकण अपना वह द्रव्य, अपने अनन्त गुण में उत्पाद-व्यय को करता है। वह परमाणु द्रव्य स्वयं अपने गुण की पर्याय को-विशेष को करता है।

भगवान के कारण नहीं, दूसरे परमाणु के कारण नहीं। अपने उत्पाद-व्यय को करता है। समझ में आया? जयन्तीभाई! बात बहुत परन्तु.... भाई...!

अब इसका दृष्टान्त देते हैं। यह तो सिद्धान्त सिद्ध किया। लोगों को समझने में तो दूसरे दृष्टान्त दिय परन्तु इस प्रकार से साधारण को ख्याल में आवे, (इसलिए दृष्टान्त देते) जिस प्रकार घी की उत्पत्ति में.... यह साधारण लोगों को ख्याल में। गरीब ने भी घी तो देखा होता न। इसलिए उसका दृष्टान्त (देते हैं)। घी की उत्पत्ति में गोरस का... गोरस... गोरस। सत् का—विनाश नहीं.... गोरसरूपी सत् का नाश नहीं। तथा गोरस से भिन्न.... दूसरा पदार्थ आकर उत्पन्न नहीं होता। कहो, समझ में आया? अब तो ऐसा हो जाता है कि परन्तु उसकी पर्याय पहली मक्खन में नहीं थी। मक्खन में नहीं थी, इसलिए नया ही कोई द्रव्य घी रूप से उपजा होगा?

कहते हैं कि यह घी की उत्पत्ति में गोरस का—सत् का— द्रव्य को विनाश नहीं है तथा गोरस से भिन्न.... अन्य द्रव्य का घीरूप से उपजना हुआ, इसलिए अन्य द्रव्य इस प्रकार से घीरूप से उपजा, ऐसा नहीं। न्याय से कहते हैं न, भाई! वह.... यह रजकण जो मिट्टी के थे, वह तो नाश हो गये। घड़ा हुआ, वह नये रजकण से हुआ। ... हुआ। इसलिए यहाँ विशेष स्पष्ट (करते हैं)। पहले मिट्टी का जो घड़ा था न वह कच्चा। अग्नि में पड़ा तब दूसरे रजकण भी नये आये और घड़ेरूप हो गये। ऐसा (अज्ञानी) कहता है। इसलिए यहाँ स्पष्ट किया है कि किसी पदार्थ में नयी अवस्था दिखती है तो वह भिन्न दूसरा द्रव्य आया नहीं और पुरानी अवस्था जाये तो उस द्रव्य का नाश हुआ नहीं। वह द्रव्य ही स्वयं अनन्त गुण द्वारा उत्पाद और व्यय समय-समय में हुआ है। समझ में आया?

एक समय में उसका आत्मा अनन्त गुणों का उत्पाद-व्यय (करता है)। सब द्रव्य की बात है या नहीं इसमें? सिद्ध भी अनन्त द्रव्य हैं या नहीं? वे अनन्त द्रव्य अपने कारण से उसमें 'उष्णादवा पकुर्वन्ति' अपनी पर्याय के सम्बन्ध में वे सीधे उत्पाद-व्यय को करते हैं। पर में कुछ नहीं करते या पर के कारण उसमें होता नहीं। उन सिद्धों में भी समय-समय में केवलज्ञान-केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य

नयी-नयी पर्याय में उपजे, पुरानी पर्याय से नाश हो, वह स्वयं गुण-पर्याय उत्पाद-व्यय को करते हैं। समझ में आया ?

किन्तु गोरस को ही सत् का विनाश और असत् का उत्पाद किये बिना ही, पूर्व अवस्था से विनाश को प्राप्त होनेवाले... कौन ? वह मक्खन आदि। और उत्तर अवस्था से उत्पन्न होनेवाले स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णादिक परिणामी गुणों में.... देखो! यह गोरस के गुण परिणामी हैं। गुण जो वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श उसके गोरस के परिणामी—परिणमनेवाले गुण हैं। वे परिणामी गुणों में मक्खनपर्याय विनाश को प्राप्त होती है तथा घी पर्याय उत्पन्न होती है;.... वह अग्नि से नहीं। बाई हो और घी बनाने बैठी हो, उससे नहीं। क्या होगा यह ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी रहने का काम नहीं उसका वहाँ। वकील है न वकील। स्पष्ट कराते हैं। कहो, समझ में आया ? यह पुराने अभ्यासी हैं। ९२ वर्ष हुए। ७० वर्ष का अभ्यास है। इस काठियावाड़ में दिगम्बर शास्त्र का पुराना अभ्यास... है। जरा एक मारा, ऐसा कि महिलायें कीटु न रहने दे। ऐसा होगा या नहीं ? यह कहते हैं। वह किस प्रकार कीटु न रहने दे ? यह ज्ञानानन्द भगवान आत्मा द्रव्य का आश्रय करके विकार का उत्पाद हो, वह रहने दे नहीं। समझ में आया ?

भगवान आत्मा पिण्ड स्वयं द्रव्य, वह द्रव्य गुण द्वारा मिथ्यात्व और राग की पर्याय का गुण द्वारा नाश करके, गुण द्वारा नयी (सम्यक् पर्याय को) द्रव्य उत्पन्न करता है। कर्म के नाश के कारण नहीं, गुरु के कारण नहीं, देव के कारण नहीं, शास्त्र के कारण नहीं। पूरी विशिष्टता क्या है ? उस उत्पाद को व्यय करता है और व्यय को उत्पाद करता है, ऐसा नहीं, भाई!उत्पाद को, व्यय को करता है। भाषा तो देखो!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह द्रव्य स्वयं अनन्त गुण में उत्पाद-व्यय को करता है। पर्याय उत्पाद को करती है और पर्याय स्वयं व्यय को करके उत्पाद करती है, ऐसा नहीं है। ओहोहो! वह परिणामी गुण जो हैं, एक-एक द्रव्य के अनन्त; यहाँ गोरस के हैं, वे

गुण परिणामी हैं, परिणमते हैं। वह द्रव्य स्वयं गुण परिणामी द्वारा नयी अवस्थारूप अवस्था में उपजते हैं, पुरानी अवस्था में व्यय करते हैं। भाव—द्रव्य। समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : रविवार आवे तब ऐसा व्याख्यान। यह सब होंगे न, आये होंगे। वहाँ से आये तो सुनने आये हो न? बल्लभदासभाई! यह कहते हैं, रविवार हो तब ऐसा आवे। यह कुछ भाग्यशाली हो या नहीं इतने? वहाँ से छोड़कर आते हैं। बात तो सच्ची। उस बार रविवार को ठीक था और इस बार। बावत सच्ची। यह तो जिसकी जो योग्यता हो तत्प्रमाण आवे। उसमें कुछ पर के कारण कुछ है नहीं। वह यहाँ कहते हैं। ऐसा समझने की उस पर्याय में वह गुण स्वयं उत्पन्न होता है और पूर्व पर्याय का व्यय द्रव्य स्वयं करता है। आहाहा! छोड़ने से छुटकारा है। कहा नहीं था?हो, कहो, समझ में आया इसमें? यह गोरस के परमाणु अपने गुण... मक्खन पर्याय विनाश पाती है और घी पर्याय से उत्पन्न होती हैं। यह दृष्टान्त कहा। लोगों को ख्याल में आवे ऐसा।

उसी प्रकार सर्व भावों का.... अनन्त द्रव्य। अनन्त द्रव्य, अनन्त परमाणु, अनन्त आत्मायें, असंख्य कालाणु, एक अपार आकाश। प्रत्येक आकाश द्रव्य अनन्त गुण आकाश में हैं। जितने एक आकाश में, उतने एक परमाणु में, जितने परमाणु में उतने सिद्ध में, जितने सिद्ध में, उतने निगोद के जीव में। गुण, गुण, हों! ऐसे अनन्त गुणों में.... देखो! **सर्व भावों का....** सर्व भाव अर्थात् द्रव्य। भावों का भी। भी कहा न? वह दृष्टान्त था न? इसलिए भी (कहा)। **वैसा ही है... वैसा ही है।** इसका स्पष्टीकरण पण्डितजी ने किया है। (**अर्थात् समस्त द्रव्यों को नवीन पर्याय की उत्पत्ति में सत् का विनाश नहीं है...**) सोना कुण्डलरूप से उपजा, कड़ेरूप से व्यय हुआ तो कुण्डलरूप से उपजने पर कहीं नया द्रव्य उपजा नहीं। कड़े की अवस्था का नाश होने पर कहीं द्रव्य का नाश नहीं हुआ। परन्तु वह सोना अपने अनन्त गुण उसमें है, उन गुणों द्वारा उस कड़े की पर्याय का व्यय करता है और कुण्डल की पर्याय का वह सोना उत्पाद करता है। सोनी नहीं, सोनी नहीं। इसका नाम अनेकान्त है। यह करता है, वह नहीं करता। ऐई!

देवानुप्रिया! यह करता है और वह नहीं करता, इसका नाम अनेकान्त। यह भी करता है और वह भी करता है, यह नहीं। यह फुदड़ीवाद-मिथ्यावाद।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ज्ञान का अर्थ क्या हुआ? वह तो है उसमें बस इतना। उसमें वह है। मुझमें मैं हूँ। मुझसे मुझमें, उससे उसमें। साथ में एक दूसरी चीज़ है, उसका ज्ञान करते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : सब स्वतन्त्र। समय-समय स्वतन्त्र। समय-समय। पर्याय-गुण स्वतन्त्र, तीनों काल स्वतन्त्र। अनादि-अनन्त। आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उपादान की पर्याय करते उसमें निमित्त का ज्ञान आ जाता है। क्या कहा? मेरा आत्मा मेरे गुण की पर्याय द्वारा द्रव्य स्वयं उत्पन्न होता है। उसके ज्ञान में उस काल में स्व-परप्रकाशक ज्ञान उत्पन्न हुआ... है। उसके ज्ञान में निमित्त कौन है, वह ज्ञान स्व-परप्रकाशक उत्पन्न हुआ, उसमें वह आ जाता है। नया करना नहीं पड़ता। ज्ञान से बड़ा कोई है? कि ज्ञान को, कहा न, ज्ञान तो बड़ा न? हाँ ऐसा। किससे बड़ा? निमित्त से बड़ा या अपने ज्ञान से बड़ा हुआ है? ऐ... देवानुप्रिया! उसमें कोई बोला जाये, ऐसा नहीं अब, हों! परन्तु एक तर्क अन्दर मारा अवश्य।

कहते हैं कि प्रत्येक द्रव्य अपने गुण-पर्यायरूप से उपजा। उसका ज्ञान हुआ... उस ज्ञान की पुष्टि तो हुई न? आत्मद्रव्य अपने ज्ञानगुण में अपनी (ज्ञानपर्यायरूप से) उपजता है। उसमें स्व-परप्रकाश का ज्ञान अपनेरूप से उपजता है। उसमें निमित्त के कारण पुष्टि हुई और ज्ञान आया, ऐसा है नहीं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म। परन्तु यह तो स्वतन्त्र वस्तु है। हों! दूसरी चीज़ है। एक समय में स्व-परप्रकाशक ज्ञान की पर्याय स्वयं से उपजती है। वह लोक के कारण उपजे भगवान को? लोकालोक है, इसलिए केवलज्ञान उपजता है? अपना ज्ञानगुण ऐसे अनन्त गुण, वह द्रव्यभाव ज्ञानगुण के

पर्यायरूप उपजते हैं पूर्णपने। पहले जब अवस्था छद्मस्थ थी, उस ज्ञान का व्यय करता है। चार ज्ञान या दो ज्ञान छद्मस्थ को होते हैं, उनका व्यय करता है, केवलज्ञानरूप से उपजता है। फिर केवलज्ञानरूप से उपजे और केवलज्ञानरूप से व्यय, केवलज्ञानरूप से उपजे और केवलज्ञानरूप से व्यय हो, ऐसा सदा सादि-अनन्त हुआ करता है।

उसके अपने स्व-पर के अपना ही ज्ञान अपने रूप से उपजा और पूर्व के ज्ञान का व्यय हुआ, उसमें स्व-परप्रकाशक के ज्ञान का सामर्थ्य स्वयं में ही उपजा है। स्वयं में, अपने कारण से, द्रव्य से वह उपजा हुआ है। निमित्त से उपजा हुआ नहीं।

मुमुक्षु : स्व सहाय।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस स्व सहाय का अर्थ यह। यह तो कथन सब समझने के लिये। स्व सहाय है। स्वयं से सहाय है। वह तो बराबर है, स्व सहाय है। पर सहाय नहीं। कहो, समझ में आया ?

असत् का उत्पाद किये बिना ही, पहले की (पुरानी) अवस्था से विनाश को प्राप्त होनेवाले और बाद की (नवीन) अवस्था से उत्पन्न होनेवाले परिणामी गुणों में... इसका दृष्टान्त था, वह पहले ही कह दिया था, इसलिए फिर स्पष्टीकरण करना चाहिए। परिणामी गुणों में प्रत्येक द्रव्य... देखो! पर्याय स्व-परप्रकाश सामर्थ्य रखती है या अकेला स्वप्रकाश ? ऐई! देवानुप्रिया! स्व-परप्रकाश सामर्थ्य रखती है, वह गुण की पर्याय, वह गुण की पर्याय द्रव्य.... उपजाया नहीं। निमित्त से पुष्टि की नहीं। निमित्त के कारण सहायक होकर स्व-परप्रकाशक ज्ञान हुआ, ऐसा हुआ नहीं। उसका ज्ञान किया और उसका ज्ञान किया, इसलिए डबल हुआ, ऐसा नहीं है। वह स्व-परप्रकाशक ज्ञान की पर्याय द्रव्य से अपने गुण के परिणामरूप से उपजती हुई उत्पन्न हुई है, (पूर्व) पर्याय का व्यय किया है। ओहोहो!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : आगे बढ़े... आहाहा! विपरीतता से आगे बढ़े, उसमें क्या सुनो। बढ़े तो मिथ्यात्व होगा। ठीक कहा। मिलान भी बराबर, हों!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : आगे बढ़ता है परन्तु यह शब्द बराबर है। ऐसा है नहीं। कहो, समझ में आया ?

परिणामी गुणों में पहले की पर्याय का विनाश और बाद की पर्याय की उत्पत्ति होती है। आहाहा! एक गाथा में कमाल....! पूरा जैन का वस्तुदर्शन ऐसा है। वस्तु ही ऐसी है। कहीं किसी ने बनायी है? भगवान ने कुछ बनायी है यह? कि जो मैं कहता हूँ, इसलिए ऐसा होगा। उसमें ऐसा होता है। ऐसा... जाता है, जाता है अर्थात् विनाश होता है। उसमें यह होता है, वह द्रव्य स्वयं होता है और द्रव्य उसमें व्ययरूप से जाता है।उसमें ऐसा होता है, ऐसा हम कहते हैं। आहाहा! लो, अच्छी गाथा आ गयी बराबर, हों, तुम्हारे। हो गयी गाथा पूरी। एक घण्टा हो गया, लो.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १६

भावा जीवादीया जीवगुणा चेदणा य उवओगो।

सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा॥१६॥

जीवादि ये सब भाव हैं जिय चेतना उपयोगमय।

देव-नारक-मनुज-तिर्यक् जीव की पर्याय हैं॥१६॥

अन्वयार्थ :- [जीवाद्याः] जीवादि (द्रव्य) वे [भावाः] 'भाव' हैं। [जीवगुणाः] जीव के गुण [चेतना च उपयोगः] चेतना तथा उपयोग हैं [च] और [जीवस्य पर्यायाः] जीव की पर्यायें [सुरनरनारकतिर्यचः] देव-मनुष्य-नारक-तिर्यचरूप [बहवः] अनेक हैं।

टीका :- यहाँ भावों (द्रव्यों), गुणों और पर्यायें बतलाते हैं।

जीवादि छह पदार्थ वे 'भाव' हैं। उनके गुण और पर्यायें प्रसिद्ध हैं, तथापि 'आगे (अगली गाथा में) जो उदाहरण देना है, उसकी प्रसिद्धि के हेतु जीव के गुणों और पर्यायों का कथन किया जाता है :-

जीव के गुणों 'ज्ञानानुभूतिस्वरूप शुद्धचेतना तथा कार्यानुभूतिस्वरूप और कर्मफलानुभूतिस्वरूप अशुद्धचेतना है और 'चैतन्यानुविधायी-परिणामस्वरूप, सविकल्प-निर्विकल्परूप, शुद्धता-अशुद्धता के कारण सकलता-विकलता धारण करनेवाला, दो प्रकार का उपयोग है (अर्थात् जीव के *गुणों शुद्ध-अशुद्ध चेतना तथा दो प्रकार के उपयोग हैं)।

१. अगली गाथा में जीव की बात उदाहरण के रूप में लेना है, इसलिए उस उदाहरण को प्रसिद्ध करने के लिये यहाँ जीव के गुणों और पर्यायों का कथन किया गया है।
 २. शुद्धचेतना ज्ञान की अनुभूतिस्वरूप है और अशुद्धचेतना कर्म की तथा कर्मफल की अनुभूतिस्वरूप है।
 ३. चैतन्य-अनुविधायी परिणाम अर्थात् चैतन्य का अनुसरण करनेवाला परिणाम वह उपयोग है। सविकल्प उपयोग को ज्ञान और निर्विकल्प उपयोग को दर्शन कहा जाता है। ज्ञानोपयोग के भेदों में से मात्र केवलज्ञान ही शुद्ध होने से सकल (अखण्ड, परिपूर्ण) है और अन्य सब अशुद्ध होने से विकल (खण्डित, अपूर्ण) है; दर्शनोपयोग के भेदों में से मात्र केवलदर्शन ही शुद्ध होने से सकल है और अन्य सब अशुद्ध होने से विकल हैं।
- * पर्यायार्थिकनय से गुण भी परिणामी हैं। (देखिये, १५ वीं गाथा की टीका।)

जीव की पर्यायें इस प्रकार हैं :- अगुरुलघुगुण की हानि-वृद्धि से उत्पन्न पर्यायें शुद्ध पर्यायें हैं और सूत्र में (-इस गाथा में) कही हुई, देव-नारक-तिर्यच-मनुष्यस्वरूप पर्यायें परद्रव्य के सम्बन्ध से उत्पन्न होती हैं, इसलिए अशुद्ध पर्यायें हैं॥१६॥

पौष कृष्ण २, बुधवार, दिनांक - ०१-०१-१९६४, गाथा-१६, प्रवचन-२३

१६वीं गाथा चलती है। १५वीं गाथा पूरी हुई। १६वीं गाथा। मूल गाथा।

भावा जीवादीया जीवगुणा चेदणा य उवओगो।

सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा॥१६॥

जीवादि ये सब भाव हैं जिय चेतना उपयोगमय।

देव-नारक-मनुज-तिर्यक् जीव की पर्याय हैं॥१६॥

उसकी टीका। देखो, क्या वर्णन चलता है? वर्णन तो षट्द्रव्य का चलता है। यह शास्त्र पंचास्तिकायसंग्रह है। भगवान तीर्थकरदेव वीतराग परमात्मा के ज्ञान में छह द्रव्य जानने में आये। जाति अपेक्षा से छह, संख्या अपेक्षा से अनन्त। उसका क्या स्वरूप है? द्रव्य का, गुण का, पर्याय का, उसका वर्णन चलता है।

प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव क्या है? गुण क्या है? पर्याय क्या है—ऐसा जाने तो अपनी पर्याय क्षणिक है, द्रव्य और गुण त्रिकाल है। ऐसा विकार भी अपनी पर्याय में है। द्रव्य-गुण शुद्ध में विकार नहीं है। तो अपना द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसका गुण, उसकी पर्याय तीनों को जानने से अपनी पर्याय में विकार है, उसका नाश करने का उपाय, अपने स्वभाव-सन्मुख देखना, ज्ञायक स्वभाव-सन्मुख की दृष्टि करना, उससे विकार की रुचि हटती है। और स्वभाव में स्थिर होने से विकार नाश होता है। कहो, समझ में आया? ...भाई! यहाँ सूक्ष्म बात है। ...है ही नहीं? नहीं?

टीका। उसकी टीका है न? १६वीं गाथा। यहाँ भावों (-द्रव्यों)... भगवान ने छह द्रव्य देखे। उसकी व्याख्या चलेगी। और उसके गुणों... (द्रव्य है), उसका गुण क्या है, उसकी व्याख्या चलेगी। उसकी पर्याय क्या है? अवस्था—हालत क्या है? दशा। वह बतलाये हैं। बतलाते हैं।

जीवादि छह पदार्थ वे 'भाव' हैं। जीव, अनन्त पुद्गल... टीका है १६वीं की। जीवादि छह पदार्थ वे 'भाव' हैं। क्या कहते हैं? भगवान सर्वा परमात्मा जैन परमेश्वर तीर्थकरदेव। उन्होंने छह द्रव्य सर्वज्ञ ज्ञान में देखे। उस द्रव्य का क्या स्वरूप है? गुण का क्या? और पर्याय का क्या स्वरूप है? वह बताते हैं। जीवादि... अर्थात् जीव, अजीव अर्थात् पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल आदि छह पदार्थ है, वे 'भाव' हैं। छह पदार्थ को भाव कहने में आता है।

उनके गुण और पर्यायें प्रसिद्ध हैं;... जीवादि छह द्रव्य हैं। उसके गुण त्रिकाल रहनेवाले प्रसिद्ध हैं और पर्याय भी प्रसिद्ध है। उसकी अवस्था—हालत। तथापि... प्रसिद्ध है ऐसी ही का है यहाँ, भाई! छह वस्तु... श्रद्धा, गुण और पर्याय प्रसिद्ध ही है। प्रसिद्ध अर्थात् सिद्ध ही है। छह द्रव्य, उसके गुण और उसकी पर्याय प्रसिद्ध है। तथापि... तथापि आगे (अगली गाथा में)... आगे गाथा आयेगी न? अगली गाथा में जीव बात उदाहरण के रूप में लेना है। १७वीं में। बात कहनी है छह द्रव्य की, गुण की और पर्याय की। उसमें जीव की बात दृष्टान्त के रूप में कहेंगे। उसकी प्रसिद्धि के हेतु जीव के गुणों और पर्यायों का कथन किया जाता है :— कहना तो छहों द्रव्यों के गुण और पर्याय है, परन्तु उसके दृष्टान्त के रूप में जीव का दृष्टान्त देकर जीव के गुण-पर्याय की प्रसिद्धि करने से उसमें अन्य गुण-पर्याय की प्रसिद्धि हो जायेगी, दृष्टान्त में से। समझ में आया? देखो!

उनके गुण और पर्यायें प्रसिद्ध हैं; तथापि आगे (अगली गाथा में) जो उदाहरण देना है... १७ में। उसकी प्रसिद्धि के हेतु जीव के गुणों और पर्यायों का कथन किया जाता है:— जीव का गुण क्या और जीव की पर्याय—अवस्था क्या? ऐसा जाने तो उस अनुसार दूसरे द्रव्य में उसका गुण क्या और उसकी पर्याय क्या, वह उसको ख्याल में आ जाये। समझ में आया? द्रव्य, गुण, पर्याय की गाथा है।

जीव के गुणों... अब आया। जीव तो भाव है, प्रत्येक जीव। आत्मा कहो या गुण कहो, वह भाव है, पदार्थ है, वस्तु है। उसके गुण ज्ञानानुभूतिस्वरूप... उसका—गुण का परिणमन होता है न? गुण का परिणमन होता है, बदलना होता है, गुण का पलटना

होता है। कहते हैं, जीव के गुण ज्ञानानुभूतिस्वरूप है। नीचे (२) है। शुद्धचेतना ज्ञान की अनुभूतिस्वरूप है और अशुद्धचेतना कर्म की तथा कर्मफल की अनुभूतिस्वरूप है। क्या कहते हैं, देखो! भगवान आत्मा (द्रव्य), उसका ज्ञानादि गुण त्रिकाल, उसमें वर्तमान ज्ञानानुभूति—ज्ञान का अनुभव शुद्ध, जो राग और द्वेष से रहित अपना आत्मा का, गुण की परिणति का शुद्धात्म ज्ञानरूप (अनुभव)... ज्ञानानुभूतिस्वरूप शुद्धचेतना है। वह धर्म है। क्या कहा ?

भगवान आत्मा वस्तु है। उसके अनन्त गुण हैं। उसमें ज्ञान का अनुभव। ज्ञायक आत्मा उसकी ज्ञान की अनुभूति। मैं शुद्ध चैतन्य हूँ। पुण्य-पाप राग से रहित, कर्म से रहित, शरीर से रहित, आनन्द और ज्ञान से भरपूर है। ऐसा अपना द्रव्य-गुण का अवलम्बन लेकर जो ज्ञान का, श्रद्धा का अनुभव हो, उसको ज्ञानानुभूति शुद्धचेतना, धर्मचेतना कहने में आया है। भैया! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म। समझ में आया? धर्म किसको कहते हैं, वह बात उसमें चली।

शरीरादि तो पर मिट्टी—धूल है, यह तो परमाणु है। उसकी पर्याय कोई धर्म है नहीं। उसका धर्म है—जड़ का। अपना धर्म नहीं है। ...जितना शुभ-अशुभ राग होता है, वह भी... यहाँ कहेंगे, वह कर्मचेतना है। रागरूपी कार्य का अनुभव है। वह ज्ञानानुभूति धर्म नहीं। समझ में आया? तब धर्म क्या है? ज्ञानानुभूतिस्वरूप... यहाँ गुण के परिणमन को गुण कहा है। भगवान आत्मा वस्तु है और उसका ज्ञान, आनन्द आदि अनन्त गुण त्रिकाल कायम रहनेवाली शक्तियाँ हैं। उसमें अपना द्रव्य, द्रव्य अर्थात् वस्तु, गुण अर्थात् शक्तियाँ—स्वभाव, उसका अवलम्बन से ज्ञान की शुद्धता का—निर्मलता का—पवित्रता का—वीतरागी पर्याय का—शुद्धचेतना का अनुभव है, उसको यहाँ ज्ञानानुभूति शुद्धचेतना कहने में आया है। उसका नाम धर्म कहने में आया है, उसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र कहने में आया है। आहाहा! ऐसी बात। समझ में आया? भैया! समझ में आता है? है उसमें? देखो! उसका अर्थ चलता है। खाताबही मिलते हैं या नहीं? खाताबही मिलते हैं या नहीं? भगवान क्या कहते हैं?

कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में हुए। दिगम्बर मुनि। संवत् ४९। वे भगवान के पास

गये थे। सीमन्धर भगवान के पास। आठ दिन रहे थे। भगवान वर्तमान विराजते हैं। आठ दिन रहकर यहाँ मद्रास के पास पोन्नूर हिल है, वहाँ से गये थे। वहाँ (वापस) आये थे, वहाँ शास्त्र बनाये। उसकी टीका जो है, कुन्दकुन्दाचार्य के बाद (अमृतचन्द्राचार्य) ११०० वर्ष बाद हुए। वर्तमान से ९०० वर्ष पहले हुए। वे भी दिगम्बर मुनि जंगलवासी, आत्मध्यानी, ज्ञानी उन्होंने यह टीका बनायी। मूल श्लोक कुन्दकुन्दाचार्य के हैं और टीका है अमृतचन्द्राचार्य की। दोनों दिगम्बर सन्त मुनि जंगलवासी आत्मध्यान में थे। सीमन्धर भगवान वर्तमान मौजूद महाविदेहक्षेत्र में विराजमान हैं। उनके पास दो हजार वर्ष पहले गये थे, आठ दिन रहे थे।

कहते हैं कि जीव का गुण, जीव का गुण... यहाँ तो कहते हैं गुण। तो गुण की परिणति को जीवगुणा। समझ में आया? देखो! जीव के गुण, शब्द पड़ा है न पाठ में? **ज्ञानानुभूतिस्वरूप...** अपना ज्ञान, मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, शुद्ध हूँ, पवित्र हूँ—ऐसा अपने आत्मा में अपना द्रव्य और गुण का आश्रय करके, निर्मल ज्ञान की शान्ति का वेदन—अनुभव को यहाँ शुद्ध चेतना कहने में आया है। उसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र मोह का मार्ग कहने में आया है। कहो, समझ में आया? बात बहुत सूक्ष्म।

भगवान आत्मा अन्तर में चैतन्य मूर्ति है। यह तो हड्डियाँ हैं, मिट्टी। पुद्गल जड़ है। अन्दर कर्म भी मिट्टी जड़ है। वाणी भी मिट्टी है। यह आवाज वह भी जड़ है, आत्मा नहीं। अन्दर में राग-द्वेष होता है, वह भी विकार है। दया, दान, व्रत, भक्ति का शुभराग और हिंसा, झूठ, चोरी का अशुभराग दोनों विकार हैं। विकार का अनुभव धर्म नहीं। समझ में आया? ज्ञानानुभूति—ज्ञान को अनुसर के होना, वह शुद्धचेतना, उसका नाम धर्मचेतना कहो, ज्ञानचेतना कहो, शुद्धचेतना कहो, धर्म परिणति कहो, मोक्षमार्ग कहो—सब उस भाव का भाव है।

तथा कार्यानुभूतिस्वरूप.... कार्यानुभूतिस्वरूप। कार्य। नीचे है। **कर्म की तथा कर्मफल की अनुभूतिस्वरूप है।** फुटनोट दो में लिखा है। वह अशुद्धचेतना है। क्या? कार्यानुभूति। कार्यानुभूति का अर्थ क्या? शुभ और अशुभ जो दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प उठते हैं, वह शुभराग कार्य अनुभव है। कार्य अर्थात् कर्म का अनुभव है।

अपना रागरूपी कार्य का अनुभव है। और हिंसा, भोग, वासना, काम, क्रोध का राग वह भी कार्यानुभूति है, अशुद्धचेतना अनुभव है। लिखा न, नीचे लिखा है न। अशुद्धचेतना कर्म की तथा कर्मफल की.... अभी कर्मफल बाद में आयेगा। यहाँ कर्म के दो अर्थ हैं। कर्म अर्थात् कार्य। जड़ कर्म भिन्न है। यहाँ तो आत्मा के गुण की बात चलती है। यहाँ पर्याय को भी आत्मा का गुण कहा है। गुण का परिणमन है न।

भगवान् आत्मा अपना गुण, उसके अवलम्बन से शुद्ध आनन्द और ज्ञान की परिणति का परिणमन करे, वह धर्म। और उसमें रागादि, पुण्य आदि, पाप का भावरूपी परिणति करे, वह कार्य अर्थात् कर्म अनुभूति है। वह विकार का अनुभव है। दूसरी भाषा से कहें तो धर्म से विरुद्ध (परिणमन है)। आहाहा! बराबर है? देवानुप्रिया समझते हो? देवानुप्रिया हम क्यों कहते हैं? नहीं मालूम? देवानुप्रिया। देव की भाषा में बोलने में आती है। हे देवानुप्रिया! मनुष्य, मनुष्यदेह देव को वल्लभ है। समझ में आया? देव ऐसी इच्छा करते हैं कि हम धर्म अन्तर से उग्रपने करे। तो मनुष्यदेह देव को वल्लभ है। श्वेताम्बर में दूसरी भाषा चलती है। देवानुप्रिय। विमलचन्द्रजी! सेठी! कोई भी सेवक को बुलाये, राजा सेवक को कहे, देवानुप्रिय! ऐसा कहे। देव को भी मनुष्यदेह आये तो मैं धर्म की वृद्धि करूँ और सिद्धि करूँ, ऐसा मनुष्यदेह देव को वल्लभ है। (मनुष्य) उसको तो धर्म करने की खास जरूर है। विमलचन्द्रजी! समझ में आया?

ऐसी कथनी की है, भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य और उसके टीकाकार कितना स्पष्ट करते हैं। पाठ में तो इतना लिया, जीव के गुण। चेतना और उपयोग। ऐसा पाठ लिया तो टीका की कि जीव के गुणों को चेतना। गुण के गुणों की चेतना। शुद्ध चेतना। ज्ञान के अनुभव में शुद्ध पवित्र आनन्द लायक हूँ, ऐसी अपनी (चेतना का) अनुभव, वह शुद्धचेतना, आत्मा के गुण की परिणति का अनुभव, गुण का अनुभव कहने में आया है।

और कार्यानुभूति। पुण्य और पाप भाव जो है, उसका अनुभव, वह भी जीव के गुण की परिणति है, ऐसा कहना है। समझ में आया? इसलिए तो लिया है—जीव की चेतना। जीव का गुण चेतना। चेतना के तीन प्रकार। अपना गुण अपने में है, अपने

कारण से है। तीनों प्रकार अपने कारण से है। समझ में आया ? भगवान आत्मा ज्ञान भगवानस्वरूप चैतन्य, उसकी अनुभूति करनी, उसका ज्ञान, श्रद्धान, लीनता करना, वह भी अपने जीव के गुण की परिणति को गुण कहा। और जितना पुण्य-पाप का विकृत भाव होता है, वह विकार का कार्य हुआ—कर्मचेतना। तो कर्मचेतना भी जीव के गुण की पर्याय को गुण कहा। समझ में आया ? आहाहा !

मुमुक्षु : वह तो जीव की अशुद्ध पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुद्ध है, परन्तु है उसकी गुण की पर्याय है। इसलिए गुण की पर्याय होने से वह जीव का ही गुण है। वह जड़ का, कर्म का नहीं है। इतनी स्पष्टता तो की है। गड़बड़ी-गड़बड़ी ऐसी चले, कर्म से विकार होता है, कर्म से विकार होता है। अरे ! भगवान ! सुन तो सही ! कर्म तो परद्रव्य है। यहाँ तो जीवद्रव्य की बात चलती है।

जीवद्रव्य अपने गुण क्या है ? गुण शब्द के अर्थ में गुण की परिणति ली है। नीचे है, नीचे। गुण की परिणति तो ली। इस ओर ली है, इस ओर है। **पर्यायार्थिकनय से गुण भी परिणामी हैं,...** देखो ! १५वीं गाथा की टीका। वह कल आया था। परन्तु आज इसमें लिया। **पर्यायार्थिकनय से गुण भी परिणामी हैं,....** पहले आ गया है न और आज नया है। क्या कहा ? यह जीव—आत्मा कहो या जीव कहो, उसमें अनन्त... अनन्त... बेहद शक्तियाँ—गुण भरे हैं। गुण का परिणमन है। तो परिणमन को तीन अर्थ है। गुण का शुद्ध परिणमन शुद्धचेतना। वह भी जीव का गुण और जीव में है, जीव के कारण से है। उसका कर्ता जीव ही है, भाई ! आगे कहेंगे। २०वीं गाथा में है ? कर्ता... कर्ता है कहीं पर। कर्ता लिया है। २१ में। २१ में है, देखो अन्त में। **उसी को अभावभाव का (-असत् के उत्पाद का) कर्तृत्व कहा गया है।** उसके ऊपर उसी को भावाभाव का (-सत् के विनाश का) कर्तृत्व कहा गया है;... सब पर्याय की बात चलती है। पर्याय की बात चलती है २१ में। समझ में आया ? एक है। (१) देवादिपर्यायरूप से उत्पन्न होता है, इसलिए उसी को (जीवद्रव्य को ही) भाव का (उत्पाद का) कर्तृत्व कहा गया है;... २१गाथा।

द्रव्य वास्तव में सर्वदा अविनष्ट और अनुत्पन्न आगम में कहा है; इसलिए

जीवद्रव्य को द्रव्यरूप से नित्यपना कहा गया है। (१) देवादिपर्यायरूप से उत्पन्न होता है, इसलिए उसी को (जीवद्रव्य को ही) भाव का (उत्पाद का) कर्तृत्व कहा गया है; (२) मनुष्यादिपर्यायरूप से नाश को प्राप्त होता है, इसलिए उसी को अभाव का (-व्यय का) कर्तृत्व कहा गया है;.... समझ में आया ? यहाँ तो कर्ता आत्मा है, यह सिद्ध करना है। क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : पहुँचे, न पहुँचे वह तो ठीक है। यहाँ पहुँचना कहाँ है, जहाँ पहुँचा वह पूरा हो गया। पहुँच गया। यहाँ ले लिया न। समझ में आता है ? ... क्या कहते हैं, देखो ! अपनी चलती गाथा के साथ सम्बन्ध। वह २१वीं गाथा में चला है।

कहते हैं, जीव के गुणों ज्ञानानुभूतिस्वरूप शुद्धचेतना... अर्थात् अपनी सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चेतना की पर्याय का उत्पाद का आत्मा कर्ता है। कहो, समझ में आया ? कर्म हटा तो वह पर्याय उत्पन्न हुई, ऐसा नहीं। ओहोहो ! कितनी बात स्पष्ट की है ! तो भी गड़बड़ करते हैं। नहीं, कर्मजन्य उपाधि, कर्मजन्य उपाधि। अरे ! सुन तो सही। तेरी पर्याय तेरे में है, उसका कर्ता कर्म को लगा देता है। अन्याय (करता है)। समझ में आया ?

कहते हैं कि भगवान आत्मा अपने गुणों की अनुभूति। शुद्ध निर्मल श्रद्धा-ज्ञान करना। उसकी चेतना उत्पाद है या नहीं ? उत्पन्न करना है, उसको उत्पाद कहते हैं, उसका कर्ता आत्मा है। २१वीं गाथा में आया न ? यह तो मिलान आगे करते-करते ले जाते हैं न आगे। समझ में आया ? बाद में। कार्यानुभूतिस्वरूप.... अर्थात् आत्मा में... अभी वही चलता है। पुण्य-पाप का रागरूपी परिणमन का कार्य, उस स्वरूप गुण के परिणमन को करनेवाला आत्मा है। पुण्य और पाप का विकार का करनेवाला उत्पाद की अनुभूति, कर्मअनुभूति। कर्म शब्द का अर्थ कार्य। विकार पुण्य-पाप का कार्य का अनुभव करनेवाला, उसको कर्मचेतना कहते हैं। समझ में आया भैया ? उसमें है देखो ! बहुत गड़बड़ करते हैं। दुनिया में ईश्वर कर्ता है और इसको कर्म कर्ता है।

मुमुक्षु : अज्ञानी का....

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी के दिमाग में... वीतराग मुनि कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य

महा दिगम्बर सन्त जंगल में रहनेवाले, भगवान के पास गये थे। आठ दिन रहकर... समझ में आया? क्या कहते हैं भगवान?

कार्यानुभूति। कार्य अर्थात् कर्म। कर्म अर्थात् पुण्य-पाप का भाव। दया, दान, व्रत, तप का विकल्प जो है, ये शुभ कार्य है। और हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, ये अशुभ कार्य है। वह अशुभ कार्य और शुभ नाम का कार्य का अनुभव करना, वह कर्मचेतना है, वह विकारचेतना है, कार्यचेतना है। उसको आत्मा करता है। ऐ.. देवानुप्रिया! यहाँ जीवद्रव्य की व्याख्या चलती है। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने जो कहा, वह मुनि ऐसा ही कहते आये हैं। भैया! भगवान ऐसा कहते थे और ऐसा है। पुण्य-पाप का परिणाम और उसके अनुभव से हटकर अपना आनन्दमूर्ति आत्मा, उसकी दृष्टि करके उसका अनुभव करो तो भगवान उसको गुण की शुद्धपरिणति को शुद्धचेतना कहते हैं। उसको भगवान ... धरनेवाला आत्मा धर्म की उत्पत्ति का करनेवाला आत्मा कहते हैं। समझ में आया?

तथा कार्यानुभूति.... शुभ और अशुभराग, उसका भी अनुभव, उसका कार्य का करना, उसको अनुभवना, वह आत्मा का ही गुणपरिणाम है, आत्मा का ही गुणपरिणाम है। ज्ञानी को भी जितना राग उत्पन्न होता है, वह आत्मा का ही राग कार्य का अनुभव है। वह बन्ध का कारण है, वह मलिन परिणाम है। परन्तु है आत्मा का गुण का परिणाम। वह जड़ का नहीं। आहाहा! दो बोल आये।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : एक मोक्ष का कारण। एक कर्म अर्थात् कार्य बन्ध का कारण। अभी फल भी एक तीसरा बोल है। तीसरा बोल है अभी। सेठी!

और कर्मफलानुभूतिस्वरूप अशुद्धचेतना है.... दो मिलकर अशुद्धचेतना है। पहली ज्ञानानुभूतिस्वरूप शुद्धचेतना और दूसरी राग-द्वेष का परिणाम और राग-द्वेष का अनुभव हर्ष-शोक से करना, हर्ष-शोक से अनुभव करना, उसका नाम कर्मफलानुभूति है। कर्म अर्थात् राग-द्वेष का फल, हर्ष-शोक का अनुभव, उसका नाम कर्मफलानुभूति कहते हैं। राग-द्वेष का, हर्ष-शोक का फल, उसका अनुभव करना, वह आत्मा उसको

करता है और आत्मा उसका अनुभव करता है। तीन अनुभूति हुई। ऐसे तीन हुई, ऐसे कहो तो उसके अन्तर्भेद से पाँच हुई।

एक तो आत्मा अपना शुद्ध चैतन्य का अनुभव, वह एक। दूसरा, पुण्य और पाप दो। उसका कार्य का अनुभव। पुण्य-पाप का हर्ष-शोक। अनुभव दो का। पुण्य का अनुभव, विकार का अनुभव। पाँच हुए न? ऐसे हुए तीन। ऐसे हुए दो। दो क्या? एक तो शुद्धचेतना, (एक अशुद्ध) चेतना। दो। अब अशुद्धचेतना में दो। पुण्य का, पाप का करना वह अशुद्धचेतना एक कर्तापना की, और एक अनुभवना की। वह दो और दो में दो भाग करो पुण्य-पाप और हर्ष-शोक, पुण्य का अनुभव और पाप का अनुभव तो दो-दो हो जाता है। हैं चारों अशुद्ध। कहो, समझ में आता है इसमें? यह तो सरल, सादी भाषा से तो आता है। ...भाई! समझ में आता है इसमें?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : लेकिन कोई अभ्यास भी न हो तो क्या करना? जबरन कोई सिखा देता है? उसकी योग्यता से वह समझता है न। क्या कहा देखो!

एक पंक्ति में तो स्वतन्त्र साधक पर्याय, बाधक पर्याय, उसका अनुभव करनेवाला और कर्ता जीव ऐसा सिद्ध कर दिया। साधक-बाधक क्या कहा? एक तो आत्मा अपना आनन्द और ज्ञानस्वरूप, उसका अन्तर श्रद्धा-ज्ञान करके अनुभव करे, वह साधक। धर्मपर्याय साधक है। उसका साध्य—केवल (ज्ञान) फल है। मोक्षफल। बाधक—विघ्न करनेवाला। बीच में पुण्य-पाप का कर्तृत्व बाधक, विघ्न है, बन्ध का कारण है। और उसका फल भी बन्ध का कारण है। फल बाहर की बात नहीं है, हों! अन्दर की बात है। उसका भाव का कर्तृत्व, ऐसा उसका हर्ष-शोक का उसमें अनुभव। चारों अशुद्ध मलिन चेतना है। मलिन गुण की परिणति है। उसको आत्मा का गुण कहने में आया है। मलिन परिणति को भी गुण कहने में आता है। गुण की व्याख्या चलती है न? देखो! **जीव के गुणों...** समझ में आया? अभी उपयोग आयेगा जीव का गुण। उसकी पर्याय बाद में आयेगी। अभी तो गुण की बात है, गुण की। यह तो अभी चेतना की बात आयी। उपयोग की बाद में आयेगी। दोनों को यहाँ गुण कहते हैं। ओहोहो!

कर्मफलानुभूतिस्वरूप अशुद्धचेतना है। दो भाग हो गया। एक वस्तु भगवान

आत्मा, उसके गुण अनन्त, उसकी परिणति शुद्ध होना उसको... और पुण्य-पाप का कर्तृत्व वह आत्मा उत्पन्न करता है, उसको भी गुण कहा। और हर्ष-शोक का फल अनुभव करता है, उसको भी गुण कहा। चेतनागुण। चेतना के दो प्रकार—शुद्ध और अशुद्ध। उसका गुण का करनेवाला आत्मा है। आत्मा के अस्तित्व में है। दूसरा उसका करनेवाला है नहीं। समझ में आया ?

अब उपयोग। दूसरा बोल आया। है न पाठ में (-अन्वयार्थ में) ? जीव के गुण चेतना तथा उपयोग हैं... तो चेतना हो गयी। मूल पाठ। अब आया उपयोग। उपयोग को भी गुण कहा। वह भी जीव का गुण है। चैतन्यानुविधायी-परिणामस्वरूप,.... चैतन्यानुविधायी परिणामस्वरूप। सविकल्प-निर्विकल्परूप, शुद्धता-अशुद्धता के कारण सकलता-विकलता धारण करनेवाला, दो प्रकार का उपयोग है... अभी भाषा ली, फिर उसका अर्थ। समझ में आया ? चेतना की व्याख्या पूरी हो गयी। जीवद्रव्य। उसका चेतनागुण। उस गुण की परिणति को यहाँ गुण कहा। शुद्ध और अशुद्ध दो गुण। गुण से गुणविशेष से आत्मा पर से पृथक् जानने में आता है।

चैतन्यानुविधायी-परिणाम,.... है तो यह पर्याय, तो भी उसको यहाँ गुण कहा है। चैतन्यानुविधायी-परिणामस्वरूप,.... नीचे है देखा। चैतन्य... चैतन्य है न गुण। चेतनद्रव्य, चैतन्यगुण। ज्ञान-दर्शन गुण। चेतन वह द्रव्य, चैतन्य गुण। अनुविधायी.... उसको अनुसर के परिणाम अर्थात् चैतन्य का अनुसरण करनेवाला परिणाम, वह उपयोग है। ध्यान रखना इसमें। चैतन्य का अनुसरण करनेवाले को उपयोग कहा। उपयोग का कर्ता जीव और वह उपयोग चैतन्य (का अनुसरण करके उत्पन्न हुआ) है। निमित्त, राग, पर के कारण से उत्पन्न हुआ है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : चैतन्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुसरण करके। चेतनद्रव्य और चैतन्यगुण—ज्ञान, दर्शन। उसका अनुसरण करके (उत्पन्न हुआ) उसको उपयोग कहते हैं। तीनों आ गये—द्रव्य, गुण और पर्याय। आहाहा! ऐ... देवानुप्रिया! गुण से होनेवाला परिणाम, इन्द्रिय से नहीं। क्या बराबर बराबर ?

मुमुक्षु : व्यवहार की बात छोड़ देते हो, उसमें उसको दिक्कत आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार का यहाँ ज्ञान होता है। ऐसा उसमें आ जाता है। वह बात हो गयी है। वह ज्ञान नया नहीं करना पड़ता है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : सब सीधा है, ऐसा है। देखा! अब ... निश्चय का यथार्थ ज्ञान होने पर निमित्त क्या था, उसका ज्ञान निश्चय के ज्ञान में आ जाता है। इसलिए यहाँ यथार्थ अर्थात् निश्चय और उपचार अर्थात् व्यवहार। यथार्थ का ज्ञान हो तो उपचार क्या है, उसका ज्ञान उसमें आ जाता है।

नीचे फुटनोट। **चैतन्य का अनुसरण करनेवाला परिणाम....** देखो! अपना चैतन्य का अनुसरण करनेवाला परिणाम को उपयोग कहते हैं। **सविकल्प उपयोग को ज्ञान....** उसमें आया है न? देखो! सविकल्प, निर्विकल्प का अर्थ पहले किया। चैतन्य अनुविधायी परिणामस्वरूप। तो सविकल्प, निर्विकल्प साथ में आया। तो उसका अर्थ करते हैं। **सविकल्प उपयोग को ज्ञान....** ज्ञान को सविकल्प (कहा)। सविकल्प का अर्थ राग नहीं। परन्तु स्व-पर को जानना, उसको ही सविकल्प कहने में आया है। पर को ज्ञान जानता है तो स्व-पर दो आया, इसलिए सविकल्प हुआ। राग नहीं। **सविकल्प उपयोग को ज्ञान....**

और निर्विकल्प उपयोग को दर्शन कहा जाता है। दर्शन उपयोग भेद नहीं करता है, भेद बिना उसके उपयोग का कार्य होता है, उसका नाम दर्शन उपयोग है। भेद करके जो व्यापार होता है, उसका नाम ज्ञान उपयोग। ज्ञान को सविकल्प कहा, भेद करके जानता है इसलिए। ... निर्विकल्प सामान्य, उसको निर्विकल्प उपयोग कहा।

ज्ञानोपयोग के भेदों में से मात्र केवलज्ञान ही शुद्ध होने से सकल.... है न पीछे? निर्विकल्प, सविकल्प बाद में। शुद्ध-अशुद्धता और सकलता-विकलता ... उसका स्पष्टीकरण करते हैं। केवलज्ञान शुद्ध होने से सकल... सकल अर्थात् अखण्ड परिपूर्ण केवलज्ञान है। आत्मा का चैतन्य का अनुसरण करके होनेवाला... क्या कहते हैं? भगवान आत्मा अपना चैतन्यगुण, चेतन तो आत्मा, चेतन कहो या आत्मा कहा, ... उसका

अनुसरण करके केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, उसको सकल अखण्ड परिपूर्ण केवलज्ञान चैतन्य अनुविधायी परिणाम उपयोग कहने में आया है। वह केवलज्ञान पर का अनुसरण करके उत्पन्न नहीं होता। पूर्व की पर्याय का नाश का अनुसरण करके उत्पन्न नहीं होता, अपना चैतन्य का अनुसरण करके उपयोग उत्पन्न होता है। भैया! समझ में आया? एक-एक शब्द में सूक्ष्मता है, हाँ! एक शब्द इधर-उधर हो जाये तो उसमें गड़बड़ हा जाती है। कह्या कहा?

फिर से। ज्ञानोपयोग के भेदों में से मात्र केवलज्ञान ही शुद्ध होने से.... शुद्ध कहा था न अन्दर? शुद्धता। सकल (अखण्ड, परिपूर्ण) है.... उसका अर्थ चलता है। आत्मा का चैतन्य को अनुसरण करके होनेवाला उपयोग। उसमें सविकल्प अर्थात् ज्ञान। ज्ञान में भी दो भेद। एक सकल और विकल्प। सकल केवलज्ञान। केवलज्ञान का पर्याय— परिणाम अपने चैतन्य को अनुसरण करके उत्पन्न होता है। उस केवलज्ञान को—गुण की पर्याय को यहाँ गुण कहने में आया है। केवलज्ञान का उपयोग अपने गुण को अनुसरण (करके उत्पन्न होता है)। (पूर्व की पर्याय का) नाश करके उत्पन्न होता है या ज्ञानावरणीय का नाश होकर उत्पन्न हुआ है, ऐसा वस्तु में नहीं है। वह सब उपचार का (कथन है)। समझ में आया? वस्तु ऐसी है। किसी की बनी, बनायी नहीं है। भगवान ने तो जैसा है वैसा जाना, और जाना ऐसा कहा और ऐसा है। ऐसी चीज़ है, सुनो!

केवलज्ञान की पर्याय को यहाँ शुद्ध कहा और उसको यहाँ सकल कहा। अखण्ड, परिपूर्ण कहा। तो कहते हैं कि चैतन्य अनुविधायी परिणामस्वरूप। सविकल्प, शुद्ध सकलता का धारण करनेवाला वह आत्मा... आहाहा! समझ में आया? केवलज्ञान उत्पन्न होता है... तो कहते हैं कि अन्दर ज्ञानगुण और गुण को धरनेवाली वस्तु—द्रव्य, चेतनद्रव्य और चैतन्यगुण, उसको अनुसरण करके होनेवाला वह परिणाम है। पूर्व की पर्याय का नाश का अनुसरण करके उत्पन्न होना, वह नहीं और ज्ञानावरणीय का क्षय हुआ तो केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, ऐसा भी नहीं। समझ में आया? आहाहा! उपयोग का दो भेद करके, सविकल्प ज्ञान, निर्विकल्प दर्शन। सविकल्प का एक भेद सकल, अखण्ड, शुद्ध ... उपयोग इतनी व्याख्या की। सविकल्प, शुद्ध और सकल। तीन बोल

लागू करके अर्थ किया। ...केवलज्ञान सविकल्प। सविकल्प का अर्थ स्व-पर को जाननेवाला इसलिए सविकल्प। सकल अर्थात् अखण्ड। समझ में आया? शुद्ध। वह शुद्ध है। केवलज्ञान सविकल्प, शुद्ध और ... तीन का अर्थ क्या?

केवलज्ञान अपना गुण अन्दर में से द्रव्य को ध्येय करके ... केवलज्ञान उत्पन्न हुआ उसका सेकल कहते हैं। क्योंकि स्व-पर को जानता है। उसको शुद्ध कहते हैं, क्योंकि वह निर्मल है। वह अखण्ड और परिपूर्ण है। समझ में आया? सादी भाषा में बात आती है। परन्तु ख्याल न करे उसको ... सब समझ में आये, ऐसी बात है। कितनी स्पष्ट बात करते हैं आचार्य, देखो! ओहोहो! दिगम्बर सन्तों ने सर्वज्ञ का पेट खोलकर रखा है कि देखो! वस्तु ऐसी है। जीव की प्रसिद्धि करते हैं। देखो! यहाँ ऊपर लिखा था न? उसकी प्रसिद्धि के लिये। उदाहरण देना है, उसकी प्रसिद्धि के हेतु जीव के गुणों और पर्यायों का कथन किया जाता है... जीव की प्रसिद्धि के लिये। ओहोहो! कथनपद्धति! गागर में सागर भर दिया है। थोड़े शब्दों में मक्खन है।

भैया! एक बार सुन तो सही, प्रभु! तेरे में ज्ञान भरा है। उस आनन्द और ज्ञान का अनुसरण करके तुझे शुद्ध आनन्द का अनुभव हो तो उसको ... शुद्धचेतना हमने कहा। राग का अनुभव हो तो अशुद्धचेतना का अनुभव कहा। राग का फल का अनुभव हो तो कर्मफल का अनुभव भगवान ने कहा और उन तीनों को करनेवाला आत्मा है। क्योंकि वह आत्मा का गुण है।

अब कहते हैं, उपयोग। उपयोग का सविकल्प, निर्विकल्प (भेद कहा)। उसकी पहली व्याख्या वह की—चैतन्य को अनुसरण करके परिणाम उत्पन्न होते हैं, उसको उपयोग कहते हैं। भगवान आत्मा में चैतन्यगुण पड़ा है, उसका अनुसरण करके, अनुकरण करके, अनुसरण करके परिणाम अर्थात् उपयोग पर्याय उत्पन्न होती है, उसको उपयोग कहते हैं। उस उपयोग के दो भेद है। एक सकल, एक विकल्प। सकल उपयोग केवलज्ञान, वह सकल उपयोग है और शुद्ध है और सविकल्प है। स्व-पर का जाननेवाला है, अखण्ड है और शुद्ध है। वह पर्याय अपने चैतन्यगुण के अवलम्बन से वह पर्याय उत्पन्न होती है। पर के कारण से नहीं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, मोक्षमार्ग की पूर्व की पर्याय के कारण से भी केवलज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो सीधी बात कही न। अन्दर गुण का अनुसरण करके उपयोग केवलज्ञान हुआ है। अपना अन्दर गुण पड़ा है, अनन्त ज्ञान, अनन्त ज्ञान गुण। अनन्त-अनन्त सामर्थ्य। उसका अनुसरण करके उपयोग (उत्पन्न हुआ है), ऐसा कहा। पर्याय का अनुसर करके, मोक्षमार्ग की पर्याय का अनुसरण करके केवलज्ञान हुआ, संहनन—बड़ा संहनन का अनुसरण करके केवलज्ञान हुआ, मनुष्यदेह है तो उसका अनुसरण करके हुआ, ऐसा कहा नहीं। समझ में आया? ऐ.. देवानुप्रिया! इसमें कुछ चले ऐसा नहीं है। ... नहीं तो ऐसा कहे कि, अभी तो निश्चय का है। आहाहा! हुआ?

और अन्य सब अशुद्ध होने से... अन्य सब क्या? अभी ज्ञान की बात चलती है, हाँ! सविकल्प में। अन्य का अर्थ क्या? यहाँ तो चार पर्याय है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान। वह चार पर्याय है। वह भी अपना ज्ञानगुण का अनुसरण करके (होती है)। परन्तु वह अशुद्ध है, अपूर्ण है, अशुद्ध है और सविकल्प है। चार ज्ञान की पर्याय भी ... इन्द्रिय और निमित्त का अनुसरण करके नहीं। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान—चार, ये चार अशुद्ध हैं। केवलज्ञान शुद्ध था, तो ये चार अशुद्ध हैं। पूर्ण नहीं है न, (अपूर्ण है)। अखण्ड नहीं है इसलिए अशुद्ध। फिर भी वह चारों ज्ञान—मतिज्ञान, अपना चैतन्यगुण अन्दर है उसका अनुसरण करके मति उत्पन्न होता है। उस मति को सविकल्प कहते हैं, क्योंकि स्व-पर का जानता है। उसको अशुद्ध कहते हैं क्योंकि अभी पूर्ण नहीं है और खण्ड है, इसलिए विकल कहते हैं। खण्ड है—विकल अर्थात् खण्ड है, सकल अर्थात् अखण्ड है। परन्तु है मतिज्ञान अपना गुण का अनुसरण करके होनेवाली पर्याय। उसको यहाँ उपयोग कहा है। आहाहा!

श्रुतज्ञान। श्रुतज्ञान इस पत्रे की बात नहीं है, हों! अन्दर श्रुतज्ञान (की बात है)। भावश्रुतज्ञान। अपना ज्ञानगुण का अनुसरण करके होनेवाला श्रुतज्ञान परिणाम उपयोग सविकल्प, अशुद्ध, विकल है। समझ में आया? क्योंकि अपूर्ण ज्ञान है तो खण्ड वाला है। अशुद्ध है। अभी कर्म के निमित्त की अपेक्षा उसमें है। बिल्कुल निरपेक्ष केवलज्ञान नहीं हुआ है और खण्ड है, (विकल) है। कहो, समझ में आया?

ऐसे अवधिज्ञान। अवधिज्ञान भी अशुद्ध है। देखो! खण्डित, अपूर्ण है। वह ज्ञान की बात की। ज्ञान की पाँच पर्याय। केवलज्ञान। केवलज्ञान शुद्ध, अखण्ड वह आत्मा का गुण को अन्तर अनुसरण करके होनेवाला पर्याय है। उसको उत्पन्न करनेवाला आत्मा है। ... चार ज्ञान वह नाश, वह केवलज्ञान का उत्पन्न करनेवाला नहीं है। ... चार ज्ञान नाश (होते हैं), वह केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाला नहीं। सीधा आत्मा ही उसको उत्पन्न करनेवाला है।

यह पंचास्तिकाय (शास्त्र है)। उसमें षट्द्रव्य का स्वरूप पहले भाग में है। दूसरे भाग में पंचास्तिकाय है, उसमें नव तत्त्व और मोक्षमार्ग का अधिकार है। दो भाग है इसमें। पंचास्तिकाय में दो भाग (अधिकार) है। समझ में आया? अवधिज्ञान। आत्मा में जो अवधिज्ञान होता है, वह किस कारण से होता है? अवधिज्ञानावरणीय क्षयोपशम के कारण होता है?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो निमित्त का ज्ञान कराने को कहा है। यहाँ अवधिज्ञान... नहीं। ज्ञान की उत्पत्ति में ऐसा भास निश्चय में ऐसा आ जाता है कि यहाँ कर्म का क्षयोपशम हुआ है, बस इतना। ... नहीं। अवधिज्ञान अपना ज्ञानगुण का अनुसरण करके उत्पन्न होता है। पूर्व की पर्याय के कारण नहीं, कर्म का अभाव के कारण नहीं। और वह अवधिज्ञान सकल (नहीं) है। सकल का अर्थ स्वपरप्रकाशक है। स्व और पर दोनों को जाननेवाला है। अपनी पर्याय को... और वह अपूर्ण है। खण्ड वाला है। इसलिए अशुद्ध है। है सविकल्प। स्व-पर को जानता है।

ऐसे मनःपर्ययज्ञान मुनि को होता है। तो उसको भी अपने ज्ञानगुण का अनुसरण करके मनःपर्ययज्ञान होता है। चारित्रवन्त हैं तो ... ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा! ... मनःपर्ययज्ञान तो अपना ज्ञानगुण अन्दर में है, उसका अनुसरण करके परिणमन हुआ है। समझ में आया? ... गुण कहते हैं, उपयोगरूपी गुण, उसका करनेवाला आत्मा है। परन्तु वह चार ज्ञान सविकल्प है। अपूर्ण है और सविकल्प और विकल, विकल। विकलेन्द्रिय है न? विकलेन्द्रिय नहीं होते हैं? दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, विकल इन्द्रिय।

विकल अर्थात् ... उसको विकल कहते हैं। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय को विकल कहते हैं, पंचेन्द्रिय को पूर्ण कहते हैं। ऐसे यहाँ पूर्ण नहीं है, इसलिए विकल कहा। परन्तु है चैतन्य अनुविधायी परिणाम उपयोग। पहले आया था। है ? चैतन्यानुविधायी-परिणामस्वरूप.... अस्ति सिद्ध करते हैं।

सविकल्पनिर्विकल्परूप,.... सविकल्प, शुद्धता और सकलता की व्याख्या... ज्ञान की हुई। अब दर्शन बाकी रहा। नीचे है, देखो! दर्शनोपयोग के भेदों में से मात्र केवलदर्शन ही शुद्ध होने से सकल है और अन्य सब अशुद्ध होने से विकल है। अब जो केवलदर्शन आत्मा में उत्पन्न होता है, केवलदर्शन वह भी अपना चैतन्य अनुविधायी (परिणाम है)। चैतन्य में ज्ञान, दर्शन दोनों आते हैं। ज्ञान को अनुसरण करके ज्ञानपर्याय, दर्शन का अनुसरण (करके दर्शनपर्याय)। दर्शन को भी चैतन्य कहते हैं। ज्ञान और दर्शन दोनों चैतन्य। चेतन वस्तु, ज्ञान-दर्शन वह चैतन्य। उसका अनुसरण करके हुआ केवलदर्शन। केवलदर्शन उसको अनुसरण करके हुआ। परन्तु है अखण्ड, इसलिए सकल, अखण्ड, शुद्ध। परन्तु है निर्विकल्प। ज्ञान सविकल्प था, यह निर्विकल्प है। भेद करके नहीं देखता है। ... भेद किये बिना देखता है, इसलिए उसको निर्विकल्प कहते हैं। समझ में आया ? है न ऊपर ? चैतन्यानुविधायी-परिणामस्वरूप, सविकल्प-निर्विकल्परूप... सविकल्प में पाँच ज्ञान आये, निर्विकल्प में चार दर्शन आये। उसमें केवलदर्शन की व्याख्या की। चक्षु, अचक्षु और अवधि तीन की बात रही।

दर्शन की चार पर्याय हैं। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन। ज्ञान की पाँच पर्याय हैं। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्याय, केवल। पाँच की सविकल्प की, अखण्ड की, सखण्ड की, शुद्धता की, अशुद्धता की व्याख्या हो गयी। अब दर्शनउपयोग की अखण्ड की, शुद्ध की, अशुद्ध की, खण्ड की व्याख्या बाकी है। निर्विकल्प दर्शनउपयोग की। दर्शन उपयोग निर्विकल्प क्यों कहा ? कि वह भेद करके नहीं जानता है। अब उस दर्शन में से मात्र केवलदर्शन शुद्ध है और निर्विकल्प तो है ही, इसलिए वह सकल है। ऐसा धारण करनेवाला दो प्रकार का उपयोग है। (अर्थात् जीव के गुणों शुद्ध-अशुद्ध चेतना तथा दो प्रकार के उपयोग हैं)। ओहोहो !

अब उसमें से तीन बोल दूसरे (कहते हैं)। निर्विकल्प में से। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन... यहाँ लिखा है न? अन्य सब अशुद्ध हैं। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन वह अन्य। केवलदर्शन अखण्ड। अपूर्ण में तीन होते हैं तो चक्षुदर्शन... अन्दर एक उपयोग चक्षुदर्शन में सामान्य जानने की शक्ति उसमें है। शक्ति का अनुसरण करके ... दर्शनउपयोग। है या नहीं उसमें? देखो! वकील है। कानून निकालते हैं या नहीं अन्दर? कानून के अनुसार है या नहीं? सेठी!

ज्ञान-दर्शन। ज्ञान का अनुसरण करके होनेवाली पाँच पर्याय। सविकल्प। और दर्शन का अनुसरण करके होनेवाली चार पर्याय। केवलदर्शन, चक्षु, अचक्षु और अवधि। अब चक्षु, अचक्षु और अवधि की तीन पर्याय है, वह भी है तो अपना दर्शनचेतना अनुविधायी से उत्पन्न होनेवाली। आँख से नहीं, अचक्षुदर्शन कान से नहीं, चक्षुदर्शनावरणीय के क्षयोपशम से नहीं। अपने दर्शनगुण का अनुसरण करके दर्शन उपयोग की चारों पर्याय होती हैं। उसमें तीन हैं, वह अशुद्ध हैं। चक्षु, अचक्षु, अवधि। केवल शुद्ध है। कहो, समझ में आया?

सकलता-विकलता... आ गया अर्थ? सविकल्प, निर्विकल्प ज्ञान दर्शन हो गया? ज्ञान सविकल्प, दर्शन निर्विकल्प। अखण्ड, वह शुद्ध। केवलज्ञान, केवलदर्शन। और खण्ड, वह अशुद्ध। चार ज्ञान और तीन दर्शन। सकलता, विकलता। सकलता दो—केवलज्ञान, केवलदर्शन। विकलता सात—चार ज्ञान और तीन दर्शन। ऐसा धारण करनेवाला दो प्रकार का उपयोग है। दो प्रकार का उपयोग है। ओहोहो! देखो नीचे है। पर्यायार्थिकनय से गुण भी परिणामी हैं। गुण अर्थात् उसके परिणामन को गुण कहते हैं। शुद्ध-अशुद्ध चेतना के परिणाम का वर्णन किया है। उसको चेतना का, जीव का गुण कहा है। जीव का गुण है वह। ... पर का नहीं, देह का नहीं, इन्द्रिय से नहीं, वह तो परद्रव्य है। ऐसा निश्चित करे तो अपना परिणाम अपने गुण के (आश्रय से होता है), पर के आश्रय से नहीं। तो उसकी द्रव्यदृष्टि हो तो परिणाम शुद्ध प्रगट हो, उसका नाम धर्म कहने में आता है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण २, बुधवार, दिनांक - ०१-०१-१९६४, गाथा-१७-१८, प्रवचन-२४

१६वीं गाथा चलती है। यह जीव और पुद्गल के गुण की व्याख्या हुई। हुई न? यहाँ व्याख्या। जीव के गुण की व्याख्या हुई। यहाँ दृष्टान्त इसका दिया है न! जीव का तो दृष्टान्त है। तत्प्रमाण छहों द्रव्यों को लागू कर देना। दृष्टान्त दिया—उदाहरण।

जीव के गुण और जीव की पर्याय। गुण को बताया गुण। जीव स्वयं गुण.... और उपयोग गुणरूप है। वह चेतना के दो प्रकार कहे। शुद्धचेतना और अशुद्धचेतना। शुद्ध ज्ञानाभूतिरूपी परिणाम है। अशुद्धचेतना, वह राग और हर्ष-शोक के फलरूप वेदन है। ऐसा कहा था। कहो, समझ में आया? और.... ऐसा कहा था कि चैतन्य को अनुसरकर परिणाम होते हैं, वह उपयोग है। वह उसका गुण कहलाता है। गुण का परिणाम, उसे यहाँ गुण कहा है। जीव में चैतन्य को अनुसरकर सविकल्प और निर्विकल्प होते परिणाम, उसे उपयोग कहा जाता है। वह उसका गुण जीव का स्वयं के कारण से है।

उस सविकल्प के पाँच भेद किये। एक शुद्ध केवलज्ञान अखण्ड उपयोगरूप सविकल्प स्व-परप्रकाशक। चार ज्ञान अशुद्ध, विकल, सविकल्परूप उसका एक प्रकार कहा है ज्ञान का। दर्शन के दो प्रकार। केवलदर्शन, शुद्ध, अखण्ड, सविकल्प नहीं परन्तु निर्विकल्प। केवलज्ञान सविकल्प, केवलदर्शन निर्विकल्प। और उसकी तीन पर्यायें—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन निर्विकल्प, अशुद्ध, खण्डरूप। ऐसा स्पष्टीकरण हुआ। जीव के गुण की व्याख्या हुई। यह कल कहा गया, उसका थोड़ा कहा गया। सेठी!

अब पर्यायें। पाठ में है उसके बदले दो पर्याय का वर्णन अमृतचन्द्राचार्य ने किया कि **जीव की पर्यायें इस प्रकार हैं।** यह तो दृष्टान्तरूप से जीव को कहा है। तत्प्रमाण सब द्रव्य का लेना। अगुरुलघुगुण की हानि-वृद्धि से उत्पन्न पर्यायें शुद्ध पर्यायें हैं... जीव में सब पर्याय सर्वज्ञगम्य है, वह अगुरुलघुगुण से हानि-वृद्धि, षट्गुणहानि-वृद्धि से होती अवस्थायें, वह जीव की शुद्धपर्याय है। ... छहों द्रव्यों में भी शुद्ध पर्यायें हैं।

और सूत्र में (—इस गाथा में) कही हुई,.... यह ऊपर से बात की है। देव-नारक-तिर्यच-मनुष्यस्वरूप पर्यायें परद्रव्य के सम्बन्ध से उत्पन्न होती हैं, इसलिए अशुद्ध पर्यायें हैं। व्यंजनपर्याय अशुद्ध पर्याय का यहाँ वर्णन किया है। अर्थपर्याय में चेतना और उपयोग उसका अर्थपर्यायरूप से, शुद्ध और अशुद्धरूप से वर्णन किया है। अशुद्ध भी व्यंजनपर्याय होती है। यह विभावरूप से नारकी, देव, मनुष्य, तिर्यच। उसके—परद्रव्य के सम्बन्ध से रचित अशुद्ध व्यंजनपर्याय। आत्मा की आकृति। वह भी आत्मा के ही कारण से हुई है। वह आत्मा ही उस अशुद्ध पर्याय का उत्पाद करनेवाला है। कर्म और दूसरा कोई अशुद्ध पर्याय, उसकी आकृति जो जीव की कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में होती है, ऐसे विभाव की अवस्था का उत्पादक भी और पूर्व की अवस्था का व्यय का करनेवाला भी वह जीव स्वयं ही कर्ता है। कहो, समझ में आया ? यह १६वीं गाथा हो गयी। यह तो कल बहुत आ गया था। जरा कहा, इसलिए सन्तोष हुआ नहीं इसे। कल तो विस्तार एक घण्टे तो पूरा चला था। यह तो कहा जा चुका है, वह बात थोड़ी की है।

गाथा - १७

मणुसत्तणेण णट्टो देही देवो हवेदि इदरो वा।
उभयत्थ जीवभावो ण णस्सदि ण जायदे अण्णो॥१७॥

मनुज मर सुरलोक में देवादि पद धारण करें।
पर जीव दोनों दशा में ना नशे ना उत्पन्न हो॥१७॥

अन्वयार्थ :- [मनुष्यत्वेन] मनुष्यत्व से [नष्टः] नष्ट हुआ [देही] देही (जीव)
[देवः वा इतरः] देव अथवा अन्य [भवति] होता है; [उभयत्र] उन दोनों में
[जीवभावः] जीवभाव [न नश्यति] नष्ट नहीं होता और [अन्यः] दूसरा जीवभाव [न
जायते] उत्पन्न नहीं होता।

टीका :- 'भाव का नाश नहीं होता और अभाव का उत्पाद नहीं होता' उसका
यह उदाहरण है।

प्रतिसमय होनेवाली अगुरुलघुगुण की हानि-वृद्धि से उत्पन्न होनेवाली स्वभावपर्यायों
की सन्तति का विच्छेद न करनेवाली एक सोपाधिक मनुष्यत्वस्वरूप पर्याय से जीव
विनाश को प्राप्त होता है और तथाविध (-स्वभावपर्यायों के प्रवाह को न तोड़नेवाली
सोपाधिक) देवत्वस्वरूप, नारकत्वस्वरूप या तिर्यचत्वस्वरूप अन्य पर्याय से उत्पन्न होता
है। वहाँ ऐसा नहीं है कि मनुष्यत्व से विनष्ट होने पर जीवत्व से भी नष्ट होता है और
देवत्व से आदि से उत्पाद होने पर जीवत्व भी उत्पन्न होता है, किन्तु सत् के उच्छेद और
असत् के उत्पाद बिना ही तदनुसार विवर्तन (-परिवर्तन, परिणमन) करता है॥१७॥

गाथा - १७ पर प्रवचन

१७। यह भी दृष्टान्तरूप से है—उदाहरणरूप से।

मणुसत्तणेण णट्टो देही देवो हवेदि इदरो वा।
उभयत्थ जीवभावो ण णस्सदि ण जायदे अण्णो॥१७॥

मनुज मर सुरलोक में देवादि पद धारण करें।
पर जीव दोनों दशा में ना नशे ना उत्पन्न हो॥१७॥

टीका :- 'भाव का नाश नहीं होता और अभाव का उत्पाद नहीं होता' उसका यह उदाहरण है। दृष्टान्त है! छहों द्रव्यों में न हो और उत्पन्न हो तथा हो भाव सत्ता, उसका नाश हो, ऐसा कभी नहीं होता। उसके लिये यहाँ दृष्टान्त देकर सबको—छहों द्रव्यों को सिद्ध करते हैं।

प्रतिसमय होनेवाली अगुरुलघुगुण की हानिवृद्धि से उत्पन्न होनेवाली स्वभाव-पर्यायों की संतति का विच्छेद न करनेवाली.... यह तो सन्तति सदा चालू रहती है। छहों द्रव्य में अगुरुलघुगुण.... अनादि-अनन्त चालू है। उसमें एक सोपाधिक मनुष्यत्वस्वरूप पर्याय से जीव विनाश को प्राप्त होता है,.... देखो! पर्याय अन्दर उदयभाव अन्दर का। शरीर की बात नहीं यह। एक सोपाधिक... मनुष्यपर्याय उदयभाव उसका, ...का उसमें से वह पर्याय से जीव विनाश को प्राप्त होता है,.... वह स्वयं ही अपनी पर्याय में विनाश पाता है। और तथाविध (-स्वभावपर्यायों के प्रवाह को न तोड़नेवाली सोपाधिक).... उसी और उसी की वापस बात की। उत्पाद में उसकी कही, अब व्यय में भी उसे कहेंगे। दूसरे द्रव्य में भी ऐसा उपजे, ऐसा कहते हैं।

(-स्वभावपर्यायों के प्रवाह को न तोड़नेवाली सोपाधिक) देवत्वस्वरूप,.... स्वयं मुनि है न, इसलिए यहाँ से शुरु हुई है बात कि मनुष्यस्वरूप पर्याय से जीव विनाश पाता है। तो वह जीव स्वयं पर्याय से विनाश पाता है और देवस्वरूप से उपजता है। समझ में आया? देवस्वरूप से उपजे तो वह का वह जीव है। उपजे तो पर्याय उपजती है और पूर्व की पर्याय का व्यय होता है। फिर सामान्य बात सब करते हैं। जगत के जीव और तत्प्रमाण सब पुद्गल आदि। जैसे मनुष्यत्वस्वरूप पर्याय से जीव विनाश को प्राप्त होता है, और तथाविध देवत्वस्वरूप, नारकत्वस्वरूप या तिर्यचत्वस्वरूप अन्य पर्याय से उत्पन्न होता है। विनाश पावे तो भी स्वयं और पर्याय नयी से उपजे, वह भी स्वयं। उसका उत्पाद करनेवाला आत्मा है। दूसरी चीज़ नहीं, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। मनुष्य... हुए, हों! मनुष्यगति के पर्याय का जीव स्वयं नाश करे और वहाँ से स्वर्गादि, नरकादि या पशु आदि की पर्याय का उत्पाद करे। उस पर्याय को उत्पन्न करता है। कहो, समझ में आया?

वहाँ ऐसा नहीं है कि मनुष्यत्व से विनष्ट होने पर जीवत्व से भी नष्ट होता है...

ऐसा नहीं। मनुष्यपर्याय का नाश होने पर कहीं जीव का नाश साथ ही हो जाता है, (ऐसा नहीं है)। इसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य की पर्याय पूर्व की पर्याय से नाश द्रव्य हो, इससे कहीं वह द्रव्य नाश हो जाता है, ऐसा नहीं है। और देवत्व आदि से उत्पाद होने पर.... देव की पर्यायरूप से उत्पाद होने पर जीवत्व भी.... नहीं, ऐसा वहाँ से ले लेना पहले से। देवपने की पर्यायरूप से जीव उपजा, इसलिए जीवपने से भी नया उत्पन्न हुआ, ऐसा नहीं है। कहो, बराबर है? देखो! यह स्वतन्त्र प्रत्येक द्रव्य अर्थात् पर्याय से नाश होकर नयी पर्याय उपजे वह स्वयं जीव ही, उसका उत्पाद-व्यय का करनेवाला है। कर्म और दूसरी चीजें उसके उत्पाद-व्यय को करनेवाली नहीं। इसी प्रकार अनन्त पदार्थ नयी अवस्था से उपजे और पूर्व की अवस्था से उस समय नाश हो, वह स्वयं ही उस उत्पाद-व्यय का करनेवाला द्रव्य—परमाणु या जीव या धर्मास्ति आदि है। दूसरा द्रव्य उसके उत्पाद-व्यय को नहीं करता। कहो, समझ में आया इसमें? गये वे तुम्हारे मास्टर? प्रभाव पड़ता है, चलता था न कल? प्रभाव पड़ता है न कुछ? मन्दिर-बन्दिर जाये तो कुछ प्रभाव पड़ता है या नहीं? यहाँ इनकार करते हैं।

मुमुक्षु : किसलिए इनकार करते हो? दिखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या दिखता है? अपनी पर्याय उस समय में शुभराग को उत्पन्न करनेवाला आत्मा है। मन्दिर आदि शुभपरिणाम को उत्पन्न करनेवाला नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : देखकर नहीं। अपने को भाव आया तो उसे निमित्त कहा गया है। आहाहा! यह बात तो यहाँ कहते हैं। जीव की.... यह तो सामान्य गति की बात की है। परन्तु समय-समय में जीव को नयी जो (पर्याय) उत्पन्न होती है, उसमें जीव नया उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं है। तथा दूसरा उसे उत्पन्न करता है, ऐसा तो है ही नहीं। जीव नयी-नयी पर्याय से होता है.... मन्दिर में गया और वहाँ पर्याय शुभ हुई तो उस समय में जीव.... इससे कहीं जीव नया उत्पन्न हुआ या उस परिणाम की उत्पत्ति निमित्त ने की, ऐसा नहीं है। दोनों बातें नहीं हैं। समझ में आया? इस प्रकार प्रत्येक जीव में और प्रत्येक परमाणु में अपनी पर्याय.... यह द्रव्य नया उपजता नहीं और अपनी पूर्व पर्याय

को व्यय करते हुए वह द्रव्य स्वयं अभाव पाता नहीं। इसीलिए वह द्रव्य करता है। दूसरा द्रव्य करता नहीं। ऐसा इसमें ले लेना। ओहोहो!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : करता नहीं। दूसरी चीज़ है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : पड़ता है इसका अर्थ ऐसा है कि अपना स्वरूप रखकर क्षण-क्षण में नयी पर्याय को उत्पन्न करनेवाला उस समय में, पहले समय में, दूसरे समय में जीव भी उत्पन्न करनेवाला है। ऐसा निर्णय नहीं है तो उसकी दृष्टि संयोग आया तो ऐसी पर्याय उत्पन्न हुई, ऐसी दृष्टि एकत्वबुद्धि में होती है। ऐसा है नहीं। समझ में आया? फिर किसलिए जाना सम्मेदशिखर और कोई कहे कि पोनूरहिल और अभी सब चलेगा या नहीं? ऐ...! मोहनभाई! ...वहाँ जाकर परिणाम स्वयं से होते हैं, उससे होते नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ऐसे भाव हो, तब ऐसी गति भी होती है और वहाँ जाने का भी होता है। शरीर की क्रिया ऐसी हो और आत्मा के क्षेत्रान्तर की पर्याय भी ऐसी हो। यह तो, भाई! वस्तु की स्थिति (ऐसी है)। वस्तु स्वयंसिद्ध उत्पादव्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्।

प्रत्येक द्रव्य उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। भगवान का यह महावाक्य है। यह उसे यहाँ सिद्ध करते हैं। प्रत्येक आत्मा और परमाणु छहों द्रव्य भगवान ने देखे। छहों द्रव्य अपने भाव टिकाकर नयी अवस्था से क्षण-क्षण में उपजने पर वे स्वयं। तथा उस पर्याय को दूसरा उपजाता है, ऐसा नहीं। तथा उस क्षण में अनन्त द्रव्य विनाश पाते हैं। वे विनाश पाते हैं, वे द्रव्य स्वयं विनाश पाने के कर्ता हैं। परन्तु विनाश पाता द्रव्य नाश को नहीं पाता। और उस विनाश का कर्ता (अन्य द्रव्य नहीं है)। आहाहा! भेदज्ञान है, भेदज्ञान है। जैसी वस्तु है, ऐसी बात है यहाँ तो।

क्या कहा ? कि प्रत्येक द्रव्य अनन्त है। वह अनन्त... विनाश पावे तो वह विनाश पाने पर वह द्रव्य विनाश नहीं पाता। और विनाश पाने का करनेवाला वह द्रव्य है और वह.... नहीं। अब प्रत्येक द्रव्य समय-समय में नयी पर्याय उत्पन्न करता है, वह उत्पन्न करते हुए कहीं द्रव्य उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं है। एक बात। और वह उत्पन्न पर्याय का कर्ता दूसरा है, ऐसा नहीं है। उस पर्याय का उत्पन्न कर्ता (द्रव्य स्वयं) है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा! बात तो न्याय से, ज्ञान से, लॉजिक से, युक्ति से, आगम से सिद्ध हो, इस प्रकार बात है। परन्तु ऐसी गड़बड़ी मचा दी है न। इसकी दृष्टि ऐसे संयोग पर है न। संयोग आया तो ऐसा हुआ। संयोग मिला तो ऐसा हुआ।

देवत्व आदि से उत्पाद होने पर जीवत्व भी उत्पन्न होता है,.... ऐसा नहीं है। परन्तु.... यह तो जीव का उदाहरण है, हों! ऊपर कहा था। छहों द्रव्यों में ऐसा ले लेना। एक समय में छहों द्रव्यों में। परन्तु सत् के उच्छेद और असत् के उत्पाद बिना ही तदनुसार.... तत्प्रमाण अर्थात् ? यह जीव स्वयं मनुष्यपने के व्यय को पाता है, देवपने के उत्पाद को पाता है, उसका कर्ता वह द्रव्य और तथापि द्रव्य उपजे और विनसे, ऐसा होता नहीं।

तदनुसार विवर्तन (-परिवर्तन, परिणामन) करता है। देखो यहाँ करता है, आया वापस। यह आया। २१ में तो कल दृष्टान्त दिया था। तदनुसार विवर्तन (-परिवर्तन, परिणामन) करता है। ठीक! कितना स्पष्टीकरण करते हैं, देखो! समझ में आया? भगवान तीर्थकरदेव ने एक समय में सर्वज्ञपद पूर्ण प्रगट हुआ। उसमें छह द्रव्य भगवान ने देखे। (संख्या से) अनन्त। जाति से छह। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश। छहों द्रव्य का वास्तविक समय-समय में स्वरूप क्या है, उसका यह वर्णन करते हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

यह तो दृष्टान्तरूप से यह जीव को लिया है कि जीव मनुष्यपने की पर्याय हुई। यह शरीर की बात नहीं। यह तो मिट्टी है, जड़ की दशा है। यह कहीं आत्मा की दशा नहीं। अन्दर मनुष्यपने के योग्य गति की पर्यायपने उपजा हुआ जीव, वह पर्याय का

नाश हो—अवस्था का नाश हो तो वह नाश होने पर कहीं जीव नाश नहीं होता। उसी प्रकार यह मनुष्यपने की अवस्था की गति का नाश होकर देव की गतिरूप जीव उपजे तो देव की गतिपने के उपजने में जीव नया उपजता नहीं। तथा मनुष्यपने की पर्याय से विनाश पावे, उसका कर्ता जीव है। उसका कर्ता कर्म और संयोगी चीज़ नहीं। तथा देवपने की पर्यायरूप उपजा, उसमें जीव उपजा नहीं। पर्याय उपजी है। जीव कहीं नया हुआ नहीं। तथापि उस पर्याय का उत्पाद करनेवाला जीव है। दूसरा उस देवपने की पर्याय का उत्पन्न करनेवाला दूसरा द्रव्य है नहीं। कहो, समझ में आया? बराबर है?

गाथा - १८

सो चेव जादि मरणं जादि ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो।
उप्पण्णो या विणट्ठो देवो मणुसो त्ति पज्जाओ॥१८॥

जन्मे-मरे नित द्रव्य ही पर नाश-उद्भव न लहे।

सुर-मनुज पर्यय की अपेक्षा नाश-उद्भव हैं कहे॥१८॥

अन्वयार्थ :- [सः च एव] वही [याति] जन्म लेता है और [मरणंयाति] मृत्यु प्राप्त करता है तथापि [न एव उत्पन्नः] वह उत्पन्न नहीं होता [च] और [न नष्टः] नष्ट नहीं होता; [देवः मनुष्यः] देव, मनुष्य [इति पर्यायः] ऐसी पर्याय [उत्पन्नः] उत्पन्न होती है [च] और [विनष्टः] विनष्ट होती है।

टीका :- यहाँ, द्रव्य कथंचित् व्यय और उत्पादवाला होने पर भी उसका सदा अविनष्टपना और अनुत्पन्नपना कहा है।

जो द्रव्य पूर्व ^१पर्याय के वियोग से और ^२उत्तर पर्याय के संयोग से होनेवाली उभय अवस्था को आत्मसात् (अपनेरूप) करता हुआ विनष्ट होता और उपजता दिखाई देता है, वही (द्रव्य) वैसी उभय अवस्था में व्याप्त होनेवाला जो प्रतिनियत एक वस्तुत्व के कारणभूत स्वभाव उसके द्वारा (-उस स्वभाव की अपेक्षा से) अविनष्ट एवं अनुत्पन्न ज्ञात होता है; उसकी पर्यायें पूर्व-पूर्व परिणाम के नाशरूप और उत्तर-उत्तर परिणाम के उत्पादरूप होने से विनश-उत्पादधर्मवाली (-विनाश एवं उत्पादरूप धर्मवाली) कही जाती है, और वे (पर्यायें) वस्तुरूप से द्रव्य से अपृथग्भूत ही कही गयी है। इसलिए, पर्यायों के साथ एकवस्तुपने के कारण जन्मता और मरता होने पर भी, जीवद्रव्य सर्वदा अनुत्पन्न एवं अविनष्ट ही देखना (-श्रद्धा करना); देव मनुष्यादि पर्यायें उपजती है और विनष्ट होती हैं क्योंकि वे क्रमवर्ती होने से उनका स्वसमय उपस्थित होता है और बीत जाता है॥१८॥

१. पूर्व=पहले की।

२. उत्तर=बाद की।

गाथा - १८ पर प्रवचन

अब १८। देखा, १८वीं गाथा चलती है।

सो चेव जादि मरणं जादि ण णट्टो ण चेव उप्पण्णो।
उप्पण्णो या विणट्टो देवो मणुसो त्ति पज्जाओ॥१८॥
जन्मे-मरे नित द्रव्य ही पर नाश-उद्भव न लहे।
सुर-मनुज पर्यय की अपेक्षा नाश-उद्भव हैं कहे॥१८॥

टीका :- यहाँ द्रव्य.... परमाणु आदि अनन्त द्रव्य कथंचित् व्यय और उत्पादवाला होने पर भी.... उपजते हैं और पुरानी अवस्था से व्यय पाते हैं। उसका सदा अविनष्टपना और अनुत्पन्नपना कहा है। द्रव्य नया हो, उत्पन्न हो या विनष्ट हो, ऐसा होता नहीं। अविनष्टपना और अनुत्पन्न। समझ में आया? अब महासिद्धान्त आता है, देखो!

जो द्रव्य पूर्व पर्याय के वियोग से और उत्तर पर्याय के संयोग से होनेवाली उभय अवस्थाओं को आत्मसात् (अपने रूप) करता हुआ विनष्ट होता और उपजता दिखाई देता है,.... क्या कहते हैं? कोई भी आत्मा या कोई भी यह परमाणु / रजकण। यह (शरीर) तो बहुत रजकणों का यह पिण्ड है। यह तो बहुत परमाणु का दल बँधा हुआ यह जड़ मिट्टी है और आत्मा एक वस्तु है। यह बहुत रजकण का दल है। अब इसमें एक-एक परमाणु और आत्मा एक-एक, एक निगोद के शरीर में अनन्त आत्मा एक साथ रहे हुए होने पर भी उनका एक-एक आत्मा और उनके यह अनन्त रजकण वहाँ भी कर्म में रहे हुए हैं, उनका एक-एक कर्म का रजकण जो द्रव्य पूर्व पर्याय के वियोग से.... देखो! भाषा देखो। उस-उस वस्तु की पहले की पर्याय से उसका वियोग हुआ। पर्याय का वियोग हुआ। यह भाषा किस प्रकार की? परवस्तु के संयोग-वियोग की बात नहीं है। यहाँ तो प्रत्येक पदार्थ भगवान ने स्वतन्त्र जो अनन्त देखे, उनमें एक-एक आत्मा और एक-एक परमाणु पूर्व अर्थात् पहले की पर्याय का वियोग होता है उसमें। वह द्रव्य। द्रव्य अर्थात् वस्तु। आत्मा, परमाणु उसे पूर्व की अवस्था थी। जैसे कि मनुष्य की पर्याय थी, उसका वियोग हुआ। देवपर्याय का संयोग हुआ। देव संयोग

अर्थात्? इस शरीर का नहीं। देवपने की उदयगति का भाव, उसका उसे संयोग हुआ। मनुष्यपने की उदयभाव की पर्याय का उसे वियोग हुआ। समझ में आया?

जैसे सोना है, सोना। उसमें कुण्डल की अवस्था थी। उस कुण्डल की अवस्था का वियोग हुआ सोने में और कड़े की अवस्था का संयोग हुआ। वह संयोग और वियोग उसकी पर्याय को करनेवाला वह द्रव्य है। सोने की पर्याय जो कुण्डल की थी, उसका व्यय करनेवाला वह सोना है और उसे नयी पर्याय का संयोग हुआ। संयोग अर्थात् पर्याय हुई, वह संयोग। सोनी नहीं, हथौड़ी नहीं। ...भाई! ऐसे त्रिलोकनाथ परमात्मा ने देखा और वैसा फरमा रहे हैं। ऐसा है। अज्ञानी को इसकी खबर नहीं।

जैसे आत्मा में एक राग की पर्याय थी। उस राग का व्यय हुआ अर्थात् वियोग हुआ। और वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान आदि पर्याय का संयोग हुआ। रतिभाई! महेन्द्रभाई! यहाँ तो पर्याय का संयोग-वियोग। कौन सी पर्याय का? शरीर का, ऐसा नहीं। प्रत्येक आत्मा और परमाणु एक समय अर्थात् सेकेण्ड के असंख्य भाग में ऐसे के ऐसे समय विशिष्ट पर्याय उत्पाद-व्यय-ध्रुवसहित ऐसा का ऐसा रहा हुआ है। वह पदार्थ उत्पाद अर्थात् नयी अवस्था के संयोग को पाता है। वही द्रव्य अपने पूर्व की अवस्था के वियोग को पाता है और ध्रुवरूप से कायम रहता है। क्षण-क्षण में स्वयं के कारण से द्रव्य ऐसा हो रहा है। दूसरे संयोग के कारण से उसमें नहीं। संयोग में भी उसके द्रव्य में उसके कारण से नयी पर्याय का संयोग, पुरानी पर्याय का वियोग, परमाणुरूप से ध्रुव, वह पदार्थ उसके कारण से रहा हुआ है। यह मनुष्य का दृष्टान्त दिया। मनुष्यपर्याय का वियोग हुआ। पर्याय अर्थात् शरीर नहीं। मनुष्यगति अन्दर जो योग्यता थी वह। उसका वियोग हुआ। देवपर्याय का उत्पाद हुआ, संयोग हुआ। वह वियोग और संयोग की पर्याय का कर्ता जीव है। दूसरा नहीं। दूसरा पदार्थ नहीं, कर्म नहीं, शरीर नहीं।

इसी प्रकार यह परमाणु में आटा-आटे की लोई। गोरणुं समझते हो? लोई। भगवान कहते हैं.... वह लोई यहाँ तो एक द्रव्यरूप से गिना, है तो अनन्त परमाणु। उस पर्याय का वियोग हुआ और रोटी की पर्याय का संयोग हुआ। वह रजकणों में आटे की पर्याय की पर्याय जो पिण्डरूप थी लोई, उसका वियोग हुआ। उस वियोग का करनेवाला

वह परमाणु, संयोग करनेवाला वह परमाणु। बाई, लकड़ी, बेलन वह नहीं। ऐसा भगवान फरमाते हैं। जेचन्दभाई! दृष्टान्त आया है। देखो! बेलन बिना होता होगा? अमुक बिना होता होगा? ऐसा दृष्टान्त दिया है। जैन गजट में। ऐसा होता है, उससे ऐसा होता है... उससे... अरे! भगवान! तुझे खबर नहीं। यह बाई यदि ऐसा न चलावे तो होगा? कौन चलावे?

यहाँ तो यह कहते हैं... यह तो दृष्टान्त दिया। मनुष्य का, देव का, जीव का। यह आटा का, यह जड़ का। इसी प्रकार सोना का, वह जड़ का। ऐसे सब द्रव्य पहले की पर्याय से वियोग को पाते हैं। अपनी पर्याय को विनष्ट पावे, वह स्वयं के कारण से। उत्तर पर्याय अर्थात् बाद की पर्याय के संयोग से होती दशा, वह स्वयं के कारण से। उभय अवस्था को अपनेरूप करता हुआ। क्या कहते हैं? नयी अवस्था का संयोग, पूर्व अवस्था का वियोग, उसे आत्मसात् करता हुआ। अपनेरूप करता हुआ। आहाहा! क्या कहते हैं यह?

अपनी वर्तमान पर्याय रागवाली हो, उस राग का वियोग करता हुआ आत्मा, उस वियोग को आत्मा (करता) है। और नयी श्रद्धा सम्यग्दर्शन में शुद्ध चैतन्य हूँ, राग और पर से भिन्न हूँ, ऐसी श्रद्धा-ज्ञान का संयोग इसे आत्मसात् करता हुआ अर्थात् द्रव्य अपनेरूप करता हुआ वह पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! समझ में आया? कहो, सेठी! क्या है इसमें? देखो! यह हाथ। हाथ में अन्दर आत्मा भिन्न है। उस आत्मा में अवस्था ऐसे हो या ऐसे चालू अर्थात् प्रदेश को यहाँ.... यह राग के बाद इस प्रदेश से.... तो कहते हैं कि वह अस्थिरता के नाश को और स्थिरता के उत्पाद को वह आत्मा अपने को आत्मसात् करता हुआपने को प्राप्त करता है पर्यायपने। और पर्याय के संयोगपने को आत्मा प्राप्त करता है। इस शरीर के कारण नहीं। और यह शरीर जो है, देखो ऐसा। वह ऐसा होता है। तो ऐसा जो था, उसकी पर्याय का वियोग हुआ और ऐसा हुआ, ऐसी पर्याय का संयोग हुआ, दूसरे क्षण में। पहले समय में जो थी, उसका वियोग हुआ। दूसरे क्षण में जो उत्पन्न होने की थी, उस व्यय के काल में वह उत्पन्न हुई। वह उत्पन्न और व्यय वे परमाणु स्वयं अपनेरूप से करता हुआ, दूसरेरूप से नहीं होता हुआ, दूसरे से नहीं होता हुआ, अपनेरूप करते हुए वे द्रव्य टिक रहे हैं। आहाहा! रतिभाई! प्रत्येक

द्रव्य की बात है। यह तो दृष्टान्त जीव का एक दृष्टान्त दिया है। समझ में आया ?

इस प्रकार जब प्रत्येक वस्तु को भिन्न-भिन्न निर्णय करे तो अपनी दशा का उत्पाद और व्यय का करनेवाला मैं हूँ। तो मेरी दशा निर्मल जिसे धर्म की दशा प्रगट करनी हो, उसे द्रव्य के ऊपर दृष्टि देने से द्रव्य ऐसा का ऐसा रहता है और नयी पर्याय को आत्मसात् करता हुआ वह सम्यग्दर्शन आदि पर्याय को उत्पन्न करता है। और मिथ्यादर्शन की और राग की पर्याय को नाश करता हुआ, उस व्यय को आत्मसात् करता हुआ, वह आत्मा स्वयं ध्रुवरूप से रहता हुआ इस प्रकार से करता है। दूसरे के कारण से नहीं, कर्म के कारण से नहीं, संयोग के कारण से नहीं, दूसरी चीज़ के कारण से नहीं। कहो, रतिभाई! रुपया।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। पहले शब्दवर्णारूप पर्याय है। वह शब्दरूप वर्गणा पर्याय का व्यय करता हुआ परमाणु अर्थात् वियोगको पर्याय को उत्पन्न संयोग कर्ता परमाणु, वह परमाणु स्वयं पूर्व की पर्याय के व्यय को आत्मसात् अपनेरूप करता है और उत्पाद को (आत्मसात्) अपनेरूप करता है। आत्मा के कारण नहीं। बराबर है ? अब रतिभाई का रुपया। रुपया कहीं रतिभाई का नहीं, हों ! नहीं ? कहो, ...भाई!

मुमुक्षु : दामोदरभाई का रुपया है न।

पूज्य गुरुदेवश्री :बात सच्ची। पुराने पैसेवाले यह थे। लाखाणी। पैसेवाले। कितनेवाला होंगे यह तो। यह पैसा है, वह अनन्त परमाणु का पिण्ड है। अनन्त रजकण का पिण्ड। वह एक जगह हो, उसका स्थान बदलने का, उस स्थान का व्यय और दूसरे स्थान में आने का उत्पाद। वे परमाणु व्यय को, उत्पाद को आत्मसात् करते हुए इस प्रमाण किया होती है। पर के कारण नहीं और उसके पुण्य के कारण वहाँ आते हैं, ऐसा नहीं। यहाँ तो ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कमाता है ? राग करता है। क्या किया था वहाँ ? दामोदरभाई ! राग किया था। वहाँ क्या मुम्बई में किया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ को मदद नहीं और जड़ की मदद चैतन्य को नहीं। और एक जड़ की मदद दूसरे जड़ को नहीं। यहाँ तो ऐसी बात है। कहो, समझ में आया? ओहोहो! भाषा कैसी प्रयोग की है शास्त्रकार ने, देखो न। वियोग और संयोग करता हुआ। ऐसा वापस। विनष्ट और उत्पाद तथा वियोग और संयोग की भाषा प्रयोग की है। समझ में आया इसमें?

प्रत्येक आत्मा एक-एक भिन्न-भिन्न आत्मा (ऐसे) अनन्त आत्मायें; एक-एक रजकण ऐसे अनन्त परमाणु। एक-एक क्षण में पूर्व की अवस्था का वियोग करता हुआ। यही कहते हैं यहाँ। आत्मसात् करता है न? अपनेरूप व्यय करता हुआ, ऐसा। और नयी-नयी अवस्था को भी उत्पन्न करता हुआ अर्थात् संयोग प्राप्त कराता हुआ (द्रव्य) अपनेरूप कर रहा है। आहाहा! यह पंचास्तिकाय का सत्पना सद्भाव कैसा स्वभाव है (उसका वर्णन करते हैं)। लोगों को ऐसा कठिन पड़ता है। विपरीतता ऐसी डाली है न जगत में। मानो बाहर से यह होगा, इससे यह होगा, इससे यह होगा। लो! दुकान पर बैठे हों तो बुरा हो। यहाँ कहते हैं कि बुरे परिणाम भी तूने किये, तेरे कारण से उसे आत्मसात करके।शुभभाव भी तूने किये, आत्मसात तूने करके। पर के कारण नहीं। रतिभाई! बराबर होगा यह? बहुत अन्तर पड़ता है, भाई! यह सब रूपये इकट्ठे किये कहते हैं न। ... ऐई! यह तुम्हारी... ऐसा है या नहीं, भाई! देखो न!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा होता है। यह तो ऐसा कि यहाँ जरा-जरा सा ऐसा लगता है। ऐसा कहते हैं परन्तु बाहर.... कहो, महेन्द्रभाई! स्वयं यह होशियारी के कारण पैसे लाये थे तब ७६ में?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी सम्हाले नहीं। कौन सम्हाले? उसकी पर्याय को सम्हाले या किसी को सम्हाले?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ममतावाले, ऐसा कहो। क्या धूल को सम्हाले? ऐई! बराबर होगा? तेरे पिता को ऐसा होगा? ममता सम्हाली ऐसा कहते हैं। देखो! यह सब जानते हैं न तुम्हें?भाई! रामजीभाई जानते हैं। पैसे सम्हाल रखने की कला आती है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : लाये बिना आवे किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : यही यहाँ कहते हैं कि इसमें व्यंजनपर्याय क्षेत्रान्तर होने की स्वयं के उत्पाद-व्यय की ताकत है। ऐसा कहते हैं भगवान। वह परमाणु में क्रियावर्तीशक्ति ऐसी है कि जिसमें समय-समय की पर्याय क्षेत्रान्तर होने की, वर्तमान क्षेत्र के नये की और नये को उत्पन्न करने की वह परमाणु आत्मसात करके ऐसी क्रिया होती है। दूसरा वहाँ लावे और आवे, यह बात स्वरूप में है नहीं। भगवान के ज्ञान में है नहीं, द्रव्य में है नहीं। अज्ञानी ने कल्पना से, मिथ्याश्रद्धा से मान रखा है। मिथ्यादृष्टि। उसका नाम तो यहाँ मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

एक तो यह बात है कि द्रव्य अनन्त हैं या असंख्य हैं या संख्य हैं? अनन्त द्रव्य हैं। वे अनन्त द्रव्य एक समय में हैं या आगे-पीछे होंगे? एक समय में अनन्त। अब एक समय में अनन्त हैं तो प्रत्येक द्रव्य में एक समय में उत्पाद-व्यय आगे-पीछे होगा या उत्पाद-व्यय एक समय में होगा? तब प्रत्येक द्रव्य में उत्पाद-व्यय का समय जिस समय में उपजा, उसका संयोग किया, उस पर्याय का द्रव्य में और पूर्व की पर्याय का वियोग किया यह द्रव्य का अपना पर्याय का संयोग-वियोग है। पर के कारण तीन काल तीन लोक में नहीं। रतिभाई! बराबर है? संयोग-वियोग यह पैसे के संयोग-वियोग की यहाँ बात नहीं है। यह तो संयोग अर्थात् उत्पाद और वियोग अर्थात् व्यय। आहाहा! कहो,भाई! कैसे होगा? कुछ होशियारी काम नहीं चलती हो सोना-चाँदी में? नहीं? आहाहा!

देखो! कितना शब्द प्रयोग किया है? जो द्रव्य.... कोई भी वस्तु। समझ में आया? पूर्व पर्याय अर्थात् अवस्था—हालत जो वर्तती है वह। उसका वियोग। उसकी

उस समय की पर्याय उत्पन्न हुई थी, वह जिस समय में, उसका दूसरे समय में वियोग और दूसरे समय में जो पर्याय नहीं थी पहले समय में, उसका—उत्तर पर्याय में संयोग, नयी बाद की पर्याय का संयोग। आहाहा! यह तो एक सिद्ध इतना करते हैं कि जिस पर्याय का वियोग किया, उसी पर्याय का वियोग और जिस पर्याय का संयोग, उसी पर्याय का संयोग। सब निश्चित ही हो गया, वहाँ उसमें है। समझ में आया ?

जो द्रव्य पूर्व पर्याय के वियोग से.... अर्थात् नाश से और उत्तर... अर्थात् बाद की पर्याय के संयोग से होनेवाली उभय अवस्थाओं को.... अर्थात् दोनों। व्यय और उत्पाद। प्रत्येक समय में, समय अर्थात् एक सूक्ष्म 'क' बोलें, उसमें असंख्य समय जाते हैं। उसमें का एक समय। उस एक समय में अनन्त द्रव्य एक समय में वह उभय अवस्था उत्पाद-व्यय अनन्त गुण की उत्पाद अवस्था और अनन्त गुण की पहली हुई व्यय वह उभय अवस्थाओं को आत्मसात् (अपने रूप) करता हुआ.... अपनेरूप करता हुआ, पर की अभिलाषा और सहायता नहीं प्राप्त करता हुआ।

(नोट - चार मिनट का प्रवचन रिपिट हुआ है, इसलिए नहीं लिया गया है।)

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या आया ? पर को अपनेरूप करता, ऐसा नहीं आया। अपनी पर्याय को अपनेरूप करता हुआ आया। अर्थात् पर को पररूप नहीं करता हुआ, इसमें आ गया। समझ में आया ?

वह विनष्ट होता और उपजता दिखाई देता है,.... ऐसा यहाँ कहते हैं, देखो! क्या कहते हैं ? कि प्रत्येक वस्तु आत्मा और परमाणु पूर्व-पूर्व की पर्याय से विनाश पाता अर्थात् वियोग से और बाद की अवस्था से संयोग होता हुआ उभय अवस्था को आत्मसात् करता हुआ, विनाश पाता हुआ और उपजता हुआ देखने में आता है। यहाँ तो ऐसा कहते हैं। रजकण-रजकण नयी अवस्था के संयोग को, पुरानी अवस्था के वियोग को आत्मसात् करता हुआ देखने में आता है। पर से होता हुआ देखने में नहीं आता। ऐसा कहते हैं। ओहोहो! समझ में आया ? रतिभाई! यह ज्ञान में देखने में आता है, ऐसा कहते हैं। ज्ञान ऐसा देखता है। क्यों ? कि जहाँ पृथक् द्रव्य है, ऐसा जिस ज्ञान में जाना,

वहाँ पृथक् कार्य होता है, ऐसा ज्ञान ने जाना। ऐसा यहाँ तो कहते हैं। क्या कहा ?

जिसके ज्ञान में ऐसा आया कि अनन्त द्रव्य हैं, उन अनन्त द्रव्यों में एक समय में पूर्व अवस्था का वियोग और नयी का उत्पाद, यह हुए बिना रहता नहीं। ऐसा ज्ञान में अनन्त को जब अनन्त रीति से स्वीकार किया अर्थात् संयोग और वियोग उसकी पर्याय से होते हैं, ऐसा हमें देखने में आता है। आहाहा! क्या कहते हैं, समझ में आया ? ...किस प्रकार से आया ? ...द्रव्य अनन्त है, वस्तु अनन्त है। एक समय में अनन्त है, ऐसा जिस ज्ञान ने जाना है, वह ज्ञान ऐसा देखता है कि अनन्त-अनन्तरूप से पृथक्-पृथक् रहकर नयी अवस्था के संयोग को, पुरानी अवस्था के वियोग को पृथक् अनन्त रहते हैं, इसलिए ज्ञान ऐसा देखता है, ऐसा देखने में आता है, ऐसा कहा है। देवानुप्रिया ! कहो, समझ में आया ? सेठी ! आहाहा !

यह तो लॉजिक, न्याय, युक्ति से इसे देखने में आता है। यह प्रश्न ठीक किया। यह कहे कि कैसा विनाश पाता हुआ देखने में आता है। ऐसा कैसे कहा ? कि जिसका ज्ञान, अनन्त हैं द्रव्य, ऐसा जिसने निर्णय किया है, उसे अनन्तरूप से रखता हुआ, रहता हुआ ज्ञान में देखने में आता है। ज्ञान से अनन्तपने रहे अर्थात् भिन्न-भिन्न पर्यायों उसके कारण से उपजी, उसके कारण से व्यय हुई उसरूप रही हुई है, ऐसा ज्ञान में देखने में आता है। समझ में आया ? धीरुभाई ! आहाहा ! दुकान में बैठा मनुष्य बहुत ध्यान रखता है, इसलिए यह व्यवस्था चलती है। कहते हैं कि ऐसा देखने में नहीं आता। क्यों ? कि वस्तु अनन्त है। वहाँ की चीज़ जो दाल, भात, सब्जी या जिस वस्तु को बेचनेवाला शक्कर, चाय, दूध, खाण्ड इत्यादि, वह पदार्थ भी अनन्त परमाणुओं का पिण्ड है, वह भी उसका शरीर भी अनन्त परमाणु का पिण्ड है। उसका आत्मा भिन्न है। तब जहाँ अनन्त है, ऐसा जहाँ ज्ञान देखता है, वह ज्ञान अनन्त की उत्पाद-व्यय की (अवस्था) उस-उस काल में उसमें होती है, वह पर के कारण नहीं, तब अनन्त-अनन्तरूप देखने में आते हैं। ऐसा ज्ञान देखता है कि उसका उत्पाद-व्यय उसके द्रव्य से होते हैं, दूसरे से नहीं। ऐसा ज्ञान देखता है। पण्डितजी ! आहाहा ! समझ में आया ? धीरुभाई ! यह मशीन के पास क्या करते हो वहाँ तुम ?

कहते हैं, मशीन का एक-एक रजकण, भगवान त्रिलोकनाथ कहते हैं और एक-एक आत्मा जहाँ भिन्न-भिन्न,.... घर के दस व्यक्ति वे दस हैं या नहीं? तो दस, दसरूप कब रहें? कि दसों का अपने कारण से नयी अवस्था का संयोग, पुरानी का वियोग वह आत्मा से होता हो तो दस, दसरूप से रहते हैं। परन्तु उसकी अवस्था इससे इसकी अवस्था उससे (हो) तो दस, दसरूप से रहते नहीं। तो उनकी संख्या इसके ज्ञान में झूठ आती है। संख्या जाने दस और काम करे इकट्ठे। उसका ज्ञान सच्चा नहीं। न्याय से तो है या नहीं? आहाहा! कहो, रतिभाई!

तुम्हारे ख्याल में आया कि इस मेट्रिक में ५९ लड़के हैं। अब ५९ (के) ५९ कब रहेंगे तुम्हारे ख्याल में? कि प्रत्येक के परिणाम का उत्पाद वह है, प्रत्येक के पूर्व के विचार का नाशक वह है, ऐसा ख्याल में रहे तो ५९, ५९ रूप से है। अर्थात् कि यहाँ आचार्य कहते हैं, हमें तो इस प्रकार से द्रव्य अपने कारण से उत्पाद-व्यय होता देखने में आता है। क्योंकि हम अनन्त को अनन्तरूप से जानते हैं। समझ में आया? क्या है कुछ इसमें? मोहनभाई! इसे कुछ है या नहीं? दलाल है न यह। आहाहा!

वीतराग की वाणी, त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ... परन्तु जगत को मिली नहीं। सुनने को मिला वह सब उल्टा। इसका यह करे और इसका यह करे और इससे यह हो। भगवान! इससे यह होगा। ध्यान रखना। इससे यहाँ हो तो उसका उत्पाद क्या? इसने उसका उत्पाद किया तो उसका उत्पाद क्या? और यह उसका करने गया तो स्वयं का उत्पाद क्या? इसलिए आचार्य कहते हैं, हमें तो अनन्त द्रव्यों में एक-एक द्रव्य अपने उत्पाद-व्यय को आत्मसात करता दिखायी देता है। आहाहा! सेठी!घड़ा कुम्हार ने किया, यह हमें देखने में नहीं आता। घड़े को ऐसा क्यों कहा? घड़े का परमाणु और उसका परमाणु भिन्न-भिन्न जानते हैं। भिन्न है या एक है? भिन्न है, उसके परमाणु उसकी पर्यायरूप से, कुम्हार के परमाणु उसकी पर्यायरूप से। ऐसे भिन्न देखने में आते हैं। उसमें कुम्हार ने घड़ा बनाया, ऐसा देखने में नहीं आता। नहीं तो अनन्त का अनन्तपना रहता नहीं। कहो, समझ में आया इसमें कुछ? प्रसन्नभाई! उसमें सच्ची प्रसन्नता है, हों! समझे तो, बाकी कुछ धूल में भी कहीं बाहर में मिले। पैसा में या आबरू-कीर्ति सब

रखता हूँ। वह रख, परन्तु उसके कारण उपजे और उसके कारण नाश पावे, ऐसा कहते हैं, यह हमें देखने में आता है, ऐसा कहते हैं। क्यों? कि जब हम राख के रजकण या धूल के या पैसे के रजकण हैं, ऐसा देखते हैं। तो है, ऐसा देखते हैं तो यह अनन्त रजकण हैं। तो प्रत्येक रजकण नयी अवस्था से उपजता और पुरानी का व्यय पाता हुआ आत्मसात् वह द्रव्य करता हुआ हमें ऐसा देखने में आता है। ऐसा है, इसलिए ऐसा है। आँख अन्धी हो और तू देख कि हमको ऐसा दिखता है न। अन्धी आँख है, आँख बन्द कर दी है। तूने अनन्त को अनन्तरूप से ज्ञान में लिया नहीं। जयन्तीभाई! आहाहा!

वही (द्रव्य) वैसी उभय अवस्था में व्याप्त होनेवाला.... अब ध्रुव लेना है न? जो प्रतिनियत एकवस्तुत्व के कारणभूत स्वभाव उसके द्वारा (-उस स्वभाव की अपेक्षा से) अविनष्ट एवं अनुत्पन्न ज्ञात होता है;.... देखो! क्या कहते हैं? वही (द्रव्य).... अर्थात् प्रत्येक वस्तु जैसे विनष्ट और उत्पाद से भिन्न-भिन्न प्रत्येक को देखने में आता है, ऐसा वही द्रव्य, वैसी उभय अवस्था में। वैसी अर्थात् संयोग-वियोग की। उसमें व्यापनेवाला। एक-एक द्रव्य, एक-एक वस्तु अस्तित्व के कारण से स्वभाव, उसके द्वारा। वह स्वभाव कहा न अर्थात् व्यापनेवाला लिया न। समझ में आया?

वही (द्रव्य) वैसी उभय अवस्था में..... नयी अवस्था से प्रत्येक क्षण उपजता हुआ, पूर्व की अवस्था के वियोग को करता हुआ, वह द्रव्य दोनों में व्यापता हुआ। दोनों अवस्था में व्यापनेवाला। दूसरा परमाणु दूसरे में नहीं, दूसरा जीव दूसरे में नहीं, दूसरे का जीव परमाणु में नहीं और दूसरे परमाणु में वह जीव व्यापनेवाला नहीं। उसकी अवस्था में व्यापनेवाला। वह उत्पाद-व्यय की अवस्था में वह व्यापनेवाला वह परमाणु या द्रव्य अनन्तरूप से जहाँ ज्ञान में जाने तो प्रत्येक द्रव्य स्वयं उसकी उभय अवस्था में व्यापनेवाला हमें ज्ञात होता है। यह ध्रुव निश्चित किया। आहाहा!

जो प्रतिनियत एकवस्तुत्व के.... भिन्न-भिन्न वस्तु। कारणभूत स्वभाव उसके द्वारा.... इसका ध्रुवस्वभाव है न कारणभूत। स्वभाव की अपेक्षा से, ध्रुव स्वभाव की अपेक्षा से परमाणु या आत्मा प्रतिनियत वस्तु का एक ध्रुवस्वभाव, उसका कारणभूत स्वभाव उसके द्वारा (-उस स्वभाव की अपेक्षा से) अविनष्ट एवं अनुत्पन्न ज्ञात होता

है;.... वह वस्तु उभय अवस्था में व्यापनेवाली, अपनी ध्रुवता के कारण से अविनश्वर और अनुत्पन्न देखने में आती है। अरे! ध्रुव देखने में आती है, ऐसा कहते हैं। ओहोहो! समझ में आया? अनन्त है। जितनी संख्या से अनन्त है, वह अनादि-अनन्त उतनी ही संख्या रहनेवाले। ऐसे अनन्त द्रव्य एक समय में पूर्व अवस्था का वियोग और नयी अवस्था का संयोग (होता है), ऐसा देखने में (आता है)। क्योंकि भिन्न है इसलिए।

वैसी उभय अवस्था में व्याप्त होनेवाला जो प्रतिनियत एकवस्तुत्व के कारणभूत स्वभाव उसके द्वारा.... उसके कारण होने से वह स्वभाव अनुत्पन्न और अविनष्ट ध्रुवरूप से देखने में आता है। वह वस्तु ऐसी की ऐसी रहती है, ऐसे ध्रुवरूप से देखने में आता है। आहाहा! परन्तु परमाणु को कहाँ देखने गये तुम? मनःपर्ययज्ञान नहीं, अवधिज्ञान नहीं। और पंचम काल के समकिति मुनि ऐसा कहते हैं। परमाणु देखने में आवे? तो अवधिज्ञान होता है। सुन न, देखने में आये। अनन्त है, ऐसा जहाँ ज्ञान में आया मति और श्रुत में, वह अनन्तपने की अवस्था स्वयं भिन्न-भिन्न पाता हुआ टिकता हुआ देखने में आता है। ऐसा ही ज्ञान में आता है। ज्ञान का ज्ञेय इसी प्रकार से ही है, दूसरे प्रकार से ज्ञान में ज्ञेय करने जाये तो ज्ञेय का स्वभाव नहीं। ऐसा निश्चित करने जाये तो उसकी दृष्टि मिथ्यात्व होती है। बराबर है? वहाँ क्या करना? कमा देना माँ-बाप को। एल.एल.बी. होकर फिर कमाना पड़ेगा या नहीं? पैसे खर्च किये तुम्हारे लिये। लाओ, कमाओ। रळवाने को क्या कहते हैं? कमाना। कमाओ। भगवान कहते हैं कि अरे! प्रभु! ऐई! वजुभाई! समझ में आया यह? यह अर्थात् करते हैं, माना है यह नहीं। आहाहा! उसे अभी है अनन्त, उसकी श्रद्धा ही नहीं। इससे यहाँ होता है और इससे यहाँ होता है, ऐसे माननेवाले को अनन्त की श्रद्धा ही नहीं है आत्मा में। समझ में आया?

अरे! भगवान त्रिलोकनाथ समवसरण में विराजते हों, उनके कारण मुझे पर्याय हुई, ऐसा माननेवाला भगवान और हम दोनों भिन्न हैं, ऐसा वह मानता ही नहीं। समझ में आया? कहते हैं कि हमें तो उस समवसरण में रहा हुआ जीव भी अपनी पूर्व अवस्था के व्यय को पाता हुआ और नयी अवस्था के संयोग को पाता हुआ वह आत्मसात पर्याय को वहाँ करता हुआ, उस भगवान से भिन्न उसका ध्रुवपना रखता हुआ भासित होता है।

समझ में आया ? इस भगवान के कारण ऐसा होता है, यह हमें भासित नहीं होता। गजब बात, भाई! गणधर आये तो वाणी निकली। नहीं तो वाणी निकलती ? इसलिए ऐसा है, वैसा है। अरे! भगवान! सुन तो सही।

कहते हैं कि उस स्वभाव की अपेक्षा से उसकी पर्यायें पूर्व-पूर्व परिणाम के नाशरूप.... देखो! प्रत्येक द्रव्य के पूर्व-पूर्व परिणाम के नाशरूप उत्तर-उत्तर परिणाम के उत्पादरूप होने से विनाश-उत्पादधर्मवाली (-विनाश एवं उत्पादरूप धर्मवाली) कही जाती हैं;.... वही के वही द्रव्य के, वह की वही चीज़ के पूर्व परिणाम के विनाशरूप, नयी अवस्था के उत्पादरूप उसे विनाश और उत्पाद धर्मवाला कहने में आता है। उसको सद्भाव धर्मवाला कहने में आता है। उस उत्पाद-व्यय धर्मवाला कहने में आता है। पर्यायवाला। समझ में आया ? ओहोहो! अध्यात्म की बात को रखने की पद्धति.... वह पर्यायें पूर्व-पूर्व परिणाम.... प्रत्येक द्रव्य की। पूर्व की पर्याय के विनाश, उत्तर की पर्याय के उत्पादरूप होने से उस पर्याय का विनाश-उत्पाद धर्मवाला कहने में आता है। और वे (पर्यायें) वस्तुरूप से द्रव्य से अपृथग्भूत ही कही गई हैं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण ३, गुरुवार, दिनांक - ०२-०१-१९६४, गाथा-१८ से २०, प्रवचन-२५

प्रत्येक द्रव्य की क्या स्थिति पर्याय से और द्रव्य से, उसका वर्णन है। दृष्टान्तरूप से तो उसमें जीव को रखा है। यहाँ तक आ गया है, देखो। वे (पर्यायें) वस्तुरूप से द्रव्य से अपृथग्भूत ही कही गई हैं। है न? ३९ पृष्ठ। इसलिए, पर्यायों के साथ एकवस्तुपने के कारण जन्मता और मरता होने पर भी जीवद्रव्य.... दृष्टान्त जो था, उसका आया। जीवद्रव्य अर्थात् आत्मा, मनुष्य आदि पर्याय और देव आदि पर्याय, उसके साथ एक वस्तुपने के कारण जन्मता और मरता होने पर भी। कौन? जीवद्रव्य जन्मता और मरता होने पर भी। पर्याय से जन्मता है और पर्याय से मरता है। कहो, समझ में आया?

जीवद्रव्य सर्वदा अनुत्पन्न एवं अविनष्ट ही देखना (-श्रद्धा करना);.... जीव वस्तु तो सर्वदा अनुत्पन्न—वस्तु कभी उत्पन्न हो, ऐसा नहीं है। वैसे वस्तु का नाश हो, ऐसा नहीं है। स्वयं अवस्थारूप से उपजे और अवस्था से नाश हो। देव-मनुष्यादि पर्यायें उपजती हैं.... देखो! जीवद्रव्य तो कायम रहकर उसकी मनुष्य और देव की पर्यायरूप उपजता है और पूर्व की पर्याय से नाश होता है। क्योंकि वे क्रमवर्ती होने से.... देखो! वह पर्याय है, यह क्रमवर्ती है। वस्तु है, वह तो अनादि-अनन्त है। यह पर्याय जो जीव को हो या किसी भी छहों द्रव्य को हो। यहाँ जीव का दृष्टान्त है। वे क्रमवर्ती होने से उनका स्वसमय उपस्थित होता है.... जैसे कि मनुष्यपने में आया तो मनुष्यपने का समय रहने का उसे उपस्थित हुआ। और बीत जाता है। जब देव का समय उपस्थित होता है, तब मनुष्यपने का समय व्यतीत हो गया और विनाश होता है। कहो, समझ में आया इसमें? लो, यह क्रमवर्ती आया इसमें।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ...होवे वह आवे।

वस्तु—प्रत्येक द्रव्य वस्तुरूप से विनष्ट और उत्पन्न नहीं होने पर भी, उत्पन्न और विनष्ट नहीं होने पर भी, वह वस्तु पर्यायरूप से उपजे, उसका स्वकाल प्राप्त हो तब। देखो! स्वसमय शब्द रखा है। समझ में आया? यह २१ में इसका अधिक स्पष्ट आयेगा।

१८ में यहाँ कहा है। समझ में आया? वे क्रमवर्ती होने से.... कौन? पर्यायों। प्रत्येक द्रव्य की.... यहाँ जीव के द्रव्य का दृष्टान्त कहा है। प्रत्येक द्रव्य और प्रत्येक जीव की क्रमवर्ती पर्याय होने से, उनका स्वकाल, जो जीवद्रव्य का स्वकाल मनुष्यपने का प्राप्त हुआ हो, उतना काल मनुष्यपना रहे और बीत जाये। वह स्वकाल पूरा हुआ, इसलिए बीत जाये और देव का स्वकाल प्राप्त हो। कहो, बराबर है ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह २१ गाथा में इसका विस्तार स्पष्टीकरण आयेगा। यह २१ गाथा वापस आवे या न आवे। कहते हैं। देखो, २१। पृष्ठ ४५। नीचे लाईन है, देखो तीन लाईन है न? नीचे से त्रिगडा के बाद।

जिसका स्वकाल बीत गया है, ऐसे सत् (-विद्यमान) पर्यायसमूह को विनष्ट करता है.... है ? जिसका स्वकाल द्रव्य के ऊपर उसकी जो पर्याय थी, उसका स्वकाल बीत गया है। ऐसा सत्-विद्यमान-विद्यमान पर्याय जो है, उसके समूह को विनष्ट करता है। अनन्त पर्याय है न एक समय में। ऐसे पर्यायसमूह को विनष्ट करता है। और जिसका स्वकाल उपस्थित हुआ है.... जिसे अनन्त पर्याय का, उस पर्याय का स्वकाल उपस्थित हुआ है, आ पहुँचा है। लो! ऐसे असत् को उत्पन्न करता है। अविद्यमान वर्तमान में होने पर भी उसका स्वकाल आ पहुँचा होने से, स्वकाल से उपस्थित होने से वह नयी पर्याय उसके काल में आकर खड़ी रहती है। कहो, उसमें आता है या नहीं, उसमें? इसमें स्वकाल आता है? देखो, यह २१ में। इसमें डाला है, भाई ने डाला है। जैनतत्त्व मीमांसा में यह बात डाली है। यह बात हो गयी थी न पहले बहुत? पाठ है, हों! यह तो टीका है, पूरी बात। है न? पाठ में क्या है, देखा! 'सत्पर्यायजातमतिवाहित-स्वकालमुच्छिनत्ति' और 'असदुपस्थितस्वकालमुत्पादयति' संस्कृत टीका है।

जिस द्रव्य का उसका स्वकाल जो है पर्याय होने का, वह आया, इसलिए उस स्वकाल में यह पर्याय उत्पन्न होती है और वह स्वकाल बीत गया, इसलिए उसका विनाश होता है। स्थूलरूप से यहाँ मनुष्य और देव का दृष्टान्त दिया है। जीव के ऊपर। जीव को मनुष्यपने की पर्याय आकर खड़ी है स्वकाल में, स्वकाल में। वह इतना काल रहे ५०-६० या जो उसकी अवधि हो माप, उतना रहे। उसका वह स्वकाल विनष्ट होता

है। दूसरी देव की पर्याय का स्वकाल उत्पन्न होता है। समझ में आया ? और जीवद्रव्य तो नित्य ध्रुव रहता। यह १८ गाथा हुई।

तब कोई कहते हैं कि इसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा ? उसका स्वकाल उत्पन्न-उपस्थित होता है और उसका बीत जाता है। वह आयेगी उसके बाद। यह आगे आता है न। यह तो आयेगा २०वीं गाथा ? २०वीं-२०वीं आती है, देखो। २०वीं आती है। नीचे से देखो, पहली लाईन। उसमें से जीव को एक पर्याय स्वकारण की निवृत्ति होने पर.... है ? ४१ पृष्ठ। नीचे लाईन। जीव की एक पर्याय स्वकारण की निवृत्ति होने पर निवृत्त होती है और दूसरी कोई अभूतपूर्व पर्याय ही उत्पन्न होती है,.... समझ में आया ? वहाँ असत् की उत्पत्ति नहीं; तथा दीर्घकाल तक अन्वयरूप से रहनेवाला, ज्ञानावरणादि कर्म सामान्य के उदय से रचित संसारित्वपर्याय भव्य को स्वकारण की निवृत्ति होने पर.... फिर कारण रखा है। निवृत्त होती है और अभूतपूर्व सिद्धत्वपर्याय उत्पन्न होती है,... कहो, समझ में आया ? दस मिनट। कहो, समझ में आया ? काम बहुत हो, भाई ! वृद्ध व्यक्ति है। कहो, समझ में आया या नहीं ?

प्रत्येक आत्मा को यहाँ मनुष्य का काल आ पहुँचा तो मनुष्य काल आया। स्वकाल में मनुष्यपना मिला है, हों ! यद्यपि उसके कारण से मिला है। उसके विकार आदि परिणाम के कारण से आया है। इसलिए स्वकाल मनुष्य का आया। वह मनुष्य का काल बीतकर उसका दूसरा स्वकाल देव का आया, तब यह काल बीतकर देव का आया। उसके कारण जितने थे, उसके प्रमाण में उसकी यहाँ स्वकाल की अवधि थी। उसके कारण पूरे हुए, दूसरे कारण वहाँ तो उसका स्वकाल दूसरा आया, वहाँ उत्पन्न हुआ। ऐसा अनादि से क्रम-क्रम से एक पर्याय के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी, ऐसा किया करता है। उसमें जब ऐसा किया करता है, ऐसा निश्चित होता है तब उसे मेरे द्रव्य कैसा है, ऐसी उसकी दृष्टि होने पर उसे मिथ्यात्व का नाश होकर संसारपर्याय का कारण जो राग-द्वेषादि है, उसका नाश होता है। उसका नाश होने पर अनन्त काल में नहीं उत्पन्न हुई ऐसी अभूत पर्याय, नहीं हुई ऐसी सिद्धपर्याय प्रगट होती है। और संसारी पर्याय का वर्तमान विद्यमान उसके कारण का नाश होने पर उस वस्तु का भी नाश हो जाता है। कहो, समझ में आया ?

अब १८ हो गई। १९ (गाथा)।

गाथा - १९

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स णत्थि उप्पादो।

तावदिओ जीवाणं देवो मणुसो त्ति गदिणामो॥१९॥

इस भाँति सत् का व्यय नहिं अर असत् का उत्पाद नहिं।

गति नाम नामक कर्म से सुर-नर-नरक-ये नाम हैं॥१९॥

अन्वयार्थ :- [एवं] इस प्रकार [जीवस्य] जीव को [सतः विनाशः] सत् का विनाश और [असतः उत्पादः] असत् का उत्पाद [न अस्ति] नहीं है; ('देव जन्मता है और मनुष्य मरता है' - ऐसा कहा जाता है, उसका यह कारण है कि) [जीवानाम्] जीवों की [देवः मनुष्यः] देव, मनुष्य [इति गतिनाम] ऐसा गति नामकर्म [तावत्] उतने ही काल का होता है।

टीका :- यहाँ सत् का अविनाश और असत् का अनुत्पाद ध्रुवता के पक्ष से कहा है (अर्थात् ध्रुवता की अपेक्षा से सत् का विनाश या असत् का उत्पाद नहीं होता-ऐसा इस गाथा में कहा है)।

यदि वास्तव में जो जीव मरता है, वही जन्मता है, जो जीव जन्मता है, वही मरता है तो इस प्रकार सत् का विनाश और असत् का उत्पाद नहीं है, ऐसा निश्चित होता है। और 'देव जन्मता है और मनुष्य मरता है' ऐसा जो कहा जाता है, वह (भी) अविरोद्ध है क्योंकि मर्यादित काल की देवत्वपर्याय और मनुष्यत्वपर्याय को रचनेवाले देवगतिनामकर्म और मनुष्यगतिनामकर्म मात्र उतने काल जितने ही होते हैं। जिस प्रकार एक बड़े बाँस के क्रमवर्ती अनेक 'पर्व' अपने-अपने माप में मर्यादित होने से अन्य पर्व में न जाते हुए अपने-अपने स्थानों में भाववाले (-विद्यमान) हैं और पर स्थानों में अभाववाले (-अविद्यमान) हैं तथा बाँस तो समस्त पर्वस्थानों में भाववाला होने पर भी अन्य पर्व के सम्बन्ध द्वारा अन्य पर्व के सम्बन्ध का अभाव होने से अभाववाला (भी) है; उसी प्रकार निरवधि त्रिकाल स्थित रहनेवाले एक जीवद्रव्य की क्रमवर्ती अनेक मनुष्यत्वादिपर्याय अपने-अपने माप में मर्यादित होने से अन्य पर्याय में न जाती हुई अपने-अपने स्थानों

१. पर्व=एक गाँठ से दूसरी गाँठ तक का भाग; पोर।

में भाववाली हैं और पर स्थानों में अभाववाली हैं तथा जीवद्रव्य तो सर्वपर्यायस्थानों में भाववाला होने पर भी अन्य पर्याय के सम्बन्ध द्वारा अन्य पर्याय के सम्बन्ध का अभाव होने से अभाववाला (भी) है।

भावार्थ :- जीव को ध्रौव्य अपेक्षा से सत् का विनाश और असत् का उत्पाद नहीं है। 'मनुष्य मरता है और देव जन्मता है'—ऐसा जो कहा जाता है, वह बात भी उपर्युक्त विवरण के साथ विरोध को प्राप्त नहीं होती। जिस प्रकार एक बड़े बाँस की अनेक पोरें अपने-अपने स्थानों में विद्यमान हैं और दूसरी पोरों के स्थानों में अविद्यमान हैं तथा बाँस तो सर्व पोरों के स्थानों में अन्वयरूप से विद्यमान होने पर भी प्रथमादि पोर के रूप में द्वितीयादि पोर में न होने से अविद्यमान भी कहा जाता है; उसी प्रकार त्रिकाल-अवस्थायी एक जीव की नरनारकादि अनेक पर्यायों अपने-अपने काल में विद्यमान हैं और दूसरी पर्यायों के काल में अविद्यमान हैं तथा जीव तो सर्व पर्यायों में अन्वयरूप से विद्यमान होने पर भी मनुष्यादिपर्यायरूप से देवादिपर्याय में न होने से अविद्यमान भी कहा जाता है॥१९॥

गाथा - ११ पर प्रवचन

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स णत्थि उप्पादो।

तावदिओ जीवाणं देवो मणुसो त्ति गदिणामो॥१९॥

इस भाँति सत् का व्यय नहीं अर असत् का उत्पाद नहीं।

गति नाम नामक कर्म से सुर-नर-नरक-ये नाम हैं॥१९॥

हृदयुक्त। हृद कहाँ से निकाला? इतना। 'तावदिओ' ठीक। 'तावदिओ' कहो, समझ में आया?

टीका :- यहाँ सत् का अविनाश.... वस्तु है जीव और परमाणु आदि, उसका तो कभी विनाश नहीं होता। और असत् का अनुत्पाद.... अण—नहीं हुआ नया होता है ऐसा कुछ है नहीं। असत् का अनुत्पाद ध्रुवता पक्ष से कहा है.... ध्रुव-ध्रुव। जीव और परमाणु ध्रुव रहते हैं, इसलिए उन्हें सत् का नाश नहीं है और असत् का नया उत्पाद नहीं

है। ध्रुवता के पक्ष में नया उत्पन्न हुआ और पुराना जाना, ऐसा है नहीं। (ध्रुवता की अपेक्षा से सत् का विनाश या असत् का उत्पाद नहीं होता—ऐसा इस गाथा में कहा है।)

यदि वास्तव में जो जीव मरता है, वही जन्मता है और जो जीव.... मनुष्यपने है, वह पूरी अवधि होने पर छूट जायेगा। उसकी-मनुष्य की अवधि है। कहीं जीवद्रव्य की अवधि नहीं। जीवद्रव्य के ऊपर मनुष्य की जितनी अवधि है, उतना काल रहे और फिर छूट जाये। जीव मरता है, वही जन्मता है.... वह जीव वापस स्वर्ग में उपजता है। और वह जीव स्वर्ग में जन्मता है, वही यहाँ मनुष्यपने से मरता है, मनुष्यपने से मरता है। इस प्रकार सत् का विनाश और असत् का उत्पाद नहीं है, ऐसा निश्चित होता है। कोई जीवद्रव्य का नाश हो और जीवद्रव्य उत्पन्न हो, ऐसा नहीं है। जीवद्रव्य के ऊपर मनुष्यपने की अवधि के काल प्रमाण मनुष्यपना रहा। शरीर की बात नहीं। उसकी गति। गति की योग्यता मनुष्य की रहने में। उतनी अवधि रहा। वह अवधि पूरी होकर दूसरी हुई। जीवद्रव्य तो वह का वह रहा। जीवद्रव्य का नाश हुआ और जीवद्रव्य उत्पन्न हुआ, ऐसा है नहीं। उसमें वर्तमान पर्याय का नाश होकर नयी पर्याय उत्पन्न हुई।

इसी प्रकार ध्रुव को सत् का विनाश और असत् का उत्पाद नहीं है, ऐसा निश्चित होता है। और 'देव जन्मता है.... जीव मनुष्य छूटकर देवरूप से जन्मता है और मनुष्यरूप से छूट जाता है, मरता है, ऐसा जो कहा जाता है, वह (भी) अविरोद्ध है.... अविरोद्ध है। वह भी अविरोद्ध है, विरोद्ध नहीं। वह भी मेलवाला है। क्योंकि मर्यादित काल की देवत्वपर्याय और मनुष्यत्वपर्याय को रचनेवाले.... मर्यादित काल में जो देवगति और मनुष्यगति नामकर्म बँधा हुआ है, वह मर्यादित काल में मनुष्यपने रहा है। वह मर्यादित काल मनुष्यपने में आया हुआ है। मनुष्य नामकर्म के कारण से। निमित्त यह, उपादान स्वयं का।

मर्यादित काल की देवत्वपर्याय और मनुष्यत्वपर्याय को.... ओहो! भगवान आत्मा अनादि-अनन्त और यह पर्याय ऊपर आवे, इससे मर्यादित काल है। पाँच, पच्चीस, पचास, सौ। जिसे जितना हो। किसी को पाँच हो, दो भी हो। मनुष्यदेह किसी को

करोड़पूर्व हो, किसी को तीन पल्योपम जुगलिया को हो। इतनी अवधि ऊपर मनुष्यगति, मनुष्यगति के नामकर्म को अवधि आयी। बस इतना। समझ में आया? और देव। वापस मनुष्यदेह छूटकर देवरूप से हुआ, वह मर्यादित है। वह देवगति नामकर्म के कारण से मर्यादित काल वहाँ रहेगा। वह कहीं आत्मा त्रिकाल है, इतना काल कहीं उसकी पर्याय वहाँ रहती नहीं।

देवत्वपर्याय और मनुष्यत्वपर्याय को रचनेवाले देव-गतिनामकर्म और मनुष्यगति-नामकर्म मात्र उतने काल जितने ही होते हैं। इस मनुष्यपने में जन्म से मृत्यु तक का इतना काल मात्र नामकर्म होता है। देव में जब से जन्मे तो मृत्युकाल तक देव नामकर्म इतने काल तक रहता है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अवधि है, अवधि इतनी। इतना इस धर्मशाला में रहना। कहो, समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा तो परिपूर्ण अखण्ड द्रव्य है। कहो, समझ में आया? यह तो सवेरे सूत्र यह याद आया था। यह श्रीमद् का है न? कितने उसके शब्द भरे हैं उसमें। देखो! 'जीव एक अखण्ड'। ऐसा कहा। यह जीव एक-एक लिया है, इसलिए पृथक्। 'जीव एक अखण्ड सम्पूर्ण द्रव्य होने से।' अखण्ड सम्पूर्ण द्रव्य होने से। वस्तु कही। यह एक और अखण्ड है, इसलिए सम्पूर्ण द्रव्य है। इसलिए.... अब गुण लेते हैं। 'उसका ज्ञान सामर्थ्य सम्पूर्ण है।' एक द्रव्य अखण्ड होने से सम्पूर्ण द्रव्य है, इसलिए उसका ज्ञान भी एक का सम्पूर्ण सामर्थ्य धराता है। ज्ञानस्वभाव का सम्पूर्ण। वह गुण सम्पूर्ण है, हों, सम्पूर्ण। गुण लिया। है न? वापस सम्पूर्ण। सम्पूर्ण कितने शब्द आये देखो। पहले सम्पूर्ण आया था, दूसरे में सम्पूर्ण आया और तीसरे में सम्पूर्ण। सम्पूर्ण वीतराग हो, वह सम्पूर्ण सर्वज्ञ होता है। चारों ही सम्पूर्ण। यह पर्याय ली। नवनीतभाई! श्रीमद् का टुकड़ा है। पहले कोने में है। उस बाँस के पास ऊपर। लो, उस बाँस की ध्वजा फिरती है उसके ऊपर, देखो।

जीव एक अखण्ड सम्पूर्ण द्रव्य होने के कारण। ऐसा होने से शब्द है न? कारण

दिया है। सम्पूर्ण ज्ञान सामर्थ्य कैसी होती है? कारण दिया है। 'जीव एक अखण्ड सम्पूर्ण द्रव्य होने से।' होने से है न? अर्थात् कारण से। इस कारण से 'उसका ज्ञान सामर्थ्य सम्पूर्ण है।' यह कारण देकर कार्य की सिद्धि की है। आहाहा! उसका ज्ञानगुण—शक्ति—स्वभाव—सामर्थ्य सम्पूर्ण है। सम्पूर्ण है। आहाहा! अब यहाँ सब ५०-५० वर्ष के पढ़-पढ़कर पढ़े तो उन्हें अभी बात बैठती नहीं। सम्पूर्ण वीतराग हो। पर्याय में सम्पूर्ण अरागी दशा हो तो उसे सम्पूर्ण सर्वज्ञ पर्याय में होता है। यह पर्याय की बात की। सम्पूर्ण वीतराग हो, इसका अर्थ कि अपूर्ण में सम्यग्दर्शन दृष्टि वीतरागी हो तो सर्वज्ञ पद की प्रतीति हो। समझ में आया? कि मैं सर्वज्ञ हूँ, (ऐसी) प्रतीति हो। परन्तु सम्पूर्ण वीतराग हो तो सम्पूर्ण सर्वज्ञ पर्याय में होता है। समझ में आया? जयन्तीभाई! सब होकर एक नहीं। इसलिए पृथक् किया है। यह जीव एक। वापस ऐसा। अखण्ड है। वस्तु पूरी है न! यह वस्तु पूरी है न; और यह अखण्ड होने से जीव एक अखण्ड सम्पूर्ण द्रव्य है, वह सम्पूर्ण द्रव्य है। उसके कारण उसका ज्ञानस्वभाव—उसका गुण एक द्रव्य का एक गुण पूर्ण द्रव्य होने के कारण उसका ज्ञानसामर्थ्य भी पूर्ण है। और ज्ञानसामर्थ्य पूर्ण है, इसलिए उसकी दृष्टि करने से, वीतरागी सम्यग्दर्शन प्रगट करने से सर्वज्ञस्वभाव है, मैं सर्वज्ञ ही हूँ, ऐसी प्रतीति दृष्टि वीतराग में होती है और वीतरागी पर्याय होने पर वह सम्पूर्ण शक्ति जो सामर्थ्य पड़ी है, वह पर्याय में सम्पूर्ण सर्वज्ञ होता है। कहो, समझ में आया?

और अपूर्ण सर्वज्ञ और अपूर्ण वीतराग और कितना अन्दर रखा है इन्होंने। समझ में आया? ऐसा एक आत्मतत्त्व। उसे क्रम-क्रम से जो पर्याय हो, वह अवधि रहकर चली जाये। स्वयं अखण्ड रहे। ऐसी जिसे अखण्ड द्रव्य की दृष्टि होती है.... वह क्रम-क्रम से होती है, उसकी दृष्टि अखण्ड द्रव्य हूँ, ऐसी दृष्टि होती है। समझ में आया? द्रव्य तो वह का वह है। द्रव्य वह मैं अखण्ड हूँ, ऐसी दृष्टि होने पर कारण से उत्पन्न हुई संसारपर्याय का नाश होता है। और नहीं अनन्त काल में हुई सिद्धपर्याय, अभूतपर्याय, नहीं हुई पर्याय, अभूत—नहीं हुई सिद्धपर्याय की स्थिति उत्पन्न होती है। संसार अन्त हो जाता है, सिद्ध की आदि हो जाती है। वस्तु ऐसी की ऐसी रहती है। कहो, समझ में आया इसमें?

‘देव जन्मता है तथा मनुष्य मरता है’ ऐसा जो कहा जाता है वह (भी) अविरोद्ध है क्योंकि मर्यादित काल की देवत्वपर्याय और मनुष्यत्वपर्याय को रचनेवाले.... रचनेवाला। अर्थात् कर्म लिया। उसका अभाव करे तो रचना बन्द हो जाये। देव-गतिनामकर्म और मनुष्यगतिनामकर्म मात्र उतने काल जितने ही होते हैं। बस, मनुष्यपना रहा, उतना काल नामकर्म उसका गति नाम रहा है।

जिस प्रकार.... दृष्टान्त देते हैं, देखो! एक बड़े बाँस के क्रमवर्ती अनेक पर्व.... एक गाँठ से दूसरी गाँठ तक का भाग; पोर। कातली। समझ में आया? नहीं आती वह गाँठें। गाँठ के बीच में कातली। बाँस की कातली ली है, हों! यहाँ तो। उस गाँठ तक का भाग कातली। एक बड़े बाँस के क्रमवर्ती अनेक पर्व अपने-अपने माप में मर्यादित होने से.... पर्व अर्थात् यहाँ गाँठ नहीं ली। बीच का भाग कातली का। एक बाँस के.... यह देखो न, यह लो न यह। यहाँ एक भाग हुआ, फिर यह भाग हुआ। जिस प्रकार एक बड़े बाँस के क्रमवर्ती अनेक पर्व.... अर्थात् बीच की कातली का भाग। गाँठ के बीच में कातली का भाग। अपने-अपने माप में.... है वह। वह कातली अपने-अपने माप में है। मर्यादित होने से.... अपने-अपने माप में मर्यादित / हद होने से। यह हद का निकाला न? तावत्। यहाँ मर्यादा कही। वहाँ तावत् कहा। वहाँ वह रचना है। संक्षिप्त शब्द में हद कहा। समझ में आया? यह तो बाँस का दृष्टान्त है। फिर जीवने का। यह भी शब्द....

अपने-अपने माप में.... यह बाँस की बीचली गाँठ के बीच का माप। मर्यादित होने से अन्य पर्व में न जाते हुए.... यह बाँस के जितने भाग हैं अन्दर। उसमें एक भाग दूसरे भाग में जाये? एक भाग दूसरे में नहीं जाता। एक एक में दो, दो में तीन, तीन में चार, चार में.... अन्य पर्व में न जाते हुए अपने-अपने स्थानों में भाववाले (-विद्यमान) हैं.... वह बाँस। समझ में आया? अपने-अपने स्थान में। देखा! मापवाली चीज़ अपने-अपने स्थान में विद्यमान है। उस बाँस का बीच का भाग इतना-इतना। और पर स्थानों में अभाववाले (-अविद्यमान) हैं.... कौन? वह बीच का भाग। गाँठ के बीच का भाग अपने-अपने स्थान में विद्यमान है। दूसरे में अभाव है।

तथा बाँस तो समस्त पर्वस्थानों में.... बीच के भाग में भाववाला होने पर भी....

पूरा बाँस सब बीच के भाग में, सब बीच के भाग में भाववाला होने पर भी अन्य पर्व के सम्बन्ध द्वारा.... एक वर्तमान सम्बन्ध द्वारा, अन्य पर्व के सम्बन्ध से अन्य पर्व के सम्बन्ध का अभाव होने से.... इस बाँस को भी एक भाव (भाग) के सम्बन्ध से दूसरे भाग का सम्बन्ध, का अभाव है। बाँस को भी उसका अभाव है। समझ में आया? पूरा बाँस सब भाग में व्याप्त होने पर भी एक बाँस जितने एक भाग के साथ सम्बन्ध धराता है, एक भाग, वही भाग दूसरे भाग में सम्बन्ध धराता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? कितना सादा दृष्टान्त दिया है, देखो! लोगों ने बाँस तो देखा हो।

वह बाँस... समझ में आया? बीच के भाग के सब स्थानों में बाँस तो है.... है.... है.... है.... होने पर भी, अन्य बीच के भाग के सम्बन्ध द्वारा, अन्य बीच के भाग के सम्बन्ध का उसमें अभाव होने से अभाववाला भी है। सबमें भाववाला, एक-एक से दूसरे में अभाववाला। लो, बाँस को भाव और अभाववाला सिद्ध किया। यह तो दृष्टान्त दिया। दृष्टान्त हुआ।

अब सिद्धान्त। उसी प्रकार.... उसमें बड़ा बाँस ऐसा शब्द था। बड़ा एक बाँस। यह निरवधि त्रिकाल स्थित रहनेवाले.... जिसे हृद नहीं जीवद्रव्य को (या) किसी भी द्रव्य को। परन्तु यहाँ जीवद्रव्य का दृष्टान्त है। निरवधि—अवधि नहीं, मर्यादा नहीं। वह मर्यादा ली थी न माप? समझ में आया? जीवद्रव्य निरवधि। पर्याय की अवधि—माप लेंगे। मनुष्यपने का माप, देवपने का माप। इतना—इतना पर्याय में रहे। वह मापवाली पर्याय है। आत्मा अमाप। जिसे अवधि नहीं, माप नहीं, जिसे कोई काल इतना ऐसा लागू पड़ता नहीं। समझ में आया? इस प्रकार निरवधि.... अर्थात् मर्यादा बिना का त्रिकाल स्थित रहनेवाले एक जीवद्रव्य की... एक ही जीवद्रव्य के क्रमवर्ती अनेक मनुष्यत्वादिपर्याय.... क्रम-क्रम से वर्तनेवाली अनेक मनुष्य, देव आदि पर्यायें अपने-अपने माप में.... देखो! उस निरवधि के सामने (लिया)। अपने-अपने माप में मर्यादित होने से.... जीवद्रव्य पर मनुष्यपना अपने-अपने माप में मर्यादित काल में रहता है। या सदा काल रहे मनुष्यपना? मनुष्य की गति की योग्यता। फिर देव, फिर मनुष्य, फिर मोक्ष। कहो, समझ में आया?

मनुष्यत्वादिपर्याय अपने-अपने माप में मर्यादित होने से.... माप में मर्यादावाला होने से। अन्य पर्याय में न जाती हुई.... मनुष्यपना देव में जाये ? वापस देवपना दूसरे मनुष्य में जाये ? अन्य पर्याय में न जाती हुई.... एक पर्याय दूसरी पर्याय में नहीं जाती होने से अपने-अपने स्थानों में भाववाली हैं.... मनुष्यपने मनुष्यभाव है, देवपने देवभाव है। मनुष्यपने मनुष्यभाव है। और परस्थानों में अभाववाली हैं.... अपने-अपने भाव में मनुष्यपने में मनुष्यपने का भाव है और देवपने में उसका अभाव है। देवपने में देवपने का भाव है, देवपने का दूसरे में अभाव है। समझ में आया ?

तथा जीवद्रव्य तो सर्वपर्यायस्थानों में भाववाला होने पर भी.... वस्तु भगवान् आत्मा सब पर्यायों—मनुष्य में, देव में, मनुष्य में देव में... मनुष्य में देव में.... इत्यादि। सर्वपर्यायस्थानों में भाववाला होने पर भी.... वह विद्यमान पर्याय में सभी पर्याय में वह रहता होने पर भी अन्य पर्याय के सम्बन्ध द्वारा.... मनुष्यपर्याय के सम्बन्ध द्वारा अन्य.... अर्थात् देव पर्याय के सम्बन्ध का अभाव.... है। आहाहा! समझ में आया ?

जीवद्रव्य तो सर्वपर्यायस्थानों में.... सब पर्याय के प्रकार में भाववाला होने पर भी अन्य पर्याय के सम्बन्ध द्वारा अन्य पर्याय के सम्बन्ध का अभाव होने से.... जीवद्रव्य वह होने पर भी मनुष्यपर्याय के सम्बन्धवाला, वही पर्याय से वापस देव के सम्बन्धवाला होगा ? नहीं होगा। लो! वह का वह वापस उसके सम्बन्धवाला, उसके सम्बन्धवाला नहीं होगा, इसलिए अभाव है। ओहोहो! समझ में आया ? वह यह बात कहकर तुरन्त ही सिद्धपर्याय की बात उठायेंगे। क्योंकि यह है न! है कहाँ तक रहेगा ? क्रमसर। जब तक उसके कारण सेवन करेगा तब तक। गति के कारण छोड़े, समाप्त। छूट जायेगा। उसे सिद्धपद हो जायेगा। समझ में आया ? यह तो क्रम तो स्थापित किया ऐसे से ऐसे.... ऐसे से ऐसे.... ऐसे से ऐसे.... एक के बाद एक, एक के बाद एक। परन्तु कहाँ तक ? इसका स्पष्टीकरण २० में करेंगे।

जीवद्रव्य तो सर्वपर्यायस्थानों में भाववाला होने पर भी अन्य पर्याय के सम्बन्ध द्वारा अन्य पर्याय के सम्बन्ध का अभाव होने से अभाववाला (भी) है। एक-एक पर्याय स्वयं से भाव, दूसरे से अभाव। जीव सर्व पर्याय में भाववाला। वह जीवद्रव्य वह

पर्याय के सम्बन्धवाला वह दूसरी पर्याय में वह जीवद्रव्य सम्बन्धवाला नहीं। इस अपेक्षा से जीवद्रव्य भी अभाववाला कहने में आता है। कहो, कितने प्रकार से सरल करके कहा! तेरा त्रिकाली तत्त्व ऐसा है। उसमें यह मुद्दतसर पर्याय आवे और जावे, आवे और जावे। मुद्दत की पर्याय तेरे टालनी है या नहीं?

निरवधि ऐसा भगवान, उसका आश्रय करके निरवधि जिसकी पर्याय की हद नहीं वापस सिद्ध की। पर्याय है अभूत—नहीं हुई, परन्तु होने के बाद जिसकी हद नहीं। यहाँ द्रव्य की हद नहीं तो पर्याय की हद नहीं। निरवधि द्रव्य—वस्तु की दृष्टि करने से, स्थिरता करने से, संसारपर्याय के कारण को छेदने से निरवधि द्रव्य की दृष्टि होने से, निरवधि—भविष्य में अवधि न रहे, मर्यादा न रहे—ऐसी सिद्धपर्याय को गत काल में नहीं हुई अभूत पर्याय को उत्पन्न करता है। कहो, समझ में आया? ऐसा कि इस पर्याय में सब हो पड़ा है। धूल में भी नहीं यह। कितना काल सब देखा नहीं? नजर से देखा नहीं यह? यह बीच में २५-५० वर्ष फू-फू-फा होकर गये, उड़कर चले गये। जीवद्रव्य की मर्यादा नहीं और इस भव की तो काल की मर्यादा इतना काल रहे और भाई गये दूसरे काल में। आहाहा!

ऐसा कहकर वापस बताते हैं कि निरवधि तत्त्व की दृष्टि कर। तो यह अवधिवाले मर्यादा के कारणरूप का नाश होने से मर्यादा की गति का भाव मिलेगा नहीं। कहो, समझ में आया? ऐसा कहने का आशय तो यह है न इसमें? इसमें बाँस का दृष्टान्त दिया। उसमें यह कहा। देखो! मुद्दत-मुद्दत। मुद्दत से मुद्दत पूरी हो गयी, कहते हैं। नहीं? मुद्दत पूरी हो गयी। चलो मुद्दत पूरी हुई। आहाहा! उसकी मुद्दत कभी पूरी हुई? वह तो अनादि-अनन्त है। ऐसे कारण सेवन किये, इतना स्वकाल आकर पड़ा है मनुष्य का। उसका पूर्ण होने पर दूसरा। समाप्त। कहाँ कौन सम्बन्ध लेना या देना फू और फू के, समझ में आया? बड़े राजा-महाराजा के भव हुए। सब फू। मर्यादित काल है, मापवाला काल है, हदवाली उसकी मर्यादा है, हद बँध गयी है। वह कहीं बेहद नहीं भव का। बेहद तो भगवान है।

भावार्थ :- जीव को ध्रौव्य अपेक्षा से सत् का विनाश और असत् का उत्पाद

नहीं है। ध्रुव कहीं उत्पन्न हो और ध्रुव का नाश हो ? 'मनुष्य मरता है और देव जन्मता है'—ऐसा जो कहा जाता है, वह बात भी उपर्युक्त विवरण के साथ विरोध को प्राप्त नहीं होती। पहले कहा था कि ध्रुव की अपेक्षा से विनाश और उत्पाद नहीं है। तो और वापस मरे और जन्में, उसका मेल कहाँ से आया ? ऐसा जो कहा जाता है, वह बात भी उपर्युक्त विवरण के साथ.... उपरोक्त उस ध्रुव के साथ। ध्रुव उत्पन्न नहीं होता, नाश नहीं पाता, उसके साथ विरोध को प्राप्त नहीं होती।

जिस प्रकार एक बड़े बाँस की.... निरवधि बाँस कहाँ से लाना दृष्टान्त में ? एक बड़े बाँस की अपने पोरों अपने-अपने स्थानों में विद्यमान हैं.... लो, स्पष्टीकरण किया। बाँस की बीच की कातली अपने-अपने स्थान में है। दूसरी पोरों के स्थानों में अविद्यमान हैं.... एक कातली दूसरी कातली में नहीं जाती। अविद्यमान है। यह कातली उसमें और दूसरी कातली में इसका अभाव। बाँस तो सर्व पोरों के स्थानों में अन्वयरूप से अर्थात् सदृशरूप से विद्यमान होने पर भी.... सदृश्य बाँस.... बाँस.... बाँस.... बाँस.... बाँस.... है। होने पर भी प्रथमादि पोर के रूप में.... पहली कातलीरूप से द्वितीयादि पोर में न होने से.... पहले भाग द्वारा दूसरे भाग में नहीं होने से। वह बाँस पहले भाग द्वारा दूसरे भाग में नहीं आता होने से। बाँस सर्वत्र है। ओहो ! त्रिकाली दृष्टि को कर। दृष्टि को लम्बा। इतने मात्र नहीं। यह तो सब फू-फू.... उड़ जायेगा। अवधि आयी ऐसा। ओहो ! ठाठ आये तब इतना ही देखता है। बस, यह स्त्री, यह पुत्र, यह महासुख और यह त्रम्बक और यह अमुक, यह राणपुर। कहो, यह साला और साली, काका और काकी। बस हो गया ?

मुमुक्षु : पूरा इतने में आ गया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा अनादि-अनन्त इतने में आ गया ? यह तो मापवाला भाग है भाई ! निरवधि तो भगवान है। वस्तु तो हृद बिना की अनादि-अनन्त है। वह जितना काल मनुष्य में रहा, उतना काल अपेक्षा से देवपने में वह नहीं है। अपनेरूप से अनादि-अनन्त है। मनुष्यपने का काल तो २५, ५०, ६०, १०० (वर्ष)। सौ तो किसी को होते होंगे। समझ में आया ?

कहते हैं, यह थोड़े काल के घिंगाणा । घिंगाणा-घिंगाणा समझे न ? यह किया... यह किया... यह किया । भिड़ना पर के साथ । परद्रव्य के साथ । यह मेरे और यह तेरे, यह गये और यह किया और यह रखा । थोड़े काल का नाटक । भगवान आत्माद्रव्य पर एक मनुष्य की पर्याय ५०-६०-७० (वर्ष) रहे फू होकर दूसरा काल । कहो, समझ में आया ?

यह विद्यमान बाँस सर्व पोरों के स्थानों में अन्वयरूप (एकरूप) से विद्यमान होने पर भी.... अन्वय अर्थात् वह का वह रहनापना—सदृश्यपना प्रथमादि पोर के रूप में द्वितीयादि पोर में न होने से अविद्यमान भी कहा जाता है; उसी प्रकार त्रिकाल अवस्थायी एक जीव की नरनारकादि.... भगवान आत्मा त्रिकाल अवस्था से । निरवधि का अर्थ त्रिकाल अवस्था । एक जीव की नरनारकादि अनेक पर्यायें.... एक जीव के मनुष्य, नारकी, देव आदि अनेक पर्यायें अपने-अपने काल में विद्यमान हैं.... भगवान आत्मा अनादि-अनन्त । उसके ऊपर यह मनुष्यपने के भव की अवधि । फिर देव की अवधि, फिर अमुक की अवधि । अमुक भव आवे, उसकी अवधि रहती है । वस्तु तो वह की वह रहती है । इस भव की अवधि बीच में आयी इतना काल । फू होकर दूसरे में, दूसरा भव, तीसरे में तीसरा, चौथे में चौथा । सब भव में आत्मा रहा हुआ होने पर भी वह आत्मा एक भव से उस सम्बन्ध से दूसरे भव में इस भव के सम्बन्धवाला नहीं होता ।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : याद करे, उसमें क्या हुआ ? याद करे तो उसमें कुछ हो ऐसा है ? कहते हैं, नारणभाई को याद करे । गया, हो गया फू-समाप्त हो गयी अवधि । अवधि पूरी ८८ वर्ष । ८८ थे न ? हो गया । यह किया और यह किया और यह किया । गया । यह भव उस भव में गया । आहाहा !

अरे ! अविनाशी त्रिकाल प्रभु को यह विनाशीक अवधि की भव की कातलियों में फिरना पड़े इतना काल रहे वह यह कहीं वस्तुस्थिति है ? समझ में आया ? मनुष्य और नारकी इतना काल रहा । यह श्रेणिक राजा चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में नरक में गये । शास्त्र में लेख है । तीर्थकररूप से जो जाये उसकी चौरासी हजार वर्ष की थोड़ी

स्थिति नहीं होती। थोड़े में थोड़े चौरासी हजार। तीर्थकरगोत्र बाँधकर गये हैं न। थोड़ी नहीं होती, अधिक होती है। इतनी अवधि।

मुमुक्षु : कम में कम....

पूज्य गुरुदेवश्री : कम में कम चौरासी हजार वर्ष की स्थिति से पहले नरक में श्रेणिक राजा क्षायिक समकिति तीर्थकरगोत्र में गये। थोड़े में थोड़ी स्थिति इतनी होती है। इससे कम नहीं होती। अधिक हो। लाख, करोड़, एक सागर। इतनी अवधि वहाँ। आहाहा! यहाँ जहाँ निकलेंगे वहाँ से यहाँ तीर्थकर का जन्म। इन्द्र जिनके महोत्सव (मनायेंगे)। देखो! यह एक नाटक वापस। समझ में आया? वहाँ वह छह महीने पहले तो प्रहार-मारामार। वह भगवान आत्मा, वह पर्याय जहाँ बदली और जहाँ यह मनुष्य की पर्याय होगी, अभी तो छह महीने आये पहले माता के पास इन्द्र और इन्द्राणी आयेंगे। समझ में आया? माता! तीर्थकर का जीव आपके गर्भ में आनेवाला है। हम गर्भशोधन करने आये हैं। साफ करने आये हैं। बड़ा राजा आवे, तब लोग साफ करने आते हैं न? बँगला साफ करो, (कचरा) जला डालो, ... करो, धूप दो, सफेदी करो। तोरण-बोरण बाँधते और करते हैं या नहीं? भगवान पधारनेवाले हैं। ओहोहो! कहाँ नरक का अन्तिम समय और कहाँ यहाँ तीर्थकर का जीव। अभी समय आने से पहले।

मुमुक्षु : छह महीने बाकी हो वहाँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : छह महीने पहले। जो परिणाम थे, उस प्रकार बाँधा हुआ, उस प्रकार से यहाँ फल आया।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नरक के भव के साथ इस जीव को सम्बन्ध और सब भव के साथ उसे सम्बन्ध। तथापि नरक भव के सम्बन्धवाला जीव, मनुष्य भव के सम्बन्ध से उस भव से सम्बन्धवाला नहीं। पूरा पलटा।

और यहाँ भी जब श्रेणिक राजा थे, लो न! खम्मा... खम्मा... तीर्थकरगोत्र बाँधा हुआ, भगवान के समवसरण में (जाते हैं)। भगवान जानते हैं, इसने तीर्थकरगोत्र बाँधा। उन्हें खबर है मैं तीर्थकर होनेवाला हूँ। और एकदम जहाँ स्थिति पूरी हुई... नरक

में। आयुष्य बाँधा हुआ नरक का। आहाहा! नरक का आयुष्य बाँधा हुआ। भव मिला चौरासी हजार वर्ष की कातली इतनी। कहो, यहाँ कहा? और वहाँ कहाँ? और वापस आवे कहाँ? आहाहा! विचित्र विकार की और विकार के कार्य की और परिणमन बाहर के संयोग की विचित्रता। वस्तु तो भगवान अखण्डानन्द द्रव्य, वस्तु एक अखण्ड पूर्ण द्रव्य पड़ा है। उसकी दृष्टि कराने को, उसका ज्ञान कराने को यह बात है। समझ में आया?

एक जीव की नरनारकादि अनेक पर्यायों अपने-अपने काल में विद्यमान हैं और दूसरी पर्यायों के काल में.... उस पर्याय का काल वहाँ नहीं। अविद्यमान हैं तथा जीव तो सर्व पर्यायों में अन्वयरूप से विद्यमान होने पर भी.... जीव तो सब भव में सदृश्यपने रहनेवाला होने पर भी मनुष्यादिपर्यायरूप से (जीव) देवादिपर्याय में नहीं होने से.... वह जीव मनुष्यादि पर्यायरूप था, वही जीव देवादिपर्याय में मनुष्यादिपर्यायरूप नहीं होता। दूसरे पर्यायरूप है। एकदम वेश पलटा। ओहोहो! नाटक का पर्दा। घड़ीक में राजा होकर आवे। जहाँ पर्दा हो वहाँ योगी। नाटक में आता है या नहीं? महाराजा.... महाराजा.... भर्तृहरि का नहीं आता? राजा महाराज। घड़ीक में योगी—बाबा। आत्मा तो वह का वह है। उसकी पर्याय का काल बदल जाता है।

गाथा - २०

णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्टु अणुबद्धा।
तेसिमभावं किच्चा अभूदपुव्वो हविद सिद्धो॥२०॥

जीव से अनुबद्ध ज्ञानावरण आदिक भाव जो।
उनका अशेष अभाव करके जीव होते सिद्ध हैं॥२०॥

अन्वयार्थ :- [ज्ञानावरणाद्याः भावाः] ज्ञानावरणादि भाव [जीवेन] जीव के साथ [सुष्टु] भली भाँति [अनुबद्धाः] अनुबद्ध है; [तेषाम् अभावं कृत्वा] उनका अभाव करके वह [अभूतपूर्वः सिद्धः] अभूतपूर्व सिद्ध [भवति] होता है।

टीका :- यहाँ सिद्ध को अत्यन्त असत्-उत्पाद का निषेध किया है। (अर्थात् सिद्धत्व होने से सर्वथा असत् का उत्पाद नहीं होता, ऐसा कहा है)।

जिस प्रकार कुछ समय तक अन्वयरूप से (-साथ-साथ) रहनेवाली, नामकर्मविशेष के उदय से उत्पन्न होनेवाली जो देवादिपर्यायें, उनमें से जीव को एक पर्याय स्वकारण की निवृत्ति होने पर निवृत्त हो तथा अन्य कोई अभूतपूर्व पर्याय ही उत्पन्न हो, वहाँ असत् की उत्पत्ति नहीं है; उसी प्रकार दीर्घ काल तक अन्वयरूप से रहनेवाली, ज्ञानावरणादिकर्म सामान्य के उदय से उत्पन्न होनेवाली संसारित्वपर्याय भव्य को स्वकारण की निवृत्ति होने पर निवृत्त हो और अभूतपूर्व (-पूर्व काल में नहीं हुई ऐसी) सिद्धत्वपर्याय उत्पन्न हो, वहाँ असत् की उत्पत्ति नहीं है।

पुनश्च (विशेष समझाया जाता है) :-

जिस प्रकार जिसका विचित्र चित्रों से चित्रविचित्र नीचे का अर्ध भाग कुछ ढँका हुआ और कुछ बिन ढँका हो तथा सुविशुद्ध (-अचित्रित) ऊपर का अर्ध भाग मात्र ढँका हुआ ही हो ऐसे बहुत लम्बे बाँस पर दृष्टि डालने से वह दृष्टि सर्वत्र विचित्र चित्रों से हुए चित्रविचित्रपने की व्याप्ति का निर्णय करती हुई 'वह बाँस सर्वत्र अविशुद्ध है (अर्थात् सम्पूर्ण रंग-बिरंगा है)' -ऐसा अनुमान करती है; उसी प्रकार जिसका ज्ञानावरणादि कर्मों से हुआ चित्रविचित्रतायुक्त (-विविध विभावपर्यायवाला) बहुत बड़ा नीचे का भाग कुछ ढँका हुआ और कुछ बिन ढँका है तथा सुविशुद्ध (सिद्धपर्यायवाला) बहुत

बड़ा ऊपर का भाग मात्र ढँका हुआ ही है, ऐसे किसी जीवद्रव्य में बुद्धि लगाने से वह बुद्धि सर्वत्र ज्ञानावरणादि कर्म से हुए चित्रविचित्रपने की व्याप्ति का निर्णय करती हुई 'वह जीव सर्वत्र अविशुद्ध है (अर्थात् सम्पूर्ण संसारपर्यायवाला है)' ऐसा अनुमान करती है। पुनश्च जिस प्रकार उस बाँस में व्याप्तिज्ञानाभास का कारण (नीचे के खुले भाग में) विचित्र चित्रों से हुए चित्रविचित्रपने का अन्वय (-सन्तति, प्रवाह) है, उसी प्रकार उस जीवद्रव्य में व्याप्तिज्ञानाभास का कारण (नीचे के खुले भाग में) ज्ञानावरणादि कर्म से हुए चित्रविचित्रपने का अन्वय है। और जिस प्रकार बाँस में (ऊपर के भाग में) सुविशुद्धपना है, क्योंकि (वहाँ) विचित्र चित्रों से हुए चित्रविचित्रपने के अन्वय का अभाव है, उसी प्रकार उस जीवद्रव्य में (ऊपर के भाग में) सिद्धपना है क्योंकि (वहाँ) ज्ञानावरणादि कर्म से हुए चित्रविचित्रपने के अन्वय का अभाव है—कि जो अभाव आप्त-आगम के ज्ञान से सम्यक् अनुमानज्ञान से और अतीन्द्रिय ज्ञान से ज्ञात होता है।

भावार्थ :- संसारी जीव की प्रगट संसारी दशा देखकर अज्ञानी जीव को भ्रम उत्पन्न होता है कि—'जीव सदा संसारी ही रहता है, सिद्ध हो ही नहीं सकता; यदि सिद्ध हो तो सर्वथा असत्-उत्पाद का प्रसंग उपस्थित हो।' किन्तु अज्ञानी की यह बात योग्य नहीं है।

जिस प्रकार जीव को देवादिरूप एक पर्याय के कारण का नाश होने पर उस पर्याय का नाश होकर अन्य पर्याय की उत्पन्न होती है, जीवद्रव्य तो जो है वही रहता है; उसी प्रकार जीव को संसारपर्याय के कारणभूत मोहरागद्वेषादि का नाश होने पर संसारपर्याय का नाश होकर सिद्धपर्याय उत्पन्न होती है, जीवद्रव्य तो जो है वही रहता है। संसारपर्याय और सिद्धपर्याय दोनों एक ही जीवद्रव्य की पर्यायें हैं।

पुनश्च, अन्य प्रकार से समझाते हैं :- मान लो कि एक लम्बा बाँस खड़ा रखा गया है; उसका नीचे का कुछ भाग रंगबिरंगा किया गया है और शेष ऊपर का भाग अरंगी (-स्वाभाविक शुद्ध) है। उस बाँस के रंगबिरंगे भाग में से कुछ भाग खुला रखा गया है और शेष सारा रंगबिरंगा भाग और पूरा अरंगी भाग ढंक दिया गया है। उस बाँस का खुला भाग रंगबिरंगा देखकर अविचारी जीव 'जहाँ-जहाँ बाँस हो वहाँ-वहाँ रंगबिरंगीपना होता है' ऐसी व्याप्ति (-नियम, अविनाभावसम्बन्ध) की कल्पना कर लेता है और ऐसे मिथ्या व्याप्तिज्ञान द्वारा ऐसा अनुमान खींच लेता है कि 'नीचे से ऊपर

तक सारा बाँस रंगबिरंगा है।' यह अनुमान मिथ्या है; क्योंकि वास्तव में तो उस बाँस के ऊपर का भाग रंगबिरंगेपने के अभाववाला है, अरंगी है। बाँस के दृष्टान्त की भाँति—कोई एक भव्य जीव है; उसका नीचे का कुछ भाग (अर्थात् अनादि काल से वर्तमान काल तक का और अमुक भविष्य काल तक का भाग) संसारी है और ऊपर का अनन्त भाग सिद्धरूप (—स्वाभाविक शुद्ध) है। उस जीव के संसारी भाग में से कुछ भाग खुला (प्रगट) है और शेष सारा संसारी भाग और पूरा सिद्धरूप भाग ढँका हुआ (अप्रगट) है। उस जीव का खुला (प्रगट) भाग संसारी देखकर अज्ञानी जीव 'जहाँ—जहाँ जीव हो वहाँ—वहाँ संसारीपना है' ऐसी व्याप्ति की कल्पना कर लेता है और ऐसे मिथ्या व्याप्तिज्ञान द्वारा ऐसा अनुमान करता है कि 'अनादि—अनन्त सारा जीव संसारी है।' यह अनुमान मिथ्या है; क्योंकि उस जीव का ऊपर का भाग (—अमुक भविष्य काल के बाद का अनन्त भाग) संसारीपने के अभाववाला है, सिद्धरूप है—ऐसा सर्वज्ञ प्रणीत आगम के ज्ञान से, सम्यक् अनुमानज्ञान से तथा अतीन्द्रिय ज्ञान से स्पष्ट ज्ञात होता है।

इस तरह अनेक प्रकार से निश्चित होता है कि जीव संसारपर्याय नष्ट करके सिद्धरूपपर्यायरूप परिणमित हो, वहाँ सर्वथा असत् का उत्पाद नहीं होता।२०॥

गाथा - २० पर प्रवचन

अब इसका सार निकालने के लिये बात कहते हैं। २०वीं (गाथा)

णाणावरणादीया भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा।
तेसिमभावं किच्चा अभूदपुव्वो हविद सिद्धो॥२०॥

देखो! यह संसार की पर्याय (की) बात करके एकदम वापस सिद्ध की।

जीव से अनुबद्ध ज्ञानावरण आदिक भाव जो।
उनका अशेष अभाव करके जीव होते सिद्ध हैं ॥२०॥

अमृत का अर्थ अपूर्व किया। ओहो! अनादि काल का जीव जिस प्रकार के परिणाम विकार के किये, उस-उस प्रकार का वह कर्म उस प्रकार से बँधा। उस-उस कर्म के उदय में वह-वह गति नामकर्म के कारण से, उस-उस गति में उसे मुद्दतवाला भव मिला। वह मुद्दत पूरी होने पर दूसरी मुद्दत में चला जायेगा। यहाँ का कुछ नहीं

रहेगा। ऐसे जीव को सिद्धपद कैसे प्राप्त हो? और वह संसारपर्याय के कारणों का नाश किस प्रकार हो? इसकी बात करते हैं।

टीका :- यहाँ सिद्ध को अत्यन्त असत्-उत्पाद का निषेध किया है (अर्थात् सिद्धत्व होने से सर्वथा असत् का उत्पाद नहीं होता, ऐसा कहा है।) ऐसा मानो संसार ऐसा कहते हैं। ऐसा अनादि देखो तो भव.... भव.... भव.... भव.... भव.... भव.... भव.... भव.... भव.... विकार.... विकार.... विकार.... विकार.... विकार.... विकार.... विकार.... विकार.... एकदम अविकारी पर्याय उत्पन्न हो, वह कहीं द्रव्य नया उत्पन्न नहीं हुआ। समझ में आया? सिद्धपद होने पर सर्वथा असत् (हुआ), एकदम नहीं था और हुआ, ऐसा नहीं। ऐसे देखो तो अनन्त काल से ऊपर नजर करो तो कहीं भव बिना का जीव दिखेगा? भूतकाल की दीर्घदृष्टि से देखने पर किसी काल में भव बिना का जीव नहीं है। उसे जब भव बिना का देखे तो ऐसा होता है कि यह वह नया हुआ! कहते हैं, नहीं। यह तो अन्दर था वह पर्याय में प्राप्त हुआ। आहाहा! समझ में आया? ऐसे अनन्त भव की नजर पड़ने पर यह पहला, इसके बाद, इसके बाद, इसके बाद, इसके बाद ऐसे भूतकाल उसके बाद, हों! कहीं अन्त नहीं ऐसे भव का सिर पर भार। ऐसे भाव भव बिना का आत्मा कहीं नहीं दिखता। तो कहते हैं कि एकदम सिद्धपद हुआ, वह नया हो गया? आहाहा! नहीं। अत्यन्त असत्-उत्पाद का निषेध किया है.... अत्यन्त असत् का, ऐसा। पर्यायदृष्टि से उत्पन्न होता है। परन्तु वस्तुदृष्टि से अन्दर भाव था, वह प्रगट हुआ। सिद्धत्व होने से सर्वथा असत् का उत्पाद नहीं होता ऐसा कहा है। लो! समझ में आया?

जिस प्रकार कुछ समय तक अन्वयरूप से (-साथ-साथ) रहनेवाली, नामकर्मविशेष के उदय से उत्पन्न होनेवाली जो देवादिपर्यायें उनमें से जीव को एक पर्याय स्वकारण की निवृत्ति होने पर.... देखो! इसका कारण की, हों! इसकी पहली। समझ में आया? क्या कहा? कुछ समय तक अन्वयरूप से (-साथ-साथ) रहनेवाली, नामकर्मविशेष के उदय से उत्पन्न होनेवाली जो देवादिपर्यायें उनमें से जीव को एक पर्याय स्वकारण की निवृत्ति होने पर.... उसके कारण की निवृत्ति होने पर अन्य कोई अभूतपूर्व पर्याय ही उत्पन्न हो,.... नहीं हुई, उत्पन्न होती है। समझ में आया?

वहाँ असत् की उत्पत्ति नहीं है;.... नहीं था और हुआ, इसलिए असत् की उत्पत्ति नहीं है। भूतकाल में वह पर्याय नहीं थी और हुई, इसलिए नयी हुई, इसलिए असत् की उत्पत्ति नहीं है। यह साधारण बात (की)। उसी प्रकार दीर्घकाल एक अन्वयरूप से रहनेवाली, ज्ञानावरणादिकर्मसामान्य के उदय से उत्पन्न होनेवाली संसारित्वपर्याय... देखो! समझ में आया? उसी प्रकार दीर्घकाल एक अन्वयरूप से रहनेवाली, ज्ञानावरणादिकर्मसामान्य के उदय से उत्पन्न होनेवाली संसारित्वपर्याय.... वह भी अन्वयरूप से रहनेवाला... ऐसा का ऐसा, ऐसा का ऐसा है न? संसार वह का वह है न बहुत काल का। आहाहा! द्रव्य तो अन्वय अन्वयरूप से रहनेवाला बहुत काल तक। अनन्त काल से वह संसार.... संसार.... संसार.... संसार.... संसार.... संसार.... अनन्त निगोद... निगोद... निगोद... निगोद... एकेन्द्रि, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय आदि अनेक भव। अनादि से जीव पर भव.... भव.... भव.... भव.... भव.... भव.... भव.... ऐसा अन्वयरूप से रहनेवाला ज्ञानावरणादिकर्मसामान्य के उदय से उत्पन्न होनेवाली संसारित्वपर्याय... यह संसार की पर्याय। यह चारों गति की पर्याय।

भव्य को स्वकारण की निवृत्ति होने पर.... देखो! भव्य को। यहाँ वापस यह लायक जीव को है न! अभव्य को तो होता नहीं। भव्य को स्वकारण की निवृत्ति होने पर.... यह जो संसार कारण है मोह-राग-द्वेष। संसार जो संसार.... संसार.... संसार.... संसार.... ऐसा अनादि द्रव्य के ऊपर वह-वह द्रव्य होते-होते पर्याय ऐसी की ऐसी ऐसी और ऐसी संसार.... संसार.... संसार.... उसका कारण मोह और राग-द्वेष था। यह चारों गति का मूल कारण तो मोह और राग-द्वेष था। अब कितने काल में मिले हुए में एकपना मानना? मलूकचन्दभाई! पाँच, पच्चीस वर्ष का अमुक और यह रंग रंगे ऐसे हो हा.... हो हो हा। वापस जाये नरक और पशु में। आहाहा! एक का पर्दा गिरा और दूसरे का खुला। यह भव का पर्दा गिरा। और दूसरा (खुला)। परन्तु संसार अपेक्षा से तो सदृश्य चला ही आता है। संसार.... संसार.... संसार.... संसार.... संसार.... संसार.... अनादि। समझ में आया?

उसके ज्ञानावरणादिकर्मसामान्य के उदय से उत्पन्न होनेवाली.... पूरी संसार पर्याय भव्य को स्वकारण की निवृत्ति.... देखा! ऐसा जिसने जाना कि क्रम-क्रम से

स्वकाल में संसार उत्पन्न हो... हो.... जाय... सदृश्यरूप से तो ऐसा का ऐसा संसार भी है। और मैं तो सदृश्यरूप से कायम उसमें रहनेवाला। ऐसी जहाँ आत्मा की त्रिकाल स्वभाव की दृष्टि होती है, उसे मोह और राग-द्वेष्य जाते हैं। उस भव्य को स्वकारण की.... अर्थात् मोह, राग-द्वेष के कारण की निवृत्ति होने पर निवृत्त हो.... कौन ? संसारीत्वपर्याय। संसारपर्याय मिथ्यात्व और राग-द्वेष से जो उत्पन्न होती है, उसकी निवृत्ति होने पर, संसारकारण की निवृत्ति होने पर संसारकार्य की निवृत्ति होती है। कहो, बराबर है ?

और अभूतपूर्व.... देखो, फिर दृष्टान्त देकर समझाते हैं। (-पूर्वकाल में नहीं हुई ऐसी) सिद्धत्वपर्याय उत्पन्न हो,.... अनन्त ज्ञान, आनन्द आदि यह नयी पर्याय उत्पन्न हो वहाँ असत् की उत्पत्ति नहीं। समझ में आया ? वस्तुरूप से बिल्कुल नया ही हुआ है, ऐसा नहीं। ओहो ! संसारपर्याय का नाश और सिद्धपर्याय की उत्पत्ति। उस पर्याय का नाश होने पर कहीं द्रव्य का नाश और असत् की उत्पत्ति सिद्ध की हुई है, ऐसा नहीं है। सत् स्वभाव में शक्तिरूप से था, उसका (उत्पाद), मिथ्यात्व और राग-द्वेष का नाश करने से शक्ति की व्यक्तारूप सिद्धपर्याय प्रगट होती है, वह प्रगट होने की उसे अज्ञानी, कहते हैं, देखता नहीं। और अकेले संसारपर्याय को देखता है। उसको बाँस का दृष्टान्त देकर (समझाया).....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

पौष कृष्ण ४, शुक्रवार, दिनांक - ०३-०१-१९६४, गाथा-२०, प्रवचन-२६

यह पंचास्तिकाय की गाथा २०। उसमें सिद्धपना असत् उत्पाद नहीं है, यह बात सिद्ध करते हैं। अर्थात् क्या? इस आत्मा में अनादि संसारपर्याय दीर्घ काल से है। अनादि से है न? दीर्घ काल से। उसमें से मानो सिद्धपर्याय नयी हो। परन्तु वह सिद्धपर्याय अन्दर शक्तिरूप से तो अन्दर पड़ी है। यह आत्मा है न वस्तु, वह अनादि-अनन्त है। उसमें अनादि से दीर्घ काल से संसारपर्याय उसमें चली आती है। इसलिए किसी को ऐसा लगे कि संसारपर्याय का नाश होकर सिद्धदशा होती है, वह कोई एकदम नयी होती है? और अत्यन्त असत् की उत्पत्ति है? नहीं। वह जीवद्रव्य में शक्तिरूप से सिद्धपद तो पड़ा ही था। केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य ऐसा चतुष्टय पद अन्दर पड़ा है। उसमें से सिद्धपद की प्राप्ति होती है। क्या है सेठी?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर्यायदृष्टि से नयी उत्पन्न हुई है। वस्तुदृष्टि से नयी नहीं है। अन्दर है।

यह आत्मा है न, आत्मा? यह अनादि-अनन्त वस्तु है। उसमें अनादि से वर्तमान तक मानो संसारपर्याय और थोड़ा एक-दो भव का यहाँ तो गिनेंगे। स्वयं है न अपना भाव भी डाला है। समझ में आया? संसारी पर्याय अनादि से है। निगोद से लेकर अनादि। संसार अर्थात् विचित्र, चित्र-विचित्र विकारी पर्याय। उसके कारण मानो ऐसी ही पर्याय सदा चलती है। एकदम सिद्धपद प्रगट हो, वह कहीं नया होगा? वह दशा कहीं नयी कहीं से अधर से आयी होगी? ऐसा नहीं है। अन्दर में सिद्धपद शक्तिरूप से पड़ा था। द्रव्य से तो सत् सिद्ध थे ही। पर्याय से नयी अवस्था सिद्धपद की उत्पन्न होती है। समझ में आया इसमें? कहो, समझ में आता है या नहीं? ऐई... लड़कों! इसमें आत्मा की बात है, इसमें आत्मा की। देखो अब। लड़के आज आये हैं और कि भाई एक-दो दिन हैं, चलो। कहो, समझ में आया?

देखो! दृष्टान्त दिया था न? पहले गति का दिया था। दृष्टान्त तो सिद्ध का देना है।

सिद्धत्व सिद्ध करना है। गाथा में 'सिद्ध' सिद्ध करना है। 'सिद्ध' सिद्ध करना है अर्थात् कि आत्मा में सिद्धपद जो मोक्षदशा होती है, वह कहीं नयी नहीं वस्तु दृष्टि से। वस्तु में वह शक्ति पड़ी थी, उसमें से प्रगट होती है। पर्याय से-अवस्था दृष्टि से नयी है। उसका दृष्टान्त गति का देकर उसे सिद्ध का न्याय देंगे। और फिर बाँस का दृष्टान्त उसे सिद्ध करेंगे। देखो! बात आ गयी है।

कुछ समय तक.... उस ओर आ गया है, देखो! फिर से लो। २०। जिस प्रकार कुछ समय तक अन्वयरूप से (-साथ-साथ) रहनेवाली,.... ४१ पृष्ठ पर है। अन्तिम दो लाईनें। जिस प्रकार कुछ समय तक अन्वयरूप से (-साथ-साथ) रहनेवाली, नामकर्मविशेष के उदय से उत्पन्न होनेवाली.... यह देव आदि पर्याय। देव की पर्याय, मनुष्य की पर्याय थोड़े काल रहे जीव के साथ। जीव तो अनादि-अनन्त है। उसके साथ मनुष्यपना, देवपना, नारकीपना, पशुपना यह थोड़े-थोड़े काल गति बीच में रहे। गति नामकर्म के कारण से इतना काल उतना काल अनादि-अनन्त जीव में थोड़ा-थोड़ा काल देव का, मनुष्य का, नारकी का रहे।

कुछ समय तक अन्वयरूप से (-साथ-साथ) रहनेवाली, नामकर्मविशेष के उदय से उत्पन्न होनेवाली.... उस प्रकार की गति लेनी है न! देवादिपर्यायें.... देव की-स्वर्ग की अवस्था। उनमें से जीव को एक पर्याय स्वकारण की निवृत्ति होने पर.... एक पर्याय अर्थात् देव की निवृत्ति, देव के कारण जो थे, उस कारण से देवपद मिला। उस देव के कारण की आदि, ऐसे मनुष्य की गति का कारण था तो मनुष्यपना मिला। उनके कारणों से निवृत्ति होने पर तथा अन्य कोई अभूतपूर्व पर्याय ही उत्पन्न हो,.... देखो! क्या कहते हैं? जैसे यह मनुष्यपना है। यह देह नहीं, परन्तु गति। आत्मा में मनुष्यपना अमुक अवधि तक है। उसके कारण का नाश होने पर, उस काल में नहीं ऐसी नयी देवगति उत्पन्न होती है। अभूतपूर्व अर्थात् पूर्व में वह नहीं थी। मनुष्यपने में वह देवगति नहीं थी। अथवा वह देवगति जो है, वह अनन्त काल में भी नहीं। इस काल में आयी वह। समझ में आया? नवनीतभाई!

जीववस्तु अनादि है, अनादि-अनन्त त्रिकाल। अब उसके ऊपर यह मनुष्यपना, देवपना अल्प काल तक रहा। अब अल्प काल पश्चात् उसके कारण का नाश होने पर

दूसरे कारण आये। अर्थात् उसके कारण से दूसरी गति देव की उत्पन्न हुई। वह देव की उत्पन्न हुई, वह पूर्व में नहीं थी, ऐसी उत्पन्न हुई। क्या है? सेठी! **अभूतपूर्व पर्याय ही उत्पन्न होती है,....** नहीं थी। यह थोड़ा काल का दृष्टान्त देकर बहुत काल के संसार के साथ सिद्ध को मिलायेंगे।

जिस प्रकार यह आत्मा तो अनादि है ऐसा का ऐसा है.... है.... है.... है.... है.... है.... है.... है.... उसमें थोड़ा काल मनुष्य का मिला, वह पूरा हुआ। देव का मिला। तब इस मनुष्यपने में वह देवपद नहीं था। अथवा वह देवपद पूर्व में कभी नहीं था। ऐसी नयी पर्याय देव की उत्पन्न हुई। वास्तव में योग्यता तो शक्तिरूप से थी। ऐसा सिद्ध करते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। उस समय उदय आया वहाँ देव का। योग्यता तो उस जाति की ही उस गति में जाने की लायकात—योग्यता अन्दर थी। समझ में आया?

जो अभूतपूर्व पर्याय पूर्व में नहीं थी, ऐसी देवगति हुई। मनुष्यगति का नाश होकर देव में गया। यहाँ तो मुनि स्वयं है न अथवा साधारण रीति से मनुष्य में से देव में गया, वही बात यहाँ विशेष ली है। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पैदा हुई, वह पर्याय से पैदा हुई। अन्दर में योग्यता द्रव्य में तो थी।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ।

वहाँ असत् की उत्पत्ति नहीं है;.... ओहोहो! इस मनुष्यपने का नाश होकर देव हुआ, उसमें असत् की उत्पत्ति नहीं। वास्तव में उसे वस्तु में ऐसी योग्यता तो थी। प्रगटरूप से कारण सेवन किये गये, तब उसका उदय होकर देव हुआ। समझ में आया? यह बात। यह दृष्टान्त दिया है। सिद्धपना सिद्ध करना है। नयी पर्याय नहीं परन्तु सत् था, वह पर्यायदृष्टि से प्रगट हुआ। यह सिद्ध करने के लिये संसारी के भव का दृष्टान्त दिया।

अनादि से एक-एक भव करता आता है, उसमें एक भव के कारण का नाश होने पर.... आया न ? कारण की निवृत्ति होने पर । **स्व कारण की निवृत्ति होने पर निवृत्त होता है....** मनुष्यरूप से आया उसके कारण निवृत्त होने पर वह मनुष्यपना चला जाता है । और नये कारण सेवन करे इसलिए देवगति मिलती है । आत्मा तो वह का वह है । नयी गति मिले । वह थोड़े काल की गति एक-एक भव की जो बात की । अब दीर्घ काल तक अन्वयरूप से रहनेवाला । क्या ? संसारपर्याय । समझ में आया ?

यह संसार जो है आत्मा—ऊपर (वह) अनादि काल का है । वह तो एक-एक भव जितना गति का भव । और संसार **दीर्घकाल एक अन्वयरूप से रहनेवाली, ज्ञानावरणादिकर्मसामान्य के उदय से उत्पन्न होनेवाली....** सामान्य आठ कर्म सबका संसार का कारण है न अनादि.... अनादि.... अनादि.... जो **ज्ञानावरणादिकर्मसामान्य के उदय से उत्पन्न होनेवाली संसारित्वपर्याय....** वह संसारपर्याय अनादि से ज्ञानावरणीय का निमित्त और आत्मा के ऊपर वह संसार है । संसार.... संसार.... संसार.... संसार.... विकार.... विकार.... विकार.... विकार.... विकार.... अनादि से चला आता है ।

यह **संसारित्वपर्याय भव्य को स्वकारण की निवृत्ति होने पर....** उसमें एक गति के कर्म के कारण की निवृत्ति होने पर निवृत्त होता था । यह अनन्त काल की संसारपर्याय है, वह भव्य को स्वकारण की निवृत्ति होने पर (अर्थात्) उस संसार का कारण मिथ्यादर्शन, अज्ञान राग-द्वेष की निवृत्ति होने पर संसारपर्याय निवृत्त होती है । कहो, समझ में आया ? आहाहा ! और **अभूतपूर्व....** उसमें अभूतपूर्व था गति की अपेक्षा से । यह सिद्ध (-पूर्वकाल में नहीं हुई ऐसी) **सिद्धत्वपर्याय उत्पन्न हो, वहाँ असत् की उत्पत्ति नहीं है ।** एकदम सर्वथा असत् है, ऐसा नहीं । पर्याय में असत्—नहीं था और हुआ । वस्तु में तो शक्ति थी । ओहोहो ! मनुष्यपने में से देव हुआ, वह एकदम नया हुआ, ऐसा नहीं है । कहते हैं, योग्यता तो थी । समझ में आया ? तथा जो भव हुए, वे भव जब तब हों वह भव की पर्याय की योग्यता अन्दर में प्रविष्ट है भूतकाल की । बराबर है ?

संसारपर्याय एक भव, दूसरा भव, तीसरा भव, ऐसे भव गया तो वह सब पर्याय वर्तमान रही नहीं । योग्यता अन्दर प्रविष्ट । ऐसे नयी जो होने की उसकी योग्यता तो अन्दर है ।

मुमुक्षु : वह बाहर निकले।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बाहर निकलती है। ओहो! समझ में आया ?

सर्वथा असत् हो और उत्पन्न हो, ऐसा नहीं है। इसी प्रकार सिद्धपद अनादि संसार नारकी, मनुष्य, देव, पशु। वह एक-एक भव का थोड़े काल का दृष्टान्त दिया था। एक में से दूसरा। अब पूरा संसार उसकी पर्याय का कारण मिथ्यादर्शन, राग-द्वेष की निवृत्ति होने पर अभूतपूर्व (-पूर्वकाल में नहीं हुई ऐसी) सिद्धत्वपर्याय उत्पन्न हो, वहाँ असत् की उत्पत्ति नहीं है। कहो, बराबर है ? समझ में आया इसमें ? घर की बात हो तो ऐसी प्रिय लगे।

मुमुक्षु : असल घर की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, असल घर की बात है। तेरा घर अन्दर वस्तु है, वह कौन है। आत्मा.... आत्मा.... आत्मा.... आत्मा.... आत्मा.... अनादि-अनन्त है। उसे एक भव के कारण का नाश होने पर नया भव अभूत—नहीं—नहीं था, ऐसा हुआ। ऐसा वह भव हुआ, ऐसा अनादि दीर्घकाल से संसार विकाररूप से चला आता है दशा में, दशा में। शक्ति तो अकेली शुद्ध और सिद्ध समान है। वह दशा में संसार चला आता है, उसका कारण मिथ्यादर्शन और राग-द्वेष। वह मिथ्यादर्शन, राग-द्वेष निवृत्त होने पर सिद्धपद की पर्याय एकाध—दो—तीन भव में फिर प्रगट होगी। वह सिद्धपद कहीं नयी पर्याय होने की नहीं है। निश्चय से अन्दर थी। पर्याय में नयी हुई है। इसलिए सर्वथा असत् है, ऐसा नहीं है। कहो, समझ में आया ?

अब इसे समझाते हैं। पुनश्च (विशेष समझाया जाता है)—जिस प्रकार.... बाँस का दृष्टान्त। बाँस-बाँस। बाँस होता है न बड़ा बाँस ? यह रहा देखो। कहो, कहाँ गये श्रीचन्दजी ? है न ? यह कहीं बाँस लाकर रखा जाये कहीं ? परन्तु इसमें यह काम आयेगा। देखो ! यह काम आयेगा। देखो ! ऐसे और ऐसे। इतना उघाड़ा रखो वापस, हों ! इतना ऐसे बन्द और इतना ऐसे बन्द। समझ में आया ? देखो ! है ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : गाँठ, ऐसा नहीं। यहाँ तो अब चित्राम बताना है। वह गाँठ नहीं

थी उस समय कातली बतलानी थी वहाँ तो। अब बतलाना है यह। इसलिए इसमें यह लागू पड़ेगा, देखो!

जिस प्रकार जिसका विचित्र चित्रों से.... विचित्र चित्रों से चित्रविचित्र नीचे का अर्ध भाग.... देखो, यह चित्रवाला। चित्राम है न इसमें? विचित्र चित्रों से.... एक शब्द। चित्रविचित्र नीचे का अर्ध भाग.... देखो, यह भाग। समझ में आया? कुछ ढँका हुआ... लो, यह ढँका हुआ। ऐसे ढँका हुआ। और कुछ बिन ढँका हो.... देखो! इतना उघाड़ा है। है न यह उघाड़ा? कुछ ढँका हुआ और कुछ बिन ढँका हो तथा सुविशुद्ध (अचित्रित) ऊपर का अर्ध भाग.... देखो! यह विशुद्ध है, देखो। है चित्राम इसमें कुछ? एकदम साफ है परन्तु इसे ऐसे ढँका हुआ हो।

सुविशुद्ध (-अचित्रित) ऊपर का अर्ध भाग मात्र ढँका हुआ ही हो.... अकेला ढँका हुआ है यह। इसके दो भाग पड़ते हैं। उसमें बहुत भाग इसकी (खुल्ले की) अपेक्षा से बहुत भाग, हों! इसकी अपेक्षा से ऐसा नहीं। देखो, यह तो अधिक भाग है या नहीं? कितना भाग है यह? बड़ा भाग है यह। उसके (ऊपर के ढँके हुए की) अपेक्षा से यह तो छोटा भाग है। परन्तु इसकी अपेक्षा से यह छोटा उघाड़ा है न? इसकी अपेक्षा से यह बड़ा भाग है यह। नीचे का बड़ा भाग ढँका हुआ है। सुविशुद्ध ऊपर का अर्ध भाग मात्र ढँका हुआ ही हो.... देखो! अकेला ढँका हुआ है न यह? साफ है न। इसमें कहीं है?

ऐसे बहुत लम्बे बाँस पर दृष्टि डालने से.... बहुत लम्बे बाँस पर दृष्टि देने से वह दृष्टि सर्वत्र.... वह दृष्टि सर्वत्र। देखो! ऐसे देखे तो क्या लगे? कि यह सब जो चित्राम दिखता है, वह नीचे है और ऊपर भी होगा। ऐसा सब चित्रामवाला पूरी लकड़ी दिखती है। समझ में आया या नहीं? लिपटा हो तब क्या करे? देखो! समझ में आया? यह लिपटा हो, देखो। यह तो लिपटा हुआ है या नहीं? और इतना हो उघाड़ा। नजर पड़े तो क्या लगे? कि सब चित्रामवाला लगती है पूरी लकड़ी। ऐसा लगता है या नहीं? पूरी लकड़ी चित्रामवाली है, ऐसा लगे।

बहुत लम्बे बाँस पर दृष्टि डालने से वह दृष्टि सर्वत्र विचित्र चित्रों से.... विचित्र चित्र ऐसे जो हैं न, देखो यह चित्र। उनसे सभी चित्रपने की व्याप्ति का निर्णय करती

हुई.... लो! दृष्टि। सब पूरा बाँस ही पूरी यह चापड़ी, पूरी यह चित्रावली है, ऐसा लगे। समझ में आया? ऐसा लगता है या नहीं? चित्रवाली है, देखो। ओहो! पूरा चित्राम लगता है। क्योंकि यह है तो नीचे ऐसा है और है तो ऊपर भी ऐसा होगा, ऐसा अनुमान होता है।

वह दृष्टि सर्वत्र विचित्र चित्रों से हुए चित्रविचित्रपने की व्याप्ति का निर्णय करती हुई 'वह बाँस सर्वत्र अविशुद्ध है.... वह पूरा बाँस अर्थात् पूरी लकड़ी ऐसे चित्रामवाली ही है, रंग-बिरंगी चित्रामवाली है, ऐसा अनुमान करती है;.... उस पर पड़ी हुई दृष्टि पूरी चित्रामवाली है, ऐसा निर्णय करता है। कहो, बराबर है? दृष्टान्त समझ में आता है या नहीं? पश्चात् आत्मा पर घटित करेंगे।

मुमुक्षु : दृष्टान्त तो आप सरस समझाते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दृष्टान्त तो क्या कहा न, देखो न यह? कहा है या नहीं यह? ऐसे नजर पड़ने पर क्या लगे लोगों को? यह पूरी चापड़ी चित्रामवाली लगती है। ऐसा लगता है या नहीं? तो ढँका हुआ है या खुल्ला है उसकी खबर नहीं उसे। अन्दर कोमल है। और यह ढँका हुआ बहुत भाग और थोड़ा भाग दिखता है, इसलिए सब एक है, ऐसा दिखता है, लो! समझ में आया?

उसी प्रकार.... इस प्रकार। वह तो दृष्टान्त हुआ। जिसका ज्ञानावरणादि कर्मों से हुआ.... यह आठ कर्म से हुए चित्रविचित्रतायुक्त (-विविध विभावपर्यायवाला).... देखो! अनादि से अभी तक। समझ में आया इसमें? देना भाई पंचास्तिकाय। समझ में आया?

मुमुक्षु : फिर से हमें समझाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुख शिथिल पड़ गया है। काम बहुत।

देखो, क्या कहते हैं? यह इसमें लकड़ी का दृष्टान्त देते हैं। अपने यहाँ बाँस का। परन्तु बाँस अपने पास खड़ा किस प्रकार रखना? और ऐसा हो नहीं बाँस। देखो! यह बहुत भाग खुल्ला है। बहुत भाग खुल्ला है न? बराबर है? और यह थोड़ा भाग ढँका हुआ है। चित्रित है। अब ऐसे जब रखकर पड़ा हो ऐसा सब ढँका हुआ यहाँ तक। और

ऐसे हो तो देखो, क्या दिखता है ? कि पूरी लकड़ी चित्रामवाली है। यह है न चित्राम। वहाँ नजर पड़ने पर नीचे भी ऐसा होगा और ऊपर भी ऐसा होगा। ऐसी नजर पड़े। यह दृष्टान्त है संसार और मोक्ष पर अब दृष्टान्त देंगे।

इस प्रकार नजर करने पर पूरी लकड़ी चित्रामवाली (दिखायी देती है)। क्योंकि वह चित्राम थोड़ा भाग दिखता है, बहुत भाग ढँका हुआ है। इसलिए पूरा खुल्ला भाग... है खुल्ला। चित्राम नहीं। परन्तु ढँका हुआ है। इसलिए ऐसी दृष्टि देने से पूरा यह बाँस अथवा यह चापड़ी चित्रामणवाली है, ऐसा देखने में आता है। वैसे उसी प्रकार जिसका ज्ञानावरणादि कर्मों से हुआ.... है इसमें ? अब आत्मा लिया। अनादि-अनन्त आत्मा। उसे बताओ। जिसका ज्ञानावरणादि कर्मों से.... यह छठी लाईन है। हुआ चित्रविचित्रतायुक्त (-विविध विभावपर्यायवाला) बहुत बड़ा नीचे का भाग कुछ ढँका हुआ.... देखो, अब यह जैसे ऐसा सब ढँका हुआ था और यहाँ ढँका हुआ था। तब तो ऐसा सब एक लगता है। ऐसा जीव अनादि-अनन्त है। अनादि-अनन्त में संसार की अनादि की पर्याय अनादि से, यह चित्रामवाली लकड़ी, वैसे अनादि संसार ज्ञानावरणादि कर्मों से हुआ चित्रविचित्रतायुक्त (-विविध विभावपर्यायवाला).... विकार.... विकार.... विकार.... विकार.... विकार.... अनादि से। बहुत बड़ा नीचे का भाग कुछ ढँका हुआ....

मुमुक्षु : नीचे का भाग थोड़ा ढाँकना पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा न, ढाँका है। ढाँका है। यह तो पहले से ढाँका है यह। यह चला नहीं था कुछ, यह ढँका हुआ था। देखो! समझ में आया ? यह थोड़ा भाग है और यह बहुत भाग है। बहुत भाग को यहाँ सिद्ध की उपमा देनी है और इस भाग को संसार की उपमा देनी है। क्योंकि संसार के काल की अपेक्षा सिद्ध का काल अनन्तगुणा है। अनन्तगुणा। प्रत्येक जीव सिद्ध हो वह संसार की पर्याय का जितना काल—समय है, उससे सिद्ध का समय अनन्तगुणा है। अनन्त-अनन्तगुणा। अर्थात् कि इस चित्राम के काल से। इस भाग से वह भाग बहुत है। देखो! इसमें है भाग बहुत। कोमल बहुत भाग है, देखो। इसलिए यह लकड़ी दृष्टान्त में बराबर है। यहाँ बहुत भाग ऐसा ढँका हुआ, यहाँ थोड़ा भाग है परन्तु ऐसे ढँका हुआ और थोड़ा सा भाग उघाड़ा इतना। ऐसा अनुमान होता है कि पूरी लकड़ी चित्रामवाली लगती है। यह भूल है।

इसी प्रकार ज्ञानावरणादिकर्म से.... अनादि काल से चित्र-विचित्र सहित विकार.... विकार.... विकार.... विकार.... पुण्य-पाप.... पुण्य-पाप.... पुण्य-पाप.... पुण्य-पाप.... पुण्य-पाप.... और पुण्य-पाप मेरे, ऐसी मान्यता और उस विकार से अनादि से संसार चला आता है। उसका बहुत बड़ा नीचे का भाग.... यह बहुत बड़ा जो कहा, वह ऊपर की अपेक्षा की बात नहीं। यह ढँका है न? देखो! यह बहुत ढँका हुआ है। दिखता है थोड़ा और यह बहुत ढँका हुआ है। यह निचले की अपेक्षा से बहुत ढँका हुआ इसकी अपेक्षा से कहा। इसी प्रकार अनादि संसार... जीव तो अनादि-अनन्त है। उसका अनादि से संसार यह है, वह कितना ही ढँका हुआ अर्थात् चला गया। समझ में आया? बहुत बड़ा नीचे का भाग कुछ ढँका हुआ.... चला गया बहुत। और कुछ बिना ढँका है.... अब एक-दो-तीन जो भव है, उतना नहीं ढँका हुआ खुल्ला है। क्या कहा?

बाँस के दृष्टान्त से। जीव अनादि से अभी तक उसके विकार... ऐसा लेना है न वर्तमान काल तक। उसे राग-द्वेष... राग-द्वेष... राग-द्वेष... राग-द्वेष... राग-द्वेष... संसार। निगोद में हो या स्वर्ग में हो या मनुष्य में हो या शुभभाव में हो या अशुभ, परन्तु सब संसार विकारी पर्याय अनादि से जितना काल गया, वह सब सिद्ध भगवान के काल से अनन्तवें भाग है। परन्तु वह काल बहुत गया। क्योंकि थोड़ा दिखता है। अब एक-दो भव दिखते हैं। एक-दो मनुष्य है, देव है, मनुष्य है, मनुष्य है, देव है, मनुष्य है। इतना भाग खुल्ला है। उसके भव में खुल्ला है। यह मनुष्य भव, देव भव, मनुष्य भव खुल्ला है। और अनन्त भव ढँके हुए हैं। क्योंकि अभी नहीं है। इसलिए वह सब बड़ा नीचे का भाग कितना ही ढँका हुआ और कितना ही नहीं ढँका हुआ। कहो समझ में आया?

शुद्ध पर्याय दो-तीन भव बाद हुई सिद्ध की दशा उसे ही यहाँ लिया है। ऐसे जीव को। भव्य, कि जिसे यह संसार अनादि से ऐसे राग-द्वेष और अज्ञान, राग-द्वेष और अज्ञान अनादि से चला आता है। वह ढँक गया है। अर्थात् दिखाई नहीं देता। वर्तमान थोड़ा दिखता है एक-दो-तीन भव। और भविष्य में तीन भव बाद एकदम सिद्धपर्याय होनेवाली है। एकदम सिद्धपर्याय। कहते हैं कि सुविशुद्ध (सिद्धपर्यायवाला), बहुत बड़ा ऊपर का भाग.... यह तो गत काल की अपेक्षा बहुत बड़ा ऊँचे का भाग। संसार

तो अनादि-सान्त, सिद्ध हो, वहाँ सादि-अनन्त। जब सिद्ध हुआ, मिथ्यात्व राग-द्वेष का नाश करके वह अनन्त काल ऐसा का ऐसा रहता है। इसलिए बहुत बड़ा ऊँचे का भाग अकेला ढँका हुआ। उसी प्रकार सिद्धपद ढँका हुआ है।

ऐसे किसी जीवद्रव्य में.... ऐसा कोई जीवद्रव्य में। ऐसा कोई जीवद्रव्य में। वह बाँस में था। बुद्धि लगाने से वह बुद्धि सर्वत्र ज्ञानावरणादि कर्म से हुए चित्रविचित्रपने की व्याप्ति का निर्णय करती हुई.... क्या कहते हैं? यह जीव तो सदा संसारी ही लगता है। ऐसा इसे अज्ञानी को होता है। क्या कहा? अपने तो बस यह राग-द्वेष करते हैं, पुण्य-पाप करते हैं.... राग-द्वेष करते हैं, पुण्य-पाप करते हैं, राग-द्वेष मेरे, पुण्य-पाप मेरे—ऐसा भाव जो अनादि का चला आता है, वैसा ही अभी दिखता है और वैसा ही ऐसा अनन्त काल रहेगा। ऐसा अज्ञानी बुद्धि में ऐसा निर्णय करता है। मनसुखभाई! यह तो बड़ा.... इसमें तो बहुत सूक्ष्म ऐसा कुछ नहीं है। समझ में आया?

यह खुल्ला, देखो न। है इसमें चित्राम कुछ? यह दो-तीन भव बाद चित्राम भव रहेंगे नहीं। एकदम सिद्धपद। तब कहते हैं कि ऐसा जीव लो कि जिस जीव को बहुत काल संसार अनादि से है और अभी एक-दो-तीन भव खुल्ले हैं अर्थात् किये हुए, होते हुए, दिखेंगे। और फिर सिद्ध होगा। परन्तु यह वर्तमान दो-तीन भव को देखकर ऐसा ही भववाला संसार गया और ऐसा ही भववाला भविष्य में रहेगा, ऐसा अज्ञानी को अनुमान होता है। बात समझ में आती है इसमें? यह लॉजिक से बात चलती है। नवनीतभाई! उस भाग की खबर नहीं, इसलिए अज्ञानी ऐसा अनुमान (करता है)। अज्ञानी ऐसा अनुमान करता है, ऐसा कहा है न? देखो!

वह बुद्धि सर्वत्र ज्ञानावरणादि कर्म से हुए चित्रविचित्रपने की व्याप्ति का निर्णय करती हुई 'वह जीव सर्वत्र अविशुद्ध है (अर्थात् सम्पूर्ण संसारपर्यायवाला है)' ऐसा अनुमान करती है। समझ में आया इसमें? इस लकड़ी के दृष्टान्त से। यह पूरा ढँक गया और इतना उघाड़ा। यह जरा उघाड़ा। इसलिए यह सब पूरा चित्रामवाला है, ऐसा अज्ञानी अनुमान करता है। ऐसा अनादि-अनन्त जीव अभी तक का संसार विकारवाला और अभी एक-दो भव विकारवाला थोड़ा रहेगा। और फिर पूरा सिद्ध। संसार के काल

से सिद्ध का समय अनन्तगुणा समय है। समझ में आया? मनसुखभाई! इस संसार से सिद्ध अनन्तगुणा काल है, यह समझ में आता है या नहीं?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह संसार है न? अनादि का है। अनादि का है न? या पहले सिद्ध-मोक्ष था? तो अनादि का संसार अभी अन्त आ गया। एक-दो भव में अन्त आ जायेगा। समझ में आया? और यह अन्त आयेगा, इसलिए इस संसार के जितने समय गये न समय? एक सेकेण्ड के असंख्य समय। ऐसे-ऐसे समय की संख्या गई, वह अनन्त है। परन्तु उसकी अपेक्षा सिद्धपद जब प्राप्त होगा अर्थात् कि इस संसार के कारण जो अज्ञान और राग-द्वेष, (इनका) नाश करके दृष्टि स्वभाव के ऊपर पड़ी और स्वभाव का भान हुआ और पर्याय में केवलज्ञान हुआ, उस केवलज्ञान की सिद्धपद पर्याय हुई, वह अनन्त काल रहेगी। इसलिए भूतकाल के समय के माप की अपेक्षा भविष्य के समय का माप अनन्तगुणा है। क्योंकि सिद्धपद हुआ वह कभी अभाव नहीं होगा। इस संसार का तो अभाव आ गया। सिद्धपद है, उसका अभाव नहीं होगा। इसलिए भूतकाल की अपेक्षा भविष्य काल अनन्तगुणा है। यह तो गणित का विषय है।

भूतकाल है, चाहे जितने समय गये भविष्य में से। भूत का तो अन्त आया या नहीं? अभी अन्त है या नहीं? और भविष्य में लाखों-करोड़ों अनन्त भव ऐसे गये। अनन्त समय ऐसे। परन्तु भविष्य का अन्त आयेगा कि अब भविष्य हो रहेगा? वह भविष्य अनन्त-अनन्तगुणा काल है। ऐसे संसारपर्याय अनादि की अभी तक है। एक-दो-तीन भव संसार रहकर और सिद्ध पर्याय होगी। वह इस पर्याय का अन्त आया। इसलिए इस पर्याय का काल ही थोड़ा है। अनादि से अभी तक थोड़ा। और मोक्ष की पर्याय प्रगट हुई सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय से। सम्यक् शुद्ध चिदानन्द ज्ञाता-दृष्टा हूँ, ऐसा भान, ऐसी वीतरागदशा प्रगट हुई, उसके कार्य में सिद्धपद हुआ। वह सिद्धपद जब से हुआ, (वह) अनन्त काल रहेगा। कभी द्रव्य का और पर्याय का कहीं अन्त आयेगा नहीं। इसलिए भूतकाल की अपेक्षा सिद्ध की पर्याय के समय का काल और पर्याय का समूह अनन्तगुणा है। यह तो गणित का विषय है परन्तु अब यह अभ्यास नहीं न। मनसुखभाई! आहाहा! समझ में आया या नहीं?

जैसे बाँस का चित्राम का खुल्ला भाग देखकर। इतना ढँका हुआ और इतना नहीं ढँका हुआ पूरा चित्रामवाला अज्ञानी मानता है। परन्तु ऐसा है नहीं। इसी प्रकार आत्मा अनादि संसार से है... है... है... संसार.... संसार.... संसार.... कभी संसार नहीं था, ऐसा नहीं। कभी भूतकाल में भव नहीं था, ऐसा है? कहो, मनसुखभाई! यह तो बराबर है या नहीं? नजर करने से भूतकाल में किसी समय सिद्धपद था, ऐसा है? संसार... संसार... संसार... संसार... ऐसा अनादि से संसार चला आया है और अभी ऐसा जो निर्णय करेगा कि यह तो संसार और विभाव अनादि से है। समझ में आया? मेरा स्वभाव ऐसा नहीं। ऐसा जिसने स्वभाव की दृष्टि चैतन्य ज्ञाता आनन्दमूर्ति में हूँ। ऐसा सम्यग्दर्शन प्रगट किया, ऐसे स्वज्ञेय को पकड़कर (सम्यक्) ज्ञान प्रगट किया। फिर स्वरूप में लीनतारूप चारित्र प्रगट किया। उसे अल्प काल में सिद्धपद होगा। इसलिए वह एकाध-दो भव बीच में रहेंगे पूर्ण होने में। वह खुल्ला भाग है, यह ढँका हुआ है। बाकी सिद्धपद भी ढँका हुआ गुप्त भविष्य में है। तो उस गुप्त को अज्ञानी ऐसा मानता है कि यह संसार वर्तमान दिखता है, ऐसा भूतकाल में था, ऐसा का ऐसा भविष्य में रहेगा। ऐसा अज्ञानी अनुमान बाहर के कारण से करता है। क्योंकि उसे जीवद्रव्य की शक्ति सिद्धसमान है, इसकी उसे प्रतीति नहीं। नवनीतभाई!

वह जीव सर्वत्र अविशुद्ध है.... ऐसा निर्णय करता है। पूरा ही संसार पर्यायवाला जीव, ऐसा अनुमान करता है। परन्तु यह बात सत्य नहीं है। कहो, समझ में आया या नहीं? छोटाभाई! एक मलूकचन्दभाई! एक व्यापारी लिया और एक पठन का पण्डित लिया। समझ में आया? यह तो समझ में आये ऐसी बात है। **पुनश्च, जिस प्रकार उस बाँस में व्याप्तिज्ञानाभास का कारण....** यह बाँस जो है, उसमें इतना खुल्ला और दूसरा भाग ढँका हुआ उसकी व्याप्ति अर्थात् अनुमान करनेवाला ज्ञान उसका मिथ्या है। बाँस में व्याप्तिज्ञानाभास। अर्थात् व्याप्ति ऐसा करते हैं अभी ऐसा है, इसलिए सदा ही ऐसा है। उसकी यह बात ही खोटी है।

(नीचे के खुले भाग में) विचित्र चित्रों से हुए चित्रविचित्रपने का अन्वय (सन्तति, प्रवाह) है,.... यह ऐसे-ऐसे है चित्रवाला। उसी प्रकार उस जीवद्रव्य में व्याप्तिज्ञानाभास का कारण.... भाषा कैसी रखी, देखो! अज्ञानी को संसार की पर्याय पर

दृष्टि है, उसे संसार ऐसा का ऐसा भविष्य में लगता है। आहाहा! संसार अनादि से है। संसार अर्थात् शरीर, वाणी, मन नहीं। मिथ्यादर्शन-राग और द्वेष, मिथ्यादर्शन-राग और द्वेष, मिथ्यादर्शन-राग और द्वेष। मिथ्यादर्शन, पुण्य और पाप, वह संसार। मनसुखभाई! स्त्री-पुत्र, वह संसार नहीं, यह मशीन संसार नहीं। यह अनादि से मिथ्याश्रद्धा है कि मैं संसार पर्यायवाला ही हूँ, विकारवाला हूँ। यह विकार का करना पुण्य-पाप के भाव का (करना), यही मेरा स्वरूप और इतना ही मैं हूँ, ऐसा अनादि से मानता आता है, उस जीवद्रव्य को, इसलिए ऐसा का ऐसा भाव अनन्त काल रहेगा, ऐसा अज्ञानी संसारपर्याय की दृष्टिवाला उसे पूरा त्रिकाल आत्मा संसारपर्यायवाला रहेगा, ऐसा पर्यायबुद्धिवाला अनुमान करके, विकार पर देखकर प्रगट विकारवाले अमुक भव देखकर सब विकारवाला है, ऐसा अज्ञानी अनुमान करता है। कैसी शैली रखी! ओहो!

परन्तु जिसे संसारपर्याय विकार है अनादि से। पुण्य-पाप, दया-दान, काम-क्रोध, मिथ्याभाव वह सब संसार। वह संसार पर्याय में है, मेरी वस्तु में नहीं। ऐसी वस्तु की दृष्टि करने से उस संसारपर्याय का नाश होकर सिद्धपर्याय प्रगट होती है। वह सिद्धपर्याय एकदम नयी हुई है, ऐसा नहीं है। वह अन्दर में शक्तिरूप से सिद्धपद था, उसकी इसने प्रतीति की कि मैं तो सिद्धसमान ही हूँ। संसारपर्याय और विकार, वह मेरे स्वभाव में नहीं हैं। ऐसा सम्यग्दर्शन प्रगट करके, मेरा स्वरूप ही अनन्त आनन्द और चतुष्टय से भरपूर, अनन्तज्ञान-दर्शन-आनन्द ऐसा सम्यग्ज्ञान, उसका सम्यग्ज्ञान और उसमें लीनतारूप चारित्र—ऐसी जिसमें शक्ति की प्रतीति ज्ञान और रमणता की, शक्ति की प्रतीति, ज्ञान और शक्ति में रमणता की, उसे भविष्य में यही विकारवाला रहेगा, ऐसा उसे नहीं होता। समझ में आया? परन्तु अज्ञानी को वह विकार.... विकार.... विकार अकेला देखता है। संयोग और संयोग। उसमें यह किया और यह छोड़ा, यह राग और यह द्वेष, यह पुण्य और यह पाप, यह दया और यह दान, यह भक्ति और यह पूजा, यह पाप और यह हिंसा। ऐसे सब भाव मात्र संसार है। मनसुखभाई! कहाँ अफ्रीका बारह महीने का और कहाँ यहाँ। पूर्व-पश्चिम। आहाहा!

अरे! इसने कभी पर के विकल्प छोड़कर स्वयं कौन, इसकी नजर कभी की नहीं। विचार ही किया नहीं। यह तो उधेड़बुन-उधेड़बुन, यह किया और यह छोड़ा,

यह लिया। इसकी दृष्टि ही पर के ऊपर रही है। इसलिए कहते हैं कि अनादि संसार और अभी वर्तमान में भी इसके यह पुण्य और पाप और मिथ्याश्रद्धा कि उसमें से कल्याण (होगा) और यह मेरा स्वरूप। ऐसे भाव में वर्तनेवाले को ऐसी बुद्धि उपजती है कि ऐसा ही भाव भविष्य में अभी अनन्त काल चालू रहेगा। अज्ञानी ऐसा अनुमान जीवद्रव्य का करता है। परन्तु जीव द्रव्य का स्वभाव ऐसा नहीं है। समझ में आया? किस ढंग से बात रखी है, देखो न! वह ऐसा देखकर ऐसा कहता है कि ऐसा होगा।

जीवद्रव्य में एक वस्तु में देखो तो पुण्य-पाप और मिथ्याश्रद्धा की गन्ध नहीं अन्दर में। उसमें तो पूरा सिद्धपद शक्ति से पड़ा है। उसका एन्लार्ज पर्याय में होता है। शक्ति में सिद्धपद है, उसका पर्याय में एन्लार्ज होता है। अन्दर में द्रव्यस्वभाव में ध्रुव में आनन्द ज्ञान परिपूर्ण है, उसमें दृष्टि देने से, उसमें लीन होने से पर्याय में सिद्धपद होता है। इस संसारपर्याय पर दृष्टि रखने से, अनादि से संसार.... संसार.... संसार.... संसार.... पर्यायबुद्धि में संसार उसे भासित होता है। उसे भासित होता है और ऐसा संसार अनादि रहेगा। उस द्रव्य की जिसे दृष्टि की, शक्ति की सत्ता की खबर नहीं, उसे संसार ऐसा रहेगा, ऐसा मान रहा है। समझ में आया?

(नीचे के खुले भाग में) ज्ञानावरणादि कर्म से हुए चित्रविचित्रपने का अन्वय है। अनादि से। थोड़ा खुल्ला भाग है न, एक-दो भव का, ऐसा। दूसरे को ऐसा अनुमान करता है। होता है न लो। कुन्दकुन्दाचार्य जैसे मुनि। देखो! उन्हें है या नहीं अभी? अभी यह राग है, विकल्प है, अमुक है, यह देह है, खाते हैं, पीते हैं। इसलिए स्वयं भूतकाल का संसार आत्मा ऊपर था और वर्तमान में भी संसार थोड़ा भाग उदयभाव है। उसे देखकर सदा उदयभाव उसके पास रहेगा, ऐसा अज्ञानी अनुमान पर्याय दृष्टिवाला वर्तमान विकार को ही देखनेवाला, त्रिकाल द्रव्य को नहीं देखनेवाला, ऐसा अनुमान करता है कि इसे भी संसार भविष्य में रहेगा। रहा, है, रहेगा। समझ में आया? परन्तु ज्ञानी ऐसा अनुमान नहीं करता, ऐसा कहते हैं।

संसार पर्याय में अनादि से है। वर्तमान एक-दो भव पर्याय में है परन्तु वस्तुदृष्टि से मैं वह राग नहीं, पुण्य नहीं, शरीर, वाणी, मन तो नहीं; परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम या काम-क्रोध का विकल्प, वह विकार। वह नहीं। मैं त्रिकाल ज्ञायक

आनन्द सिद्धस्वरूप हूँ, ऐसी दृष्टि होने पर उसे वर्तमान जितना संसार थोड़ा दिखता है। भविष्य में संसार मुझे नहीं, ऐसा उसका आगमज्ञान, स्वसंवेदनज्ञान और अनुमानज्ञान स्वीकार करता है। बहुत सूक्ष्म। वहाँ तो सब फूल चढ़ानेवाले मिले वहाँ। हैं, भाई! डॉक्टर ने यह किया था न, उपाश्रय किया था और अमुक वहाँ। कोई ऐसा कहे कि ए... परन्तु अभी तू कौन है, इसकी तुझे खबर है? आहाहा!

मुमुक्षु : उसे तो जो अच्छा लगे वह कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही यहाँ कहते हैं। वह बाँस का ऊपर का भाग कैसा है, वह कहाँ से आया ऐसी उसकी दृष्टि नहीं। ऐसा सिद्धपद में जब पद होता है, वह कहाँ से आया, ऐसी वस्तु की तो खबर नहीं। यह संसार.... संसार.... संसार.... अनादि से भी। इतने भव किये। कोई एक समय पर की पंचायत के कारण इसने चैतन्य कौन, उसे देखने को निवृत्त हुआ नहीं। नवनीतभाई! उस तत्त्वज्ञान तरंगिणी में तो यहाँ तक लिया है, भाई! कि यह स्त्रियाँ, पुत्र और उनसे निवृत्त हुआ तो यह पुस्तक बनाना, मन्दिर बनाना, उपाश्रय बनाना, अमुक बनाना, वह के वह राग में और राग में इसने कभी उसके बिना मैं कौन हूँ, (यह देखने का प्रयत्न किया नहीं)। ऐसा उसमें पाठ है। निकले तो सही। तुरन्त कहीं (मिलता नहीं)। एक तो स्त्री, पुत्र और बाहर के काम के कारण निवृत्त नहीं होता। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह तो अब निवृत्त हो गये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह तो समुच्चय बात है। इसके लिये कहाँ बात है?

‘जिन मन्दिरों का निर्माण, प्रतिमाओं का दान, उत्सव, तीर्थों की यात्रा करने में प्रवीण, नाना शास्त्र के जानकार, परीषह को सहन करनेवाला, परोपकार में रत, समस्त प्रकार के परिग्रहों से रहित और तपस्वी भी है। परन्तु राग-द्वेष-मोह के सर्वथा नाश करनेवाला यह शुद्ध चिद्रूप कौन है, उसमें बिल्कुल दृष्टि में लीन है नहीं।’ यह तो दूसरी गाथा है। ११वाँ अधिकार। १२९ पृष्ठ। परन्तु वह तो जिनमन्दिर और ऐसी सब बातें हैं, वहाँ।

यह १२ गाथा। ९वें अध्याय की है। ११२ पृष्ठ। गाथा-१२, अध्याय-९।

श्रद्धानां पुस्तकानां जिनभवनमठतिनिवास्यादिकानां
 कीर्तेरक्षार्थकानां भुवि झटिति जनो रक्षणे व्यग्रचितः ।
 यस्तस्य क्वात्मचिंता क्व च विशदमतिः शुद्धचिद्रूपकासिः
 क्व स्यात्सौख्यं निजोत्थं क्व च मनसि विचिंत्येति कुर्वतु यत्नं ॥१२॥

अहो! यह संसारी जीव, नाना प्रकार के धर्मकार्य.... धर्मकार्य—धर्म अर्थात् शुभभाव। दया, दान, पूजा, भक्ति, पुस्तक बनाना, जिनेन्द्र भगवान के मन्दिर बनाना, मठ बनाना, छात्र को पढ़ाना, पुस्तकालय के छात्र, छात्रालय और कीर्ति की रक्षा करने के लिये सदा व्यग्र चित्त रहता है। कौन जाने यह बहुत वर्ष की बात है, हों! पाँच सौ वर्ष पहले की। उन कार्यों से रंचमात्र भी इसे अवकाश नहीं मिलता। देखो! समझ में आया? रंचमात्र भी। यह करना, यह मन्दिर करना, यह भगवान करूँ, यह जिनेन्द्र की प्रतिमा, पुस्तक और इस यात्रा में उसके और इसके विकल्प के कारण कहते हैं रंचमात्र भी इसे अवकाश नहीं मिलता। इसलिए न वह किसी प्रकार का आत्मध्यान कर सकता है, न इसकी बुद्धि निर्मल रह सकती है, न शुद्धचिद्रूप की प्राप्ति, और निराकुलतारूप सुख ही मिल सकता है। अतः बुद्धिमानों को चाहिए कि वे सब बातों पर भले प्रकार विचार कर आत्मा के चिन्तवन आदि कार्यों में अच्छी तरह यत्न करें। यह सब कर-करके इसने उसमें / पर में समय व्यतीत किया। स्व में नहीं व्यतीत किया। एक दृष्टि आत्मा के ऊपर नहीं गयी। बाकी मरकर ऐसा सब अनन्त बार किया।भाई! लो, यह गाथा कहता था वह यह। इस ओर की गाथा यह।

मुमुक्षु : यह अच्छी थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह अच्छी थी।

मुमुक्षु : ११ की दूसरी गाथा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ११ में दूसरी गाथा। बहुत ऐसा तो लिया भाई ने। खोज-खोज खोजकर। शब्द... बस, निवृत्त नहीं हुआ। स्त्री-पुत्र से निवृत्त हो तो कहे, यह जिनमन्दिर, यह मठ बनाना, यह प्रतिमा उसमें और उसमें भी कहीं तू कौन है, मेरी कहाँ चीज़ है, ऐसी दृष्टि करने का समय अनन्त काल में एक सेकेण्ड लिया नहीं। मनसुखभाई!

यह सब धर्मकार्य में डालते हैं, हों! लौकिक कार्य की बात तो कहीं रह गयी। आहाहा! जयन्तीभाई! बराबर है यह? आहाहा!

इसमें जगत के पदार्थ को गिनने लगे। ऐसा करने लगे। इसका यह करूँ... इसका यह करूँ। परन्तु यह वस्तु कौन है? मैं कौन? इसके सामने नजर करने का समय मिला नहीं। समय मिला नहीं। समय मिलता नहीं क्या करें? यह नाम है, उसका नाम, इस अधिकार का क्या कुछ है। कितना कहा यह? एक नौवाँ। अधिकार दूसरा होगा। इसका उपोद्घात क्या है? (शुद्ध चिद्रूप के ध्यान के लिये मोह-त्याग की आवश्यकता)। नौवें का यह नाम है भाई! ऐसा कि इस मोह के अभाव करने का समय (मिला) इसे, (और) यह (बाहर का) करना, उसमें ही लगा पड़ा है। और वह कितना कहा? ११वाँ। तीसरी गाथा। (शुद्ध चिद्रूप के उपासकों की विरलता का वर्णन)। उसका नाम ऐसा है।

यह शुद्ध चिद्रूप में ज्ञान, ज्ञातादृष्टा हूँ। यह विकल्प उठे, वह मेरी चीज़ नहीं, वह करना नहीं और वह परचीज़ तो मेरी है नहीं। ऐसा इसे शुद्ध चिद्रूप में सन्मुख देखने का समय, अनन्त काल की पर की पंचायत में एक समय भी लिया नहीं। नवनीतभाई! जगत में शान्त चित्तवाले मिलेंगे, विद्वान मिलेंगे, यमवान मिलेंगे, नियमवान मिलेंगे। पहली गाथा। समझे न? बलवान मिलेंगे, धनवान मिलेंगे, चारित्रवान मिलेंगे। चारित्र अर्थात् यह क्रियावाले—शुभक्रिया। उत्तम वक्ता, शीलवान, तप, पूजा, स्तुति और नमस्कार करनेवाले, मौनी, श्रोता, कृतज्ञ, व्यसन और इन्द्रियों के जीतनेवाले, उपसर्गों के सहने में धीरवीर, परिग्रहों से रहित और नाना प्रकार की कलाओं के जानकार असंख्यात मनुष्य हैं; तथापि शुद्धचिद्रूप के स्वरूप में अनुरक्त कोई एक विरला ही है। यह सब होंगे, परन्तु 'मैं एक शुद्ध चिद्रूप आनन्द ज्ञान हूँ'—ऐसी दृष्टि करनेवाला विरल कोई जीव होगा। बात भी गजब ऐसी आयी है, हों! मनसुखभाई! कहो, समझ में आया इसमें?

क्या कहा इसमें? बाँस का दृष्टान्त। जैसे वह ज्ञानावरणादि कर्म से हुए चित्रविचित्रपने का अन्वय है। थोड़ा सा संसार है न ऐसा। उसे देखकर पूरा ऐसा का ऐसा है (ऐसे) पर्यायबुद्धिवाला मानता है। जिस प्रकार उस बाँस में (ऊपर के भाग

में) सुविशुद्धपना है.... यह खुल्ला-खुल्ला, बड़ा खुल्ला भाग । क्योंकि (वहाँ) विचित्र चित्रों से हुए चित्रविचित्रपने के अन्वय का अभाव है,.... चित्र-विचित्र का सम्बन्ध ऊपर है । बाँस में नहीं । उसी प्रकार उस जीवद्रव्य में (ऊपर के भाग में) सिद्धपना है.... किसे ? कि जो द्रव्य ऐसा चला आता है संसार.... संसार.... संसार.... संसार.... आहाहा ! ऐसी जिसकी नजर हुई, उसकी नजर द्रव्य पर जाती है । अरेरे ! मैं यह । यह क्या संसार ! शुभ-अशुभभाव.... शुभ-अशुभभाव.... शुभ-अशुभभाव और उसमें मुझे लाभ । ऐसा मिथ्यात्व अनादि से संसार देखता है । उसे जीवद्रव्य पर दृष्टि जाती है । अरे ! मैं तो ज्ञानस्वरूप चिद्रूप आनन्दकन्द हूँ, ऐसी दृष्टि जाने पर जीवद्रव्य में (ऊपर के भाग में).... उसे अल्प काल में सिद्धपद होनेवाला है ।

क्योंकि (वहाँ) ज्ञानावरणादि कर्म से हुए चित्रविचित्रपने के अन्वय का अभाव है— आहाहा ! जिसने ऐसा देखा । संसार की पर्याय है, उसने ऐसा देखा कि अरे ! द्रव्य स्वभाव में ऐसा नहीं । उसे भविष्य में ज्ञानावरणीय आदि से चित्र-विचित्रता का— संसार का अभाव हो गया । नवनीतभाई ! देखो ! दृष्टान्त देकर कुन्दकुन्दाचार्य महाराज की बात अमृतचन्द्राचार्य महाराज दृष्टान्त देकर लोगों को सिद्ध की है ।

कि जो अभाव.... किसका अभाव ? अज्ञान और राग-द्वेष का अभाव होकर सिद्ध—ज्ञान-वीतरागता होगी । कि जो अभाव आस-आगम ज्ञान से.... भान हो सकता है । यह आगम से भान हो सकता है कि अब भविष्य में संसार है नहीं । आगम ज्ञान से सम्यक् अनुमानज्ञान से.... यह अनुमान से कि यह संसारपर्याय कृत्रिम; मेरा स्वरूप शुद्ध अखण्ड है । ऐसी दृष्टि होने से अनुमान से भी ऐसा आता है कि अब अल्प काल में संसार रहेगा नहीं । अल्प काल में सिद्धपद होगा । किसे ? कि जिसने द्रव्य पर दृष्टि दी है, उसे । समझ में आया ?

आस-आगम.... अर्थात् भगवान आस अर्थात् भगवान सर्वज्ञ । उनके कहे हुए शास्त्रों के ज्ञान से भी । उनका ज्ञान किसे होता है ? कि जिसे पर्यायबुद्धि टलकर द्रव्यबुद्धि हुई, उसे उनका ज्ञान होता है कि अरे ! अनादि संसार.... आहाहा ! यह संसार... संसार.... संसार.... पूरा चैतन्य दल पड़ा, उसके सन्मुख मैंने कभी देखा नहीं

और उसका इस काल मन्थन वह का वह मिथ्यात्व, वह का वह पुण्य, वह का वह पाप अनादि काल से किया। उसमें भटका। परन्तु उस राग के पुण्य-पाप बिना की मेरी चीज़ ऐसी है, ऐसा जो आगमज्ञान से जाना तो भी उसे विश्वास हुआ कि भविष्य में मुझे संसार होगा नहीं। अनुमान से भी हुआ कि इस भव का नाश हुआ है, एकत्वबुद्धि का, तो अल्प काल में सिद्धपद होगा।

अतीन्द्रिय स्वसंवेदनज्ञान। स्वसंवेदन से भी प्रत्यक्ष ज्ञान होने पर उसे ज्ञान हो जाता है कि यह स्वसंवेदनपना राग से भिन्न मेरा ज्ञान मुझे भान में आया। वह अल्प काल में पूर्ण वेदन होकर सिद्धपद होगा। कहो, समझ में आया इसमें? ऐसा कहकर उपाय भी बता दिया—स्वसंवेदनज्ञान। दृष्टि द्रव्य पर रखी। अखण्डानन्द प्रभु आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड, उसे संसार के उदयभाव की दृष्टि छोड़ दे। शुभभाव हो या अशुभ हो, वह सब उदयभाव है। अकेला परमपारिणामिकभाव, ऐसी दृष्टि होने पर आगमज्ञान हुआ, अनुमान ज्ञान हुआ, स्वसंवेदनज्ञान (हुआ)। तीनों से निर्णय हुआ कि यह आत्मा अल्प काल में सिद्धपद को पायेगा। अब संसार रहेगा नहीं।

और संसार.... संसार पर्यायबुद्धि से देखनेवाला, अनादि से पुण्य-पाप.... पुण्य-पाप.... पुण्य-पाप.... शुभ-अशुभ राग-द्वेष विकल्प.... विकल्प.... विकल्प.... राग... राग...उसे देखनेवाला अनादि है, अभी है, ऐसा का ऐसा रहेगा। वह वस्तु है, उसकी खबर नहीं। ऐसा का ऐसा रहेगा, वह अज्ञानी अनुमान करके संसार में मैं रहूंगा अनन्त काल, ऐसा अनुमान करता है। सेठी! कहो, गाथा तो बहुत सरस आयी है। मनसुखभाई! मन को सुख कर दे, ऐसी है। आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं? ऐई! किरिट! क्या समझ में आया यह? कहा जाये नहीं। याद न रहे। यह लड़कों को याद रहे, ऐसा है यह तो, लकड़ी के दृष्टान्त से। लकड़ी निकाल डालने का लकड़ी का दृष्टान्त है यहाँ? यह राग और द्वेष, पुण्य और पाप मेरे हैं, यह बड़ी विपरीतता है।

मुमुक्षु : परोपकार तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में परोपकार। कहा न परोपकार में हर्ष-पुरुष बहुत देखे.... इसमें नहीं आया? आया था। शब्द आया था। आया था न! पाठ है, हों! उसमें

भी पाठ है। पहला शब्द था वह कहा। ११वाँ है न? यह ११वाँ आया? यह आया, देखो। वह परोपकार.... दूसरा आया, हों! परोपकाररत पहली में आया, देखो!

शांताः पांडित्ययुक्ताः यमनियमबलत्यागरैवृत्तवंतः
सद्गोशीलास्तपोर्चानुतिनतिकरणा मौनिनः संत्यसंख्याः।

लो, क्या कहा? देखो, इसमें है। कि धनवान, चारित्रवान, नियमवान, शान्तचित्त विद्वान, यमवान, शीलवान, तप, पूजा, स्तुति, और नमस्कार करनेवाले, मौनी, श्रोता, कृतज्ञ व्यसन और इन्द्रियों के जीतनेवाले, उपसर्गों के सहने में धीर-वीर, परिग्रहों से रहित और नाना प्रकार की कलाओं के जानकार असंख्यात मनुष्य हैं;... परोपकार इसमें नहीं आया, है यहाँ। किसमें आया था वह? दूसरे में आया वह। दूसरी, दूसरी देखो। यह रही।

ये चैत्यालयचैत्यदानमहसद्यात्रा कृतौ कौशला
नानाशास्त्रविदःपरीषहसहा रक्ताः परोपकृतौ।

लो! देखो आया। 'परोपकृतौ' पाठ है। परोपकार में रत। ऐसा।

निःशंगाश्च तपस्विनोषि बहवस्ते संति ते दुर्लभा
रागद्वेषविमोहवर्जनपराश्चित्तत्त्वलीनाश्च ये ॥२॥

निःसंगक, साधु हो जाये दिगम्बर मुनि। परन्तु उससे क्या? संकल्प-विकल्प पर दृष्टि है और पुण्य-पाप पर दृष्टि है। पर में से लीन होना छूटकर चिदानन्द की दृष्टि करना वह तो कोई विरल पुरुष है। यह है देखो 'परोपकृतौ' पर-उपकृत। कौन जाने यह सब देख लिया होगा यह? जयन्तीभाई! इससे भी भान हो सकता है। ऐसा कहा इन तीन से। आगमज्ञान से द्रव्य का स्वभाव भान होने पर सिद्धपद भविष्य में ऐसा ही हो जायेगा। ऐसा अनुमानज्ञान से, स्वसंवेदनज्ञान से ज्ञात होता है। सदा ही संसार रहेगा। द्रव्य की दृष्टि हुई। यह द्रव्य अनादि-अनन्त है, ऐसा जिसने निर्णय किया, उसे यह संसार नहीं रहेगा और यह सिद्धपद होगा, ऐसा यहाँ कहना चाहते हैं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष कृष्ण ५, शनिवार, दिनांक - ०४-०१-१९६४, गाथा-२०-२१, प्रवचन-२७

२१ गाथा। पंचास्तिकाय। ऊपर दो लाईन २० की है। इस तरह अनेक प्रकार से निश्चित होता है कि जीव संसारपर्याय नष्ट करके सिद्धपर्यायरूप परिणामित हो, वहाँ सर्वथा असत् का उत्पाद नहीं होता। हे भाई? क्या कहा? कि यह आत्मा अनादि-अनन्त वस्तु है। उसमें जो यह संसारपर्याय विकारी दशा आठ कर्म का निमित्त और उसमें विकारी दशा को जीव स्वयं करता है। वह विकारी दशा क्षण-क्षण में जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से अनादि से क्षण-क्षण में विकार को करता है। उस विकार का करना, इसका नाम संसार। अनादि काल से, नित्यनिगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक जैन दिगम्बर साधु द्रव्यलिंगी होकर गया और सातवें नरक में (गया), ऐसे निगोद, राजा, त्यागी, दया, दान के परिणाम करनेवाला, वह सब अनादि से विकार-पुण्य और पाप उदयभाव और राग तथा द्वेष, वे मेरे हैं, ऐसा करके अनादि से करता है। वह संसारपर्याय और विकारदशा-दुःखदशा उसे कहा जाता है। शान्तिभाई! अब यह तो दूसरी बात है। उसे नष्ट करके सिद्धपर्यायरूप परिणामित हो.... यहाँ तो ऐसी बात ली है जरा। जिस संसारपर्याय का नाश करके और अपना आत्मा पूर्ण आनन्द और ज्ञानस्वभाव (है), ऐसी अन्तर्दृष्टि, ज्ञान और रमणता द्वारा उस सिद्धपर्याय को प्राप्त-उत्पन्न करता है, ऐसी यहाँ सीधी बात है। मोक्षमार्ग से भी वह पर्याय होती है, यह अभी बात नहीं है। समझ में आया?

संसारपर्याय का—विकारी भाव का अनादि से पुण्य और पाप विकारी काम करे। किसके काम? पर के नहीं, पर्याय के। वह पर्याय का विकारी काम करे और यह विकार, वह दुःख है। उस दुःख में चौरासी लाख में अनन्त काल से परिभ्रमण करता है। उसे इस संसारपर्याय का नाश होकर.... यह संसार अर्थात् मिथ्यात्व, अज्ञान और राग-द्वेष। इसका स्वभाव चैतन्यमूर्ति, पूर्ण आनन्द और अखण्ड शुद्ध है, ऐसा आश्रय करके सिद्धपने की पर्याय को प्राप्त करे। बन्द रखो। गड़बड़ नहीं करो। समझ में आया? यह तो धर्मकथा है न, भाई! बात टूट जाये अन्दर से। देखो! गयी बात। क्या कहा?

यह आत्मा वस्तु है। अनन्त ज्ञान-दर्शन आदि गुण का धारक। उसकी गुण-

पर्याय अर्थात् विकारी पर्याय। उस गुण की विकारी पर्याय। पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत, भक्ति, काम और क्रोध, इन सबके काम करूँ, ऐसा भाव—मिथ्याभाव। इस भाव का करना, इसका नाम संसार। इसका नाम दुःखदशा। इसका नाश करके अर्थात् उसका व्यय अर्थात् अभाव करके सिद्धपद की पर्याय अनन्त काल में कभी अनन्त काल में सेकेण्ड (मात्र) हुई नहीं थी, उस सिद्धपर्याय को स्वयं प्रगट करके परिणमता है। स्वयं निर्मल आनन्द और ज्ञान की केवलज्ञानादि पर्यायरूप आत्मा ही स्वयं, द्रव्य स्वयं परिणमता है। उस सिद्ध की पर्याय का उत्पाद करनेवाला आत्मा और संसारी पर्याय का नाश करनेवाला भी आत्मा। उसे दूसरे कर्म के कारण से कोई सम्बन्ध है नहीं। कहो, समझ में आया? यह उपोद्घात। ऊपर पूरा किया।

गाथा - २१

एवं भावमभावं भावाभावं अभावभावं च।
 गुणपञ्जएहिं सहिदो संसरमाणो कुणदि जीवो॥२१॥
 भाव और अभाव भावाभाव अभावभाव में।
 यह जीव गुणपर्यय सहित संसरण करता इसतरह ॥२१॥

अन्वयार्थ :- [एवम्] इस प्रकार [गुणपर्ययैः सहित] गुण-पर्यायसहित [जीवः] जीव [संसरन्] संसरण करता हुआ [भावम्] भाव, [अभावम्] अभाव, [भावाभावम्] भावाभाव [च] और [अभावभावम्] अभावभाव को [करोति] करता है।

टीका :- यह, जीव उत्पाद, व्यय, सत्-विनाश और असत्-उत्पाद का कर्तृत्व होने की सिद्धिरूप उपसंहार है।

द्रव्य वास्तव में सर्वदा अविनष्ट और अनुत्पन्न आगम में कहा है; इसलिए जीवद्रव्य को द्रव्यरूप से नित्यपना कहा गया। (१) देवादिपर्यायरूप से उत्पन्न होता है, इसलिए उसी को (-जीवद्रव्य को ही) भाव का (-उत्पाद का) कर्तृत्व कहा गया है; (२) मनुष्यादिपर्यायरूप से नाश को प्राप्त होता है, इसलिए उसी को अभाव का (-व्यय का) कर्तृत्व कहा गया है; (३) सत् (विद्यमान) देवादिपर्याय का नाश करता है, इसलिए उसी को भावाभाव का (-सत् के विनाश का) कर्तृत्व कहा गया है; और (४) फिर से असत् (-अविद्यमान) मनुष्यादिपर्याय का उत्पाद करता है, इसलिए उसी को अभावभाव का (-असत् के उत्पाद का) कर्तृत्व कहा गया है।

-यह सब निरवद्य (निर्दोष, निर्बाध, अविरोद्ध) है, क्योंकि द्रव्य और पर्यायों में से एक की गौणता से और अन्य की मुख्यता से कथन किया जाता है। वह इस प्रकार है:-

जब जीव, पर्याय की गौणता से और द्रव्य की मुख्यता से विवक्षित होता है, तब वह (१) उत्पन्न नहीं होता, (२) विनष्ट नहीं होता, (३) क्रमवृत्ति से वर्तन नहीं करता इसलिए सत् (-विद्यमान) पर्यायसमूह को विनष्ट नहीं करता और (४) असत् को (-अविद्यमान पर्यायसमूह को) उत्पन्न नहीं करता; और जब जीव द्रव्य की गौणता से और पर्याय की मुख्यता से विवक्षित होता है, तब वह (१) उपजता है, (२) विनष्ट होता

है, (३) जिसका स्वकाल बीत गया है ऐसे सत् (-विद्यमान) पर्यायसमूह को विनष्ट करता है और (४) जिसका स्वकाल उपस्थित हुआ है (-आ पहुँचा है) ऐसे असत् को (-अविद्यमान पर्यायसमूह को) उत्पन्न करता है।

वह प्रसाद वास्तव में अनेकान्तवाद का है कि ऐसा विरोध भी (वास्तव में) विरोध नहीं है॥२१॥

इस प्रकार षड्रव्य की सामान्य प्ररूपणा समाप्त हुई।

गाथा - २१ पर प्रवचन

अब २१।२१ गाथा मूल।

एवं भावमभावं भावाभावं अभावभावं च।

गुणपञ्जएहिं सहिदो संसरमाणो कुणदि जीवो॥२१॥

भाव और अभाव भावाभाव अभावभाव में।

यह जीव गुणपर्यय सहित संसरण करता इस तरह॥२१॥

चार बोल है। एक भाव, एक अभाव। दो अलग। एक भावअभाव और एक अभावभाव। चार बोल हैं।

टीका :- यह, जीव उत्पाद, व्यय, सत्-विनाश और असत्-उत्पाद का कर्तृत्व होने की सिद्धिरूप उपसंहार है। क्या कहते हैं? इस जीव को नयी-नयी संसारपर्याय का उत्पाद करनेवाला और पूर्व की पर्याय का व्यय करनेवाला। यह भाव और अभाव दो की व्याख्या चली। एक लाईन में चार की व्याख्या करके विस्तार करेंगे। अनादि से आत्मा पहला उत्पाद अर्थात् भाव। कभी उत्पाद भी सुना नहीं होगा। उत्पाद क्या होगा? यह उत्पातिया जीव होगा, यह होगा? अनादि से जीव उत्पाद अर्थात् कि नयी पर्याय को-भव को मनुष्यभव को उत्पन्न करे और व्यय (करे)। यहाँ तो देव का दृष्टान्त कहेंगे। समझ में आया? और पूर्व की मनुष्य आदि जो पर्याय हो, उसका व्यय करता है। यह देह की बात नहीं, हों! उसकी गति अन्दर भाव। मनुष्यपने की भावदशा को उत्पन्न करे और पूर्व की भावदशा जो थी, उसे व्यय करे। वह अभाव हो गया।

सत् विनाश और असत् का उत्पादपना। अर्थात्? जो वर्तमान भाव है, उसका अभाव करता और वर्तमान में जो भविष्य का भाव नहीं, उसे उत्पाद करता हुआ, उसे कर्तापना होने की सिद्धिरूप उपसंहार है। कहो, समझ में आया इसमें? अब इसका तो विस्तार करेंगे। यहाँ तो चार बोल कहे। अनादि का आत्मा नयी पर्याय भव की, जैसे कि देव की (प्राप्त करे)। मुनि है न, इसलिए देव से बात ली है और सम्मुच्य समझाया है। देव की पर्याय स्वर्ग की, उसे उत्पन्न करे, उस भाव को उत्पन्न करे अपने पुरुषार्थ से। और पूर्व की मनुष्यपर्याय का व्यय करे, अभाव करे अपने पुरुषार्थ से। दो हुए?

अब जो देवपर्याय मिली थी, यहाँ मनुष्य का नाश करके देव (मिली थी), उस देव का जो भाव था, उसका क्षण-क्षण में अभाव करता जाता है। और आगामी गति जो वापस मिलने की है, वह अभी अभाव है, उसका भाव करता जाता है। अभाव के सन्मुख और भाव के विमुख। कभी सुना भी नहीं होगा वहाँ। अभी बारह महीने तो वह हो गया न? समझ में आया? यह चार बोल है न ऊपर? भाव, अभाव, भावअभाव, अभावभाव। इन चार की व्याख्या की। समझ में आया? समझ में आया? तो समझ में आया, इसके लिये तो कहते हैं।

वस्तु-आत्मा तो अनादि है। कहीं नया है? और नाश होता है, ऐसा है? अब यह आत्मा.... यहाँ दृष्टान्त देव से शुरु किया है। सारी ही गति को उठावे न, वह स्वयं तो मुनि हो, इसलिए इस कारण से। वर्तमान मुनि तो देवलोक में ही जाते हैं। धर्मी ज्ञानी, मुनि हों वे। समझ में आया? तो कहते हैं कि वह देवपर्याय की गति उत्पन्न की, उस उत्पन्न का करनेवाला आत्मा। कर्म नहीं। कर्म नहीं। उस जीव ने देवगति की पर्याय का उत्पाद किया है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। और पूर्व की मनुष्यगति जो ५०-६०-७० वर्ष थे, उस गति का उसने व्यय किया। वह स्वयं। कर्म ने नहीं। कर्म ने नहीं। उसकी गति का स्वयं ही अभाव करके भावरूप से देव में गया। दो बोल हुए।

तीसरा। जो देवरूप से गया, देवपने का भाव है अभी वहाँ। उसका भी अभाव करता जाता है अब। भव का अभाव। सामने गति में जाना है न वापस? मुनि तो वापस मनुष्य में ही आनेवाले हैं। समझ में आया? यह कुन्दकुन्दाचार्य आदि मुनि महा

भावलिङ्गी सन्त थे। महासन्त छठवें-सातवें गुणस्थान में विराजमान, आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव। कोई राग बाकी था, पुण्य बँधे तो अभी स्वर्ग में है। समझ में आया? यह स्वर्ग की पर्याय का भाव है वहाँ अभी। भाव समझ में आया? है। उसका अभाव करता जाता है। भाव का अभाव करता जाता है। और जो अभाव मनुष्यगति में जाने का, वह मनुष्यगति अभी नहीं है। वह अभाव है, उसका भाव करता जाता है। समझ में आया? शान्तिभाई! समझ में आया इसमें? इसमें समझ में आये अर्थात् वह है, यह नहीं। इसमें कहा जाता है उसमें। इसकी लकड़ी और बकड़ी, कुर्सी-बुर्सी और अमुक। कहो, समझ में आया इसमें? समझ में आया इसमें? ऐसा कहा जाता है। शान्तिभाई!

अब इसका विस्तार। चार बोल जो पाठ (में) थे, उनके शब्द का अर्थ किया।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : और जीवो! शब्द अन्तिम है तो पहले जीव लिया। यह 'जीवो संसरमाणो' अर्थात् कर्ता-फर्ता यह 'गुणपञ्जएहिं' उसके गुण की पर्यायों में इस प्रकार उत्पाद करे, व्यय करे, भाव का अभाव करे, नहीं उसका भाव करे। ऐसा अनादि से चला आता है।

अब इस ओर। ४५-४५। ४५ की पहली लाईन गुजराती। **द्रव्य....** अर्थात् आत्मा। वस्तु। वह वास्तव में सर्वदा अविनष्ट और अनुत्पन्न आगम में कहा है;.... द्रव्य तो नाश भी नहीं पाता और उत्पन्न भी नहीं होता। अविनष्ट अर्थात् विनष्ट—नाश पाता नहीं। विनष्ट अर्थात् कहीं आत्मा द्रव्य वस्तु नाश नहीं पाती। और वस्तु अनुत्पन्न है। वस्तु कहीं उत्पन्न नहीं होती। ऐसा आगम में कहा है। देखो! दृष्टान्त भी वापस। नहीं तो है तो ऐसा। तथापि आचार्य आगम का आश्रय लेकर (कहते हैं), आगम में तो ऐसा कहा है। वस्तु जो आत्मद्रव्य है, वह कभी नया उत्पन्न हो या हो वह जाये, ऐसा होता नहीं।

इसलिए जीवद्रव्य को द्रव्यरूप से नित्यपना कहा गया। जीव वस्तु को— जीवद्रव्य को द्रव्यरूप से अर्थात् टिकनेरूप से, द्रव्यरूप से नित्यपना कहने में आया है। नित्य आत्मा है। प्रत्येक आत्मा नित्य है। प्रत्येक परमाणु भी नित्य है। यहाँ दृष्टान्त जीव

का लिया है न! बाकी तो सब छहों द्रव्यों की बात लेनी है। छहों द्रव्य नित्य, वस्तुरूप से नित्य है। छह द्रव्य है न! खबर भी नहीं होगी। छह द्रव्य के नाम भी नहीं आते होंगे। जीव, पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल। यह छह द्रव्य भगवान ने—केवलज्ञानी तीर्थकर ने देखे। छह द्रव्य। कितने पैसे हैं, वह सब खबर है या नहीं? भले यह लड़के को सम्हलाने का परन्तु इसे खबर सब होती है, लो! यह छह द्रव्य। वे पैसे द्रव्य नहीं, हों! भाई ने कहा न। मोहनभाई ने वह याद किया न अपने आप। उन माणेकचन्द्रभाई का।

द्रव्य। द्रव्य अर्थात् वस्तु। भगवान ने छह जाति देखी। संख्या अनन्त। जाति छह। एक आत्मजाति, एक पुद्गल की जाति, एक काल, एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश—छह। परन्तु संख्या से अनन्त। एक आत्मा अनन्त, परमाणु अनन्त, कालाणु असंख्य, एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश एक-एक द्रव्य है। यह भगवान ने केवलज्ञान में त्रिलोकनाथ परमात्मा ने, वीतराग जैन परमेश्वर ने छह द्रव्य देखे। उन छह में संख्या अनन्त। कहा, यह तो समझ में आता है या नहीं? यह मनुष्यपना कहा जाता है, वह मनुष्यपना संख्या कितनी? अलग-अलग ऐसा। ऐसे अनन्त जीव और अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, एक आकाश। वह सर्वत्र सर्वथा कभी द्रव्य नाश नहीं होता और द्रव्य नया उत्पन्न नहीं होता। इसी तरह जीवद्रव्य। यहाँ दृष्टान्त जीव का है न। सर्वदा अविनष्ट और अनुत्पन्न आगम में कहा है; इसलिए जीवद्रव्य को द्रव्यरूप से नित्यपना कहा गया।

अब (१) देवादिपर्यायरूप से उत्पन्न होता है.... यह जीव जब देव की दशारूप स्वर्ग में उपजता है। होता है, इसलिए उसी को (-जीवद्रव्य को ही) भाव का (उत्पाद का) कर्तृत्व कहा गया है;.... देखो! यह देवगति के उत्पाद का करनेवाला वह आत्मद्रव्य है। कर्म नहीं, दूसरा ईश्वर नहीं, कोई तीसरी चीज़ नहीं। आत्मा ने जैसे भाव किये, वैसे भावरूप देव आदि। देव से शुरु किया है। आदि अवस्थारूप से उपजता होने से। कौन? जीवद्रव्य। उसी को (-जीवद्रव्य को ही) भाव का.... अर्थात् देवगति के (उत्पाद का).... देवगतिरूप से उपजने का। गाथा आ गयी। तुम कहते थे न २१वीं गाथा आयेगी या नहीं? भूल गये होंगे। कर्तृत्व कहा गया है;.... आहाहा!

जीव स्वयं अनादि-अनन्त। परन्तु जब देवगति में उपजता है, तब देवगति की पर्याय का कर्ता आत्मा है। उसका कर्ता कर्म नहीं। समझ में आया? यहाँ तो वास्तव में उस समय की पर्याय करती है, उसका कर्ता जीवद्रव्य ऐसे सीधा लिया है। पूर्व के भाव के कारण से भी देवगति, ऐसा भी यहाँ तो नहीं लिया। उस समय की द्रव्य-जीव वस्तु है, वह यहाँ एक समय की देवगति को (अपने) कारण से उत्पन्न करती है।है। यह अभी लेना नहीं। शुभ परिणाम से, ऐसा भी लेना नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : सीधा कर्ता अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जीवद्रव्य उस देवगति की पर्याय का सीधा कर्ता अर्थात् वर्तमान उस पर्याय का वह वर्तमान द्रव्य कर्ता। पूर्व के शुभ दया, दान, भक्ति के परिणाम शुभ थे, इसलिए देव की पर्याय का वह परिणाम कर्ता, ऐसा नहीं। नवनीतभाई! उस समय का जीवद्रव्य ही स्वयं कर्ता। उस समय की पर्याय देवगतिरूप से उपजने के भाव का उत्पाद का जीव स्वयं ही कर्ता। समझ में आया? पूर्व में इसने दया, दान, भक्ति, पूजा, शुभभाव किये थे, इसलिए देवगति का यह भाव कर्ता, ऐसा नहीं लेना है। यहाँ तो द्रव्य और पर्याय। समझ में आया? यह पहले बोल का अर्थ हुआ। भाव का। उसमें कहा था न? जीव और उत्पाद। टीका की पहली लाईन। उसका एक शब्द हुआ।

इस जीववस्तु को अपनी उस देवगति की पर्यायरूप उपजा, उसका कर्ता जीवद्रव्य ही है। भाई! साथ में सुनानेवाले मिले थे और साथ में बैठे थे, हमें सुनाया; इसलिए हमें देवगति के भाव हुए और हमें देवगति हुई, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह देवादि में चारों लें तो मनुष्यरूप से उपजने की पर्याय का कर्ता भी वह है। यहाँ तो वह देव और मनुष्य ऐसे उपजाना है न? समझ में आया? यह मनुष्यपनेरूप उपजे तो उस मनुष्यपने की गति के परिणाम का कर्ता जीवद्रव्य। इसी तरह नारकी में जाये और नारकी की गतिरूप उपजे तो नरक की गति के भाव का, गति के भाव का कर्ता जीवद्रव्य। इसी प्रकार ढोर में जाये, निगोद में जाये—आलू, शकरकन्द में जाये। तत्त्व का बहुत विरोध किया हो, तत्त्व का भान न हो, सत्य क्या है, असत्य क्या करता हूँ, ऐसी तत्त्व की बहुत ही विराधना की हो तो वह जीव निगोद में एक शरीर में अनन्त

जीव में निगोद की गति की पर्याय को भी जीवद्रव्य स्वयं प्राप्त करके कर्ता होता है। समझ में आया? इसी तरह बकरा और कौआ तथा तोता और बाघ और सिंह रूप से गतिरूप से उपजे तो उस तिर्यच की गति की पर्याय का कर्ता जीवद्रव्य स्वयं उत्पाद कर्ता उसका है। आहाहा! समझ में आया? कहो, यह तो सीधी बात है। उसे ऐसे भाव का, जिस गतिरूप उपजा, उसके भाव का वह जीव कर्ता है। कोई ईश्वर कर्ता नहीं, कोई कर्म कर्ता नहीं, किसी दूसरे ने सहायता दी, इसलिए गति की पर्याय हुई, ऐसा है नहीं। नरक की गति की पर्याय का करनेवाला भी आत्मा ही है। ढोर-पशु की गति का उत्पन्न करनेवाला भी आत्मा ही है। यह तो सरल भाषा है। समझ में आया? आहाहा!

पश्चात् (२) मनुष्यादिपर्यायरूप से नाश को प्राप्त होता है। यहाँ मनुष्य का देह नाश हुआ। देह नहीं, गति। एकदम देव में गया। तो कहते हैं कि वह मनुष्यादिपर्यायरूप से नाश को प्राप्त होता है। कौन? जीवद्रव्य। उसी को अभाव का (व्यय का).... इस मनुष्यादिपर्याय के नाश का कर्तृत्व जीवद्रव्य का कहा गया है;....

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। आयुर्कर्म को नहीं। यह बात ही यहाँ नहीं ली। कर्म की पहली कही थी न। आयुर्कर्म के कारण वहाँ उपजा और यह कर्ता वह आयुर्कर्म, ऐसा है ही नहीं। यह तो सब निमित्त की बातें हैं। आहाहा! बराबर है? सेठी! यह आयुष्यकर्म के कारण यहाँ आयुष्य पूरा हुआ; इसलिए मनुष्य का आयुष्य पूरा हुआ और देव का आयुष्य उपजा, देव के आयुष्य के कारण से। नहीं। ऐसा नहीं। वह तो जड़ की अपेक्षा से बात है।

उसके मनुष्यपने की जो गति की पर्याय थी। उसका नाश करनेवाला, अभाव करनेवाला जीवद्रव्य है। और देवपने की पर्याय का उत्पाद करनेवाला भी जीवद्रव्य ही है। समझ में आया? यह लोग बहुत कहते हैं न? लो, यह नरकगति में श्रेणिक राजा का जीव गया, वह कर्म के कारण गया। नहीं, उसकी नरकगति की पर्याय का कर्ता वह जीवद्रव्य है। आहाहा! नहीं तो क्षायिक समकित्ती, तीर्थकरगोत्र बाँधा है। पहले नरक में हैं, चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में हैं श्रेणिक राजा। आत्मभान लेकर गये हैं कि राग

और पुण्य के विकल्प से हम भिन्न हैं। चिदानन्द हैं। और क्षण-क्षण में तीर्थकरगोत्र (बाँधने का) भगवान के समीप शुरु किया था। भगवान के समीप—महावीर परमात्मा के समवसरण में। वे नरक में गये तो अभी तीर्थकरगोत्र बाँधा करते हैं, वहाँ क्षण-क्षण में। वह गति की पर्याय जीवद्रव्य ने की है। उसमें बड़ी चिल्लाहट करते हैं अभी के कितने ही। ऐई! कर्म के कारण नरक में जाये। नरक में जाने का कहीं भाव हो किसी को? इसलिए श्रेणिक राजा नरक में गये, वे कर्म के कारण गये हैं। अरे! भगवान! तुझे खबर नहीं, भाई! आहाहा! वह नरकगति की समय-समय की पर्याय वहाँ उत्पन्न हुई स्वयं गति में, उसका उत्पन्न करनेवाला जीवद्रव्य है।

यहाँ श्रेणिक राजा मनुष्यगति में थे। अन्त में जरा अपघात का भाव भी हुआ था अन्त में। वह स्वयं करनेवाले हैं, कर्म नहीं। इस मनुष्य की गति (में) राजा थे। तीन लोक के नाथ होनेवाले भविष्य में। अभी नरक में से निकलकर। तीर्थकर जगतगुरु। परन्तु वह मनुष्यपने के काल में गति का नाश किया, वह स्वयं ही किया है। नरक में उत्पन्न होने की गति-गति जीव ने ही की है। समझ में आया? नवनीतभाई!

समय-समय की पर्याय का कर्ता तेरा द्रव्य है। कोई दूसरा कर्ता-फर्ता है नहीं। ईश्वर तो नहीं परन्तु कर्म भी तेरी पर्याय का कर्ता नहीं। सीधी बात। कहो, समझ में आया इसमें? समझ में आया? और समझ में आया इसमें?—यह विश्राम का वाक्य है। आहाहा! मनुष्यादि, ऐसे देवादि, ऐसे नरकादि, ऐसे मनुष्यादि। देखो! एक न्याय। एक निगोद में जो था निगोद में। अब वह निगोद की गति का नाश करनेवाला भी वह जीवद्रव्य और वहाँ से मरकर मनुष्य हुआ, मनुष्यरूप से उत्पन्न हुआ, वह जीवद्रव्य मनुष्य की गति का उत्पाद करनेवाला है। आहाहा! समझ में आया? निगोद में, हों! जो अनन्त काल से पड़ा है। एक शरीर में अनन्त जीव दुःखी.... दुःखी.... महा दुःखी—महादुःखी। वह दुःख की दशा निगोद की गति में थी, उसका नाश करनेवाला भी वह जीव अन्दर है। वह जीव उसकी गति का नाश करके, मनुष्य की पर्याय का उत्पाद करनेवाला वह जीवद्रव्य है। आहाहा! बहुत स्पष्ट किया है। समझ में आया? छोटाभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कैसे इसका पुरुषार्थ वीर्य जो काम करता है न क्षण-क्षण में। वीर्यगुण है, वह क्षण-क्षण में काम करता है। प्रत्येक गुण क्षण-क्षण में काम करता है। गुण-पर्याय क्षण-क्षण में काम करती है। जैसी इसकी दृष्टि और जैसा इसका भाव और जैसी इसकी योग्यता। वह स्वयं से उस विकार के परिणाम और गति को करता है। पूर्व की गति का नाश और नयी गति का उत्पाद स्वयं अपने से करता है। पर के कारण से कुछ है लेना या देना? मनसुखभाई! अब तो निवृत्त होकर यह करने जैसा है अब। किया करे यह धमाल कितनी की? अभी यह सब कहाँ रखते हैं, मेरे सेठिया भी। चलो... चलो.... साथ में कहो, समझ में आया? आहाहा! परन्तु क्या बात!

कहते हैं कि चींटी में तिर्यचरूप से गया। उस चींटी का शरीर नहीं परन्तु वह गति होकर। उस गति की पर्याय का करनेवाला जीवद्रव्य स्वयं है। कर्म नहीं, जड़ नहीं। पूर्व में भाव किये, इसलिए ऐसा भी नहीं। वर्तमान पर्यायरूप से उत्पन्न हुआ, उसका कर्ता जीवद्रव्य, वर्तमान त्रिकाली द्रव्य पर्याय का कर्ता है। आहाहा! परन्तु द्रव्य क्या? पर्याय क्या? नाम भी सुना न हो अभी। मनसुखभाई! मशीन की खबर हो कि दो मशीन यहाँ मुम्बई में, एक मशीन नैरोबी में और अमुक में और सब।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। उसका-परज्ञेय का ज्ञान भी आत्मा का ज्ञान सच्चा हो तो ज्ञान उसका किया कहलाये। नहीं तो वह भी खोटा। समझ में आया? मलूकचन्दभाई! आहाहा! मलूकचन्दभाई को याद करना पड़े किसी समय। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! क्या थोड़े में भी बहुत। गागर में सागर भर दिया है न्याय में।

अहो! आत्मा अनन्त गुण के समूहस्वरूप तू, उसके सब जिस-जिस प्रकार की हो... प्रकार का कर्ता (जीवद्रव्य है)। समझ में आया? ऐसा यदि निर्णय करे तो आत्मद्रव्य शुद्ध चिदानन्दमूर्ति अखण्ड आनन्द है, उसकी दृष्टि करके सम्यग्दर्शन की पर्याय का कर्ता भी जीवद्रव्य होता है। समझ में आया? आहाहा! अनादि से यह विकार.... विकार.... विकार.... विकार.... मैं हूँ कैसा? विकारमय हूँ? विकार तो

कृत्रिम क्षणिक अवस्था वह कार्य है। मैं द्रव्य हूँ, वस्तु हूँ न! जीवद्रव्य तो सर्वदा है, ऐसा कहा। तो सर्वदा वह कौन है? क्या है? यह ज्ञान, आनन्द और शान्ति का भण्डार है। ऐसी अन्तर्दृष्टि करने से उसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शान्ति की पर्याय हो, उसका कर्ता वह जीवद्रव्य है। कहो, समझ में आया? उस लकड़ी का कर्ता नहीं। कान्तिभाई! यह सच्ची बात है? है या नहीं अभी? तुम्हारे क्या धन्धा है वह है या बदला है? कौन जाने। फर्नीचर। कौन जाने घड़ीक में बदले बनिया तो। न पोसावे तो यहाँ करे, यहाँ करे। चारों ओर बदला बदल।

मुमुक्षु : अधिक लाभ हो तो बदले।

पूज्य गुरुदेवश्री : अधिक लाभवाला हो तो उसमें रहे, नहीं तो फिर बदलकर दूसरा करे। इसी प्रकार आत्मा जिसमें लाभ न देखे, वह विकार क्रिया कर-करके मर गया उसमें लाभ कुछ नहीं हुआ, हों! बनिया तो उसे व्यापारी कहते हैं कि लाभ का धन्धा करे। नुकसान का करे?

मुमुक्षु : दुःख का लाभ नहीं हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख का लाभ, वह कहीं लाभ कहलाये? मनसुखभाई! वह दुःख.... दुःख.... दुःख.... दुःख.... दुःख.... अनादि। यह पुण्य के भाव भी दुःख, पाप के भाव भी दुःख। शुभाशुभ सब दुःख। गति सब दुःख। उस दुःख की पर्याय का कर्ता मैं, ऐसा यदि निर्णय करे तो, अरे! द्रव्य तो आनन्द है। ज्ञान और शान्त अविकार वीतराग विज्ञानरस का कन्द आत्मा है। तब उसकी दशा में वीतराग विज्ञानपना भगवान को प्रगट हुआ। अन्दर में था वह (प्रगट हुआ)। वह वीतराग विज्ञान चैतन्य के स्वभाव की दृष्टि करना और उसकी पर्याय प्रगट होना, उसका कर्ता भी जीव ही है। समझ में आया?

(२) मनुष्यादिपर्यायरूप से नाश को प्राप्त होता है। ऐसे तो निगोद, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, सब लिया है या नहीं? आहाहा! उस निगोद में से नाश होकर और मनुष्यरूप से आवे तो निगोद की दशा का नाश करनेवाला जीवद्रव्य है और मनुष्य की पर्याय का उत्पन्न करनेवाला भी जीवद्रव्य है। समझ में आया? उसी को अभाव का (व्यय का) कर्तृत्व कहा गया है;.... निगोद में था, उस गति का नाश अर्थात् अभाव का

कर्ता जीव हुआ। मनुष्यपने का नाश, उस अभाव का कर्ता हुआ न। गति का अभाव किया। मनुष्यगति का अभाव किया तो अभाव का कर्ता हुआ। देवगति की पर्याय का भाव किया तो भाव का कर्ता हुआ। अभाव का भी कर्ता स्वयं, भाव का कर्ता भी स्वयं।

(३) सत् (विद्यमान) देवादिपर्याय का नाश करता है.... क्या कहते हैं ? अब वह तीसरा भव लिया। यहाँ मनुष्य का नाश करके जो देव हुआ था न ? इसी प्रकार यहाँ नाश करके दूसरा भव हुआ था न। अब उस दूसरे भाव की बात ली है कि वह भाव जो वहाँ है—देवगतिरूप से उपजा, ऐसा भाव, उसका नाश करता जीवद्रव्य। वह उसका अभाव करता है। और उसे नाश करता है इसलिए उसी को भावाभाव का (सत् के विनाश का).... भाव अर्थात् सत्, अभाव अर्थात् विनाश। देवपने के भाव की अस्ति का अभाव करता हुआ वह कर्तापना जीवद्रव्य को कहा गया है। समझ में आया इसमें ? जमुभाई ! मनसुखभाई ! दो मनसुखभाई हैं सामने-सामने। भूराभाई के चिरंजीवी हैं। पोरबन्दर। खजूर के बड़े व्यापारी। व्यापारी तो लाभ देखे वहाँ जाये। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि यदि व्यापारी सच्चा बनिया हो तो यह पुण्य और पाप, राग और द्वेष का व्यापार तू करता है, भाई ! वह दुःख का-नुकसान का धन्धा है। वह नुकसान का धन्धा है। कहते हैं कि परोपकार के लिये शुभभाव, वह नुकसान का धन्धा है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता था ? मनसुखभाई करते हैं ? धूल में भी करते नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी ने किया हो किसी दिन, हराम है। इसने भाव किये हैं। शुभराग किया हो किसी समय। वह शुभराग दुःखरूप है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : मानपत्र अब ऐसे के ऐसे देनेवाले उसमें पागल हों। पागल के अस्पताल में सब पागल इकट्ठे हुए हों। नहीं ? नेमिदासभाई ! लो, यह स्थानकवासी में बड़े थे वहाँ कलकत्ता में। सेक्रेटरी या क्या कुछ थे। सेक्रेटरी। मानपत्र दे बड़ा पूंछड़ा। वह कहीं गिरवी रखा जाता है ? कि भाई मरकर कुछ जाना है रखो अब गिरवी। घरेणे

समझते हो ? गिरवी-गिरवी। गिरवी रखते हैं न ? गिरवी रखते हैं न ? आहाहा !

कहते हैं कि प्रभु! एक बार निर्णय तो कर, भाई! तू एक जीवद्रव्य है। भगवान अनादि-अनन्त पदार्थ है तू। उसकी वर्तमान दशा पुण्य और पाप, काम और क्रोध, दया और दान, व्रत और भक्ति, वह विकार के परिणाम, वे अनन्त काल से प्रवाह से करता आता है। और उस विकार के परिणाम उस दुःखरूप का कर्ता तू ही है। उस तेरे दुःख का कर्ता तू ही है। अरे! किसने दुःख डाला ? ऐसी चिल्लाहट मचाये। परन्तु कौन डाले ? शरीर का रोग, वह दुःख नहीं। निर्धनता, वह दुःख नहीं। बेइज्जती, वह दुःख नहीं। पुत्र मरे, वह दुःख नहीं। उसमें द्वेष करता है कि अरे ! ऐसा कैसे होगा ? उस द्वेष नाम के परिणाम को भगवान दुःख कहते हैं। संयोग में दुःख नहीं, भगवान आत्मा के स्वभाव में दुःख नहीं। पर्याय में दुःख, ऐसा कैसे ? और यह कैसे ? यह किया और यह किया ऐसे शुभाशुभ विकल्प राग करे। वह राग वह आकुलता, वह दुःख, उसका कर्ता जीव है। बनिया को लाभ का धन्धा करना हो तो इस दुःख के कर्तापने की दृष्टि छोड़कर मैं शुद्ध द्रव्यस्वभाव ज्ञायकमूर्ति हूँ, ऐसी दृष्टि करे तो उसे सुख की पर्याय का कर्ता पर्यायभाव प्राप्त होता है। बाकी कुछ बातें हैं सब। समझ में आया ? चन्दुभाई ! बराबर है यह ?

मुमुक्षु : ऐसा का ऐसा....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा का ऐसा अर्थात् ? कौन सा ? इस शरीर के रजकण तो इसकी पर्याय है, जड़ है, वह तो उसके कारण से चलती है। तुम्हारे हिलाने से हराम चलता हो तो। हरामी ने हरामरूप से माना है। यह भाषा है ऐसी। क्या कहे—हरामजादा ? ऐसा वहाँ लिखा है। एक अनुभवप्रकाश है। दीपचन्दजी साधर्मी-ज्ञानी हो गये हैं। वे कहते हैं, हरामजादा ! तू दूसरे का दोष निकालता है।भाई ! हराम का जादा-पुत्र, ऐसा। विकार को तू कर, दुःखी तू हो और जगत की अवस्था पदार्थ उसके कारण से हो, यह मेरे कारण से होता है, ऐसा हरामी लाया कहाँ से ? आया कहाँ से तुझे पचाना आया ? जगत के पदार्थ वे टिककर उसके कारण से पलट रहे हैं। आत्मा अनन्त और परमाणु। क्योंकि यह तो बात करते हैं यहाँ कि प्रत्येक द्रव्य कायम रहकर उसकी

वर्तमान पर्याय का वह द्रव्य कर्ता। यहाँ तो जीव का दृष्टान्त दिया है। बाकी यह परमाणु भी रजकण मिट्टी है। यह अनन्त रजकण का पिण्ड है। वे रजकण कायम रहकर यह अवस्था ऐसे.... ऐसे.... ऐसे.... होना, उस अवस्था का कर्ता वे परमाणु हैं। आत्मा नहीं। परन्तु गले उतारना भारी कठिन। समझ में आया ?

यह तो परसों आया नहीं था ? आचार्य कहते हैं कि हम अनन्त जितने द्रव्य हैं, उनका उस समय की पर्याय का उत्पाद उसे करनेवाले ऐसा हमें देखने में आता है। आया था न उसमें कहीं ? देखो ! देखो इसमें आता है। देखो, इसमें आता है। देखो ! पृष्ठ ३८। उसमें पृष्ठ ३८ है। नीचे से तीसरी लाईन। नीचे से है न तीसरी ? जो द्रव्य... अर्थात् वस्तु। वस्तु अर्थात् आत्मा और परमाणु इत्यादि सब। **पूर्व पर्याय के वियोग से....** पूर्व की अवस्था के नाश से। वियोग अर्थात् नाश। **उत्तर पर्याय के संयोग से होती उभय अवस्था को आत्मसात् (अपनेरूप) करता हुआ....** प्रत्येक रजकण, प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक कालाणु, प्रत्येक जीव पूर्व अवस्था से वियोग अर्थात् पूर्व की दशा से नाश पाता हुआ। उत्तर अर्थात् नयी दशा से संयोग अर्थात् उत्पन्न होता हुआ और दोनों अवस्था को आत्मसात् करता हुआ। वह **विनाश पाता हुआ और उपजता हुआ दिखाई देता है,....** नवनीतभाई ! कहते हैं कि परमाणु परमाणु उसकी पूर्व अवस्था का वियोग और नयी अवस्था का उत्पाद उसमें हो रहा है—ऐसा हमें दिखाई देता है। क्योंकि हम अनन्त द्रव्यों को मानते हैं। अनन्त। तो अनन्त का उत्पाद का एक-एक पर्याय का वह-वह करनेवाला हमें दिखाई देता है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त द्रव्य हैं या नहीं ? अनन्त परमाणु हैं या नहीं ? तो अनन्त परमाणु वे परमाणुरूप से रहकर हमें द्रव्य अनन्त भासित होते हैं। और अनन्त भासित होने पर प्रत्येक द्रव्य की पर्याय उससे उत्पन्न होती है, उससे पूर्व का व्यय होता है और अनन्त को मानने से अनन्तपना हमें भिन्न-भिन्न उत्पाद का भासित होता है, ऐसा हमको.... भाई ! कहाँ किया यह ? अन्दर का क्या करे ? परन्तु अनन्त मानता है या नहीं ? समझ में आया ?

अजीवद्रव्य को मानता है या नहीं? और अजीव परमाणु अनन्त मानता है या नहीं? अनन्त है तो हमें ऐसा देखने में आता है कि प्रत्येक अनन्त-अनन्तरूप से प्रत्येक भिन्न-भिन्न रहकर अपने समय-समय की अवस्था को उत्पन्न करता है, पूर्व की अवस्था व्यय करता है। ऐसा हमें श्रुतज्ञान में देखने में आता है। नवनीतभाई! समझ में आया? अरे! भगवान! अवधिज्ञानी परमाणु को देखे। तुमने यह कैसे कहा? देखने में आवे कैसे कहते हो? अन्दर के परमाणु अन्दर क्या करते हैं पेट में, यह तुम कहते हो कि हमें देखने में आते हैं। वे परमाणु अपनी नयी अवस्था से स्वयं से उपजते हैं, पुरानी अवस्था से नाश (पाते हैं वे) हमने दिखाई देते हैं। सुन न! हम अनन्त को मानते हैं या नहीं? अनन्त रजकण हैं, ऐसा मानते हैं या नहीं? तो हमे वहाँ रहे हुए रजकण अनन्त में एक भिन्न रहा है या नहीं? अनन्त से एक पृथक् रहा है या नहीं? ऐसा एक दूसरा अनन्त से भिन्न, ऐसे तीसरा अनन्त से, ऐसा प्रत्येक भिन्न-भिन्न। तो वह भिन्न-भिन्न हम अनन्त मानते हैं, उसकी नयी-नयी पर्याय उससे होती है, ऐसा हमें दिखाई देता है।

यह दवा के रजकण ने अन्दर जाकर रोग मिटाया, ऐसा हमें दिखाई नहीं देता, ऐसा कहते हैं। शान्तिभाई! क्यों? दवा के रजकण भिन्न और यह क्षुधा के-रोग के रजकण भिन्न। इस रजकण की पर्याय इसकी इससे उत्पन्न होती है, पूर्व की अवस्था का व्यय होता है, ऐसा हमें दिखाई देता है। क्योंकि हम अनन्त को अनन्तरूप से प्रतीति में लाये हैं। यह अनन्त का अनन्तपना तब रहता है कि प्रत्येक पर्याय स्वयं से उपजती है और पूर्व से नाश स्वयं से होती है, ऐसा उसका अनन्तपना रहता है, ऐसा हम देखते हैं। यह केवलज्ञान बिना, अवधिज्ञान बिना, मनःपर्ययज्ञान बिना मति और श्रुतज्ञान में। आहाहा! न्यालभाई!

तुम कहते हो कि हमसे यह अँगुली चली। कहाँ से लाया यह मूर्खाई? नहीं मानता तू अनन्त द्रव्य को? तेरे ज्ञान की एक समय की पर्याय अनन्त द्रव्य को अनन्त है, उसे स्वीकार करने की ताकतवाली पर्याय है। ऐसे अनन्त को यदि तेरी ज्ञानपर्याय स्वीकार करे तो अनन्त-अनन्तरूप से भिन्न-भिन्न रहकर समय-समय का उत्पाद करे और व्यय करे, ऐसा हमें ज्ञान में देखने में आता है। आहाहा! नेमचन्दभाई! बराबर है? न्याय से होगा या नहीं?

यह तो अकेला रहस्य, जैनदर्शन वीतराग का कहा हुआ मक्खन का पिण्ड है। आहाहा! समझ में आया? यह फर्नीचर को सुतार करता है, ऐसा हमें दिखाई नहीं देता, ऐसा कहते हैं। क्यों? कि फर्नीचर की जो लकड़ी है, उसमें अनन्त परमाणु हैं। एक-एक परमाणु में एक-एक समय में नयी अवस्था उत्पन्न होती है, पूर्व अवस्था नाश होती है, ऐसा हम अनन्त को देखते हुए, ऐसा देखते हैं। बसूला ने फर्नीचर बनाया, सुतार ने बनाया, ऐसा हमें दिखाई नहीं देता। तुझे दिखाई देता है, तो तेरा खिचड़ा और मूढ़ दशा है। नवनीतभाई! यह तो मक्खन की बात है। आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने थोड़े में भी बड़ा समुद्र भर दिया है। एक-एक शब्द में, एक-एक न्याय में पूरी दुनिया का नितार, निस्तार करके कहते हैं, यह वस्तु है। किसे करेगा? कहाँ जायेगा तू? तेरी पर्याय का तू कर्ता। वह परमाणु शरीर, वाणी, दाल, भात, सब्जी, मकान वह अनन्त परमाणु का पिण्ड है, उसमें तू अनन्त मानता है? अनन्त है। तो एक-एक परमाणु उसके कारण से वहाँ उत्पाद हो रहा है। उसे दूसरा परमाणु उत्पन्न नहीं करता तो कुम्हार और सुतार करे, यह बात तीन काल और तीन लोक में सत्य नहीं है। शान्तिभाई! कभी सत्य सुना नहीं। भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर.... णमो अरिहंताणं रटे। भगवान जाने अरिहन्त कैसे होंगे? आहाहा!

यहाँ कहा था, यह उपजता हुआ दिखाई देता है। भगवान! यह नरक के नारकी में शरीर के अनन्त रजकण का फेरफार कुछ हो वह रजकण का रजकण से। ऐसा तुम कहते हो, हमें दिखाई देता है? कहे, हाँ। यहाँ पानी गिरने पर यहाँ गला जरा गीला हो और सूखा सूख जाये, उसका कर्ता वह पानी हम नहीं देखते। वह रजकण भिन्न-भिन्न एक पानी से भिन्न इस कण्ट के रजकण हैं। कण्ट के अनन्त रजकण का यह पिण्ड कण्ट अन्दर है। एक-एक रजकण अनन्तरूप से हमने स्वीकार किये हैं, जाने हैं। भगवान ने कहे, हमारे ख्याल में है। तो एक-एक रजकण नयी-नयी अवस्था को स्वयं से उपजाकर करता है। दूसरा रजकण नहीं, दूसरा आत्मा नहीं, दूसरा कोई द्रव्य नहीं। मनसुखभाई! यह खजूर का जहाज आत्मा ला नहीं सकता। ऐई! मनुभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अब ऐसा होगा? अभी उतारा था बड़ा सवा लाख का। बादाम-पिस्ता और क्या कहलाता है? क्या कहलाता है वह? मेवा, मेवा। मेवा का जहाज उतारा था अरबस्तान में से। हम उस दिन वहाँ थे। वहाँ आया था समय से। ईरान से आया था। वहाँ ही था। अरे! भगवान! क्या हुआ यह? क्या होता है यह? भाई! तुझे खबर है? मनसुखभाई!

इस प्रकार सात तत्त्व की बातें करे। जीव और जड़... जीव और जड़... जीव और अजीव। अजीव को जीव माने तो मिथ्यात्व, जीव को अजीव माने तो मिथ्यात्व। परन्तु यह एक अजीव को सब अजीव का कर्ता माने, वह मिथ्यात्व। एक जीव को अनन्त जीव की पर्याय का कर्ता माने, वह अजीव को जीव माना, यह मिथ्यात्व है। फूलचन्दभाई! अरे... अरे... यह! समझ में आया? मनसुखभाई! लो, यह तुम्हारे पिता यह उत्तराधिकार रख गये हैं। पैसा तो पैसे के पास रह गया।

यह सत्य बात इसे रुचनी और बैठनी चाहिए। एकदम। कोई रजकण एक रजकण की पर्याय मुझसे होती है, यह लाया कहाँ से? क्या उस परमाणु में उत्पाद-व्ययपना उसके कारण से नहीं है, वह तू वहाँ करने गया? कहते हैं, दवाखाना जीव ने किया नहीं। यह पैसा अफ्रीका से उगाहकर जीव लाया नहीं। अरे... अरे... यह बात। ऐई! मोहनभाई! क्या होगा इसमें? यह रंगून से मोहनभाई रुपये लेकर आये थे एक बार, कहते हैं। नहीं, नहीं। हराम लाये हो तो। ऐसा कहते हैं। मोहनभाई!

मुमुक्षु :लाये थे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ...से रजकण आये थे। वे आये थे उसमें यह लाया था, यह कहाँ से घुसाया? समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इसने असत् को सत् रूप से माना है। बड़ा अन्याय करता है द्रव्य का और अपने ज्ञान का बड़ा अनादर करता है। ज्ञान का ऐसा स्वभाव है कि अनन्त जैसे पृथक्, वैसे उत्पन्न हो, उसे उस प्रकार से स्व को जानते हुए पर को जाने, ऐसा उसका स्वभाव है। ऐसा ज्ञान न जानता हुआ पर को मैं करता हूँ और यह मैं हुआ

तो यह पर्याय हुई, बड़ा ज्ञान में खून करता है उसका। चैतन्य के ज्ञाता प्राण को काटकर रहेंसी डालता है।

मुमुक्षु :

२० पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो जितना आया उतना आया उसमें पूरा सब। उसमें कहाँ बाधा है। कहो, न्यालभाई! आहाहा! पत्थर-बत्थर को क्या किया, यह मकान-बकान न? धनजीभाई ने बहुत पैसे इकट्ठे किये हैं। गाँव में देश में रहकर लो। लल्लूभाई आये थे शाम को, वापस रहे नहीं। चले गये, एकदम भाग गये लगते हैं। अभी दो-तीन दिन पहले आये थे। रुकते नहीं। कौन जाने क्या होगा? कहो, समझ में आया इसमें?

यह विद्यमान देवादि पर्याय का नाश। यह तो जीव के दृष्टान्तरूप से है न, भाई! यह तो पहले से कहते हैं, यह तो दृष्टान्त देते हैं। इससे छहों द्रव्य की पर्याय प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र करता है, ऐसा जानना। समझ में आया? यह सत् अर्थात् देवादि पर्याय का नाश करता हुआ। अर्थात्? भाव का अभाव करता हुआ। पहले भाव करता, ऐसा कहा था। प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्याय को करता है, ऐसा कहा। दूसरा ऐसा कहा, अपनी पूर्वपर्याय का व्यय करता है, ऐसा कहा। तीसरे में ऐसा कहा, अपनी वर्तमान पर्याय है भावरूप, उसका अभाव करता है। और फिर चौथे में कहेंगे अब, देखो!

(४) फिर से असत् (-अविद्यमान) मनुष्यादिपर्याय का उत्पाद करता है....
 फिर से अर्थात् वह देव कहा था न? वह देव पहले मनुष्य लिया था न। मनुष्य में से देव और देव में से फिर से वापस मनुष्य। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि हम यहाँ देव में गये हैं मनुष्य में से और वहाँ से मनुष्य होनेवाले हैं। वहाँ केवल(ज्ञान) प्राप्त करके मोक्ष जानेवाले हैं, ऐसा कहते हैं। फिर से.... मनुष्य। ऐसा कहा न भाई इसमें? फिर से मनुष्य। मनुष्यपने की पर्याय का उत्पाद करनेवाले भी हम गति के। गति के, हों! इस देह की नहीं। यह जड़ है। इसकी गति की योग्यता। देव की उत्पन्न करनेवाले, वहाँ से मनुष्यपना उत्पन्न (करनेवाले)। देव में मनुष्यपना नहीं, उसका अभाव है, उसका भाव करूँगा। अभाव का भाव करूँगा। अभाव अर्थात् यहाँ नहीं है, उसका भाव करूँगा। यह तो दृष्टान्त सब पर दिये हैं, हों! यह तो एक उतारा है।

(४) फिर से असत् (-अविद्यमान) मनुष्यादिपर्याय का उत्पाद करता है इसलिए उसी को अभावभाव का (-असत् के उत्पाद का) कर्तृत्व कहा गया है। ऐसा सिद्ध में लो तो भी ऐसा। संसारपर्याय है, उसे जीव.... सिद्धपर्याय को जीव उत्पन्न करता हुआ, पूर्व की संसारपर्याय को नाश करता हुआ, उस सिद्धपर्याय का वर्तमान भाव है, उसका अभाव करके नयी पर्याय में आता हुआ और नयी पर्याय का अभाव, उसका अभाव का यहाँ भाव करता हुआ। यह तो सब शक्ति आ गयी, वहाँ वर्णन आ गया है। भाव, अभाव, अभावभाव, भावअभाव, भावभाव, अभावअभाव छह शक्तियाँ। ४७ शक्ति आत्मप्रसिद्धि। समझ में आया ? यह मनुष्य पूरी संसारपर्याय।

अहो ! जिसे संसार का किनारा-अन्त आया है, पहले कह गये न। प्रवचनसार। यह संसार का किनारा-जहाँ अन्त आया है। वस्तु का अनेकान्त तत्त्व राग बिना का स्वभाव, स्वभाव बिना का राग, ऐसा भान हुआ है। मेरे बिना का यह और इसके बिना का मैं। ऐसा अनेकान्त का अमृत जिसे एकान्त का आग्रह छूटकर प्रगट हुआ है। संसार का किनारा निकट दिखता है। अल्प काल में सिद्धपद की पर्याय प्राप्त करेंगे, ऐसे भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की बात अमृतचन्द्राचार्य ने संस्कृत में रखकर प्रवचनसार में ली है। समझ में आया ?

यह भगवान कुन्दकुन्दाचार्य... कहो, समझ में आया ? यह सब शास्त्र वे पौत्रूरहिल में लिखे गये हैं। यह संघ जानेवाला है न पौत्रूरहिल ! वहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ध्यान में रहते थे। वहाँ से भगवान के पास गये थे। वहाँ से आकर यहाँ शास्त्र बनाये। वह जमीन तो ऐसी की ऐसी रही। भगवान वहाँ रहे और स्वयं स्वर्ग में गये। अभी स्वर्ग में हैं। कहते हैं कि फिर से हमारा मनुष्यभव जब मिलेगा, तब वह अभाव है अभी देव में हमें। उस अभाव का भाव होगा। ऐसा प्रत्येक जीव को, ऐसा प्रत्येक परमाणु को वर्तमान समय की पर्याय उत्पाद, पूर्व की पर्याय का व्यय, और वह का वह परमाणु कर्ता, यह वर्तमान पर्याय का भाव, उसका अभाव का कर्ता परमाणु, बाद की पर्याय का अभी अभाव, उस अभाव का भाव करनेवाला वह परमाणु। दूसरे जीव-बीव करे हिलावे, बोले, ऐसे चले, यह तीन काल में नहीं होता। आहाहा ! कहो, समझ में आया है या नहीं इसमें ?

यह सब निरवद्य (निर्दोष, निर्बाध, अविरोद्ध) है,.... हों। ऐसा कहते हैं देखो! यह निरवद्य। वे सावद्य और निरवद्य। सावद्य और निरवद्य। ऐसी वस्तु जो है, वह निर्दोष, निर्बाध, अविरोद्ध है, निरवद्य है। वस्तु का इस प्रकार से स्वरूप है। **क्योंकि द्रव्य और पर्यायों में से....** द्रव्य अर्थात् वस्तु और पर्याय अर्थात् अवस्था **एक की गौणता से....** पर्याय को गौणपने कहने से द्रव्य की मुख्यता से बात हो। द्रव्य की मुख्यता से करे, तब पर्याय की गौणता करे। **एक की गौणता से और अन्य की मुख्यता से कथन किया जाता है।** मुख्य द्रव्य-पर्याय का कथन आता है कि द्रव्य वह का वह रहे तब मुख्यरूप से द्रव्य का कथन हो। पर्याय भिन्न-भिन्न होती है, तब पर्याय की मुख्यता से कथन होता है। इस जीवद्रव्य की यह पर्याय उत्पन्न हुई। नयी हुई, पुरानी गयी। नयी हुई, पुरानी गयी। ऐसा प्रत्येक द्रव्य को—अनन्त परमाणु, अनन्त आत्मा को नयी-नयी पर्याय से उत्पन्न और व्यय कहें तो पर्यायदृष्टि से। वस्तुदृष्टि से कहें तो वह उत्पन्न और विनष्ट नहीं होता। द्रव्य उत्पन्न नहीं होता और विनष्ट नहीं होता। वस्तुदृष्टि से। पर्यायदृष्टि से वह क्षण-क्षण में नयी अवस्था करे और पुरानी अवस्था जाये। वह पर्यायदृष्टि से। इस प्रकार अनन्त द्रव्य का वर्तमान स्वरूप है, वह भगवान् २१ गाथा में सामान्य रीति से छह द्रव्य का स्वरूप पूर्ण किया। २१वीं पूरी हुई। पश्चात्.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



प्रकाशक
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
मुम्बई